



प्राकृत और अपभ्रंश  
का

दिगल-साहित्य  
पर प्रभाव



## संग्रहणीय प्रकाशन



आचार्य लम्बुनारे बाबूपेयी : शक्ति और साहित्य	१० ००
—सं० डा० रामाचार्य शर्मा	
हिन्दी काव्य प्राप्त में रत्न-सिद्धांत—डा० सच्चिदानन्द चौधरी	१८ ००
आचार्य द्विवेदी और उनके संगी-साथी	१ ००
—लेखक आचार्य पं० किशोरीदास बाबूपेयी	
हिन्दी-उपन्यास की विविधिका का विकास—डा० (धीमती) मोम दुबल	१९ ००
हिन्दी-निबन्ध का विकास—डा० मोनारनाथ शर्मा	१९ ०
अज्ञेय का काव्य—मुन्शी सुमन झा	८ ०
हिन्दी की नयी कविता—धी बी० नारायणन कुट्टी	७ ००
मा० हि०-कविता में अलंकार विधान—डा० जयदीननारायण मिश्रा	१५ ००
नया हिन्दी-काव्य—डा० शिवकुमार मिश्र	१९ ०
हिन्दी की सैद्धान्तिक समीक्षा—डा० रामाचार्य शर्मा	१९ ००
रामचरितमानस काव्यप्राप्तियों अनुशीलन—डा० राजकुमार पाण्डेय	१९ ००
हिन्दी-उपन्यास समाजसाक्षीय विश्लेषण—डा० जगदीशदास जोशी	१९ ००
दुलसीदास जीवनी और विचारधारा—डा० राजाराम रस्तोगी	१९ ०
कविचर विहारीनाथ और उनके युग—डा० रजबोर सिंह	१९ ००
मिरासा का परबर्ती काव्य—धी रमेशचन्द्र मेहरा	१ ००
छायावाद : स्वल्प और व्याख्या—धी राजेश्वरदास खड्गेना	४ ००
प्रयोगवाद—धी मरेन्द्रदेव शर्मा	१२ ५
विगत साहित्य प्राप्त और अपभ्रंश का प्रभाव—डा० बोबर्न शर्मा	१९ ००
प्रसाद की काव्य-शक्ति—डा० कामेश्वरप्रसादसिंह	२० ००
कामायनी का प्रकृति मूलक अध्ययन—डा० कामेश्वरप्रसादसिंह	८ ००
हिन्दी-युग का विकास—डा० जेयप्रकाश गोतम	१९ ००
प्रसाद की नाट्य-कला—डा० रामसेवक पाण्डेय	१९ ००
आधुनिक प्रणीत काव्य—डा० गणेश शर्मा	१९ ००



अनुमन्धान प्रकाशन, आचार्य नगर, कानपुर-३

(घोष-ग्रन्थों के प्रकाशक)

# प्राकृत और अपभ्रंश का हिगल-साहित्य पर प्रभाव

डॉ० गोवर्द्धन शर्मा

एम० ए०, पी एच० डी०



अनुसन्धान प्रकाशन

आचार्यनगर, कानपुर

## संग्रहणीय प्रकाशन



आचार्य नन्दबुलारे बाबरेयी : इयति और साहित्य	२० ००
—छं० डा० रामाधार शर्मा	
हिन्दी काव्य शास्त्र में रस-सिद्धांत—डा० सच्चिदानन्द चौधरी	१८ ००
आचार्य द्विवेदी और उनके संगी-साथी	१ ००
—लेखक आचार्य पं० किशोरीदास बाबरेयी	
हिन्दी-उपन्यास की प्रियविधि का विकास—डा० (भीमती) आम दुक्त	१६ ००
हिन्दी-निबन्ध का विकास—डा० ओंकारनाथ शर्मा	१६ ००
अज्ञेय का काव्य—गुप्ती सुमन शा	८ ००
हिन्दी की नयी कविता—भी बी नारायणन कुट्टी	७ ००
डा० हि -कविता में अलंकार विधान—डा० जगदीशनारायण त्रिपाठी	१५ ०
नया हिन्दी-काव्य—डा० शिवकुमार मिश्र	१६ ००
हिन्दी की सैद्धान्तिक समीक्षा—डा० रामाधार शर्मा	१६ ०
रामचरितमानस काव्यशास्त्रीय अनुसंधान—डा० राजकुमार पाण्डेय	१६ ००
हिन्दी-उपन्यास समाजशास्त्रीय विश्लेषण—डा० चन्दीप्रसाद जोशी	१६ ०
तुलसीदास कीजनी और विचारधारा—डा० राजाराम रस्तोगी	१६
कविबर बिहारीलाल और उनका युग—डा० रजबीर सिन्हा	१६ ००
निराला का परबर्ती काव्य—भी रमेशचन्द्र मेहरा	१० ००
छायावाद : स्वरूप और व्याख्या—भी राजेश्वरदयाल शर्मा	८ ००
प्रयोगवाद—भी गणेशदेव शर्मा	१२ ५०
द्विपक्ष साहित्य प्राकृत और अपभ्रंस का प्रमाण—डा० योगेश्वर शर्मा	१६ ००
प्रसाद की काव्य-प्रवृत्ति—डा० कामेश्वरप्रसादसिंह	२० ०
कामायनी का प्रवृत्ति मूलक अध्ययन—डा० कामेश्वरप्रसादसिंह	८
हिन्दी-नव्य का विकास—डा० प्रेमप्रकाश शोषम	१६ ००
प्रसाद की नाट्य-कला—डा० रामसेवक पाण्डेय	१६ ००
आधुनिक प्रगीत काव्य—डा० गणेश शर्मा	१६ ०



अनुमन्धान प्रकाशन, आचार्य नगर, कानपुर-३

(शोध-ग्रन्थों के प्रकाशक)

# प्राकृत और अपभ्रंश का डिगल-साहित्य पर प्रभाव

डॉ० गोवर्द्धन शर्मा

एम० ए०, पी एच० डी०



अनुसन्धान प्रकाशन

आचार्यनगर, कानपुर

मूल्य  
सोमह रुपये

प्रकाशक अनुसन्धान प्रकाशन  
८७/११९ बाबादरमबर कानपुर १  
प्रकाशन-काल सन् १९६१ ई०  
मुद्रक अनुपमप्रेस  
बगिचादेवी रोड, कानपुर १

प्रियवर रामरतन जी चांडक  
को





## प्राक्थन



‘प्राकृत और अपभ्रंश का हिमाल-साहित्य पर प्रभाव’ विषय पर प्रबन्ध प्रस्तुत करते हुए विषय की व्यापकता की ओर हमारा ध्यान सबसे पहले जाता है। भाषाविदों ने इसा के आसौ वर्ष पूर्व से प्राकृत का अध्ययन माना है। निरन्तर प्रबलमान साहित्यभारा का—अगम्य हो सहस्र वर्ष तक रहे गये प्राकृत अपभ्रंश और हिमाल के साहित्य का परिचय या ज्ञान भी बहुत टेढ़ा काम है। विषय जितना व्यापक है उतना ही कठिन भी। मैंने विषय का यथासम्भव गम्भीर और वैज्ञानिक अध्ययन प्रस्तुत करने का प्रयास किया है।

कठिनाइयाँ और मेरे साधन    ग्रन्थ स्रोतों का अध्ययन

जब विषय पर नियमित रूप से काम शुरू किया गया, तो तीन प्रमुख कठिनाइयों का अनुभव हुआ। वे थीं—

(१) प्राकृत, अपभ्रंश और हिमाल का अधिकतर साहित्य अप्रकाशित है। वह देश के सुदूर कोनों में स्थित विभिन्न पुस्तकालयों, ज्ञानभण्डारों या देवालयों में मग्न पड़ा है। वहाँ तक पहुँचना सरल नहीं। जो कुछ अस्पष्टता में साहित्य प्रकाशित भी हुआ है, वह भाषा आसानी से उपलब्ध नहीं होता। प्रकाशित साहित्य भी बहुधा कम प्रतियों के आधार पर सम्पादित किया हुआ है। अतः उसे वैज्ञानिक और अन्तिम नहीं माना जा सकता है। पर्याप्त जानकारी का अभाव और सुसम्पादित प्रकाशित साहित्य की कमी अध्ययन के मार्ग की बहुत बड़ी बाधा रही।

(२) प्राज्ञ, अथर्व व और दिनल—इन सभी साहित्यों पर अंग्रेजाइन कम काम हुआ है। अर्थात्-मुम्बर विश्वविद्यालय इतिहास की भाषा तो बुर रही, काम बलार्थ इतिहास भी उलझाव नहीं है।

(३) दिनल का क्या अर्थ है? राजस्थानी और दिनल का क्या सम्बन्ध है? क्या दिनल कोई भाषा है और उनका क्या साहित्य है या वह राजस्थानी भाषा की दोली विशेष भाषा है? क्या वह कविता भाषा है? दिनल-साहित्य में क्या अभिप्राय प्रकट किया जाय? ये कुछ ऐसे प्रश्न हैं जिन पर विद्वानों में मतभेद है। विद्वानों के मतमतांतर में क्या कर कौन-सा मार्ग ग्रहण किया जाय जो वैज्ञानिक हो और हमें सत्य व सच्ची अभिव्यक्ति के द्वारा सही निर्देशों तक पहुँचावे।

इन तीनों कठिनाइयों को एक-एक कर मुहमाया गया। प्राज्ञ अथर्व व और दिनल में सब एक-वही छन् १९६६ तक-प्रकाशित मुद्राभाषा साहित्य को बरगा गया। सीराष्ट्र के चारनों द्वारा दिनल की कुछ रचनाओं का मुद्राभाषा में प्रकाशन हुआ है उन्हें भी प्राप्त किया गया। जो साहित्य बाजार में अत्यन्त बुरा उनका पुस्तकान्तों में बाहर अभिव्यक्ति किया गया। अंग्रेजों में कहा जा सकता है कि प्राज्ञ, अथर्व व और दिनल के उन चर्चों को जो द्वितीय मुद्राभाषा बरगो राजस्थानी वा अंग्रेजी में निकले हैं विवेचन का आधार बनाया गया। इनके साथ ही विभिन्न संवाक्यों में बाहर अभिव्यक्ति किन्तु मुद्राभाषा रचनाओं से नाजगी सम्बन्ध की गई। अथर्व, माहीर, मोयपुर, बरबपुर, पूरा भाषाभाषा, भाषाभाषा, बड़ीय, पाटन, अहमदाबाद, कारंवा बरबपुर, बीकानेर आदि स्थानों के भाषाभाषाओं पुस्तकान्तों सम्बन्धितियों तथा भाषाभाषा और पर अनेक दिनों से साथ ही प्राप्त की गई। इस प्रकार मुद्राभाषाओं से प्राप्त विद्वानों साथ ही का अभाव प्रत्युत प्रथम में किया गया है।

जहाँ तक इन तीनों साहित्यों पर किये गये विद्वानों के कार्य का काम उठाने का प्रश्न है मराठी मुद्राभाषा राजस्थानी द्वितीय अंग्रेजी और संस्कृत में जहाँ कहीं, और बिल्ली भी जानकारी साधक हो सकती थी उसे प्राप्त करने की कोशिश की गई जो परिधि (४) में भी नहीं सहायक सामग्री-सूची में संलग्न है। यथा सामर्थ्य कोई लेन अर्पणित नहीं छोड़ा गया। डा० योगेश, डा० आचार्य तथा डा० विष्णुपुरी के अभिव्यक्ति किन्तु विषय से सम्बन्धित योग्यताओं को भी रखा कर देखा गया। यही नहीं, अपितु अथर्व व प्राज्ञ व दिनल के विद्वानों से निजी प्रश्नों द्वारा

विशेषण और विचारविमिय द्वारा पत्रोत्तर द्वारा जानकारी प्राप्त की गई। सर्वश्री राहुभ सांकरायण अगस्त्य जी नाहुटा उदयराज जी उज्ज्वल डा० अश्वेत डा० देशपांडे डा० बी० एम्० कुमकर्णी डा० माधव गोपास देशमुख के० का० शास्त्री केचरदास होसी डोकरराय मांकड बरीप्रसाद जी साकरिया आदि विद्वानों का सहयोग पाकर मैं भाग्यवादी बना हूँ। इस सम्बन्ध में अपने पुरखे डा० सोमनाथ जी बुष्ट का विशेष आभारी हूँ जिनके मार्ग-दर्शन से ही प्रबंध प्रस्तुत करने में समर्थ हो हूँ।

विभिन्न मत और मेरी मान्यताएँ

तीसरी कठिनाई हिंस के स्वल्प को लेकर थी। सर्वश्री पुरुषोत्तम मेनारिया अगस्त्य जी नाहुटा प्रगुति विद्वान् विमल जी मान लौकी मानने के पक्ष में हैं। वे उसे माया स्वीकार नहीं करते। दूसरी ओर मोतीदास मेनारिया टेसिटरी चटर्जी रामकर्म अक्षोपा अक्षराज मोसा नरोत्तम स्वामी, अक्षय श्रीवास्तव हीरानाथ महेस्वरी, उदयराज उज्ज्वल आदि विद्वान् उसे माया मानते हैं। इन पक्षियों का लेखक विमल को माया मानने के पक्ष में है। मारवाड़ी माया ही प्राकृत और अपभ्रंश से निमित्त होकर हिंस कहलाई। प्राकृत में साहित्यिक राजस्थानी मारवाड़ी बोलचाल से पुरा नहीं थी। कालान्तर में वही विकसित होकर विमल नाम से पुकारे जाने लगी। प्रस्तुत प्रबंध के तीसरे अध्याय में इन मान्यताओं की सप्रमाण स्थापना की गई है। इसी प्रकार विमल काव्य प्रकृतियों का विश्लेषण किया गया और उत्तक प्रतिपादित किया गया कि उन पर प्राकृत-अपभ्रंश का बहुत रूप है (देखिये बीमा अध्याय)। संक्षेप में प्रस्तुत प्रबंध की निम्न विशेषताएँ हैं।

(१) प्राकृत और अपभ्रंश की पुष्टभूमि में हिंस साहित्य को परखने की यह पहली चेष्टा है।

(२) मराठी गुजराती हिन्दी राजस्थानी अंग्रेजी और संस्कृत में प्रकाशित तथा अनेक अप्रकाशित कवियों के आपार पर प्रस्तुत प्रबंध में पहले पहल प्राकृत-अपभ्रंश और हिंस साहित्य का संक्षिप्त इतिहास दिया गया है।

(३) हिंस प्रस्तुत माया है या नहीं तथा इसी प्रकार की अन्य सम्बद्ध समस्याओं का सप्रमाण समाधान प्रस्तुत किया गया है।

(४) हिमाल के विभिन्न काष्ण जलों का विस्तृत अध्ययन करने बहुत प्रशंसा प्रबन्ध में किया गया है—राग रागा, बसाड़ा पामु, बसारेण, बसनिवा, बगान बाग, दिगल गीत आदि ।

(५) हिमाल साहित्य की प्रधान प्रवृत्तियों का परमपर उनके प्रेरक शक्ति को देना गया । बसन्तमणि काष्णराग तथा अन्य प्रवृत्तियों एवं कविता की विस्तृत समीक्षा की गई ।

(६) प्राकृत व अत्रिज न का हिमाल साहित्य पर बसन्तमणि की योग्य और विस्तृत प्रभाव दर्शाया गया ।

(७) हिमाल साहित्य विषयक अनेक भाष्यक चारपाओं का निराकरण किया गया और नवीन भाष्यनामों की रचना की गई ।

### कृतमिता प्रकाशन

प्रस्तुत प्रकाश का तैयार करने में मैंने पुरस्तिमित विद्वानों व अतिरिक्त सहायता पाई है । उनका सम्मान मैं मनमस्तक हूँ । इसी प्रकार उन सभी विद्वानों का आभारी हूँ जिनकी रचनाओं में मुझे सहायता मिली है । पुस्तक प्रकाश आशुपुर, मुमर पब्लिक लायब्ररी आशुपुर, ज्ञान भण्डार बड़ा उपाध्यय पाठन, सरस्वती भवन उदयपुर, अमरमणि प्रकाशय बीकानेर, आनन्द बाई ज्ञान भण्डार जयपुर, दिग्दर्शन ज्ञान भण्डार काठिया तथा सेठ बसन्तमणि लासलाई भारतीय संस्कृति मंदिर अहमदाबाद के अधिकारियों ने मुझे पुस्तकें प्राप्त करने में मदद की । उनका प्रति भी आभारी हूँ ।

भारतीय डा० सावनाथ की गुण व मार्ग-दर्शन के अभाव में यह कुछ भी नहीं हो सकता था । उन्हीं के प्रोत्साहन और समय-समय पर की गई सक्रिय सहायता से इस महत् कार्य को मैं पूर्ण कर सका । उनकी महती कृपा मैं उन्हें मनमस्तक

राजस्थान की स्थानीय विशेषताओं को समझना भी जरूरी था। जबिकोई सामग्री में नहीं देख पाया। नाना प्रकार की चेष्टाएँ की गई कि प्रूफ की भूँ में न रहने पायें, फिर भी कठिपय भुटियाँ रह गई हैं। मुधी पाठकों से खदारता की अपेक्षा है।

प्रस्तुत ग्रन्थ के प्रकाशन में राजस्थान विश्वविद्यालय ने आर्थिक अनुदान दिया है। एतदर्थ लेखक विश्वविद्यालय के अधिकारियों का हार्दिक आभार मानता है।

—गोपबन्धन शर्मा





## विषय-सूची

पहला अध्याय—प्राकृत भाषा और साहित्य १७-५६

प्राकृत की व्युत्पत्ति १८

प्राकृत भाषा का विकास २०

दिवासेवी प्राकृत बहिर्भाषीय प्राकृत वार्तिक प्राकृत साहित्यिक प्राकृत, पैसाची प्राकृत नाटकीय प्राकृत, पैसाकरणी की प्राकृत मिम या पाषा संस्कृत बौद्ध मिम संस्कृत जैन मिम संस्कृत ब्राह्मण मिम संस्कृत ।

प्राकृत साहित्य का तथ्य ३२

प्राकृत साहित्य की रूपरेखा ३३

बभ्रुवेव हिम्बो सुपारसनाह भरिय महावीर भरित सुमतिनाथ भरित कुमारपाक भरित कुम्भापुत भरित धर्मराज्य कहा भूर्तस्थान कथाकोतप्रकरण, कथा महोदधि विजयचक्र भरित ज्ञान पञ्चमो कथा विजयचक्र केवलिन तरपवती सुरसुन्दरी भरिय कालकाचार्य कथानक भुवमसुन्दरी भलमसुन्दरी कथा सिरिसिरिवाल कहा रमणवेहर कहा कुवलय याता कथा, उमएसमाता भर्मापदैतमाता विवरण कुमारपाक प्रतिरोध ।

प्राकृत की साहित्यिक रचनायें ४६

सेवुवन्न या रावन्न बहा गीडवहो यहुमह विजय श्रीभावई, सिरिचिन्न कथ सिरिचिन्न, उसाचिन्न, कडवहो ।





## प्राकृत : भाषा और साहित्य

किसे प्राकृत के नाम से संबोधित किया जाय ? कौन सी भाषा प्राकृत कहमाने की अधिकारिणी है ? ये ऐसे प्रश्न हैं, जिनका उत्तर दो तीन बय से दिया जा सकता है । पाश्चात्य विद्वानों ने प्राकृत शब्द का प्रयोग इन अर्थों में किया है—

(१) वे विशेष भाषाएं जिनका भारतवर्ष में प्राकृत शब्द से उल्लेख किया जाता है । जैसे महाराष्टी, या संस्कृत भाटकों के प्राकृत अर्थ ।

(२) मध्यम भारती युग की भाषाएं ।

(३) साहित्यिक और शिष्ट भाषा से भिन्न सहजजन्य लोक भाषा के लिए । इस अन्तिम अर्थ में कई लेखक प्राकृत के तीन भेद करते हैं प्रथम द्वितीय और तृतीय प्राकृतों को तीनों बड़े जुगों की सहजजन्य लोक भाषाएं थीं ।

इन तीनों प्रयोगों से एक बात स्पष्ट हो जाती है कि चाहे जो हो प्राकृत भाषाएं चाहे उन्हें लोक भाषा के रूप में ग्रहीत किया जाय अथवा साहित्यिक के - भारत के भाषा-इतिहास की एक अत्यन्त आवश्यक घुमिका है । एक ओर से वर्तमान काल की बोलचाल की लघु-भारतीय-आर्यभाषाएं और दूसरी ओर से प्राचीनतम भारतीय-आर्य भाषा जैसे कि वेद की भाषा यह दोनों स्वस्थों के बीच की वो भारतीय भाषा इतिहास की अवस्था है, उसको हम प्राकृत नाम से सफटे हैं ।<sup>१</sup> इसी बात को प्रकारान्तर से इस प्रकार भी कहा जा सकता है—भारतीय आर्यभाषाओं को प्राचीन मध्य और आधुनिक तीन कालों में विभाजित किया गया है । प्राकृत मध्यकालीन भाषाओं का प्रतिनिधित्व करती है ।

इसी व्यापक अर्थ में सेने पर १० ई० पूर्व से १०० ई० तक के सोलह सौ वर्षों तक भारतीय-आर्यभाषा विभिन्न प्राकृतों तथा उत्पत्त्यात् अपभ्रंश के रूप में विकसित होती हुई आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं की जननी बनी ।<sup>२</sup> आर्यभाषा

१ बनारसीदास श्रीग प्राकृत प्रवेशिका-पृ० ३

२ प्रियर्सन ब्रूलर, पिरोल डा० प्रबोध पंडित डा तिवारी आदि सभी टीम विभाजन करते हैं । विस्तृत विवेचन अग्यम है ।

३ डा० प्रबोध वैद्यराय पंडित भाषा पृ० १

४ डा० सरमूप्रसाद अग्रवाल हिन्दी साहित्य कोश-पृ० ४९२

५ डा० उदयनारायण तिवारी हिन्दी भाषा का उद्गम और विकास-पृ० १०

के मध्यकालीन स्वयं के विकास का ऐतिहासिक विवेचन करने के लिए १९०० वर्षों के इस काल को निम्न पर्वों में बांटा जा सकता है—

(१) प्रथम पर्व जिसमें लगभग २०० ई० पूर्व तक के प्रारम्भिक परिवर्तन तथा २०० ई० पूर्व से २०० ई० तक का विकास सम्प्रभूत है ।

(२) २०० ई० से १०० ई० तक द्वितीय पर्व ।

(३) १०० ई० से १००० ई० तक तृतीय पर्व ।<sup>१</sup>

प्रथम पर्व में भाषा के विकास के अध्ययन की सामग्री पालि साहित्य तथा अथोक के अभिलेखों से प्राप्त होती है । भरतसिंह पालि के इस काल का २०० ई० पूर्व से १ ई० पूर्व तक मानते हैं ।<sup>२</sup> पालि को आरम्भ 'प्राचीन प्राकृत' मानते हैं और प्राकृत से उसे भिन्न समझते हैं । प्राकृत के व्याकरणों तथा अलंकार-शास्त्रों ने पाली को पुनः मानकर प्राकृत व्याकरण आदि लिखते समय इसका कुछ भी उल्लेख नहीं किया है ।<sup>३</sup> इसीलिये हम भी प्रस्तुत सम्प्रदाय में पालि पर विरुद्ध विचार नहीं करते ।

द्वितीय पर्व में जिस प्राकृत को ग्रहण किया जाता है उसे साहित्यिक प्राकृत के नाम से भी अभिहित किया जाता है । प्रस्तुत सम्प्रदाय का अध्ययन सम्प्रदाय की प्राकृत भाषा और साहित्य तक सीमित है । अतः यहाँ प्राकृत का व्यापक अर्थ न लेकर उसका ऐतिहासिक अर्थ ही लिया गया है जिसके अनुसार प्राकृत एक और संस्कृत तथा पालि और बृहदी और अपभ्रंश तथा आधुनिक कार्य भाषाओं के बीच की कड़ी है । अर्थ-वैशिष्ट्य के लिये विद्वानों ने इसको साहित्यिक प्राकृत कहा है ।

तृतीय पर्व में अपभ्रंश का विकास लिया जाता है । इसे प्राकृत साहित्य का अंतिम काल माना जाता है ।<sup>४</sup> इस पर हमारे सम्प्रदाय में विस्तार पूर्वक विचार किया गया है । अतः इस सम्प्रदाय में इस पर कोई चर्चा नहीं की जायेगी ।

### प्राकृत की व्युत्पत्ति

प्राकृत के व्याकरणमय प्राकृत शब्द की व्युत्पत्ति में प्रकृति शब्द का अर्थ संस्कृत करते हुए प्राकृत भाषाओं की उत्पत्ति लौकिक संस्कृत से मानते हैं । संस्कृत के कई अलंकार-शास्त्रों के टीकाकारों ने भी तद्वन्व और सरस्य शब्दों में स्थित 'त्' ध्वनि का सम्प्रदाय संस्कृत से लब्धकर इसी मत का अनुसरण किया है । इस विषय पर हेनचंद्र नाथि में ही कहा है—

१ डा० उदयनारायण तिवारी हिन्दी भाषा का उद्भव और विकास-पृ० १०

२ भरतसिंह उपाध्याय पालि साहित्य का इतिहास-पृ० ११, १२

३ मधुसूदन प्रसाद प्राकृत व्याकरण-भूमिका ध्रुवनारायण-पृ० ४

४ डा० हरीश नाथी प्राकृत और उसका साहित्य-पृ० १४

५ डा० प्रबोध चरणदास पंडित प्राकृत भाषा-पृ० २

प्रकृति संस्कृतम् । तत्र सर्वं प्राकृतम् उच्यते । १।१

अर्थात् आचारमूल भाषा संस्कृत है और इस संस्कृत से जो भाषा निकली है या आई है वह प्राकृत कहलाती है । इसी प्रकार 'मार्कण्डेय' ने भी अपने 'प्राकृत सर्वस्वम्' के आरम्भ में ही लिखा है—

प्रकृति संस्कृतम् । तत्र सर्वं प्राकृतम् उच्यते । १

'वचस्पक' की टीका में 'मनिक' ने २६० में लिखा है—

प्रकृतेर् आप्तं प्राकृतम् । प्रकृति संस्कृतम् ।

'बाल्मदार्लकार' २२ की टीका में 'सिंहवेगणिन्' ने लिखा है—

प्रकृते संस्कृतात् आप्तं प्राकृतम् ।

पीटर्सनकी सीसी रिपोर्ट के १८३७ में 'प्राकृत चन्द्रिका' में आया है—

प्रकृति संस्कृतम् । तत्र यत्स्यात् प्राकृतम् स्मृतम् ।

'नरसिंह' ने 'प्राकृत शब्द प्रदीपिका' के आरम्भ में ही कहा है । उसकी पुस्तक की शीर्ष—

प्रकृते संस्कृतमाप्तं तु विकृति प्राकृती यता ।

कपूरचन्दरी के बम्बई संस्करण में बाबुदेव की जो संजीवनी टीका दी गई है उसमें लिखा है

प्रकृतस्य तु सर्वम् एव संस्कृतम् योनि । १८२

प्राकृत संजीवनी में संस्कृत को प्राकृत की योनि माना गया है ।

प्राकृतस्य तु सर्वमेव संस्कृतं योनि ।

काम्याक्ष की प्रेमचन्द्य तर्कवादीय कठ टीका में संस्कृत के प्राकृत रूप से प्राकृत को उत्पन्न माना है—

संस्कृत रूपमा प्राकृते उत्पन्नात् प्राकृतम् ।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि साहित्य में सुरक्षित रहकर प्राकृत का जो रूप हमें उपलब्ध हुआ है उसके प्राकृत को संस्कृत की पुत्री कहा जा सकता है । उसके ९५ प्रतिशत शब्द संस्कृत से मिलते हैं । इसका वास्तविक तो पूर्वतया संस्कृतन है । इसका व्याकरण भी संस्कृत की प्रकृति के अनुकूल है—कृष्ण रूपों का संक्षिप्तीकरण और कृष्ण का सामास्यीकरण अवश्य हुआ है ।<sup>१</sup> संस्कृत से हटकर जिस प्रकार की स्वतंत्रता और विभिन्नता अपभ्रंस अथवा आधुनिक भाषाओं में पाई जाती है वैसे प्राकृत में नहीं । साहित्यिक प्राकृत तो विशेषतया संस्कृत की परिष्कारिता बनकर बनी है । इसीलिए इसमें तत्सम शब्दों का बाहुल्य और ठेठ ऐसी शब्दों की कमी है । प्राकृत का उत्तरवर्ती साहित्य ऐसा लगता है कि संस्कृत से उस्ता कर लिया गया हो । संभवत बहुत से परवर्ती लेखक सोचते संस्कृत में से और लिखते प्राकृत

य धे, ऐसे आश्रय ने कई सुविधित साहित्यकार अंग्रेजी में सोचते हैं और उसका अनुवाद अपनी भाषा में कर लेते हैं ।<sup>१</sup>

परन्तु भाषा शास्त्र की दृष्टि से उक्त मत अशुद्ध, अप्रामाणिक और उमटा मगवा है ।<sup>२</sup> ऊपर की गई श्रुतियों का तात्पर्य यह है कि प्राकृत छन्द प्रकृति से बना है प्रकृति का अर्थ है संस्कृत भाषा और संस्कृत भाषा से जो उद्गम हुई है वह है प्राकृत भाषा । प्रकृति छन्द का मुख्य अर्थ संस्कृत भाषा कभी नहीं होता—संस्कृत के किसी कोष में प्राकृत छन्द का यह अर्थ उपलब्ध नहीं है और गीण या सादागिक अर्थ तब तक नहीं लिया जाता जब तक मुख्य अर्थ में बोध न हो ।<sup>३</sup> वरजसप्त संस्कृत और प्राकृत भाषा के बीच में किसी प्रकार का कार्य-कारण भाव है ही नहीं ।<sup>४</sup>

दूसरे मत के अनुसार प्राकृत भाषा का बोध करानेवाला प्राकृत छन्द प्रकृति से बना है । प्रकृति का एक अर्थ स्वभाव भी है मत जो भाषा स्वाभाविक है वह प्राकृत छन्द से बोधित होती है ।<sup>५</sup> इसी से मिलता जुलता अर्थ जनमाधारम भी लिया जाता है इसीलिए हरमोचिदास सेठ ने 'प्राकृतवा स्वभावेन सिद्धं प्राकृतम् अपवा प्रकृतीनां साधारण जनानाम् इव प्राकृतम् के द्वारा प्राकृत को व्युत्पत्ति की व्याख्या की है ।<sup>६</sup> इस मत के समर्थन में उन्होंने निम्न उद्धरण दिया है—

'प्राकृतेति । सबसज्जमन्तूनां व्याकरणाभिमिरनाहितसंस्कार, सहजो वचन व्यापार प्रकृति तन भव सेव वा प्राकृतम् ।

यह उद्धरण सट्टक 'काम्यामकार' के टीकाकार गमिसाधु का है जिससे स्पष्ट सात होता है कि प्रकृति छन्द का अर्थ है लोगों का व्याकरण आदि के संस्कारों से रहित स्वाभाविक वचन व्यापार जन्मे उत्पन्न अबका बही है प्राकृत ।

इस प्रकार हमने देखा कि कर्म से संश्लेष में प्राकृत की व्युत्पत्ति को लेकर दो मत हैं—पहला तो यह कि प्रकृति अर्थात् संस्कृत से उत्पन्न प्राकृत । दूसरा यह कि प्रकृति अर्थात् जन सामान्य की व्याकरणआदि के संस्कारों से मुक्त कल्प भाषा पर आधारित प्राकृत । इनमें से दूसरा मत अधिक प्राज्ञ है ।

### प्राकृत भाषा का विकास

विशेष ने यह स्पष्ट किया है कि कुछ व्याकरण प्राकृत छन्द हैं विस्मेष—प्राकृत-छन्द — पहले सभी भाषा के आधार पर इसे संस्कृत से भी प्राचीनतर मानते

१ डा. हरदेव काहूरी प्राकृत और साहित्य पृ०—२

२ डा० सरमप्रसाद अग्रवाल प्राकृत विमर्श पृ०—३

३ हरमोचिदास सेठ पादव सहस्रहृन्मयी—भूमिका पृ०—४

४ बेबरदास बोधी जिना समकथा संघह भूमिका पृ० ४—५

५ बेबरदास बोधी जिनापत्रकथा संघह—भूमिका—पृ०—६

६ हरमोचिदास सेठ पादव सहस्रहृन्मयी—भूमिका—पृ० ४

७ वही—पृ० ९

है। अपने नैसर्गिक रूप में यह वैदिक काल के पूर्ण भी वर्तमान थी। वैदिक भाषा को स्वयं उस काल में प्रचलित प्राकृत बोलियों का साहित्यिक रूप माना जाता है।<sup>१</sup> सब प्राकृत भाषाओं का वैदिक व्याकरण और शब्दों का नामा रूपों में साम्य है, और ये बातें संस्कृत में नहीं पाई जाती।<sup>२</sup> वैदिक संस्कृत और खिलानधी प्राकृत दोनों भाषाएँ परस्पर बहिन हैं—क्योंकि दोनों का विकास वैदिक युग की कथ्य—भाषाओं से—स्थानीय लोकभाषाओं से हुआ था।<sup>३</sup> जिस समय लौकिक संस्कृत भाषा प्रचलित हुई उस समय भी साधारण लोगों की स्वतंत्र कथ्य भाषा विद्यमान थी यह नाटक बाहि में संस्कृत भाषा के साथ प्राकृत भाषी पात्रों के उत्प्रेषण से प्रमाणित होता है। क्या तो वैदिक संस्कृत और क्या लौकिक संस्कृत दोनों ही उस समय की प्राकृत भाषाओं से उत्पन्न हुई हैं। आबकस के भाषा-तत्त्वज्ञों में इसी सिद्धान्त का अधिक आदर देखा जाता है।<sup>४</sup>

आठवीं शती के महाकवि बाणपतिराज ने अपने गठह्वहो नामक महाकाव्य में इसी मत को इस प्रकार प्रकट किया है—

समभावो ह्यं भाषा विसृति एतोर्भेति भाषाभो ।

एति समुद्रं चिय भेति सागराभो भिय बत्ताई ॥ १३ ॥

अर्थात् इसी प्राकृत भाषा में सभी भाषाएँ प्रवेश करती हैं और इस प्राकृत भाषा से ही सब भाषाएँ निर्मैत हुई हैं। बल आकर समुद्र में ही प्रवेश करता है और समुद्र से ही वाष्परूप से बाहर होता है।

आज यह मान लिया गया है कि प्राकृत का विकास संस्कृत से नहीं हुआ है। प्राकृत भाषाएँ वास्तव में कुनिम और काव्य की भाषाएँ हैं क्योंकि इन भाषाओं की कवियों ने अपने काव्यों में काम में जाने के प्रयोजन से बहुत छोड़-मरोड़ और बदल दिया। किन्तु वह इस अर्थ में छोड़ी-मरोड़ी हुई या इनिम भाषाएँ नहीं हैं कि इन यह समझे कि वे कवियों की कल्पना की उपज हो।<sup>५</sup> इसका ठीक वही हिसाब है जो संस्कृत का है जो विभिन्न भारतीयों की सामान्य बोलचाल की भाषा नहीं है और न इसमें बोलचाल की भाषा का पूरा आचार मिला है किन्तु अवश्य ही यह जनता के द्वारा बोली गई किसी 'भाषा' के आचार पर बनी थी और राजनीतिक या धार्मिक इतिहास की परम्परा के कारण यह भारत की सामान्य साहित्यिक भाषा बन गई। मेरे इतना ही कि यह पूर्णतया असम्भव है कि सब प्राकृत भाषाओं को संस्कृत की भाँति एक मूल भाषा तक पहुँचाया जाय। केवल संस्कृत को ही इसका मूल समझना

१ सरमूप्रसाद अग्रवाल हिन्दी साहित्य कोश — पृ० ४९२

२ डा० पिरेल प्राकृत भाषाओं का व्याकरण — पृ० ८

३ बी० जे बीकशी कम्पैरेटिव प्राकृत ग्रामर — पृ० ९

४ हरमोविन्ददास सेठ पाइअस महणणी — नूमिका — पृ० ८

५ वही — पृ० ९

६ बीम्स कम्पैरेटिव ग्रामर आफ दि मोर्डन आर्यन लैंग्वेजेज—अध्या १—पृ० १०१

जैसा कि कई विद्वान समझते हैं और इन विद्वानों में होस्कर, सास्त्रन, मंडारकर याबोकोई भी शामिल हैं। अपभ्रंशपूर्ण है। प्राकृत का मूल, संस्कृत को बताना सम्भव नहीं है। इसे पिरोल ने सम्प्रमाण सिद्ध कर दिया है।<sup>१</sup>

भाषा के विकास की दृष्टि से भी 'प्राकृत' का संकुचित अर्थ ही लिया जाता है क्योंकि १०० ई. पूर्व से लेकर १०० ई. तक भी सभी भाषाओं प्राकृत के नाम से कही गयी हैं जिन्हें आरम्भिक प्राकृत 'मध्यकालीन प्राकृत' और 'उत्तरकालीन प्राकृत' के नाम से विभाजित किया गया है। आरम्भिक प्राकृत के अन्तर्गत पालि और शिलाशेखी प्राकृत जबकि मध्यकालीन प्राकृत के अन्तर्गत महा-राष्ट्री, 'शौरसेनी', मगधी अर्धमागधी 'पैशाची' आदि और उत्तरकालीन के अन्तर्गत 'नागरी', उपनागरी, 'चाणक्य' आदि अपभ्रंश भाषाओं की गणना की जाती है। परन्तु और भी अधिक संकुचित रूप में कुछ लोगों ने मध्यकालीन प्राकृतों की ही गणना साहित्यिक प्राकृत भाषाओं के रूप में की है।

संस्कृत भाषा की सर्व व्यापकता प्राचीन काल में तो रही ही परन्तु बाद में भी उसका मयेष्ट प्रभाव बना रहा। परन्तु एक काल ऐसा आया जब कि संस्कृत का व्यवहार सामान्य जनता में नहीं रह गया। सर्वप्रथम अशोक के शिलालेखों तथा सिक्कों पर संस्कृत से भिन्न प्राकृत भाषा के कुछ उदाहरण मिलते हैं और साथ ही दार्मिक ग्रंथों की प्राकृतों—(पालि और अर्धमागधी) में भी उस काल का सम्भव साहित्य उपलब्ध होता है। सामाजिक दार्मिक राजनीतिक उद्योगों का बिना परिचय उक्त प्राकृतों से भिन्न शक्यता है। उतना उस काल में प्रचलित संस्कृत भाषा से नहीं मिलता। उस काल में उक्त प्राकृतों जन-सामान्य की भाषाओं भी संस्कृत जनता की भाषा नहीं रह गई थी। संस्कृत भाषा का परिष्कार प्राविद्यालयों के समय से लेकर अष्टाध्यायी और महाभाष्य के समय तक बराबर होता रहा और वह जनसाधारण की भाषा न रह कर सीमित समुदाय की भाषा हो गई थी। प्राचीन भाषाओं की विभिन्न बोलियाँ—'उडिष्य' 'प्राच्य' 'मध्यदेशी' आदि जो आग्नेय-काल में ही प्रचलित थीं वे संस्कृत के विकास के समय में भी विभिन्न क्षेत्रों में प्रचलित थीं और फिर उन्हीं क्षेत्रों में विभिन्न प्राकृत रूपों का विकास हुआ तथा इनका प्रचार एक एक बना रहा जब तक कि भाषागत भाषा भाषाओं का विकास उनके आधार पर नहीं हो पया।<sup>२</sup>

प्राकृत भाषा के व्याकरण समय-समय पर और विभिन्न लेखकों द्वारा रचे गये। प्राचीन भारतीय व्याकरणों द्वारा रचित ग्रंथों की सूची निम्न है।<sup>३</sup> इस सूची में दृष्टिमा भी शामिल हैं।

- १ प्राकृत प्रकाश-वररथि (प्रकाशित)      २ प्राकृत लक्षण-चंद्र (प्रकाशित)  
३ प्राकृत व्याकरण-हेमचंद्र (प्रकाशित)      ४ प्राकृत मंत्राली-बभ्रुवर  
( पार्श्वेय के प्राकृत सर्वज्ञ में उल्लेख )

१ पिरोल प्राकृत भाषाओं का व्याकरण—हिन्दी अनुवाद—पृ. ८६

२ सरयू प्रसाद अष्टाध्यायी प्राकृत विमर्श—पृ. ५

३ वैचरदाम दोशी प्राकृत व्याकरण—पृ. ४९ ४० में उल्लेख

- १ प्राकृत कामधेनु—मार्कण्डेय  
७ प्राकृत व्याकरणवृत्ति—निबिन्धन (प्रकाशित) ८ प्राकृत प्रक्रिया वृत्ति—  
उदय सोमाग्य (प्रकाशित) ९ प्राकृत चंद्रिका—क्षयकल्प पंडित
- ११ प्राकृत चंद्रिका—आमनाचार्य १२ प्राकृत मनोरमा—भामह  
मार्कण्डेय १३ प्राकृत सर्वरथ में उल्लेख  
१४ प्राकृत दीपिका—चंडीवर चर्मा  
१५ प्राकृत वल्लभ—रामचर्कबागीस (प्रकाशित) १६ प्राकृतमंथरी—कारपायन  
(प्रकाशित)  
१७ प्राकृत सर्वरथ—मार्कण्डेय (प्रकाशित) १८ प्राकृतार्णव—रघुनाथ चर्मा  
१९ प्राकृत प्रदीपिका—नरसिंह २० प्राकृत मणि दीपिका—चमरबोम्म  
भूषण  
२१ प्राकृत मणिदीप ज्ञानयजकम् (प्रकाशित) २२ पद्मभाषा मंथरी—अज्ञान  
२३ पद्मभाषा नाटिक—अज्ञान २४ पद्मभाषा चंद्रिका—मन्मथीवर  
(प्रकाशित)  
२५ पद्मभाषा चंद्रिका—भामवर्ध २६ पद्मभाषा सुवर्णदास—अज्ञात  
२७ पद्मभाषा कृतमात्रिका—सुवर्णभाषा २८ मंथिलमार प्राकृतवाद  
२९ प्राकृत व्याकरण—गुप्तचंद्र शुभदीनवर

हो सकता है कि कुछ और रचनाएँ अभी भी अज्ञात हों ।

प्राचीनतम प्राकृत-व्याकरण प्राकृत-प्रकाश के रचयिता भरदक्षिण महाराष्ट्री वैद्याची, मागधी और घोरसेनी का उल्लेख किया है । हेमचन्द्र ने इन चारों के अतिरिक्त 'बुलिका वैद्याचिक, आप्तमर्ममागधी और अपभ्रंश का उल्लेख किया है । निबिन्धन मन्मथीवर सिंहराज नरसिंह आवि ने हेमचन्द्र के विभाजन का अनुकरण किया है । इनमें केवल निबिन्धन के अतिरिक्त, घोरसेनी भाषाची, वैद्याची बुलिका वैद्याची और अपभ्रंश को पद्म भाषा के नाम से भी कहा गया है । मार्कण्डेयने इन छः के स्थान पर सोमह भाषाओं का उल्लेख किया है । उनके अनुसार प्राकृतकों को भाषा विभाषा अपभ्रंश और वैद्याच चार वर्गों में बाँटा गया है । भाषा ॥ अन्तर्गत महाराष्ट्री, घोरसेनी, प्राच्या भावन्ती, मागधी शालिनाय एवं बाह्यसीकी विभाषा के अन्तर्गत नाकारी पाण्डाली छावरी आभीरीकी हजरी मुख्य रूप हैं जोड़ी और हाथीकी विभाषाये नहीं मानी गयी हैं अपभ्रंश में सत्ताईस रूपों को नायर उप नागर और वाचक में और ग्यारह वैद्याची भाषाओं को द्वेकय, घोरसेन और पांचाल तीन रूपों में गणना की गयी है । रामचर्कबागीस और पुरयोत्तम ने भी मार्कण्डेय के उक्त विभाजन का समर्थन किया है ।<sup>१</sup>



जब तक के अध्ययन से प्राकृत भाषा के वैज्ञानिक वर्गीकरण की समस्या हल नहीं हुई है। हमने ऊपर देखा है कि बरहचि हेमचन्द्र या मार्कण्डेय किसी भी ब्रह्मण्य द्वारा दिया गया वर्गीकरण पूर्ण और सुस्पष्ट नहीं है। इसी प्रकार कालमेघ पर आधारित वर्गीकरण यथा-प्राचीन प्राकृत मध्यवर्ती प्राकृत तथा पारवर्तीप्राकृत पाणि-साहित्यिक प्राकृतों-अपभ्रंश भी उपयुक्त नहीं है। अब हम प्राकृत का विभाजन इस प्रकार से करेंगे।<sup>१</sup>

## १ शिलालेखी प्राकृत

अशोक के समय से लेकर बाद तक ब्राह्मी तथा खरोष्ठी लिपि में उपलब्ध शिलालेखों की प्राकृत जो उस समय के शिलालेखों सामग्रियों तथा सिक्कों में पाई जाती है।

## २ बहिर्भारतीय प्राकृत

इसके अन्तर्गत कोठाम से मिले खरोष्ठी लिपि में मिले 'धम्मपद' की प्राकृत तथा मध्यएशिया से मिले कोठानी हस्तलेखों की प्राकृत की बचना होती है जिसे निया प्राकृत कहा जाता है।

## ३ धार्मिक प्राकृत

इसके अन्तर्गत बौद्धों की धार्मिक प्राकृत पालि तथा जैनों की आर्यभाषा वर्तमानगी का ग्रहण होता है। इसके अतिरिक्त जैन-महाराष्ट्री तथा जैन खीरसेनी का भी समावेश होता है।

## ४ वैयाकरणों की प्राकृत

बरहचि तथा भरत से लेकर मार्कण्डेय तथा रामतर्कबागीस तक के वैयाकरणों द्वारा उल्लिखित प्राकृत एवं प्राकृत की विभाषाएँ।

## ५ साहित्यिक प्राकृत

इसमें महाराष्ट्री खीरसेनी मागधी पद्याधी तथा अपभ्रंश के साहित्यिक रूप का समावेश होता है।

## ६ नाटकीय प्राकृत

इसमें भास तथा ब्रह्मवीर्य से लेकर बाद तक के संस्कृत नाटकों में उपलब्ध तत् प्राकृत तथा उसकी वैभाषिक प्रवृत्तियों का समावेश किया जाता है। इसी में प्राच्या आर्षेयी उनकी सफारी नाट्यामी भाषा का ग्रहण होता है।

## ७ व्यावहारिक या मिश्र संस्कृत

इसको कुछ विज्ञान प्राकृत से भिन्न मानना चाहिये तथा अन्य विज्ञान से संस्कृत में ही अभ्युत्पन्न करना चाहिये किन्तु भाषावैज्ञानिक दृष्टि से यह संस्कृत का ही वह प्रवृत्तिमूलक रूप कहा जा सकता है जिसका समावेश प्राकृत में करना ठीक होगा। इसमें

महामातृ तथा पुराणों की व्यावहारिक संस्कृत शैलियों की मिश्र संस्कृत या तत्कालीन बौद्ध-मिश्र-संस्कृत तथा चीनों के कतिपय ग्रंथों की मिश्र संस्कृत का समावेश किया जाता है। इसी को कुछ लोग भाषा 'डायलेक्ट' भी कहते हैं।<sup>१</sup>

हम यहाँ इन्हीं प्राकृतों का संक्षिप्त परिचय जानने की कोशिश करेंगे।

## १. शिवासेखी प्राकृत

प्राकृत के प्राचीनतम रूप यदि कहीं मिल सकते हैं तो केवल शिवासेखों में ही। इसी के जन्म से पूर्व दूसरी सदी से लेकर ईसवी सन् की तीसरी सदी तक अनेक प्रस्तरलेख पुष्पामों, स्तूपों स्तम्भों आदि में उत्कीर्ण मिलते हैं, केष विद्वान् सेनरा ने इस प्रस्तर-लेखों की भाषा को 'स्मृतिस्तम्भों की प्राकृत' कहा है। यह नाम भ्रमपूर्ण है क्योंकि इससे यह अर्थ निकलता है कि यह भाषा सोमह जाने कृत्रिम है। इसपूर्ण विश्लेषका सूत्राह है कि इस बोली का नाम 'सेख-बीली' रखा जाय।<sup>२</sup> सेख का अर्थ मुका है। यह शब्द संस्कृत जयन से निकला है, जो इन प्रस्तर-लेखों में बहुधा पाया जाता है। अशोक के लेख अनेक भाटों पर मिलते हैं इसलिए इसे भाट-विभाषा भी कहा गया है।<sup>३</sup> ये शिवा सेख हमें दो सिपियों में मिलते हैं—बाह्यी तथा खरोष्ठी। खरोष्ठी का प्रयोग केवल साह्याबागकी और मानसेरो वाले लेखों में है।<sup>४</sup> खरोष्ठी सिपि में साह्याबागकी और मानसेरा बाह्यी सिपि में पिरनार, काकसी, बीली बीपड़ और सोपार के लेख हैं। जम्बु-सिमा लेखों के अन्तर्गत रूपमाय, सहस्र राम बराट, ब्रह्मगीरि छिन्नपुर अटिंग रामेश्वर मस्की, कोपबाल, मेरमुडि के लेख हैं। स्तम्भ लेख बिस्ती तोपरा, दिल्ली भिरत इलाहाबाद, काश्याम्बी रचिया मथिया और रामपूर्वा के लेख हैं। जम्बुस्तंभ लेख सारनाथ छापी इलाहाबाद और काश्याम्बी में मिलते हैं। स्तंभ बागलेख इम्म्मेदेह और नेपाल के नीमलिख स्थानों में मिले हैं। लेखलेख गया जिले के बराबर और नागार्जुन गुफाओं में उपलब्ध हुए हैं।<sup>५</sup> इस प्रकार अशोक के इन लेखों में प्राकृत की चार वैभाषिक प्रवृत्तियाँ परिमक्षित होती हैं।<sup>६</sup>—उत्तरपश्चिमी प्राकृत या खरीष्य प्राकृत पश्चिमी प्राकृत, मध्यपूर्वी प्राकृत तथा पूर्वी प्राकृत।

अशोक के शिवासेखों के अतिरिक्त अन्य कई शिवासेख प्राकृत में उपलब्ध होते हैं मैहेंडेन ने इन्हें पश्चिमी भारत में प्राप्त शिवासेख दक्षिण भारत में प्राप्त शिवासेख तथा पूर्वी भारत में प्राप्त शिवा सेख इन तीन वर्गों में बाँटा है तथा इसी क्रम से अपनी पुस्तक में इनका भाषा-वैज्ञानिक अध्ययन प्रस्तुत किया है। यद्यपि

१ डा० रामसिंह तोमरः भाषाचिन्ता अंक-२-पृ० १२

२ पिछोस प्राकृत भाषाओं का व्याकरण-हिन्दी अनुवाद-पृ० १०

३ डा० सरयूप्रसाद अक्षबास प्राकृत विमर्श-पृ० ११

४ जनार्दन भट्ट अशोक के धर्मलेख-ग्रन्थ अध्याय

५ डा० सरयूप्रसाद अक्षबास प्राकृत विमर्श-पृ० १२-१३

६ डा० भोलाचंदकर हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास-पृ० २७३ प्रथम खंड

७ डा० मधुकर मेहेंडेन हिस्टोरिकल ग्रामर ऑफ इम्पेरियल प्राकृत पृ० १४३

विनाशक बहुत बड़े तह के मिलने हैं किन्तु विना सेही प्राकृत के अपभ्रंश को दृष्टि के शिखर पूर्व सोलरी घनायी स विषय की बीपी राजी तह के साउ ली बने के विना सेत ही विशेष महत्व के हैं। प्रगीक के बाद इस कात के विना सेतों से सारनेत का हाथो मुका विना सेत उरय गिरि तथा संड गिरि के विना सेत एवं पश्चिमी भारत के बापू राजाओं के विना सेत विशेष उल्लेखनीय हैं।

प्राकृत के उपलब्ध विना सेतों के अन्तर्गत पल्लव वंश के राजा विष्णुकर्ण बर्मन एवं पुष्यपति विजय गुप्त बर्मन की रानी के दान-वर्चन कुल कुलका विना सेत सोमदेव इत समित विष्णुहराज नाटक के कुछ अंग भी गिने जाते हैं। गुलर, स्फूर्ति और विजय ने इनका उत्प्रेषण किया है। विजय ने इनको 'पद्मवर्ण' के नाम से बुकारा है।<sup>१</sup> निहल हीन के विना सेत १०० ई० पूर्व से लेकर २०० ई० तक के उपलब्ध होते हैं जिसका साम्य मगधपूर्वी समूह से स्पष्ट विना मया है। गुका एवं विना सेत समूह हीन में पाये जाते हैं और अन्तर में पापाओं के भाग पाग मिलने हैं और उनमें तापाओं का अंदर के लिए दान का उल्लेख है। माहगर्तने इसे विषापी प्राकृत का नाम दिया है। कापला तब बपुरा में पाये गये विना सेत भी मगध के हैं।

बोसियों से व्यपञ्चिक प्रभावित हैं। व्युत्पन्न शब्दों में इसे 'खरोष्ठी-सम्भव' कहकर पुकारा है। इसकी भाषा पानी से मिश्र है, इसलिये इसे प्राकृत-सम्भव भी कहा जाता है।

सर थोरेन स्टेनने बोनी तुर्किस्तान में कई खरोष्ठी लेखों का अनुसंधान किया। सन् १९०१ से सन् १९१४ तक के समय में तीनबार उन्होंने यात्रायें की और निम्न-प्रदेश से अनेक लेख प्राप्त किये। ये लेख निम्न-प्रदेश से प्राप्त हुए हैं, अर्थात् इनकी भाषा निम्न प्राकृत के नाम से पुकारी जाती है। ये लेख खरोष्ठी लिपि में हैं और भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से उनका दखनी भाषाओं से विशेष सम्बन्ध दिखाई पड़ता है। दखनी बर्ग की ओसाडी के साथ इसका निकटतम सम्बन्ध है।<sup>१</sup> इन लेखों में अधिकतर सेक राजकीय विषयों से सम्बन्ध हैं।<sup>२</sup> सदाहरण के लिए राज आज्ञाएं, प्राम्ताधीशों या म्यायाधीशों के प्रसारित आदेश अन्य-विकल्पन निषेधन और नाना प्रकार की सूचियां। इस भाषा में शीर्षस्वर ऋ ध्वनि तथा सहीप ऊष्म ध्वनियों के लिपि चिह्नों के अस्तित्व का पता लगता है जबकि ये ध्वनियां अन्य भारतीय प्राकृतों में नहीं पाई जाती।

### ३ धार्मिक प्राकृत

धार्मिक प्राकृतों के अन्तर्गत हम बौद्ध तथा जैन धार्मिक ग्रन्थों की प्राकृत लेते हैं। इसमें पालि अर्धमागधी जैन महाराष्ट्री तथा जैन शोरसेनी की गणना की जा सकती है। चूंकि पालिभाषा और साहित्य से प्रस्तुत प्रबन्ध का विषयगत सम्बन्ध नहीं है अतः हम सम्बन्ध में विशेष विचार करना अनावश्यक होगा इसीलिए पालि सम्बन्धी चर्चा को यहाँ स्थान नहीं दिया गया।

जैन प्राकृत साहित्य को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है—(१) सिद्धान्त साहित्य और (२) सिद्धान्ततर साहित्य। दूसरे प्रकार का जैन-प्राकृत-साहित्य साहित्यिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है। जैनों का अधिकांश साहित्य अर्धमागधी अर्थात् प्राकृत से सम्बन्ध माना जाता है।<sup>३</sup> किन्तु जैन विद्वानों ने अर्धमागधी या अर्थात् प्राकृत के अतिरिक्त महाराष्ट्री तथा शोरसेनी प्राकृत में भी रचनायें की हैं। महाराष्ट्री तथा शोरसेनी का जो रूप हमें जैन ग्रन्थों में मिलता है वह परनिष्ठ प्राकृत साहित्य की महाराष्ट्री शोरसेनी हैं कुछ भिन्न है इसलिये विद्वानों ने इसे जैन-महाराष्ट्री और जैन-शोरसेनी कहा है।

### ४ साहित्यिक या परिनिष्ठित प्राकृत

प्राकृत वैयाकरणों ने चार प्रमुख प्राकृतें मानी हैं—महाराष्ट्री, शोरसेनी, मागधी तथा पंचाशी।

१ कने प्राकृत लेखों पर एन्थ वेयर नैटिबुसुस द इंडियन कन्फर पृ० ३५

२ मोनार्चकर व्यास हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास भाग १ पृ० ७१

३ कपाडिया पाहल भाषा जने साहित्य, पृ० ७०

महाराष्ट्री प्राकृत क्या किसी प्रदेश विषय की भाषा थी ? यह सम्बन्ध में मतभेद है। प्रारम्भ में विद्वानों ने प्राकृतों के स्थानवाचक नामों के आधार पर महाराष्ट्री प्राकृत को महाराष्ट्र प्रदेश की भाषा मानना चाहा। मात्र भी कुछ मराठी विद्वान मही बिचार रखते हैं।<sup>१</sup> उनके अनुसार महाराष्ट्र प्रदेश में प्रचलित प्राकृत महाराष्ट्री प्राकृत कहलाई। इसी स्थानिक आधार को लेकर पियर्सन ने प्राकृतों का विभाजन इस प्रकार किया है—

केन्द्रीय प्राकृत	छोरसेनी	
बाह्य प्राकृत	पूर्व	मागधी
	पश्चिम	महाराष्ट्री
अन्तरीय		वर्धमागधी

बुलर भी इस विभाजन को उपयुक्त मानते हैं।<sup>२</sup> किन्तु अन्य विद्वान इसी मत को नहीं मानते। डा० सरजू प्रसाद अग्रवाल<sup>३</sup> डा० प्रबोध बेचरबास पंडित हार्नेले<sup>४</sup> डा० मनमोहन घोष<sup>५</sup> डा० उपारे<sup>६</sup> डा० पियेस सभी विद्वान इसे प्रकारान्तर से छोरसेनी प्राकृत का विरुद्ध रूप सिद्ध करते हैं। डाक्टर प्रबोध पंडित के अनुसार हमारे समग्र एक ही प्राकृत विविध रूपों से प्रगट होता है। प्रथम छोरसेनी प्राकृत के रूप में पश्चात् महाराष्ट्री के रूप में। ये प्राकृत उनके नाम के अनुसार किसी निश्चित प्रदेश की भाषाएं नहीं किन्तु प्राकृतों की वो ऐतिहासिक भूमिका मान है।

अधिकतर वैयाकरणों ने भी महाराष्ट्री प्राकृत का विशेष वर्णन किया है और अन्य प्राकृतों के केवल मुख्य मुख्य लक्षण देकर शेष महाराष्ट्रीगत कहकर काम चला लिया है। इन्हीं का कहना है कि 'महाराष्ट्राभाषा भाषा प्राकृतं विदुः महाराष्ट्री सर्वोत्कृष्ट प्राकृत है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि पाँचवीं-छठी सताब्दी में महाराष्ट्री का साहित्यिक प्रभाव भारत भर में व्याप्त था। सेतुबन्ध भाषा सप्तगती बरजासम्प राक्षस बहो गजबहो कुमारपाल जयित्वादि अधिकोऽस महत्त्वपूर्ण रचनायें महाराष्ट्री प्राकृत में ही हैं।

छोरसेनी—मथुरा और उसके आसपास के प्रदेश को छोरसेन कहते हैं, वहीं की भाषा छोरसेनी कहलाई। ऐतिहासिक दृष्टि से छोरसेनी उत्तरकाशीय वैदिकभाषा

१ सदाशिव आमाराम जोषलेकर भाषा सप्तगती-भूमिका-पृ० ४

२ ए० सी बुलर इन्ट्रोडक्शन टू प्राकृत-इसका अध्याय

३ प्रबोध बेचरबास पंडित प्राकृत भाषा पृ० १६

४ हरदेव बाहरी प्राकृत और उसका साहित्य पृ० २४ पर उद्धृत

५ माधवे मराठी और उसका साहित्य पृ० १३ पर उद्धृत

६ वही पृ० १३ पर उद्धृत

७ पियेस प्राकृत भाषाओं का व्याकरण हिन्दी अनुवाद पृ० ७ टिप्पणी

८ प्रबोध पंडित प्राकृत भाषा पृ० १८

संस्कृत और साहित्यिक पाणि-इन सबकी उत्तराधिकारिणी थी। प्राकृतों में शोरसेनी सबसे पुरानी मानी जाती है। बड़े बुर्गम्य भी बात है कि मध्य प्रदेश का वर्णाश्रुत साहित्य ऐजनीतिक क्रान्तियों के कारण नष्ट हो गया। शोरसेनी का मोरु-साहित्य केवल नाटकों में सुरक्षित रह गया है। धार्मिक साहित्य जैन ग्रन्थों में पाया जाता है। विद्वानों ने भाषा के उस रूप को जैन-शोरसेनी भी कहा है। हम इसकी चर्चा पहले कर ही चुके हैं। विष्णुधर मल्ल का सिद्धांत साहित्य इसी में है इस कारण से कुछ लोगों ने इसे विष्णुधरी भाषा भी कहा है।<sup>१</sup> शोरसेनी न केवल अपने क्षेत्र की व्यापक भाषा थी बरन अन्य प्राकृतों के भाषा-क्षेत्रों को भी इसने दृष्टि रूप में प्रभावित किया तथा कई उत्तर तथा पश्चिमीतर भाषाओं के उद्भव में सहायता की।<sup>२</sup>

मागधी-पूर्व में बिहार प्रदेश के प्राचीन 'मागध' राज्य के नाम पर इसका नामकरण हुआ। अर्वाचीन बिहारी बोलियों में मगहीका सबसे नाम साम्य है। पूर्वी क्षेत्रों में मागधी व्यापक प्राकृत थी। यह पौरवम कुछ है उपदेशों की भाषा कही जाती है और पाणि भाषा का मूल ध्यौत भी यही है। इसका कोई स्वतन्त्र साहित्य उपलब्ध नहीं होता। केवल पूर्वी क्षेत्र के विद्वानों तथा संस्कृत नाटकों में मित्र क्षेत्रों के पात्रों की भाषा के रूप में यह सुरक्षित है।<sup>३</sup>

## ५. पैंसाची

पैंसाची एक प्राचीन प्राकृत मानी जाती है। बौद्ध परम्परा के अनुसार इनके एक सम्प्रदाय—स्मृतिरिक्तियों के ग्रन्थ पैंसाची में थे।<sup>४</sup> इसकी प्राचीनता तो इतनी है कि विद्वानों ने इसे पाणि अर्वाभाषी और चिन्ता सेतों की प्राकृत की कोटि में रखा है।<sup>५</sup> यहाँ तक कि हरमोचिन्द बास सेठ ने पाणि की उत्पत्ति की सम्भावना भी इसी से मानी है।<sup>६</sup> इसे मूल भाषा अर्थात् भूषों की बोली कहा गया है—काम्यारस १/१८ सरस्वतीकण्ठमरण २५/११ १३ कथा सरस्वतीपर ७/२९ और ८/३० आदि। पिरोस का अनुमान है कि पिप्पलाव जनता द्वारा पिप्पलाव देश में यह भाषा बोली जाती होगी। पैंसाच भाषा का उल्लेख भी महाभारत (७/१२१/१४) में पाया जाता है। कुछ वैयकरणों ने इससे भी अनेक शब्द स्वीकार किये हैं, इस क्षेत्र में जाने की यहाँ कोई आवश्यकता नहीं है। हार्मन के अनुसार पैंसाची आर्य भाषा थी जिसका प्रयोग प्राकृत लोग करते थे। उनकी इस भाषा का आधार पश्चिम-परिवर्तन का अध्ययन

१ हरदेव बाहरी प्राकृत और उसका साहित्य पृ० २३

२ सरयूप्रसाद अग्रवाल हिन्दी साहित्य कोष पृ० ४९३

३ सरयूप्रसाद अग्रवाल हिन्दी साहित्य कोष पृ० ४९३

४ हरदेव बाहरी प्राकृत और उसका साहित्य—पृ० २८

५ पाणिग्राम उपाध्याय हिन्दी अनुशीलन—श्रीरेण्ड बर्मा विरोधीक पृ० ६४

६ हरमोचिन्द बास सेठ पाइबलड महम्मदो-धूमिका—पृ० १४

रहा है किन्तु पाँसीसी विद्वान् सगार इसे ठीक नहीं मानते । अस्तु । इसके उदाहरण कथा धरिवागर, बृहत्कथा—मंजरी, बासरामायण, बागवद्दर्शनकार आदि ग्रन्थों के अतिरिक्त संस्कृत-नाटकों में मिल जाते हैं । इसके अपरोप भीमी, तुर्किस्तान, काफिरस्थान, पाँचार आदि में पाये गए सिमा मन्त्रों में भी मिलते हैं ।<sup>१</sup> ऐसे पैठापी में स्वतन्त्र रूप से कोई कृति नहीं मिलती है । गुणाद्य छठ 'बृहत्कथा' के कारण इनकी स्थापति है । परन्तु मूल कृति काल-कलसित हो गई है । इसका एक उपभेद बालिका पैठापी भी माना गया है । आधुनिक पश्चिमीतरी शैलियों तथा भाषाएँ—कश्मीरी सीमा दरबी, काफरी, बिनामी, इसकी उत्तराधिकारिणी कही गई है ।

## ६ नाटकीय प्राकृत

संस्कृत नाटकों में संस्कृत के साथ प्राकृतों का भी प्रयोग मिलता है । भरत ने अपने नाट्य शास्त्र में पात्र भेद के अनुसार भाषा भेद का संकेत दिया था । संस्कृत नाटकों की प्रमुख प्राकृतें महाराष्ट्री, शौरसेनी तथा मागधी हैं । महाराष्ट्री का प्रयोग केवल पद्या तथा गीतों में मिलता है । नाटकों की प्राकृतों में प्रमुख स्थान शौरसेनी का है । स्थिति अच्छे तथा अन्य बध्यवर्ग के पात्र शौरसेनी में बोलते हैं । मागधी का प्रयोग शौरसेनी की अपेक्षा कम पाया जाता है । इसे विद्वत् कोटि के पात्र बोलते हैं । छात्रुत में इसे मधुना तथा राजसेवक बोलते हैं । मृच्छकटिक में स्वावरक कुंभीनक कर्ममानक रोहसेन तथा बांडास इसका प्रयोग करते हैं । सकारी तथा बांडासी आदि मागधी को भी बिभाषाएँ हैं । सकारी का प्रयोग मृच्छकटिक में पाया जाता है । राजव्यास संस्थानक सकारी बोलता है ।

संस्कृत नाटकों में प्राकृत के प्रयोग की परम्परा अश्वघोष के लुर्लभ से मिल शारि पुत्र प्रकरण तथा 'अभिका कम्पों में पाई जाती है । प्रो० स्पूडर्स के मतानुसार इन नाटकों के असपात्र प्राचीन मागधी या पश्चिम तथा विद्वत् प्राचीन शौरसेनी का तथा तावत् प्राचीन अर्धमागधी का प्रयोग करते हैं ।<sup>२</sup> अश्वघोष के बाद भास की नाटकीय प्राकृत आती है । इसमें प्रायः शौरसेनी का प्रयोग हुआ है । मागधी का प्रयोग प्रत्यभिज्ञा बाकस तथा बासवर्षित में एवं अर्धमागधी का प्रयोग कर्मभार में हुआ है ।<sup>३</sup> कालिदास के नाटकों में शौरसेनी तथा मागधी का प्रयोग हुआ है गीतों में महाराष्ट्री भी पाई जाती है । प्राकृत की दृष्टि से पूरक के मृच्छकटिक का अत्यधिक महत्त्व है । मृच्छकटिक में शौरसेनी तथा मागधी के कुछ रूप के अतिरिक्त कई बिभाषाएँ मिलती हैं । शौरसेनी की दो बिभाषाएँ प्राच्य तथा आर्जवी का प्रयोग कमजोर विद्वत् तथा शौरिक करते हैं । पिछले के मतानुसार अर्धक बासिनात्य का प्रयोग करता है । संस्थानक सकारी बोलता है तथा माधुर इनको या टक्की बोलता

१ हरदेव बाहरी प्राकृत और उसका साहित्य पृ० २८-२९

२ कीच संस्कृत ग्रामा—पृ० ८९-८७

३ कीच संस्कृत ग्रामा—पृ० १२२

है। अरबमोप, भास, शुद्रक तथा कासिबास के बाह्य के नाटकों की प्राकृत अस्पष्टिक कृत्रिम है। महुनाद्यमप, मगधूति मुरारि आदि कवियों के नाटकों की प्राकृत संस्कृत के आधार पर व्याकरणों के नियमों को ध्यान में रखकर बनाई गई कृत्रिम प्राकृत प्रतीत होती है।

### ७-वैयाकरणों की प्राकृत

हमने इसी अध्याय में पृ० १०-११ देखिये—प्राकृत के व्याकरण ग्रंथों की सूची दी है। इन सब प्राकृत व्याकरण ग्रंथों में उदाहरणों के रूप में प्राकृत के नमूने मिल जाते हैं।

### मिश्र या गद्या संस्कृत

मिश्र या गद्या संस्कृत संस्कृत का वह रूप है, जो पाणिनी के नियमों के अनुसार नहीं चलता तथा प्राकृत व्याकरण के रूपों एवं ध्वन्य-समूह से यद्यपि प्रभावित मिलता है। यही कारण है कि भाषा-वैज्ञानिकों ने इसे संस्कृत का रूप नहीं मानकर मध्यकालीन भारतीय भाषा भाषा का एक रूप माना है।<sup>१</sup> इस भाषा के तीन रूप मिलते हैं—

- १ बौद्ध मिश्र संस्कृत या बौद्ध गद्य संस्कृत
- २ जैन मिश्र संस्कृत
- ३ हिन्दू मिश्र संस्कृत

### बौद्ध मिश्र संस्कृत

बौद्धों के महाभाष्य संग्रहालय का साहित्य प्रायः संस्कृत भाषा में लिख्य है, किन्तु इसकी संस्कृत कुछ पाणिनीय संस्कृत नहीं है। महाभाष्य, ललित विस्तर, आठकमाना अवधानसूत्र आदि ग्रंथों की भाषा ऐसी ही है। आरम्भ में इस भाषा को गद्या विभाषा-भाषा शब्दों से कहा जाता था किन्तु अंग्रेजी-विज्ञान सेनातले मिलने महा वस्तु का तीन भागों में सम्पादन किया इसका नाम मिश्र संस्कृत देना उचित समझा।<sup>२</sup>

### जैन मिश्र संस्कृत

सबसे पहले प्रसिद्ध जमरीकी भाषाविद् ज्ञानमयीरुने अपने एक लेख द्वारा विद्वानों का ध्यान जैन मिश्र संस्कृत की ओर आकर्षित किया। जैनों के अधिकांश संस्कृत ग्रंथ भाषा की दृष्टि से कुछ और पाणिनीय हैं। कुछ रचनायें अत्यन्त ऐसी मिली हैं, जो संस्कृत में रही होने पर भी अपने में मध्य भारतीय भाषा भाषा के तत्वों को लिए हैं। ऐसी रचनाओं में 'जटासिंह गम्भी रचित गद्य-वर्णित' व कुछ बिजयकृत चित्रसेन पद्यावली वरिण-अंग्रेजी प्रमुख हैं।

१ मोताचकर व्यास हिन्दी साहित्य का महत् इतिहास क० १-पृ० २९६

२ मोताचकर व्यास हिन्दी साहित्य का महत् इतिहास-क० १-पृ० २९०

३ विटरनिस्त्र हिन्दी भाषा इतिहास विटरेकर-भा २-पृ० २२६

४ डा० आदि नाम ने मिताय उपाध्ये वरीय वरिण-अंग्रेजी प्रमुका पृ० ४२ ४८

५ मूसराज जैन चित्रसेन पद्यावली वरिण-अंग्रेजी प्रमुका-पृ० २१-६०



## ब्राह्मण मिथ्य संस्कृत

बुद्ध विद्वान् महाभारत रामायण तथा पुराणों की भाषा में कई अपभ्रंश प्रयोग देखकर उसे मिथ्य-संस्कृत कह बैठते हैं जो अनुचित है ।

## ६-प्राकृत साहित्यका उदय

प्राकृत साहित्य जन सामान्य की वैचारिक क्रान्ति के साथ उदित होता दिखाई देता है । ऐसा कि स्पष्ट है विक्रम से कई सौ वर्ष पूर्व से ही संस्कृत वर्म और काव्य की भाषा बन चुकी थी एवं यह बोलचाल की भाषा है। बुर हटती जा रही थी । संस्कृत के विकास में अभिजातवर्ग का विशेष हाथ रहा है । इसने सामान्य जनता की बोलीयों को उच्च साहित्य का माध्यम नहीं बनाया किन्तु ये बोलियाँ जनता का सहारा पाकर विकसित होती रही । लोकपरक सुचारवादी वैचारिक क्रान्ति ने अपने प्रचार के माध्य के लिये उन्हें अपनाया । यही से प्राकृत साहित्य का बीगमेश माना जा सकता है । प्राकृत साहित्य का उदय सर्व प्रथम धार्मिक क्रान्ति से होता है । जैन और बौद्ध धर्म ने विक्रम पूर्व पाँचवी-छठी सदी में जनता की बोलीयों को अपनाया और उनमें अपने प्रारम्भिक साहित्य की रचना की । यह वैचारिक क्रान्ति पूर्व में हुई थी जब पूर्व की बोलीयों को नया जीवन मिला । मगधान् बुद्ध तथा महावीर ने जनता की बोली में, ही अपने सन्देश के उपदेश दिए । पर पश्चिम में जाहे जनसामान्य की बोलीयों का स्वरूप रहा हो वे अधिक विकास न पा सकीं । वहाँ संस्कृत का पद बहुल बन रहा । इसका कारण यह था कि मध्यदेश धार्मिक संस्कृति का केन्द्र था । जाने जाकर ज्यों ज्यों संस्कृत बड़ होती गई, मध्यदेश में भी प्राकृत साहित्य का समानांतर विकास होने लगा पर फिर भी वह अधिक प्रसन्नित न हो पाया ।

बैदे तो प्राकृत का साहित्यिक काल विक्रम की छठी सदी के बाद भी चलता है, पर मोटे तौर पर विक्रम पूर्व छठी सदी से लेकर विक्रम की छठी सदी तक का १२०० वर्ष का काल ही हमने प्राकृतकाल माना है । इस काल में प्राकृत साहित्य को तीन स्रोतों से आश्रय मिला—(१) बर्माध्य (२) राजाध्य और (३) लोकध्य । बर्माध्य का संकेत हम वर चुके हैं । प्राकृत को राज्य भाषा के रूप में सबसे पहला महत्त्व देने वाला त्रिमश्री अधोक या जिसने जनता की बोली में अपनी धर्मलिपियों को उत्कीर्ण कराया । किन्तु मौर्यों का अन्त होने पर वैदिक धर्म के पुनरुत्थान से संस्कृत की पुन प्रतिष्ठा बड़ गई परन्तु कलिंग के जैन राजाओं ने फिर भी प्राकृत को राज्य भाषा का पद दिया । नारसिंह के ह्यपीयूषा विमानेन को इस बात का प्रमाण माना जा सकता है । पर इतना होने पर भी प्राकृत इस पद पर पूर्णतः प्रतिष्ठित न जा पाई । प्राकृत साहित्य की उन्नति में वैदिक बर्मावलम्बी आश्रयवन्दी राजाओं ने भी बहुत सहायता की । आश्र साभ्राज्य दीप्त ही प्राकृत साहित्य का बड़ बन गया । आश्रवन्दी राजा सातवाहन ने स्वयं प्राकृत की गानाओं का संग्रह किया । परवर्ती कई अन्य

राजाओं ने प्राकृत कवियों को आश्रय दिया। काशीरराज प्रवरसेन स्वयं प्राकृत महाकाव्य के रचयिता थे तथा यशोधर्मनृने नागपतिराज ( पठनबहोके रचयिता) को अपनी राजसभा में सम्मान्य स्थान दे रखा था। नागपतिराज के मगधय १००-११० वर्ष बाद ही कन्नौज के एक मध्य राजा के यहाँ यायावर महाकवि राजसेखर ने अपनी प्राकृत रचनाओं को प्रस्तुत किया और प्राकृत को संस्कृत से भी अधिक कोमल भाषा घोषित किया। राजसेखर के समय तक प्राकृत का सम्मान अत्यधिक बढ़ गया था। यह वर्ष काश था जब प्राकृत भी संस्कृत की भाँति परिनिष्ठित साहित्यिक भाषा बन चुकी थी और भी लोक भाषाओं से था पड़ी थी। पण्डितों तथा कवियों ने प्राकृत को सम्मानित पद दे दिया था। राजसेखर ने तो साहित्य की रचनाओं में संस्कृत तथा प्राकृत काव्य में ठीक वही भेद बताया था जो पुरुष तथा रमणी में है—एक में पश्यता है तो दूसरी में कोमलता।

पस्या सबकबर्बचा पाठबर्बचो वि होइ सुठमारो ।

पुढसनहिलार्थ वेत्तिज मिह्तरं वेत्तिज मिमार्थ ॥

कर्मरंजरी-१।८

### ७-प्राकृत साहित्य की रूपरेखा

आज का उपलब्ध प्राकृत साहित्य १०० इस्वी पूर्व से आरम्भ होकर १८०० इस्वी तक जाता है जिसका विभाजन निम्न ढंग से किया जा सकता है—

#### १-वार्तिक प्राकृत साहित्य

(क) विद्वत् वार्तिक साम्प्रदायिक सिद्धान्तों आदि का विवेचन पालि में रचित बौद्ध साहित्य तथा जर्जमायवी एवं खीरसेनी में रचित जैन-वार्तिक साहित्य।

(ख) वार्तिक साहित्यिक पालि तथा साहित्य जैन महासंघ तथा जैन खीरसेनी में रचित साहित्य एवं जैन अपभ्रंश साहित्य।

२-साहित्यिक या कालित प्राकृत महासंघ, खीरसेनी वैयासी और अपभ्रंश साहित्य।

(ग) स्वतंत्र कृतियों के रूप में, तथा

(घ) अन्य ग्रंथों में उद्धरणों के रूप में प्राप्त प्राकृत साहित्य।

#### ३-नाटकों में प्राकृत प्राकृत साहित्य

४-भारत के उत्तरी-पश्चिमी सीमान्त प्रदेशों में प्राप्त साहित्य प्राकृत बम्मपद, मिया-प्राकृत तथा सोलाह एवं मध्य एशिया आदि का प्राकृत साहित्य।

#### ५-शिला केतों का प्राकृत

#### ६-मिश्र संस्कृत-भाषा शयलेख

पालि यद्यपि भाषा की दृष्टि से प्राकृत का ही रूप है पर प्रायः उसे प्राकृत से पृथक् माना जाता है अतः यहाँ पालि साहित्य नहीं सम्मिलित किया गया है।<sup>१</sup> जर्जमायवी और खीरसेनी के वार्तिक जैनग्रंथों की भी कुछ साहित्य की श्रेणी में न जाने के कारण छोड़ दिया गया है। अपभ्रंश सम्बन्धी अध्ययन विस्तारपूर्वक दूसरे

## साहित्य मिथ संस्कृत

कुछ विद्वान् महामारत रामायण तथा पुराणों की भाषा में कई अपभ्रंशों का प्रयोग देखकर उसे मिथ-संस्कृत कहा बैठे हैं जो अनुचित है ।

## ६ प्राकृत साहित्यका उदय

प्राकृत साहित्य का सामान्य की वैचारिक भाँति के साथ उचित होता दिखाई देता है । ऐसा कि स्पष्ट है विक्रम से कहीं सौ वर्ष पूर्व से ही संस्कृत धर्म और काव्य की भाषा बन चुकी थी एवं वह बोलचाल की भाषा में बुर हटती जा रही थी । संस्कृत के विकास में अभिव्यक्ति का विशेष हाथ रहा है । इसने सामान्य जनता की बोलियों को उच्च साहित्य का माध्यम नहीं बनाया किन्तु वे बोलियाँ जनता का सहारा पाकर विकसित होती रहीं । लोकपरक सुचारवादी वैचारिक भाँति ने अपने प्रचार के माध्य के लिये उन्हें अपनाया । यही से प्राकृत साहित्य का भीगनेस माना जा सकता है । प्राकृत साहित्य का उदय सर्व प्रथम धार्मिक भाँति से होता है । जैन और बौद्ध धर्म ने विक्रम पूर्व पाँचवी-छठी शती में जनता की बोलियों को अपनाया और उनमें अपने प्रारम्भिक साहित्य की रचना की । यह वैचारिक भाँति पूर्व में हुई थी, अतः पूर्व की बोलियों को नया जीवन मिला । मगधान् कुछ तथा महावीर ने जनता की बोली में ही अपने सद्धर्म के उपदेश दिए । पर पश्चिम में पाइ जमसामान्य की बोलियों का स्वरूप रहा हो वे अधिक विकास में जा सकीं । वही संस्कृत का पद अनुसृत बना रहा । इसका कारण यह था कि मध्यदेश धार्मिक संस्कृति का केन्द्र था । बागे बाकर ज्यों ज्यों संस्कृत बढ़ होती गई, मध्यदेश में भी प्राकृत साहित्य का समानांतर विकास होने लगा पर फिर भी वह अधिक पल्लवित न हो पाया ।

वैसे तो प्राकृत का साहित्यिक काल विक्रम की छठी शती के बाद भी चलता है, पर मोटे तौर पर विक्रम पूर्व छठी शती से लेकर विक्रम की छठी शती तक का १२० वर्ष का काल ही हमने प्राकृतकाल माना है । इस काल में प्राकृत साहित्य को तीन शीर्षों से आश्रय मिला—(१) वर्माश्रय (२) रामाश्रय और (३) सोकाश्रय । वर्माश्रय का संकेत हम कर चुके हैं । प्राकृत को राज्य भाषा के रूप में सबसे पहला महत्त्व देने वाला श्रियवर्धनी अशोक था जिसने जनता की बोली में अपनी धर्मलिपियों को उत्कीर्ण कराया । किन्तु मौर्यों का अन्त होने पर वैदिक धर्म के पुनरुत्थान से संस्कृत की पुनः प्रतिष्ठा बढ़ गई परन्तु कलिंग के जैन राजाओं ने फिर भी प्राकृत को राज्य भाषा का पद दिया । काराचेल के हाभीगुंफा शिलालेख को इस बात का प्रमाण माना जा सकता है । पर इतना होने पर भी प्राकृत इस पद पर पूर्णतः प्रतिष्ठित न हो पाई । प्राकृत साहित्य की उत्पत्ति में वैदिक धर्मावलम्बी जाग्रदन्तरी राजाओं ने भी बहुत सहायता की । बौद्ध साम्राज्य सीधे ही प्राकृत साहित्य का पद बन गया । मागधदेशी राजा सातवाहन ने स्वयं प्राकृत की भाषाओं का संग्रह किया । परवर्ती कई अन्य

राजाओं ने प्राकृत कवियों को आमंत्रित किया। काश्मीरराज प्रवरसेन स्वयं प्राकृत महाकाव्य के रचयिता थे तथा यशोधर्मने नाकपतिराज ( मण्डवहोके रचयिता) को अपनी राजसभा में सम्मान्य स्थान दे रखा था। नाकपतिराज के समयमें १००-११० वर्ष बाद ही कन्नौज के एक अन्य राजा के यहाँ मायावर महाकवि राजसेन ने अपनी प्राकृत रचनाओं को पत्रबद्ध किया और प्राकृत को संस्कृत से भी अधिक कोमल भाषा घोषित किया। राजसेन के समय तक प्राकृत का सम्मान अत्यधिक बढ़ गया था। यह वर्ष काल था जब प्राकृत भी संस्कृति की भाँति परिनिष्ठित साहित्यिक भाषा बन चुकी थी और भी लोक भाषाओं से बच पड़ी थी। पण्डितों तथा कवियों ने प्राकृत को सम्मानित पद दे दिया था। राजसेन ने तो साहित्य की रचनाओं में संस्कृत तथा प्राकृत काव्य में ठीक बही मेर बसाया था जो पुरुष तथा रमणी में है—एक में पुरुषता है तो दूसरी में कोमलता।

पस्या सबकजबंका पाठजबंको बि होइ सुठमारो ।

पुससमहिताथं बेतिअ मिहतरं तेतिअ मिमाणं ॥

कर्पूरमञ्जरी-१।८

### ७-प्राकृत साहित्य की रूपरेखा

आज का उपलब्ध प्राकृत साहित्य ६०० इस्वी पूर्व से आरम्भ होकर १८०० ईस्वी तक आता है जिसका विभाजन निम्न ढँप से किया जा सकता है—

#### १-धार्मिक प्राकृत साहित्य

(क) विद्युद्ध धार्मिक साम्प्रदायिक सिद्धान्तों आदि का विवेचन पालि में रचित बौद्ध साहित्य तथा अर्धमागधी एवं धौरसेनी में रचित जैन-धार्मिक साहित्य।

(ख) धार्मिक साहित्यिक पालि तथा साहित्य जैन महाराष्ट्री तथा जैन धौरसेनी में रचित साहित्य एवं जैन अपभ्रंश साहित्य।

२-साहित्यिक या अलित प्राकृत महाराष्ट्री, धौरसेनी पैदाबी और अपभ्रंश साहित्य।

(क) स्वतंत्र कृतियों के रूप में तथा

(ख) अन्य ग्रंथों में उद्धरणों के रूप में प्राप्य प्राकृत साहित्य।

#### १-भाषाओं में प्राकृत प्राकृत साहित्य

४-भारत के उत्तरी-पश्चिमी सीमान्त प्रदेशों में प्राप्त साहित्य-प्राकृत बम्बपद मिया-प्राकृत तथा कोताण एवं मध्य एशिया आदि का प्राकृत साहित्य।

#### १-शिला लेखों का प्राकृत

#### १-मिथ संस्कृत-भाषा आयेलेक

पालि मध्यम भाषा की दृष्टि से प्राकृत का ही रूप है पर प्रायः उसे प्राकृत से पृथक् माना जाता है, बत यहाँ पालि साहित्य नहीं सम्मिलित किया गया है।<sup>१</sup> अर्धमागधी और धौरसेनी के धार्मिक जैनग्रंथों को भी कुछ साहित्य की श्रेणी में न जाने के कारण छोड़ दिया गया है। अपभ्रंश सम्बन्धी अध्ययन विस्तारपूर्वक दूसरे

अभ्यास में किया गया है अतः यही मान प्राकृत की ललित कृतियों पर ही विचार किया जा रहा है ।

उपज विभाजन उन्मुक्त होने पर भी हमारे विषय की दृष्टि से उपयोगी सिद्ध नहीं होता। अतः हम काव्य कर्तों को आधार बनाकर प्राकृत काव्य का मंगल अभ्यस्यन करेंगे । हमारे अभ्यस्यन का आधार निम्न होगा —

(१) प्रबन्धकाव्य (२) मृगजक काव्य (३) नया साहित्य (४) नाटक (५) अन्य प्रकार । प्रबन्ध काव्यों के अंतर्गत दो प्रकार की रचनाएँ मृगीत की जाती हैं—महाकाव्य एवं गण्ड काव्य । प्राकृत के महाकाव्य अविच्छाद में अरिष्ट काव्य है जो जैन कवियों द्वारा रचित है । इन अरिष्ट काव्यों पर पुराण और कथा सीसी का गहरा प्रभाव है ।<sup>१</sup> जो अनेकतर काव्य है उनमें उन्नत सीसी नहीं था कम विद्यतापी पकड़ी है । ऐत भी ही महाकाव्य प्राप्त है प्रवरसेन का सेतुबन्ध या राजमबद्धो और वात्सलिरत्न का गठबद्धो । ये दोनों ही पारसीय सीसी से महाकाव्य हैं । दोनों अरिष्ट काव्यों की परम्परा में आते हैं ।

प्राकृत का प्राचीनतम महाकाव्य विमलसूरिका 'पठम अरिय' है । इसमें राम कथा का जैन रूप दिया गया है । पठम-अरिय के रचयिता विमलसूरि राहु नामक आचार्य के प्रसिद्ध और विजय न सिद्ध थे ।<sup>२</sup> सिरक ने स्वयं पठमअरिय की रचना का समय और निर्वाण संवत् २१० वर्षात् ९० विक्रमी दिया है ।<sup>३</sup> परन्तु कुछ विद्वान् इसे इतनी पुरानी रचना मानने के पक्ष में नहीं हैं । डा० हर्मेन चौकीबी उत्तकी भाषा और रचनाधीनी पर से अनुमान करते हैं कि वह ईसा की तीसरी चौथी शताब्दी की रचना है । कुमार इसे विक्रम की चौथी शताब्दी की रचना मानते हैं ।<sup>४</sup> केदारराव ह० भुव तो उत्त की भी अर्वाचीन मानते हैं ।<sup>५</sup> वे छन्दों के क्रमविकास के इतिहास के विरोध में हैं । इस ग्रंथ के प्रत्येक उद्देश के अन्त में जो माहिनी छरम आदि छंदों का उपयोग किया गया है वह उनकी समझ में अर्वाचीन है । गीति में समक और वर्णान्त में विमल छन्द का आना भी उनकी दृष्टि में अर्वाचीनता के चोटक है परन्तु ये अधिकतर ऐसे अनुमान हैं जिन पर बहुत भरोसा नहीं रखा जा सकता । अतः डा० बिटरनिरव डा० आपमन नाचूराम प्रेमी डा० बाहरी<sup>६</sup> आदि इसे कवि द्वारा दिए गए समय की रचना मानने के पक्ष में हैं ।

१ सम्भूताचरित द्वितीय महाकाव्य का स्वरूप विकास—पृ० १६४

२ नाचूराम प्रेमी जैन साहित्य और इतिहास—पृ० ८७

३ वही पृ २१

४ चौकीबी मोहन रिप्यू—सन् १९१४ बिसम्बर-सम एंजियेंट प्राकृत बर्ष

५ अतारसीदास जैन प्राकृत प्रवेशिका—पृ १११

६ केदार हर्षर भुव पद्यरचनानी ऐतिहासिक आलोचना—

७ नाचूराम प्रेमी जैन साहित्य और इतिहास — पृ० २१

८ हरदेवबाहरी प्राकृत और उत्तका साहित्य — पृ १६

इस सम्बन्ध में डा० जैकोबी का कहना है कि यह तीसरी सत्रासी में लिखा हुआ प्राकृत का प्राचीनतम महाकाव्य है जो वास्मीकि रामायण की कथा का जैन रूपान्तर है। उसकी भाषा प्रारम्भिक प्राकृत है और यह महाकाव्य की सरस शैली में लिखा गया है। डा० जैकोबी ने इस आधार पर यह अनुमान किया है कि बिमलसूरि के पहले भी प्राकृत में अनेक शोक प्रचलित महाकाव्य थे और पञ्चमण्डिय उनमें से एक है जो आज भी प्राप्त है। पञ्चमण्डिय में प्राचीन महाकाव्य परम्परा का अनुस्यूत आद्यतम अनवरत कथाप्रवाह निरन्तरतायी पड़ता है और वास्मीकि रामायण को तरह ही अनवरत किन्तु संश्लिष्ट वर्णन स्वाम स्वाम पर मिलते हैं जिससे उनकी ऐसी आकर्षक और उदात्त हो गई है। इसमें पौराणिक शैली के महाकाव्यों के अनेक लक्ष दिखाई पड़ते हैं। कथा का प्रारम्भ संघात कर में होता है। पञ्चमण्डिय के अनुसार रामकथा पहले पहल महावीर स्वामी ने अपने शिष्यों—हनुमूति आदि से कही थी, हनुमूति ने उसे अपने शिष्यों को बताया और वहाँ से यह कथा विभिन्न जात्रियों के पास पहुँची। पञ्चमण्डिय की कथा भी हनुमूति और उनके शिष्य ध्येनिक के सम्वाद के रूप में कही गयी है और बीच-बीच में पौराणिककाली के अनुस्यूत प्रसंगोत्तर के रूप में अनेक अन्तर्वार्ता कथामें भी कही गई हैं। यद्यपि हममें महाभारत और पुराणों की तरह अमह अमह उपदेशात्मक कथन भरे हुए हैं किन्तु कुल मिलाकर यह पुराण से अधिक महाकाव्य ही है क्योंकि सर्व प्रतिस्वर्ग मन्वन्तर आदि का वर्णन इसमें नहीं है। इसके विपरीत इसमें प्रारम्भ में तीर्थंकरों की वन्दना देव वर्णन सम्वाद रूप में कथा का वस्तु-निर्देश और पहले अध्याय में ही सभी अध्यायों का सार संक्षेप में दे दिया गया है। इस प्रकार यह वास्मीकि रामायण के ढंग का उसी की शैली में लिखा गया प्राकृत महाकाव्य है।<sup>१</sup>

पञ्चमण्डिय में दशरथ की चार रात्रियाँ बताई गयी हैं। कीटास्या या अपराजिता, सुमित्रा कैकेयी और सुप्रभा। जनबास में राम और लक्ष्मण कई विवाह करते हैं—राम गण्डर्ब राम की तीन कन्याओं से और लक्ष्मण बन्धुवर्ण की साठ कन्याओं से। आगे चलकर राम सुवीर की १३ कन्याओं से और लक्ष्मण लंका के पास समुद्र राज की कन्या और शक्ति सयने पर चित्रित करने वाली बिमलस्या नाम की कन्या से विवाह करते हैं। ज्योष्ण्या में राजा राम की ८०० और लक्ष्मण की १३०० रात्रियाँ कही गई हैं। रावण की ८०० रात्रियाँ थीं। सुपनखा ना नाम चन्द्रवन्ता दिया है और उसके पति का कररूपण। हनुमान का विवाह रावण की यात्री अनयकुमुमासे हुआ था।

कथा का अन्त जैन कल्पना के अनुसार मोड़ दिया गया है। सीता अग्नि परीक्षा में सफल होकर जैन बीसा के भेटी है और बाद में स्वर्ग को प्राप्त करती है। सीता के पुत्रों के नाम भवण और जंकुल बताये गये हैं। लक्ष्मण मर कर नरक में जाते हैं क्योंकि रावण ना बच इन्हीं के हाथों हुआ। राम महिषा वधकारी थे। वे बीसा से भेते हैं और साधना करके मोक्ष पाते हैं।

राजा श्रेयिक की शकाओं का समाधान करते हुए गणपति भौतम ने यह राम कथा सुनाई है । कुछ-एक अवान्तर कथाएँ भी हैं । कथानक रोचक और सुन्दर है । कथाओं की अपेक्षा वर्णन कम है । प्रारम्भ में विद्यापति-भोक, राक्षस-बंध तथा बाहर बंस का वर्णन है । बीच-बीच में नगर, नदी तासाव आदि के वर्णन हैं । कहीं कहीं उपदेश भी मिल पाते हैं । भाषा में सरसता, भोज और प्रवाह है । महापद्मी प्राकृत के अतिरिक्त संस्कृत और अपभ्रंश रूप भी यत्र-तत्र आ गए हैं । कवि की सैली महाकाव्य की है । भाषा छन्द का अधिकतर प्रयोग हुआ है । छन्द, अलंकार और रस की विविधता और सफ़ल योजना से जान पड़ता है कि छन्दकार अवश्य सिल्ली और पण्डित थे । ग्रंथ का विस्तार ११८ उद्देश्यों (अध्यायों) के अन्तर्गत ६००० से कुछ अधिक पद्यों में हुआ है ।<sup>१</sup>

### बसुदेव हिण्डी

इसमें वाद्यय नरेश कृष्णजनक बसुदेव के प्रेम की कथा वर्णित है । कथा के उपक्रम का आधार मूसरूप से 'हरिबंध' है । कोरव-पाण्डवों की कथा गीत है जिसका आधार महामारत है । सैली में बृहत्कथा का प्रभाव स्पष्ट है । कथा का विभाजन मुक्त, प्रतिमुक्त, शरीर आदि में हुआ है । प्रभाव कथा के साथ अनेक अन्तर्कथाएँ मूलित हैं जिनमें तीर्थंकरों और अन्य धाताका पुरुषों के चरित्र वर्णित हैं । कृष्ण की अरिष्टनेमिका समकालीन बताया गया है । अर्थात् पुत्रि विद्यापति देवी-देवता आदि की कथाएँ भी संक्षिप्त हैं । बाह में इन कथाओं के आधार पर स्वतन्त्र ग्रंथों की रचना होनी रही है ।

कृत्तिका विस्तार १०० लम्बकों में हुआ है । अविकसित पद्य का प्रयोग हुआ है कहीं-कहीं पद्य मिल पाते हैं । सैली प्राय सरल है, पर वर्णनों में लम्बे-लम्बे समास प्रयुक्त हुए हैं । इसीसे ये वर्णन काव्यात्मक होते हुए भी निस्पष्ट हैं । कथाएं अवश्य सरल और रोचक हैं । यह ग्रंथ भी महापद्मी में है । इसका पूर्व भाग संवत्साव बलि ने और उत्तर भाग बर्म सेन भवि ने लिखा । कृति का अन्त्येक बिनमत्र हरिमत्र तथा मलममिरि ने किया है । इससे इसका रचना काल ७ वीं शती से पूर्व निश्चित होता है ।

धाताका-मुक्त-चरित राम और कृष्ण के चरितों के अतिरिक्त तीर्थंकरों के चरितों में कोई विशेष साहित्यिक गुण नहीं मिलते । उनमें धीसाचार्य (धीमांश घूरी) कृत बजरत्न-महापुरि-चरित एक विज्ञान ग्रंथ है । इसमें २४ धाताका पुरुषों का चरित्र वर्णित है । ९ प्रणिशामुदेवों को वासुदेवों के साथ ही गिना गया है । बाह में उन्हें अलग मानकर अपभ्रंश में ६३ धाताका पुरुषों पर चरित काव्य लिखे गए हैं । इसका रचना काल ८६८ ई. निर्धारित है । 'आदि नाथ चरित' वर्तमान का विज्ञानग्रंथ है जिसमें १५ ० गाथाएँ हैं । इसमें पाँच प्रस्तावों के अन्तर्गत अष्टमदेव का जीवन चरित्र दिया गया है । उसकी रचना तिथि सन् ११०३ ई० है । ११०४ ई० की एक कवि

‘पृथ्वी चन्द्रचरित’ है जिसमें ७५०० पद्य हैं। इसके रचयिता शक्तिचरित थे। १२ वीं शती ही में भाषा में हरिमद्र हुए हैं। उन्होंने संस्कृत प्राकृत और उपभ्रंश में कई ग्रंथ लिखे। इनकी ‘प्राकृत-कृतियां मस्तिनाथ चरित’ ( ३ प्रस्ताव ) तथा ‘चन्द्र प्रमचरित’ ( ८००० पद्य ) हैं। इनके प्राकृत चरित काव्यों में कविरत्नपूर्ण और साहित्यिक कोटि के वर्णन प्राप्त होते हैं परन्तु इससे अधिक महत्वपूर्ण ग्रंथ उत्तर काश में गुणचन्द्र-कृत ‘महावीर चरित’ और ‘सोमप्रयागचरित’ सुमतिनाथ चरित ( लगभग ११९० ई० ) उत्प्रेक्षणीय हैं। यही सोमप्रम ‘कुमारपाल-प्रतिबोध’ के रचयिता थे।

‘सुमारपाल-चरित’ में सातवें तीर्थंकर श्री पार्श्व के अनेक जन्मों की कथाएं वर्णित हैं। बौद्ध धर्म की व्याख्या में अनेक उपकथाएं दी गई हैं जिनमें सं-कुक्ष प्रेम और आश्चर्य से ओतप्रोत हैं। गाथाओं की संख्या ८००० हैं। जिनमें १८ पद्य अपभ्रंश के भी हैं। सेती अच्छी है। शब्द और अर्थ अर्थकारों का सफल निर्वाह हुआ है। भाषा असंस्कृत है और अभिव्यक्ति के वर्णनों में विधायक चमत्कार पूरा हो गई है।

‘महावीर-चरित’ की वर्णन सेती भी इसी प्रकार की है। इसका विशेष गुण इसकी छंद और व्याकरण सम्मत प्राकृत है। काव्य की दृष्टि से भी यह सफल कवि है। कुछ नये शब्दों का प्रयोग इसमें पहली बार हुआ है। अर्थकारों का बाहुल्य है। वर्णनों में कामिबास और वागमद की छाया सनकरी है। कई वाक्य तो ऐसे लगते हैं कि संस्कृत से कर्मांतरित कर लिये गए हों। गद्य की अपेक्षा पद्य अधिक सरल है। शब्द में आठ ‘प्रस्ताव’ हैं।

‘सुमतिनाथ-चरित’ में प्रथम वर्णन के साथ-साथ बौद्ध धर्म के सिद्धान्तों की व्याख्या कथाओं के माध्यम से की गई है। इसमें ९५०० पद्य हैं।

चन्द्रचरितों की जीवन-गाथाओं में श्रीचन्द्रकृत ‘सल्लुमार चरित’ प्रसिद्ध है। इसमें ८१२७ पद्य हैं। सल्लुमार का हारण, वन-भ्रमण माना कष्ट-सहन, अनेक विद्याचरितों से विवाह, सफलता आदि के वर्णन सुन्दर हैं।

‘कुमारपाल-चरित’, यह ग्रन्थ २८ सर्गों में प्राप्त है। प्रथम बीच सर्ग संस्कृत में और अन्तिम आठ सर्ग प्राकृत तथा अपभ्रंश में हैं। इसीसिधे इसका दूसरा नाम ‘इयाभय महाकाव्य’ है। प्राकृत भाग में एक और दोहरे उद्देश्य का निर्वाह करने की चेष्टा की गई है—कुमारपाल के चरित का वर्णन करने के साथ-साथ वहीं पद्य प्राकृत व्याकरण के नियमों के उदाहरणों का काम भी लेते हैं। ये नियम तो उनकी दूसरी कवि ‘सिद्ध-हेम’ में हैं और उदाहरण यहाँ पर दिये गए हैं। इससे कथा के विकास में तो कोई बिम्ब नहीं पड़ता, पर सीसी बड़ी कृत्रिम और बोझिल हो गई है।

कुमारपाल का परिचय ‘कुमारपाल-प्रतिबोध’ के सम्बन्ध में पहले दिया जा चुका है। भाषा में हेमचन्द्र उनके गुरु थे। ‘कुमारपाल-चरित’ उन्हीं भाषाओं की कृति है। हेमचन्द्र अपने समय के सबसे बड़े विद्वान् थे। उन्होंने टीका-ग्रन्थ, कोष-व्याकरण, काव्य, प्रबन्ध आदि अनेक प्रकार की रचनाएं कीं। ये कृतिकाल सर्वज्ञ



पहले भूलभी अपना अनुभव सुनाने लगे — एक बार मैं अपने सिर पर गंगा उठाने सिधपुरी को चला । कमण्डलु और छत्र लिये मैं जा रहा था कि एक मत्त हवा भी मेरे पीछे पड़ गया । मैं कमण्डलु में बुस गया, तो हवा भी मेरे पीछे-पीछे बुस आया । छ. महीने वह मेरे पीछे भागता फिरा । अन्त में मैं कमण्डलु की टोंटी से बाहर निकल पया पर हवा भी की पूँछ उसमें फँस गई । मैं धिक्पुरी पहुँचा । वहाँ पर छ. महीने मैंने मँषा को अपने सिर में धारण किये रखा और फिर उज्जयिनी जा पया ।

इस प्रकार की कथाएं हर एक ने सुनाई और दूसरों ने पुरानादि से उन्हें सत्य सिद्ध कर दिया । लगभग १० वीरादिक कथाएं इसमें प्रमाण के रूप में आई हैं । धौली सरस और प्रवाहयुक्त है और बलकारों के बोस से बनी नहीं है ।

इसके रचयिता भी 'समरतुल्य-कहा' के लेखक आचार्य हरिभद्र धूरि हैं । इस कृति का मूक उद्देश्य ब्राह्मण वर्ग पर व्यंग्य करना है और निस्संदेह यह एक सफल रचना है ।

बाकोस-अकरण—इसमें ३६ कथाएं और ४-५ उपकथाएं संयुजीत हैं । इनमें १६ कथाएं छात्रुओं को बाल होने के फस पर हैं । अन्य में जिन-पूजा बर्मात्साह बर्म-कल इत्यादि विषयों का स्पष्टीकरण किया गया है । कुछ-एक कहानियाँ अति संक्षिप्त हैं । वर्णनों में उत्काशीन समाज राजनीति आचार-व्यवहार जनस्वभाव आदि का परिचय मिल जाता है । कहानियों में सिंहकुमार की कथा धनोरज भावक की कथा पारस्य व्याक की कथा वनों की कथाएं कुलका रानी का आस्वान और बधिक पुत्र का बुध्याप्त साहित्यिक दृष्टि से उत्तम हैं । कल्पना और रस का सज्जन निर्बाह हुआ है । भाषा सरल और सुबोध यद्यपि है वहाँ-उहाँ संस्कृत के पद्य बिखरे हुये हैं । वर्णन-शैली प्रवाहयुक्त है । समास कम हैं और शब्दावली का अभाव है । भावों की मौलिकता इस कृति की एक और विशेषता है ।

इसकी रचना सन् १३१ ई० में आचार्य जिनैस्वर ने की । वे आनुवंशिक संकीर्ण नाट्य शास्त्र बर्म शास्त्र आदि के पंडित थे । उनके संस्कृत और प्राकृत में कई एक ग्रन्थ उपलब्ध हैं । अन्य प्राकृत ग्रन्थ नामिक हैं और उनमें साहित्यिक अंश नहीं के बराबर हैं ।

कथामहोदधि — 'कथा-कोश' के संघ के अनेक कथा-संग्रह प्राकृत और अपभ्रंश में उपलब्ध हैं । इनकी कुछ कथाएं तो सामान्य रूप से द्वाह-उवाह अन्य बर्म कथा ग्रंथों में भी मिल जाती हैं पर अधिकतर मौलिक बाल पढ़ती हैं । ऐसे कथा-संग्रहों में सोमचन्द्र कथ कथा महोदधि उल्लेखनीय है । इसमें १२७ कहानियाँ हैं कुछ संस्कृत में और कुछ अपभ्रंश में । प्राकृत कथाओं की धौली रोचक और सरल है ।

विजयचन्द्र चरित—इसमें जिन पूजा का फल दिलाने के लिए जाट कथाएं हैं । रचनाकार अत्यंत महत्तर और रचना-काल सन् १०७० ई० निश्चित है ।

ज्ञान पञ्चमी कथा— इसमें एस कथाएँ हैं—जयसेन-कहा, नंद-कहा, महा कहा बीर-कहा कमला-कहा, मुनागुराय कहा, विपस-कहा, परम-कहा बेबी-कहा तथा मविस्सयत कहा। प्रत्येक कथा नाम पञ्चमी वृत् के माहात्म्य के वृत्तान्त के रूप में लिखी गई है। सबका अन्त एकसा है जिससे कथा की सरसता नष्ट हो जाती है, पर छोप कथा-भाग प्रायः अच्छा बन पड़ा है। प्रथम और अन्तिम कथाएँ अच्छी हैं— लगभग १२ सी गाथाओं में अन्य कथाएँ १२५ १२२ गाथाओं में समाप्त की गई हैं। गाथाओं की कुल संख्या २००४ है।

कवि का रचनाकाल निर्धारित नहीं किया जा सका। इसके रचयिता महेदर सूरि, ऐसा कि 'ज्ञान पञ्चमी-कथा' से स्पष्ट है बड़े प्रतिभावाली और भाषा प्रभुत्ववान कवि थे। कथाओं की वर्णन-शैली सरल और भावपूर्ण है। इनकी भाषा सुलभ और सरस महाराष्ट्री है। यह—जयह सद्गुणियाँ और ललित पद्मलियाँ मरी पड़ी है। वर्णन कवित्वपूर्ण है।

'विजयचन्द्र केवसिन्'—इसमें भाषाओं की संख्या १०६६ है जिनमें आठ प्रकार की जिन-यूजा का माहात्म्य आठ कथाओं में वर्णित किया गया है। इस प्रकार जयसुर राजा की कथा का विषय गंध-यूजा जिनयंकर की कथा का भूप-यूजा बीर युगल की कथा का अलत-यूजा बलिक सुता सीतावती की कथा का पुष्प-यूजा जिनमती की कथा का शीप-यूजा हरी पृथ्वी की कथा का मैनेय-यूजा दुर्गा की कथा का फल-यूजा और बीर प्रसूता की कथा का विषय बल-यूजा है। अन्त में एक अवशिष्ट कथा है। भाषा अवश्य सरल है, परन्तु भाव खरिब, कथा मज्जा बाढ़ की दृष्टि से कवि का साहित्यिक महत्व कम है। इसकी रचना सन् १०७ ई० में अनवरत सूरि के सिध्य चन्द्रप्रभु महाराजे की। वे पूर्वी प्रदेश के रहने वाले जान पड़ते हैं। इनकी महाराष्ट्री में भाषा का प्रभाव स्पष्ट ललित होता है।

सरंगवती—इस नाम की प्रेम-कथा का उल्लेख 'अमृतमयार सुभ', 'कुलमय माता', विलकर्मवतीमादि ग्रंथों में हुआ है। मूल कवि नहीं मिलती। इसका संक्षेप १६४१ पद्यों में 'सरंगमती' नाम से उपलब्ध है। 'सरंग-मती' के सम्पादन मेमिन्गहम का कहना है कि 'सरंगवती' बहुत बड़ा ग्रंथ था और इसकी कथा अद्भुत थी। सरंगवती एक कल्पवृक्ष थी है जिससे सरोवर में हंस-मिथुन को देखकर अपने पूर्व जन्म का स्मरण हो आया जब कि वह स्वयं हंसिनी थी। उसके पति हंस को किसी व्याध ने मार डाला था। यह याद करके उसे मूर्च्छा आ गई। यही है प्रेम और विरह की जागृति होती है। उचित होने पर वह अपने प्रियतम की खोज में निकल पड़ी। अनेक विपत्तियाँ सहने के बाद उसे अपने दृष्ट की प्राप्ति होती है। वह और उसका प्रेमी विवाह-बंधन में बंधते हैं और अन्त में एक जीन-मृति के उपवेश से जीवन-मर्म में प्रवेश करते हैं।

कथा उत्तम पुरुष में वर्णित है। इसमें कवच-यूयारादि अनेक रसों प्रेम की विविध परिस्थितियों, खरिब की शैली-शैली अवस्थाओं, बाह्य और अन्तर्गत का

विविधियों का बहुत स्वाभाविक और विराट वर्णन किया गया है। काव्य चमत्कार अनेक स्थलों पर मिलता है। भाषा प्रवाहपूर्ण और साहित्यिक है। बेटी सपनों और प्रपन्नित मुहावरों का अच्छा प्रयोग हुआ है।

'सरस्वती' के रचयिता पालित (पावसिप्त) सूरि थे। उनका जन्म कोरस में हुआ था। पहला नाम मागेन्द्र था। साधु ही जाने पर पावसिप्त हुआ। वे जैन धर्म के एक प्रसिद्ध आचार्य थे और आंध्र प्रदेश हुआ की राजसभा में सम्मानित कवि थे। एक किंवदंति के अनुसार वे उज्जयिनी के राजा विक्रम के समकालीन थे। विद्वानों ने इनका जीवन-काल १ बीं सदी से पूर्व निश्चित किया है।<sup>१</sup>

### सुरसुन्दरी चरित

'सुरसुन्दरी चरित' १६ परिच्छेदों में विभक्त एक प्रेम-कथा है। प्रत्येकपरिच्छेद में २५० पद्य हैं और इस प्रकार चार हजार पद्य हैं। कथा का संयोजन मूल कथा के साथ अवान्तरकथाओं का सम्बन्ध और युष्मन्, मानसिक स्थितियों का स्वाभाविक वर्णन आटावरण की सुन्दर सृष्टि चरितों के मनोवैज्ञानिक विकास इत्यादि अनेक औपन्यासिक गुण इसकृति में विद्यमान हैं।

आलोचकों ने इसे सरस और काव्य युक्त सम्पन्न रचना माना है। रसों की विविधता में कवि ने बड़ा कोरस दिखाया है। शास्त्र रस प्रधान है। विषयों की विविधता से भी ग्रंथ परिपूर्ण है—कहीं सूर्योदय अस्त बन सरोवर, नगर राजसभा युद्ध, विवाह, विरह भूस्पर्श आदि का वर्णन है तो कहीं धर्म आचार अहिंसा श्रम संघास पर उपदेश हैं और कहीं सुल झुल नरक स्वर्ग संसार की आसरा पर सुभाषित हैं। लाटानुभास यमक श्लेष आदि सज्जालकारों के अतिरिक्त अर्चालकारों का सुन्दर प्रयोग किया गया है। भाषा में प्रसाद गुण प्रधान है। संस्कृत अपभ्रंस और ग्राम्य भाषा के शब्द भी यहाँ-कहाँ मिल जाते हैं।

कथानक बहुत संक्षिप्त और सरस है। मनदेश सेठ एक विध्वंसिनी की सहायता से विजय नामक विद्याधर की नागों के पास से छुड़ाते हैं। विद्याधर सरसुन्दरी और अपने प्रेम विरह और मिलन की आशा निराशाभयी कथा सुनाता है।

मह प्रथम कवि ने अपनी बहूत कल्याणमयी के कहने पर सरस प्राकृत में लिखा है। कवि का नाम साधु जगेसर ( जनेश्वर) दिया गया है। इस नाम के ६-७ जैन-सेवक हुए हैं। ग्रंथ में प्राप्त एक सूचना के अनुसार यह जनेश्वर 'कथाकोषप्रकरण' के रचयिता जनेश्वर सूरि के शिष्य थे जिन्होंने जगन्नाथती नगर में सन् १०१८ ई० में ब्रह्मस्नान की रचना की थी।

### कासकाचार्य-कथानक

यह एक सधु कथा है जिसमें १४५ पद्य और श्लेष पद्य हैं। कथानक बहुत ही सरस और छोटा है। राजकुमार कासक की छोटी बहूत सरस्वती को उज्जयिनी प्रदेश पर्यटित मया से जाता है। कासक लोगों में पर्यटित के विरुद्ध उत्पन्न

करते हैं। वे सक-कुल के राजा को उकसाते हैं और उसकी सहायता से उज्जयिनी पर आक्रमण कर देते हैं एवं अपनी महन को छुड़ा लाते हैं। भाव में वे साधु हो जाते हैं और जैन धर्म के आचार्य होकर प्रसिद्धि पाते हैं। हो सकता है कि इस कथानक में कोई ऐतिहासिक सत्य हो। कृति की शैली अलंकृत और कथितपूर्ण है विशेषतः नगर वर्णन आदि में। इसका रचना काल १० वीं शती निर्धारित किया गया है।

### भुवन-सुन्दरी

इस नाम का एक प्रेमकाव्यान विजय सिंह द्वारा लिखा हुआ मिलता है। कथा में कोई विशेषता नहीं है। रचना-स्थिति ६१७ ई० निश्चित है।

### मलय-सुन्दरी कथा

इसमें राजकुमार महाबल और मलय सुन्दरी की प्रेम कथा, उनके अनेक बार बिछड़ने और मिलने तथा अन्त में साधु हो जाने का वर्णन है। अट्ठास अटिस और आठवर्ष पूर्ण हैं। कृतिकार का पता नहीं चस सका पर इसका रचना-काल १४ वीं शती से पहले निर्धारित किया गया है।

### सिरिसिखास-कथा

इस कथा का उद्देश्य सिद्धचक्रपूजा का माहुरम्य प्रवर्धित करना है। राजकुमार श्रीपाल अपने भावा से सताया हुआ भाग गया और कोटिद्वी के बीच में पड़कर कोढ़ी हो गया। एक राजा अपनी पुत्री महल सुन्दरी से क्रुद्ध था उसने उसका विवाह श्रीपाल कोढ़ी से कर दिया। रास्ते में एक साधु मुनिचन्द्र ने उन्हें सिद्ध चक्र की मन्त्रपद-पूजा का उपदेश दिया। भ्रमण करते हुए राजकुमार को कुछ रासायनिक मिले उनसे सोना पाकर और एक सिद्ध से 'अलतारिणी' तथा परसत्त्वानना रिनी नाम की शक्तिशाली पाकर वह भागे चला।

श्रीधाम्नी का एक बलिया, बल्ल, अनोपार्जन के लिए कहीं जा रहा था। उसके बलवान पति ने। श्रीपाल ने मन्त्रपदम्यान से उसका बेटा पार किया और समुद्र यात्रा पर चस पड़ा। रास्ते में उसने बल्लर कन्या मलयसुन्दरी से विवाह किया। फिर वह दोनों पत्नियों को लेकर रत्नद्वीप पहुँचा, वहाँ जनेश्वरी देवी की आज्ञा से विद्यावती मलयमंजूषा से विवाह किया। बल्ल ने उसे मारकर उसकी पत्नियों को बध में करने की चेष्टा की। श्रीपाल को समुद्र में गिराया गया पर वह बचकर कोनकन पहुँचा और वहाँ की राजकुमारी महलमंजरी से विवाह किया। पीछे उसकी ने पत्नियों जनेश्वरी देवी की सहायता से अपने सतीत्व की रक्षा करती हुई बल्ल के साथ वहाँ पहुँची। बल्ल ने कई पक्ष्यग्न किए और अन्त में जान पंवाई। श्रीपाल परिवार का पुनः प्रयोग सत्ता।

काव्यान की शैली प्रायः सरल और सरस है। अलंकारों का जहाँ-जहाँ प्रयोग हुआ है वही स्वाभाविक ढंग से हुआ है। स्तुति और वर्णन में सम्बन्ध-सम्बन्ध सदायः प्रयुक्त है। पद्य और पद्य की भाषा में अन्तर है। प्रायः महाकाव्यी का प्रयोग हुआ है। कुछ

एक पद्यों में अपभ्रंश है। इसके रचयिता रत्नसेखर सूरि १४ वीं शती के सत्तरावें में हुए हैं।

### रत्नसेखर-कहा

आयसी-कृत 'परमावत' का पूर्व-रत्न 'रत्नसेखर' कहा है। रत्नसेखर रत्नपुर नगरी का राजा है, जो सिद्ध की राजकुमारी रत्नवती का जग-वर्जम सुमकर व्याकुल हो उठता है। कहा गया है कि इन दोनों का प्रेम जग-वर्जमान्तर से था। राजा रत्नसेखर अपने मन में बिठाई मूर्ति की खोज में निकल पड़ता है और सिद्धद्वीप जाता है। उभर रत्नवती में भी प्रेम जागृत होता है। वह कामदेव की पूजा के लिए मंदिर में जाती है। वहीं रत्नसेखर विद्यमान है। दोनों की भेंट होती है। बाद में दोनों को बड़े-बड़े कष्ट सहन करने पड़ते हैं। अन्त में उनका विवाह हो जाता है।

भाषा-शैली सरल है। यद्य-पद्य दोनों का प्रयोग हुआ है। लोकविशवालों का चित्रण विचित्र ढंग से हुआ है। पंचकार त्रिहर्षणभि बड़े अनुसूची और पंडित जान पड़ते हैं। उनके रचना कोशम का भी पर्याप्त प्रमाण मिलता है। कृति की रचना चित्रकूट (चित्तौड़) में १२ वीं शती के अन्त में हुई, ऐसा अन्तर्भाव से सिद्ध होता है।<sup>१</sup>

जैनों ने इन कथा-आख्यायिकाओं के अतिरिक्त उपदेश देने के लिए अनेक कथाओं का प्रचयन और सम्पादन किया। इनमें धर्म व्याचार और नीति सम्बन्धी सूक्तियों और उपदेशों की प्रधानता है। वृष्टान्त के लिये स्थान-स्थान पर अवान्तर कथाएं भी मिल जाती हैं। इस प्रकार की प्रमुख रचनायें निम्न हैं।

### कुवसममाला कथा

इसमें श्रीमद् भाग, माया मोह आदि विषयों का परिचय दिखाने के लिए कथाओं का संवह किया गया है। कथाओं की खेती रोचक है, विषयों की विविधता सदाहनीय है। भाषा सरल और बलती हुई है और उपदेशों का कथन का ढंग रोचक है। ग्रंथ में प्रसंगवश अनेक प्राकृत कवियों और कथाओं का उल्लेख हुआ है, जिससे भाषा और साहित्य के इतिहास की खोज में बड़ी सहायता मिल सकती है। कुछ सामाजिक तथ्य भी उपलब्ध होते हैं। कुवसम तोरमाण की लूटमार का उल्लेख उत्काशीन राजनीतिक दशा पर प्रकाश डालता है। भाषा महापट्टी है। यत्र-तत्र अपभ्रंश और वैयाची का भी प्रयोग हुआ है। इस उपदेश-कथा-ग्रंथ के रचयिता उद्योतन सूरि ८ वीं शती ईसवी के सत्तरावें में हुए हैं। कृति के अन्त में सूचित किया गया है कि इसकी समाप्ति जाबासिपुर में शकाब्द ७०० में हुई। उद्योतन सूरि हरिमन्न औरमन्न के शिष्य थे। उनकी शैली में हरिमन्न का प्रभाव सन्निहित होता है।

### उद्योतन माला

धर्मशास्त्रमणि कृत 'उपदेश' माका बहुत प्रसिद्ध और जागृत ग्रंथ है। इसमें शास्त्रों और गृहस्थों के लिए अनेक वैदिक धिसाए हैं एवं ज्ञान-व्यापन, तप-संयम,

दान दया अहिंसा, विनय-शालीनता विवेक अपरिगृह अमासक्ति भावि सद्गुणों पर सुबोध और सुरम्य ज्ञापयेत हैं । जैन संघ में दीक्षित मित्र-मित्रिणियाँ इसे कंठस्थ कर लेती हैं । मूल गाथाओं की संख्या १४१ हैं । टीका के रूप में कथाओं का समावेश किया गया है । जैन माण्यता के अनुसार धर्मदास महावीर स्वामी के समकालीन ने पर अन्तर्मुख के आभार पर विद्वानों का कहना है कि वे चौथी-पाँचवीं शती के मान पड़ते हैं ।<sup>१</sup> संघ की रचना उसने अपने पुत्र रत्नसिंह के लिए की ।<sup>२</sup>

‘उपदेस माता’ पर कई टीकायें ९ वीं शती की प्राप्य हैं ।

इसके अनुकरण में हरिभद्र सूरि ने ‘उपदेसपद प्रकरण’ नाम से एक धर्मोपदेस की रचना की, परन्तु उसकी उतनी प्रसिद्धा नहीं है ।<sup>३</sup> इसको बस्तुतः, साहित्यिक इति कहना अस्वाभाव्य होगा क्योंकि इसकी सत्य योजना निरानन्द ब्रह्म है और इसकी शैली असाधारण वाचस्पत्यपूर्ण है ।

### धर्मोपदेसमाता विवरण

यह एक संग्रहग्रंथ है जिसमें धर्म नीति सुभासुमफल सद्गुण महिमा गुणसिद्धि इत्यादि अनेक विषयों पर सूक्तियाँ और इनकी व्याख्या में ११६ कथाएँ उद्धृत की गई हैं । उदाहरणार्थ धीस की व्याख्या के लिए राजमती—कथा भाव के लिए हलापुत्र कथा राग और द्वेष का परिणाम दिखाने के लिए कर्मस-बन्धक-तनय-कथा तथा नाविक नन्दन कथा दान का माहात्म्य दिखाने के लिए धारिमह-कथा, इसी प्रकार पावक्य कथा ब्रह्मसत्त्विक कथा केसिमन्धर—कथा इत्यादि । इन कथाओं में जीवन के लगभग प्रत्येक क्षेत्र से पाठ लिए गए हैं—महापुरुष सम्राट सम्राजिनी राजकुमारियाँ साधु सेठ बनिमा मूर्ख दुर्जन धुमाटी, शराबी सनी घरह के लोग । इनका चरित्र—विचित्र बड़ी स्वाभाविक मनोवैज्ञानिक और स्पष्ट रीति से किया गया है । अनेक देशों मन्थिरी नदियों सरोवरों और प्राकृतिक दृश्यों के विषय वर्णन दिये गए हैं । शृंगार और करुण भावि रसों और बकौन्ति व्याकौन्ति बालौन्ति दुष्टान्त रूपक उपमा आदि अलंकारों के अनेक उदाहरण विखरे पड़े हैं । ज्ञानविज्ञान की अनेक बातों का उल्लेख हुआ है । कहीं-कहीं सामाजिक और ऐतिहासिक महत्त्व की सामग्री भी मिल जाती है ।

यह ग्रन्थ साहित्यिक दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण है । भाषा गद्य-पद्य मिश्रित है । गाथाएँ बहुधा गद्य में हैं । मूल गाथाओं के रचयिताओं के नाम नहीं दिये गये । संकलन कर्ता और कथा-संस्कारक कर्णसिंह सूरि ( कृष्ण मुनि के शिष्य ) कथ्य गए हैं, जिसकी अपनी सूचना के अनुसार संघ की रचना सन् ८५८ ई० में हुई ।

१ हरदेव वाहरी प्राकृत और उसका साहित्य पृ० ५४

२ भयवतसरण उपाध्याय विरच साहित्य की रूप रेखा, पृ० ५०३

३ हरदेव वाहरी प्राकृत और उसका साहित्य पृ० १४

४ भयवतसरण उपाध्याय विरच साहित्य की रूप रेखा, पृ० ५०३

### कुमारपास प्रतिरोध

इसमें सोमप्रभाचार्य ने वे चित्ताएँ संगृहीत की हैं जो समय-समय पर आचार्य हेमचन्द्र ने कुमार पास को दी थीं। कुमारपास पाठम के प्रसिद्ध बामुक्मराज मूमराज की ८ बीं पीढ़ी में हुए। वे बड़े धीर बुद्धिमान और उदार राजा थे। उन्होंने, यह जानने के लिए कि कोन सा धर्म अच्छा है विद्वानों की अनेक सभाएँ बुलाई पर उन्हें संतोष न हुआ। तब उनके मंत्री ने जैनभाष्यों की प्रशंसा करते हुए सोमचन्द्र ( जो बाद में हेमचन्द्र नाम से प्रसिद्ध हुए) से चित्ता पाने की प्रेरणा ली। भूल कथा इसकी है कि हेमचन्द्र के उपदेश सुनकर राजा धीरे-धीरे जैनधर्म में दीक्षित हुए। इन्हीं ने कई मन्दिर सभागार चैतन्य और बिहार बनवाये कई तीर्थ यात्राएँ की हर्यादि हर्यादि। इस पुस्तक का दूसरा नाम 'जैन धर्म प्रतिबोध' है जो मुख्य नाम की अपेक्षा अधिक सार्थक है क्योंकि उसका उद्देश्य पंच महाव्रतों पुत्र पुत्रा कर्तव्य पामन गृहस्थों के ११ व्रतों और विषय-विकारों के सम्बन्ध में उपदेश सग्रह करता है। दृष्टान्त रूप में ३८ कथाएँ कही गई हैं—जैसे पुण के विषय में 'नल चरित' परस्त्री व्रत के विषय में प्रद्योत कथा बेरवा ध्यसन के विषय में 'अधोक कथा' मत्तपात के बारे में 'हारिकावहन कथा' परबन हरण पर 'बन्धकथा', बुध सेवा के विषय में 'सप्तमीकथा' सीमव्रतपालन में 'सीमव्रती कथा' भृगावती का दृष्टान्त, तप के बारे में 'कमिची कथा' हर्यादि।

ग्रंथ की भाषा सरल और सरस है। पाँच प्रस्तावों में से अन्तिम में संस्कृत का भी प्रयोग हुआ है। अपभ्रंश के उदाहरण भी मिल जाते हैं। पद्य अधिक हैं बद्य कम। इसमें ऐतिहासिक सामग्री बहुत नहीं पर बालिक और साहित्यिक दृष्टि से इसका महत्व स्वीकार किया गया है।

सोमप्रभाचार्य हेमचन्द्र के शिष्य थे और अश्लेषपुर गुजरात में रहते थे। कई भाषाओं के पण्डित थे। इन्होंने स्वयं इस कृति का रचना-काल सं १२१२ बताया है।

इन ग्रन्थों के अतिरिक्त 'दम्बसहायपयास' 'दम्बस्वभाव प्रकाश' जिसका दूसरा नाम 'बृहत् नयचक्र' है (१०० ई०) 'वाचाकोश' (११० ई०) 'मन्वैराम्यघटक' (१२०० ई०) 'वाचा सहस्री' (१६१ ई०) उपदेशों और नीति-सिद्धान्तों के विख्यात संग्रह हैं। पर इनमें दृष्टान्त प्रायः नहीं हैं और जो हैं भी वे अतिसंक्षिप्त विरल हैं।

### प्राकृत की साहित्यिक रचनायें

कुछ वर्ष पहले तक यह समझा जाता था कि प्राकृत जैन भाषा है और इसमें जैन-धर्म-ग्रन्थों के अतिरिक्त कुछ नहीं है। परन्तु आधुनिक अन्वेषकों ने प्राकृत की साहित्य-सम्पत्ति को बाहर लाकर दिखाई तो सहस्रय जग मधुबू हो उठे। अब

जो लौकिक साहित्य प्रकाश में आया है तो उसमें सेतुबन्ध, 'वीरबहो,' 'वाचास्पद' सारी 'वज्रवामन' प्रभृति ऐसे देवीप्यमान ग्रन्थ-रत्न मिले जिनकी प्रभा ने बड़े-बड़े पण्डितों को बकाचीब कर लिया है। प्राकृत काव्यों की सरसता और ममुरता क सभी आलोचकों और भाषायों ने स्वीकार किया है।

ये काव्य प्रायः महाराष्ट्री में हैं। इनके दो बड़े बड़े जा सकते हैं—प्रबन्ध काव्य और मुक्तक काव्य। प्रबन्ध काव्यों में महाकाव्य भी हैं, सख काव्य भी। महाने काव्यों में आचार्यों द्वारा निरिष्ट सभी युग विद्यमान हैं। कथा के सपथन का कीसन, धौली का बर्तकरन, प्रकृति के वृक्षों का संस्मिष्ट वर्णन सर्व्यों का कथापूर्ण बयन, बर्ष-गाम्भीर्य आदि महाकाव्य की सारी विशेषताएँ इनमें भरी हैं। एक बात ध्यान देने योग्य है। इसी अध्याय में बर्णित जैन प्रबन्धों को भी लौकिक काव्यों की कोटि में लिया जा सकता है। उन प्रबन्धों पर बहुत सीमा सा आचरण बामिकता का है। कथावस्तु प्रायः लौकिक है कभी-कभी अद्वैतिवादि है। केवल जन्म में प्रधान पाशों का जैन धर्म की ओर प्रवृत्त हो जाना उन्हें मिथ्या बामिक नहीं बना देता। हमें तो जैन-कथा 'लीलावती' और लौकिक कथा 'सुरसुन्दरी की धौली और प्रबन्धात्मकता में विषय अन्तर विचार नहीं देता। हम हैमचन्द्रवृत्त 'कुमारपातन चरित' को लौकिक साहित्य की संज्ञा से बर्णित करने में सकोच का अनुभव करते हैं। इस सध्य की दृष्टि से प्राकृत का प्रबन्ध-काव्य बड़ा विज्ञान है।<sup>१</sup>

प्राकृत का मुक्तक काव्य भी हमारे साहित्य का परम रमणीय अंग है। इसकी परम विशेषता यह है कि इसमें लोक-जीवन के विविध पटनों की सौ बर्चस्पति हुई हैं। संस्कृत में जो कल्पना और आचार्यत्व का प्राधान्य था वह प्राकृत के मुक्तक पद्यों में नहीं है। इनमें अनुभूति और कल्पना का सुन्दर सामंजस्य है। राग और सुन्दर, जीवन और काव्य का सम्मिश्रण है। इसीसे इनमें बामिकता अधिक है। इनमें रागात्मक वृत्तियों का विकास स्वाभाविक रूप से हुआ है। इनका अधिकतर अर्थ विषय श्रृंगार नीति, धर्म तथा प्राकृतिक सीमार्थ है। वीर, यौववचन समानक रस के लिए इनमें प्रायः स्थान नहीं है। प्राकृत मुक्तकों का-सा साहित्य, भाव्य और उत्साह अत्यन्त दुर्लभ है। इनकी-सी व्यंग्यार्थ की सुन्दरता सर्वत्र नहीं मिलती।

बड़े-बड़े सुन्दर वीर प्राकृत और संस्कृत के नाटकों में आए हैं। इनका अन्तर्ग से सभी संकलन नहीं हुआ। कर्पूर मञ्जरी और 'वज्रसेवा' सट्टक के प्रकृति—सम्बन्धी पद्य 'अभिजातपाकुन्तल' 'प्रियवर्धिका' 'मुञ्च-कटिक' तथा 'विक्रमोर्वशीय' आदि के श्रृंगार रस-सिद्ध गीत बहुत ही गलीहर हैं। इस अध्याय के उत्तरार्ध में हम नाटकेतर धीति—साहित्य की ही चर्चा करेंगे।

सेतुबन्ध या राजवहो—संस्कृत में वाष्मीकि रामायण के बाद जिस तरह कालिदास के महाकाव्य धास्नीय धौली के मानवन्द के रूप में माग्य हैं, उसी प्रकार प्राकृत में परम चरिय के बाद प्रचरेन का सेतुबन्ध या राजवहो सर्वोत्कृष्ट धास्नीय



महाकाव्य है।<sup>१</sup> इसके १५ भाषाओं में से प्रथम बाठ में गल-नील तथा बानरों द्वारा समुद्र पर सेतु बांधने का वर्णन है। दण्डी, बाण आदि ने 'सेतुबन्ध' अथवा 'सेतु' नाम से ही इसका उल्लेख किया है। उत्तरार्ध में रावण-वध तथा की घटमारों का वर्णन है। इसमिये इसका दूसरा नाम 'रावण-वध' भी उपयुक्त है। पुष्पिकाओं में 'वसमुद्भव' 'दशमुख वध' नाम भी मिलता है। कथा का आधार भारतीय 'रामायण' का कुछ भाग है। कथानक में कोई महत्वपूर्ण परिवर्तन नहीं किया गया। कथा बहुत संक्षिप्त है। बिरह-संगत राम हनुमान द्वारा सीता का समाचार पाकर संका की ओर चल देते हैं। मार्ग में समुद्र की बाधा उत्पन्न हो जाने के कारण रुक जाते हैं। यहीं पर विभीषण उनके आ मिलते हैं। बानर-सेना समुद्र पर सेतु बांधती है। सेतु बांधने में बड़ी-बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। यहाँ पर कई अन्तर्काण्डों की कल्पना की गई है। राम समुद्र पार करके संका में प्रवेश करते हैं और रावण तथा कुम्भकर्ण आदि का वध करके सीता को छुड़ा लेते हैं। कथा का अन्त श्रीराम के अग्निके के साथ ही हो जाता है।

कृति के पूर्वार्ध में समुद्र, पर्वत फेन सूर्योदय सूर्यास्त आदि बीसियों प्राकृतिक दृश्यों के बड़े सुन्दर और काव्यात्मक वर्णन हैं। कवि कल्पना की बिल्ली सराहना की जाय कम है। उत्तरार्ध में मानव प्रकृति के विषय में कवि की अनुभूति और बन्सीर एवं व्यापक दृष्टि का परिचय मिलता है। राम के शोक रावण की विन्ता सीता के पास विभीषण की कृतज्ञता राक्षसों की हड़बड़ी इत्यादि मानवीय भावनाओं का सूक्ष्म चित्रण किया गया है। बानर और राक्षस-सेनाओं तथा उनके बीच के संघाम एवं हठ युद्ध का वर्णन विस्तृत और चित्रमय ढंग से हुआ है। वीररस प्रधान है। अन्य रसों का भी यथास्थान समावेश हुआ है। सबसे आश्चर्य में कामिनी-केलि तथा राक्षसियों का संभोग वर्णन और उनके वप-गुण-सौन्दर्य का चित्रण बहुत अनूठा है। सूक्तियों का तो यह ग्रन्थ भाङ्गार ही माना गया है।

'सेतुबन्ध' की भाषा कुछ साहित्यिक महाराष्ट्री है। परन्तु कृति में अपेक्षा इसमें समासों का प्रयोग अधिक हुआ है। इस दृष्टि से इस पर उत्कांक्षी संस्कृत शैली का महत् प्रभाव है। छन्द भी संस्कृत का अपनाया गया है और सम्पूर्ण कृति में एक ही छन्द 'आर्षा' प्रयुक्त है। सर्व के अन्त में छन्द बदलता नहीं है।

इस कृति का प्रभाव संस्कृत प्राकृत और अपभ्रंश पर भी पड़ा है। इसके पीछे 'रावणवध' 'शोकवध' 'शिथुपासवध' 'कंसवध' आदि अनेक प्रबन्ध मिले पड़े। इस ग्रन्थ पर कई टीकाएँ लिखी गईं जिनमें अकबर के समय के रामदास की 'राम प्रदीप' प्रसिद्ध है।

'सेतुबन्ध' के रचयिता कौन थे और उन्होंने कब इसकी रचना की इसका अभी तक निर्णय नहीं हो सका। ग्रन्थ के लिखने में कहीं भी ग्रन्थकार का नाम नहीं मिलता हाँ सर्व के अन्त में किसी-किसी पुष्पिका में प्रवरनेल का नामोस्तेज अक्षर

हुआ है। बख्शी, बाबमट्ट, लोयेन्द्र नाथ ने इसे प्रवरसेन की कृति माना है। दक्षिण के एक टीकाकार श्रीकृष्ण भी इसे प्रवरसेन की रचना मानते हैं। टीकाकार रामदास ने यह भ्रामक धारणा प्रचलित कर दी कि इसके रचयिता कालिदास थे। उनका कहना है कि विक्रमादित्य की आज्ञा से कालिदास ने इसे प्रवरसेन के लिए लिखा। किन्तु रामदास सैकड़ों वर्ष बाद में हुए हैं। उनको कल्पना का कोई आधार दिखाई नहीं देता। यह तो निश्चित है कि 'सेतुबन्ध' के लेखक प्रवरसेन थे। पर प्रवरसेन नाम से कई राजा हुए हैं—बार कश्मीर के और एक कुत्तस देश का। विद्वानों का मत है कि ये प्रवरसेन कश्मीर के राजा ही थे।<sup>१</sup> प्रवरसेन प्रथम का जीवनकाल १२१-१८१ ई० और अन्तिम प्रवरसेन का समय ११५ से १२० ई० तक बताया जाता है। डा० सुधीर कुमार ने ने इस रचना को पाँचवीं शताब्दी की माना है।

हमारा मत यह है कि प्रवरसेन राजा इसके रचयिता नहीं थे। उनके किसी व्यक्ति कवि ने उनके नाम से इसे बना दिया होगा। प्रायः राजाओं के नाम से जो कृतियाँ हमारे साहित्य में उपलब्ध हैं वे उनकी जीत सम्पत्ति हैं।<sup>२</sup> कुछ भी हो यह एक महत्वपूर्ण कृति है जिसकी प्रशंसा बाल और बख्शी दोनों ने की है।<sup>३</sup> प्रौढ़ और प्रसार युक्त भाषा, उक्ति वैचित्र्य, प्रासंगिक वस्तु व्यापार वर्णन और प्रसार गुण के कारण इसे कठिमुक्त रससिद्ध शास्त्रीय महाकाव्य कहा जा सकता है।

गीठवहो—गीठवहो' एक जीहिक चरित के आधार पर लिखा गया प्रबन्ध काव्य है। नाम से तो ज्ञात होता है कि इसमें गीठ देश के किसी राजा के वध का वर्णन होगा। परन्तु न तो गीठराज का कहीं नाम आता है और न ही उसके वध की कथा मिलती है। कथाविद् यह बख्शी काव्य मूल कृतिका पूर्व मान है। ऐसा ही कवि की अन्तिम सूचना से भी विहित होता है। कथानक ऐतिहासिक है। कभीज के राजा यशो वर्मा यशोवन्तु के जीत जाने पर गीठ देश पर आक्रमण करने की सलाह करते हैं। सरावामन के साथ विजययात्रा का आरम्भ होता है। कभीज से सबब तक जाने वाले दुश्मनों एवं कासकामात ऋतुओं का वर्णन कवि ने मार्मिकता से किया है। विजययात्रा का वर्णन भी काव्यशील्यपूर्वक है। वय यशोवर्मा विजय पर्वत पर पहुँचते हैं तो इसका समाचार पाते ही गीठ देशाभिप्राय जाता है किन्तु अन्त में मारा जाता है। इस घटना का उल्लेख मात्र एक पद्य में हुआ है। यशोवर्मा अनेक पूर्वी नदियों पर विजय प्राप्त करके कभीज छोड़ जाता है। वय देश पंजाब अयोध्या पारसीक देश कभीज काव्यार और भारवाङ्ग का वर्णन यथास्थान दिया गया है।<sup>४</sup> अन्त में कवि का नाम बप्पहराज (बाबलति राज) दिया गया है। वे कभीज में राजा यशोवर्मा के आश्रय में रहते थे और इनके प्रिय कवि और मित्र थे।

१ डा० रामचन्द्र लोमर आलोचना—अंक ८ पृ० १५

२ हरदेव बाहरी प्राकृत और उसका साहित्य—पृ० ८३

३ अथर्वतत्त्व उपाध्याय विश्व साहित्य की स्मरणा—पृ० १०५

४ संमुनापतिह हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकास—पृ० १०१

५ हरदेव बाहरी। प्राकृत और उसका साहित्य—पृ० ८३-८५

प्राग है यह भी बहगत होता है कि इसकी रचना यद्योवर्मा की मृत्यु के कुछ ही वर्ष बाद आरम्भ की गई थी। इससे इसका रचनाकाल आठवीं शती का पूर्वार्ध निर्धारित किया गया है।

इसमें १२०८ पाचार्य हैं और कथानक सर्व आत्मास आदि में विभक्त नहीं है। यों भी इसमें कथावस्तु नहीं के ही बराबर है और अत्यन्त असंक्रत वर्णों, बुरासङ्ग कल्पनाओं, विद्वत्पुर्ण सन्ध्यों तथा आश्चर्यक वस्तु-व्यापार-वर्णन से काव्य का कलेवर स्फीत हो गया है। किन्तु इस काव्य की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें घास्य जीवन और दुस्मों का बहुत ही यथार्थ और जीवन्त चित्रण हुआ है। घास्रीय महाकाव्य के नलकों की दृष्टि से देखने पर इसमें अनेक दृष्टियाँ भी दिखलाई पड़ती हैं। कथा सर्ववत्त नहीं है और आरम्भ में संघातपर्यन्त पूर्ण कविमों की प्रशंसा सम्पन्न प्रशंसा, दुर्धन निम्ना, राजा की प्रशंसा काव्यालोचना प्राकृत भाषा की प्रशंसा आदि बातें ऐसी हैं जो विशेष रूप से कथा आख्यायिका ने ही विस्तार के साथ पाई जाती हैं। कथा आख्यायिका की तरह ही इसमें कथान्वय के रूप में प्रथम वर्णन, आदि अप्रासंगिक बातें तथा यद्योवर्मा का वैधान्तर प्रसन्न और जीव-जीव में उनकी प्रशंसा भी गयी हुई है। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि वाक्यविधान ने इस काव्य में वाक्यमृद के हर्षपरिण और प्राकृत के सम्बोधन कथा काव्यों की दोसी का समन्वय किया है और साथ ही परम्परावत् घास्रीय महाकाव्य की कविमों का भी अप्रासंगिक वस्तु-व्यापार-वर्णनों के रूप में प्रवेश किया है। अतः इसे असंक्रत काव्य सीली में लिखा हुआ ऐतिहासिक चरित काव्य ही कहा जा सकता है। परम्परा से इसे महाकाव्य माना जाता है। किन्तु वस्तुतः वह महाकाव्य पद का अधिकारी नहीं है, बड़े भाग का हर्षपरिण यदि सम्बोधन रूप में होता तो भी महाकाव्य नहीं माना जाता।<sup>१</sup>

महुमह विजय—‘महुमह विजय’ नामक एक और काव्य भी वाक्यविधान के लिखा या ऐसा ‘वीरवचन’ में समूहों ने स्वर्ण सुचित किया है। परन्तु अब इसके दो तीन पद्य ही अक्षरार छन्दों में बच गये हैं, कति नष्ट हो गई है। कति का उत्प्रेषण बाद के अनेक वाचकों ने किया है इससे जान पड़ता है कि वह अवश्य महत्त्वपूर्ण और प्रसिद्ध रही होगी।

लीसावई—‘लीसावटी’ में प्रतिष्ठान के राजा घासबाहू तथा सिंहलद्वीप की राजकुमारी लीसावटी की प्रेम-कथा है। कुबलबावसी राजवि विपुलाश्व की अन्धरा रम्भा से उत्पन्न कन्या थी। उसने कुबलकुमार विनायक से कुबल विवाह कर लिया। उसके पिता ने कृपित होकर विनायक को घायल किया और वह भीषणतन रातस बन गया। कुबलबावधी आत्महत्या करने को उद्यत हुई पर रम्भा ने आकर उसकी बाइस बँवाई और उसे नव कुबल के संरक्षण में छोड़ दिया।

१. संभाषण सिंह हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकास—पृ० १७१

२. डा० आदिनाथ नेदिनाथ उपाध्ये द्वारा संपादित

महाराज मलकुमार का विवाह बसन्तधी नाम की विधायी से हुआ था। जिससे महानुमती का जन्म हुआ। महानुमती और कुबलपावली दोनों स्त्रियों का बड़ा स्नेह था। एक बार वे विमान पर बैठ कर समय पर्वत पर गई जहाँ सिद्ध कुमारियों के साथ झूठा झूठे हुए महानुमती और सिद्धकुमार माधवानिध की भाँखें बार हुई। घर छोड़कर महानुमती बड़ी व्याकुल रहने लगी। उसने कुबलपावली को पुनः समय देखा भेजा। परन्तु जहाँ जाकर पता चला कि माधवानिध को कोई चमत्कार कर पाताल लोक में ले गए हैं। बापिस जाकर उसने दुखी महानुमती को सम्बन्ध दी। दोनों बोधायी के तट पर मन्त्री की पूजा करने लगी।

मन्त्र कथा का प्रवेश यहाँ पर होता है। सिद्धराज की पुत्री सीतावती का जन्म बसन्तधी की बहुत विधायी धारवन्धी से हुआ था। एक दिन सीतावती प्रविष्टान के राजा सातवाहन (हाल) के विष को देख कर मोहित हो गई। बाह में उसने उसे स्वप्न में भी देखा। माता-पिता की आज्ञा लेकर वह अपने इष्ट की आज्ञा में निकल पड़ी। उसका मन मार्ग में बोधायी-तट पर जाकर ठहरा, जहाँ उसे अपनी मीठी की लड़की महानुमती मिल गई। तीनों बिरहनी एक साथ रहने लगी।

अपने राज का विस्तार करते हुए सातवाहन ने सिद्धराज पर आक्रमण करना चाहा। लेकिन उनके सेनापति विजयानन्द ने सलाह दी कि सिद्धराज से मैत्री रखना ही अच्छा होगा। राजा सातवाहन ने विजयानन्द को ही बूट बनाकर भेजा। विजयानन्द मीठा टूट जाने के कारण बोधायी के तट पर रुक गया। उसे पता चला कि सिद्धराज की पुत्री सीतावती यहाँ पर वास करती है। उसने सातवाहन को धारा वृत्तान्त या सुनाया। सातवाहन सेना लेकर उपस्थित हुआ और सीतावती से विवाह करने की इच्छा प्रकट की। परन्तु सीतावती ने यह कह कर इन्कार किया कि जब तक महानुमती का त्रिय न मिलेगा तब तक मैं विवाह नहीं करूँगी। राजा सातवाहन पाताल पहुँचा और माधवानिध को छुड़ा लाया। फिर भीषणालय राजसभ पर आक्रमण किया। चोट खाते ही भीषणालय पुनः राजकुमार बन गया। इस समय महाराज मलकुमार, विधायी और सिद्धराज-जैसे वहाँ एकत्र हुए। उन्होंने अपनी-अपनी पुत्री का विवाह त्रिय राजकुमार से कर दिया। यहाँ अन्यत्र सिद्धों विधायी राजाओं और मामलों ने वर-वधुओं को अनेक सिद्धियाँ उपहार में दीं।

विष्वक्को और मामलको दोनों के पाप इस कथा में होने के कारण कवि ने इसे 'विष्वक्-मामली' कथा कहा है। कवि में अगामी गौरी सिद्ध और प्रणय की पूजा का उत्सुक तथा वैषणवों के धार एवं वर का वृत्तान्त कई बार आया है। श्वेतिष्य प्रारम्भ संयोग बाबू-दोना भाषि में कवि का कुछ विवराट है। लेकिन इसका आधार नार्मिक नहीं है। इसे प्रेम-काव्य कहना ही समीचीन होगा। प्रेम का संयत और समुत्थित विषय करने में कवि ने पूर्ण सफलता प्राप्त की है। उसने प्रेमियों और प्रेमिकाओं की वृत्ता की दीर्घ परीक्षा करके ही उन्हें विवाह-वन्दन में

बोधा है। कृति में बगहू-बगहू प्राकृतिक वृष्यों के बहुत सुन्दर वर्णन हैं। राजाज के जीवन का चित्रण बड़ा विस्तृत और काव्यात्मक है। प्रधान कथा के साथ अनेक उपकथाएं गुम्फित हैं। इससे बोझी-बहुत उसक्षण की सम्भावना होती है, पर कवि का प्रबन्ध-कौशल सराहनीय है।

कृति सगो या उच्छ्वासों में विभाजित नहीं। एक निरन्तर कथा आघोषात् चलती है। सैमी असंज्ञत और साहित्यिक है। भाषा प्रवाह-पूर्ण और काव्योपयुक्त सरलरूप देसि भासा<sup>१</sup> है। कहीं-कहीं यद्य का समावेश भी हुआ है।

कवि ने 'सीसावटी' में अपने बंध का परिचय तो दिया है पर अपना नामोस्तेस नहीं किया। कृति के अज्ञातनामा टीकाकार ने लिखा है 'कुतूहलनाम्ना विप्रेय निरचितं सीसावटी नाम कथारत्न शृणुते'। 'कौटुहल' नाम कुछ पद्यों में भी आया है। विद्वानों का कहना है कि कुतूहल ही इस प्रबन्धकाव्य के रचयिता थे। इनका रचनाकाल १० वीं सदी के आसपास माना जाता है, क्योंकि भोज (१०६०-१०६५ ई०) ने 'सीसावटी' का नामोस्तेस किया है और यह भी ज्ञात है कि चम्पारण नामगट्ट हर्ष आदि की रचनाओं से परिचित थे। यह भी अनुमान किया गया है कि वे महाराष्ट्र के रहने वाले थे।<sup>२</sup>

सिरिचिध कव्यवर्णम् श्रीचिह्न काव्यम्' बारह सगो में नापाबद्ध महाराष्ट्री रचना है। पहले जाठ सगं कवि कृष्णसीताशुक द्वारा और अन्तिम बार उनके शिष्य पुर्णप्रसाद द्वारा लिखे गये हैं। इसमें कृष्णसीता वर्णन के साथ-साथ बरबधि और विचित्र के प्राकृत-व्याकरणों की व्याख्या उपस्थित की गई है। इस सैमी में यह कृति संस्कृत के 'मट्टीकाव्य' और 'लघुगार्ष्ण' एवं प्राकृत के 'कुमारवास चरित' से मिलती-जुलती है। इस तरह इसमें पाण्डित्य तो है पर रसपूर्णता नहीं है क्योंकि यह साधारण पाठक के लिए बुर्बोष और नीरस है।

सोरि-चरित—इसमें कृष्ण की कथा वर्णित है। भाषा कृत्रिम होते हुए भी सुदृढ़ और व्याकरण-सम्मत है। आघोषात् यमक का प्रयोग किया गया है। इससे कवि के पाण्डित्य का प्रभाव तो पड़ता है पर बुद्धता तथा कृत्रिमता और भी बढ़ जाती है। इसके रचयिता श्रीकण्ठ का समय १६वीं सताब्दी के लगभग अनुमान किया जाता है। वे माणाबार के रहने वाले थे।

उसाणिकर, 'कंसवहो'—'उपानिकर और 'कंसवह' मापवत पुराण के आधार पर लिखे गए अष्ट काव्य हैं। दोनों में बार-बार सगं हैं। प्रथम का अन्त नामक-मायिका के विवाह के साथ होता है और दूसरे का कंस के नाश के साथ। कंसवह में प्रसंगवश दुष्ण की बात-सीमाओं का भी निर्वेध किया है। इसमें २११ पद्य हैं। 'उपानिकर' में २५० पद्य हैं। दोनों काव्यों में अनेक संस्कृत शब्दों का प्रयोग हुआ है। भाषा सुदृढ़ महाराष्ट्री है। इनके रचयिता केरल-देशवासी राम

पाणिनादयः । 'पाणिनादयः' का अर्थ है डोस । पाणिनादय नाम की माताबार में नाटक खेलने वाली एक जाति थी । डोस और मुरख ब्रह्मा इत्यादि काय ना । रामपाणि-  
नाद का एक एककी नाटक भी प्राकृत में प्राप्त हुआ है । इनकी रचनाएं संस्कृत  
और मलयालम में भी हैं । इनका जीवनकाल समू १७०७ से १७७३ तक माना  
गया है ।<sup>१</sup>

### मुक्तक रचनायें

गाथासप्तसह—यह महाराष्ट्री की प्राचीनतम कविता मानी जाती है जिसकी  
गणना संसार के श्रेष्ठ काव्यों में की जाती है । इसमें सात ही से कुछ ऊपर अनेक  
प्राकृत-कवियों के मुक्तक वाचा-पद्य संग्रहीत हैं । मुक्तक पद्यों की रचना प्रबंध रचना की  
अपेक्षा अधिक बुद्धिमान और कठिन मानी गई है । यह साधारण कवि का कार्य नहीं है  
क्योंकि मुक्तक के प्रत्येक पद्य में रस अर्थ और प्रसंग की पूर्णता होनी चाहिए एवं  
कल्पना और अनुभूति का संयोजन और स्वतन्त्र भाव होना चाहिए । महाकाव्य,  
अष्टकाव्य, वाक्यायिका आदि में तो पाठक का मन कषा रस में लीन रहता है  
काव्य के गुण श्रेष्ठ का बहुत विचार वह नहीं करता । मुक्तक में कषा का अवलम्ब  
होता नहीं । पूर्वोपर-सम्बन्ध से निरपेक्ष होने के कारण मुक्तक पद्य रसनिर्मर रहता  
है । इसमें वाक्यार्थ की अपेक्षा व्यंग्यार्थ प्रधान होता है । कहते हैं कि 'वाचासप्तसती  
के संग्रहकर्ता ने एक करोड़ प्राकृत पद्यों में से सात ही उत्कृष्ट पद्य चुनकर यह  
ग्रंथ सम्पादित किया था ।' इसका महत्त्व इस बात से जांचा जा सकता है कि  
'ध्वन्यालोक' 'तत्त्वोक्तम्' 'सरस्वती-कण्ठाभरण', 'काव्यप्रकाश' आदि काव्यशास्त्रों  
में इसकी वाचार्थों को आदर्श के रूप में उद्धरित किया गया है । छंद, वाग्मदृष्ट  
विस्मयान, जोषधर्मावाप्य वाग्मदृष्ट, राजसेनार इत्यादि आलोचकों ने इसकी मुक्तक  
से प्रशंसा की है और कुछ-एक का तो कहना है कि ऐसी सरसता संस्कृत में कठिन  
है । इसके अनुकरण में कई सप्तसतियां लिखी गई—संस्कृत में 'आर्वासप्तसती  
आदि और हिन्दी में 'मतिराम सतसई' 'बिहारी-सतसई', 'बृन्द सतसई' आदि इसी  
की परम्परा में आती हैं ।<sup>२</sup>

हास के समय क विषय में विविधत रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता ।  
परम्परा के अनुसार ये नहीं सातवाहन हैं जो विक्रम की प्रथम शती में आंध्र के  
राजा थे । हास सातवाहन से ही महाराष्ट्री में प्रचलित मुक्तकों का संग्रह सतसई में  
किया जा । किन्तु उपलब्ध वाचासप्तसती की भाषा का काम विक्रम की दूसरी

१ हरदेव वाह्ये प्राकृत और उसका साहित्य पृ० ८७-८९

२ जोषधर्मावाप्य हास सातवाहनाधी वाचा सप्तसती—धूमिका—पृ० ४३

३ हरदेव वाह्ये प्राकृत और उसका साहित्य—पृ० ९३

४ मोमाधर्कर व्यास हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास—पृ० २९४

घटी से लेकर पाँचवीं घटी के बीच भाग पड़ता है।<sup>१</sup> साथ ही भाषा सप्तघटी के काव्य भाषा वाले संस्करण में छठी घटी तक के प्राकृत कवियों—उदाहरण के लिए भाषा कवि ईशान की भाषाएं पाई जाती हैं।<sup>२</sup> भाषा सप्तघटी के दो संस्करण हैं उनमें भी सभी भाषाएं समान नहीं हैं केवल ४३० भाषाएं समान हैं। कुछ विद्वानों का मत है कि सातवाहन ने भाषा कोष का संग्रह किया था जिसमें एक हजार के लगभग भाषाएं थीं। प्रस्तुत संस्करण उसी के आधार पर मेवाड़ के मुहिलोत्तमजी राजा मरवाहन के पुत्र सावित्राहन ने विक्रम की बचपीं घटी में किया है।<sup>३</sup> हाल की सतसई की भाषाओं को प्रारम्भिक प्राकृत लोक साहित्य माना जाता है। किन्तु डाक्टर कीच इसे नहीं मानते। वे बताते हैं कि इसकी भाषा कृषिमान है तथा जन भाषा का रूप इसमें नहीं मिलता।<sup>४</sup> इतना हाते हुए भी भाषा तथा कल्पना की दृष्टि से इसमें जन-जीवन का रंग दिखाई पड़ता है। भाषा सप्तघटी में ग्रामीण जीवन के सरस चित्र देखने को मिलते हैं। कृषक और कृषकनिता, गोप और गोपियों का जीवन, केतों की रखवासी करती ग्रामिणियों का कूटनी हुई ग्रामीण नारी के चित्र लोकजीवन का वातावरण निर्मित कर देते हैं। किन्तु इससे भी बढ़कर भाषा सप्तघटी की भाषाओं में प्रेम के विविध पक्षों के चित्र देखने को मिलते हैं। विवाहित दम्पती के संयोग तथा वियोग के रूपझाँसी चित्रों के जमावा यहाँ उन्मुक्त प्रेम के चित्र भी मिलते हैं, जिनमें से कुछ में कहीं-कहीं लज्जु बलदा भी दिखाई पड़ती है। प्रकृति वर्णन के परिवेष्ट को लेकर तत्तत् भाषाकार ने नामक या नामिका के मनोभावों की अपूर्व व्यंजना की है। निम्नलिखित भाषा में नदी में कमल पत्र पर आराम करते बटुने के प्रकृति सौन्दर्य के माध्यम में स्वयं बूती की मनोभावना तथा संकेत स्वयं की व्यंजना कराई गई है

उम लिप्पलमिप्यंवा मिसिपीपत्तम्मि रेह्म बसावा ।

निम्पलमरमज्जमागलपरिट्ठिजा संवसुति म्म ॥

अर्थात् देखो उस कमल पत्र पर घोंट भाव से झँटा बटुला कैसा सुन्दर लग रहा है जैसे मरकतमणि के पात्र पर संस की सुक्ति पड़ी हो।

वज्जालसग

यह भी प्राकृत की बहुत प्रसिद्ध सतसई है। इसमें निरिष्ट भाषाओं की संख्या ७६४ है। भाषाओं जसम-जसग विषयों के अन्तर्गत संगृहीत हैं। ऐसे विषयों को जग्या कहा गया है। इनकी संख्या ४५ है। कुछ जग्या-शीर्षक इस प्रकार हैं—सज्जन, दुर्जन मित्र नीति धैर्य साहस, ईश बाण्डव सैक स्वामी गज सिंह व्याप, हरिण

१ कीच हिस्ट्री ऑफ़ संस्कृत लिटरेचर—पृ० २२४

२ राहुल साह्रवायन हिन्दी काव्यभारा—भूमिका—पृ० ३

३ नागरी प्रचारिणी पत्रिका—२६ अंक १४, पृ० २२२ २२३

४ भद्रवत्तारज उपाध्याय विषय साहित्य की कररेना—पृ० १०२

५ कीच हिस्ट्री ऑफ़ संस्कृत लिटरेचर—पृ० २२४

हंस, चन्द्र, गयन, स्तन, सावय्य, प्रेम, मान, विरह, पुरुषोत्साह, शूरी, सुगृहिणी, शरी इत्यादि । इनके अन्तर्गत मानव प्रकृति और मानवोत्तर प्रकृति के अनेक पक्ष वर्णित हैं । श्रुति-पद्यों की संख्या १० प्रतिशत से कम है । इनमें मन्त्राधिक-वर्णन, नायक-नायिका-वर्णन, प्रेम के संचारी भावों, अनेक विभावों और अनुभावों का चित्रण, संयोग और विप्रलम्भ श्रुति-पद्य की अनेक अवस्थाओं की व्याख्या की गई है । यद्यपि इसके रचयिता अथवा सम्पादक श्वेताम्बर मुनि हैं तो भी इसमें जैन धर्म का कहीं निर्देश नहीं मिलता । पाद्याओं के कवियों के नामों का कोई संकेत नहीं किया गया । इसके अनेक सूत्र-सूत्रक अवतरण, सोमेश्वर विश्वनाथ हेमचन्द्र, आदि जसंकार साहित्यिकों की कृतियों में भी मिलते हैं । 'वज्रसामय' के एक पद्य में कहा गया है कि विविध कवियों के द्वारा विरचित कविताओं में से पाचार्य चुनकर 'वज्रसामय' तैयार किया गया । संस्कृतकवि का नाम जयवस्मस सूरि ज्ञात है, लेकिन इनके सम्बन्ध में कोई जानकारी प्राप्त नहीं है । इनका जीवन काल अनुमानतः ११वीं १४वीं शताब्दी ईसवी के बीच में माना गया है ।

प्रायः पाचार्यों का साहित्यिक स्तर काफी ऊँचा है । कल्पना और अनुभूति की छटा अनेक स्थलों पर मिलती है । भावनातुल्य गठन और प्रभाव की दृष्टि से कई पद्य प्रसंगमय हैं । कविताओं में अनेक अपनी रसगीयता में अद्वितीय हैं ।<sup>१</sup>

### विषम वागसीला

आनन्दवर्धन ने 'व्यग्रवर्णन' में स्वरचित इस प्राकृत कृति का उल्लेख किया है । इसके कुछ पद्य 'इतर-उत्तर' विकारे पदों और टीकाकारों द्वारा उद्धृत प्राप्त होते हैं । कृति अप्राप्य है । उपलब्ध पद्यों और 'विषमवागसीला' नाम से विदित होता है कि यह श्रुति-पद्य के मुख्य पद्यों का संग्रह रहा होगा । कस्सुह की राजतरंगिणी से ज्ञात होता है कि आनन्दवर्धनाचार्य कश्मीर-नरैस अवस्थि वर्मा के राज्यकाल (सन् ८५०-८८४ ई.) में विद्यमान थे । वे कश्मीर के यह उनकी राजानक उपाधि से भी स्पष्ट है ।

### मदन-मुकुट

नायक-नायिका-मेघ पर यह एकमात्र कृति ज्ञात है । ऐतिहासिक दृष्टि से इसका बड़ा महत्व है । इसकी ८१ पाचार्य प्रकाशित हुई हैं । प्रायः परिच्छेदों में विभक्त है और ऐसा लगता है कि मन्त्राधिक-वर्णन में मुख्य पद्य उद्धृत किए गए हैं । पर जब तक सारी कृति प्रकाश में नहीं आ जाती इसकी सीसी पर कुछ कहा नहीं जा सकता । प्राप्त पद्यों की भाषा महाराष्ट्री प्राकृत है और काव्यात्मकता सर्वविध है । रचयिता का नाम गोसल मिश्र विदित है, पर इनके वैयक्तिक नाम आदि के सम्बन्ध में कुछ भी ज्ञात नहीं है ।

१ हरदेव वाहरी प्राकृत और उसका साहित्य-पृ० १४ १४

२ काव्यमासा संस्करण पृ० ७९, १३९

३ 'मोक्षण' व्याख्या तथा कैवली की कृति



## फुटकर पद्य

इसमें कोई शंका नहीं कि किसी समय में प्राकृत काव्य अति उन्नत और समृद्ध रहा होगा। भाषा सप्तशती के टीकाकार ने ११२ कवियों का नामोस्तेन किया है, जिनकी कृतियों में से हास में चुनाव करके इस अमर कृति का सम्पादन किया था। राजसेन की 'कर्पूरमञ्जरी' हरिश्चन्द्र जम्बवत, पोट्टिस, पाशितन चम्पन राज, मल्लसेहर आदि अनेक कवियों के नाम मिलते हैं। अनेक ऐसे भी रहे होंगे जिनका नाम तक पिट गया है। इन सबके काव्य क्या हुए, कहाँ गए, यह तो काल ही बता सझा है। काव्य शास्त्रों में कुछ प्राकृत पद्य आदर्श उदाहरण के रूप में उद्धृत हैं। इससे साग वा सफ़ा है कि संस्कृत के पण्डितों तक में प्राकृत का महत्त्व स्वीकार किया गया था। 'नाट्य-शास्त्र', 'ध्वन्यालोक' मोहन सरस्वती कृष्णामरण काव्यानुशासन 'दशकम्पक' आदि ग्रन्थों में भीतियों पद्य बच गए हैं।

भरत के 'नाट्य-शास्त्र' में दो प्रकार के प्राकृत-पद्य हैं। रूपकादि के उदाहरण में महाराष्ट्री के कुछ पद्य आये हैं। परन्तु भरत ने स्वयं महाराष्ट्री नाम की किसी प्राकृत का उल्लेख नहीं किया। भुवागीत खोलेनी प्राकृत में हैं। इनकी संख्या १०० से कुछ ऊपर है। इनमें सूर्य चन्द्र मेष बिजली और शरव आदि ऋतुओं का वर्णन है। प्राकृत भाषा और साहित्य के लिए इनका ऐतिहासिक महत्त्व है। भरत साहित्य शास्त्र के प्रथमाचार्य माने जाते हैं। उन्होंने प्राकृत के जिन पद्यों को अपनी कृति में स्थान देकर गौरवामित किया है उनकी काव्य-गुण-सम्पन्नता निर्विवाद है। उनका समय ईसवी सन की पहली शती निर्धारित किया गया है। इससे यह भी अवगत होता है कि उस काल में भी प्राकृत-काव्य पण्डितजन-मान्य हो गया था।

आनन्दवर्धनकृत 'ध्वन्यालोक' में ४५ पद्य प्राकृत के हैं। कुछ के आचार-शब्दों के नाम भी दिये गये हैं पर वे अल्प मात्र उपलब्ध नहीं हैं। वे पद्य शृंगाररसक हैं। इनकी कल्पना मधुर और सरस है। 'ध्वन्यालोक' में पृष्ठ ७९, १३६, १८८, २७९, ३०६, ४७० आदि पर ये पद्य उद्धृत हैं।

'ध्वन्यालोक' के 'मोहन टीकाकार अभिनव गुप्त ने दो पद्य उद्धृत किये हैं जो अल्प ही मिलते।

सबसे अधिक पद्य मोहन-कृत 'सरस्वती-कृष्णामरण' में उद्धृत हुए हैं। इनकी संख्या ३५ के समान है। कुछ पद्य 'भाषा सप्तशती' 'रातुबन्ध' 'कर्पूरमञ्जरी' आदि कृतियों से लिये गए पर ५० के आचार शब्दों का कुछ पता नहीं है। अधिकांश का विषय शृंगार है। इनके अतिरिक्त नीति प्रकृति आदि विषयों पर पद्य हैं। मोहराज बाराणसी के सुप्रसिद्ध परमारवंशीय राजा थे। वे कवि साहित्यरसिक और अनेक भाषाविद विद्वान् थे। इनका समय सन् १०५ ई० से पूर्व समाप्त होता है।

वर्णजयकृते 'वचरूपकम्' में २५ पद्य मिलते हैं जिनमें १० अज्ञात कवियों के हैं । ये १० पद्य और कहीं उपलब्ध नहीं होते । वर्णजय का समय समू १००० ई० के आस-पास अनुमानित किया जाता है ।

भाषार्य हेमचन्द्र के 'काव्यानुशासन' और उसकी वृत्तियों में ८० प्राकृतपद्य संगृहीत हैं । शृंगार सम्बन्धी पद्यों के अतिरिक्त इनमें अनेक विषयों पर सूक्तियाँ हैं ।

इनके अतिरिक्त खट के 'काव्यासंस्कार' कव्यक के 'असंस्कार-सर्वस्व' अथवा 'असंस्कार-विमर्शिणी' सोमेश्वर के 'काव्यादर्श' अथवा की 'काव्यप्रकाश-मीपिका' की स्वयम्भू के 'स्वयम्भू अथ विरचनाय के 'साहित्यदर्पण' पण्डितराज जननाथ के 'रसगवाह' आदि ग्रंथों में अनेक प्राकृत पद्य पड़े हैं जिनके रचयिताओं का कुछ भी पता नहीं है ।<sup>१</sup>

### प्राकृत नाटक

प्राकृत में अपना असग से नाटक साहित्य नहीं मिलता । जैसे कर्पूरमंजरी सट्टक जैसी दो एक नाटकीय कृतियाँ कुछ प्राकृत में मिलती हैं ।<sup>२</sup> सट्टक सन्नक रचनाओं उपरूपकों में वृद्धि की जाती है ।<sup>३</sup> जिनकी भाषा बहुधा आधुनिक प्राकृत होती है । प्राचीनतम प्राप्त सट्टक राजशेखर की 'कर्पूरमंजरी' है । इसका कर्वाणक प्रणय-कृत है जिसके अन्त में चण्डपाल और कर्पूरमंजरी का विवाह सम्पन्न होता है । राजशेखर साहित्यिक व्यंग्य और छन्द-शैली का अनुपम पंडित है और उसके छन्दों में असाधारण सांकीतिक संकृति है । प्रवाह भी उसका तरल और अविरल है । प्राय इसके ६०० वर्ष बाद कालीकट के जमूरिन की समा के खण्डस से चंद्रसेखा नामक सट्टक लिखा जिसमें मानवेद और चंद्रसेखा के विवाह की कथा है । तंजौर के मध्य-अठारहवीं सदी के राजा तुलजाजी के राजकवि जनस्याम ने मानन्द-मुन्दरी नामक सट्टक लिखा ।<sup>४</sup> इसी समय के कवि विश्वेश्वर द्वारा लिखी शृंगार-मंजरी सट्टक की भी जानकारी मिली है । नवचन्द्र पन्नाहरी सदी के सवमय हुआ और उसने अपने सट्टक 'रमा-मंजरी' में काशी के राजा जैनासिंह और गुजरात के राजा मदनमन की कन्या रंसा की प्रणयकथा प्राकृत और संस्कृत की परस्पर गुंथित शैली में लिखी ।

इसके अतिरिक्त नाटकों में प्राकृत के आंशिक प्रयोग मिलते हैं जिस पर हम इसी अध्याय में अल्प विस्तृत प्रकाश डाल चुके हैं । नाट्य साहित्यों ने कव्य-

१ हरदेव वाहरी प्राकृत और उसका साहित्य पृष्ठ ९५ ९७

२ डा० श्रीकासंकर व्यास हिन्दी साहित्य का नृत्त इतिहास, खंड ५० ३०६

३ तुलावरदाय काव्य के रूप ५० ९१

४ डा० रामसिंह तोयल, आलोचना-अंक ८ ५० ३९

५ मदनमदन उपपाध्याय, विश्वसाहित्य की रूप रेखा ५० ५

## फुटकर पद्य

इसमें कोई संशेह नहीं कि किसी समय में प्राकृत काव्य अति उन्नत और समृद्ध रहा होगा। नागार्जुन के टीकाकार ने ११२ कवियों का नामोस्तेब किया है, जिनकी कृतियों में से हास ने चुनाव करके इस अमर कृति का सम्पादन किया था। राजसेनर की 'कपूरमंजरी' हरितकड, नम्रितकड, पोटिस, पामितअ, चम्पम राज, मल्लसेहर आदि अनेक कवियों के नाम मिलते हैं। अनेक ऐसे भी रहे होंगे जिनका नाम तक मिट गया है। इन सबके काव्य क्या हुए, कहाँ गए, यह तो काल ही बता सकता है। काव्य शास्त्रों में कुछ प्राकृत पद्य आदर्श उदाहरण के रूप में उद्धृत हैं। इससे जाना जा सकता है कि संस्कृत के पण्डितों तक में प्राकृत का महत्त्व स्वीकार किया गया था। 'नाट्य-शास्त्र' ध्वन्यालोक 'लोचन' सरस्वती कण्ठभरण काव्यानुशासन, 'वचस्पक' आदि ग्रन्थों में बीडियों पद्य बच गए हैं।

भरत के नाट्य-शास्त्र में दो प्रकार के प्राकृत-पद्य हैं। रूपकादि के उदाहरण में महाकाव्यी के कुछ पद्य आये हैं। परन्तु भरत ने स्वयं 'महाकाव्यी' नाम की किसी प्राकृत का उल्लेख नहीं किया। धुवाभीत गौरसेनी प्राकृत में है। इनकी संख्या १०० से कुछ ऊपर है। इनमें सूर्य चन्द्र मेघ बिजली और धरत आदि ऋतुओं का वर्णन है। प्राकृत भाषा और साहित्य के लिए इनका ऐतिहासिक महत्त्व है। भरत साहित्य शास्त्र के प्रथमाचार्य माने जाते हैं। उन्होंने प्राकृत के जिन पद्यों को अपनी कृति में स्थापन देकर गौरवान्वित किया है उनकी काव्य-शुचि-सम्पन्नता निर्विवाद है। उनका समय इसी सन की पहली शती निर्धारित किया गया है। इससे यह भी अवगत होता है कि उस काल में भी प्राकृत-काव्य पण्डितजन-भार्य हो गया था।

आनन्दवर्मनकृत 'ध्वन्यालोक' में ४१ पद्य प्राकृत के हैं। कुछ के आचार-ग्रन्थों के नाम भी दिये गये हैं पर वे ग्रन्थ आज उपलब्ध नहीं हैं। ये पद्य गृन्धारमक हैं। इनकी कल्पना मधुर और सरस है। 'ध्वन्यालोक' में पृष्ठ ७९ १३९ १५५ २७९ ३०३ ४७० आदि पर ये पद्य उद्धृत हैं।

'ध्वन्यालोक' के 'लोचन' टीकाकार जमिनीय मुप्त ने दो पद्य उद्धृत किये हैं जो अत्यन्त नहीं मिलते।

सबसे अधिक पद्य 'लोचन-कृत' 'सरस्वती-कण्ठभरण' में उद्धृत हुए हैं। इनकी संख्या ३३० के लगभग है। कुछ पद्य 'गाथा सप्तशती' 'शुभश्रवण' 'लोचन' 'कपूरमंजरी' आदि कृतियों से लिये गए, पर ५० के आचार ग्रन्थों का कुछ पद्य नहीं है। अधिकांश का विषय गृन्धार है। इनके अतिरिक्त नीति प्रकृति आदि विषयों पर पद्य हैं। भोजराज भारद्वाज के सुप्रसिद्ध परमारवंशीय राजा थे। वे कवि साहित्यरसिक और अनेक भाषाविद विद्वान् थे। इनका समय सन् १०५० ई० से पूर्व समाप्त होता है।

वनजयकृत 'वसुधैक्यम्' में २५ पद्य मिलते हैं जिनमें १० अज्ञात कवियों के हैं। वे १० पद्य और कहीं उपलब्ध नहीं होते। वनजय का समय सन् १००० ई० के आस-पास अनुमानित किया जाता है।

आचार्य हेमचन्द्र के 'काम्यानुशासन' और उसकी वृत्तियों में ८० प्राकृतपद्य संगृहीत हैं। शृंगार सम्बन्धी पद्यों के अतिरिक्त इनमें अनेक विषयों पर सूक्तियाँ हैं।

इनके अतिरिक्त छठ के 'काम्यार्णकार' सय्यक के 'अर्णकार-सर्वस्व' अथवा 'अर्णकार-विमर्शिनी' सोमेश्वर के 'काम्यार्णव' जयन्त की 'काम्यप्रकाश-वीमिका' की स्वयंभू के 'स्वयंभू' छन्द विरचनाब के 'साहित्यवर्णन' पण्डितराज जनप्राय के 'रसविवरण' आदि ग्रंथों में अनेक प्राकृत पद्य पड़े हैं जिनके रचयिताओं का कुछ भी पता नहीं है।<sup>१</sup>

### प्राकृत नाटक

प्राकृत में अपना जन्म से नाटक साहित्य नहीं मिलता। वैसे कर्पूरमंजरी सट्टक जैसी दो एक नाटकीय कृतियाँ कुछ प्राकृत में मिलती हैं।<sup>२</sup> सट्टक संनकर रचनाओं उपर्युक्तों में गृहीत की जाती है।<sup>३</sup> जिनकी भाषा बहुधा आसन्न प्राकृत होती है। प्राचीनतम प्राप्त सट्टक राजसेखर की 'कर्पूरमंजरी' है।<sup>४</sup> इसका कथानक प्रलय-कथा है, जिसके अन्त में अश्वपाम और कर्पूरमंजरी का विवाह सम्पन्न होता है। राजसेखर साहित्यिक व्यंग्य और छन्द-शैली का अनुपम पंडित है और उसके छन्दों में असाधारण छांदीक संकृति है। प्रगाढ़ भी उसका धरम और अविरोध है। प्रायः इसके १०० वर्ष बाद कालीकट के जमूरिन की समा के राजास ने चंद्रदेवा नामक सट्टक लिखा जिसमें गानवेश और चंद्रदेवा के विवाह की कथा है। तंबीर के मध्य-अठारहवीं सदी के राजा मुसबाबी के राजकवि जनश्याम ने 'मानन्द-सुन्दरी' नामक सट्टक लिखा।<sup>५</sup> इसी समय के कवि विश्वेश्वर द्वारा लिखी शृंगार-मंजरी सट्टक की भी जानकारी मिली है। नयचन्द्र पद्महर्षी सदी के सत्रहम हुआ और उसने अपने सट्टक 'रंदा-मंजरी' में काशी के राजा जैमिनि और मुबारक के राजा मरहमन की कथा रंदा की प्रथमकथा प्राकृत और संस्कृत की परस्पर युक्ति शैली में लिखी।

इसके अतिरिक्त नाटकों में प्राकृत के आंशिक प्रयोग मिलते हैं जिस पर हम इसी अध्याय में अन्यत्र विस्तृत प्रकाश डाल चुके हैं। नाट्य साहित्यों ने रूपक-

१ हरदेव वाहरी प्राकृत और उसका साहित्य पृष्ठ ९५ ९७

२ डा० मोहार्णकर व्यास द्वितीय साहित्य का बृहत् इतिहास खंड पृ० १०१

३ मुनाबराय, काम्य के रूप पृ० ५१

४ डा० रामसिंह सोमर, आलोचना-अंक ८ पृ० १६

५ नयचन्द्रसरण सपाध्याय, विश्वसाहित्य की रूप रेखा पृ० १०

रचना में स्वाभाविकता वाले के उद्देश्य से अनेक पात्रों के मुँह से प्राकृत जुलवाने का विधान किया है, इसे हम पहले ही देख चुके हैं। यद्यपि उल्लेख्य प्राकृत साहित्य में नाटक साहित्य का अभाव सा है तथापि अनुमान होता है कि प्राकृतकाल में बनता का अपना लोकप्रिय रहा होगा और उसीसे अष्टादशशताब्दी 'रामक' परम्परा को जन्म दिया होगा।<sup>१</sup> परवर्ती रामस्वामी में उपलब्ध व्यास-परम्परा भी संभवतः इसी की अन्तिम सदी है।

### अन्य साहित्य—

महावीर और प्राचीन जैन गुरुओं की स्तुति में बीसियों छोटे-छोटे ग्रंथ प्राकृत में लिखे गये हैं। इसमें 'अपमर्षाशिका' 'अत्रिपञ्चमिचय' 'महावीरस्तव' 'पास्व-विनस्तव' 'साम्प्रिताव स्तवन' आदि प्रसिद्ध हैं।<sup>२</sup>

अनवास द्वारा रचित अपमर्षाशिका में पचास पद्य हैं जिनकी बीस बीसकृत और साहित्यिक है। दुम्बर कम्पना और बहा तहाँ कपलों का प्रयोग इसकी विशेषता है। इसमें जैनो के प्रधान तीर्थंकर अपमर्ष की स्तुति है। इसी प्रकार दूसरे तीर्थंकर अत्रि और सोमहर्ष तीर्थंकर साम्प्रिताव के गुणमान के उद्देश्य से अनेक स्तवन लिखे गये जिनमें अत्रिचोप कृत अत्रिपञ्चमिचय (११वीं शती) और बीरबलि रचित 'अत्रिपञ्चमिचय' (बारहवीं शती) साहित्यिक सौन्दर्य की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। बीबीसवें तीर्थंकर महावीर की शैक्षणिकी अष्टाव कवि का लिखा महावीर स्तवन अत्यन्तनीय रचना है। इसकी रचना अलंकृत प्राकृत में हुई है। इसमें एक-एक सम्म तीन-तीन बार प्रयुक्त हुआ है और तीन असम असम अर्थ देता है।<sup>३</sup> पूर्ववर्धन कृत 'पास्वविन-स्तवन' सन् १२०० ई० और जिन पद्य रचित 'साम्प्रिताव स्तवन' लगभग १३२१ ई० में छ सः भाषाओं का प्रयोग हुआ है। परवर्ती राम-स्वामी कवियों ने प्रकारान्तरसे अपने काव्यों में छः भाषाओं का प्रयोग बहुधा किया है। पुष्पीराजराजों ने अन्धबरावाही पद भाषा प्रयोग की शोचना करता है।<sup>४</sup> यही परम्परा महाकवि मूर्धमस्त-हिमाल के अग्रिम महाकवि के संसमास्कर में भी है।<sup>५</sup> वह भी एक अद्भुत साम्य है जिस पर आने जनकर अन्धव निवार किया जावेना।

इसमें सन्देह नहीं कि प्राकृत का कथा और चरित-साहित्य संसार भर की भाषाओं के साहित्यों में अपना विशिष्ट स्थान रखता है। उसका गीत-काव्य भी किसी

१ बीसाधंकर व्यास हिमाल साहित्य का बृहत् इतिहास १ पृ० २१०

२ हरदेव बाहरी प्राकृत और उसका साहित्य पृ० ४९

३ वही, पृ० २०

४ कविराज मोहन सिंह पुष्पीराजराजों-महमा भाग पृ० १२

पद भाषा पुराणं नृराजं कवितं मया।

५ (अ) मूर्धमस्त मिथल बीर सतसई-भूमिका पृ० ६९

(ब) मोति सास मनारिया हिमाल में बीररत-पृ० ८९

वृष्टि में बीरों से कम नहीं है। भारतीय भाषाओं में सत्तसई साहित्य का प्रारम्भ प्राकृत से ही होता है। संस्कृत के बलकार-ग्रंथों में भी प्राकृत-सत्तसईयों और मुक्तकों से अनेक उदाहरण उद्धृत किए गए हैं। इससे जाना जा सकता है कि प्राकृत में कई ऐसे बलकारों की उद्भावना हुई है जिनके उदाहरण संस्कृत साहित्य में नहीं मिलते। प्राकृत-साहित्य की सबसे बड़ी मौलिकता उपमाओं और रूपकों की नवीनता में है। इनके उदाहरण प्रायः शोक से लिये गए हैं इसलिये कमल भीमोत्पल और पिटे पिटाये अम्ब उपमाओं का प्रयोग नहीं के बराबर हुआ है। प्राकृत के उपमाओं में तावनी है।

प्राकृत में अनेक नये छन्दों का विकास भी किया और भाषिक अथवा ठास-वृत्तों को शोक काव्य से उठाकर अपने-अपने काव्यों में समाविष्ट किया है। प्राकृत का प्रिय छन्द माया है। अपभ्रंश बत्ता और हिन्दी में दोहा इसी के भेद के रूप में विकसित हुए हैं। चौपाई का प्रारम्भ यहीं से हो जाता है।

साहित्य में प्राकृत का प्रयोग ब्राह्मणधर्म से बिब्रोह के रूप में हुआ। यही बात भारम्भ में बंगला मराठी, गुजराती हिन्दी आदि आधुनिक भाषाओं के प्रयोग के सम्बन्ध में सही है। जैनों ने प्राकृत और बौद्धों ने अपभ्रंश का व्यवहार किया तो नाचों सेबों सन्तों वैष्णवों और भक्तों ने हिन्दी गुजराती बंगाली, मराठी और पंजाबी का। बिब्रोह का जो स्वर एवं अन्तः के भावों का जो व्यापक प्रतिनिधित्व प्राकृत और अपभ्रंश में मिलता है वही अधिक विस्तार से भाषनिक भाषाओं पाया जाता है।<sup>१</sup>

## अपभ्रंश : भाषा और साहित्य

### १ अपभ्रंश शब्द का प्रयोग

मध्यभारतीय-आर्यभाषा के विकास के अन्तिम सोपान को अपभ्रंश के नाम से जानिहीत किया जाता है। अपभ्रंश मध्यभारतीय आर्यभाषाओं और आधुनिक आर्यभाषाओं तथा हिन्दी बंगला मराठी गुजराती आदि के बीच कड़ी है। प्रत्येक आधुनिक-आर्यभाषा को अपभ्रंश की स्थिति पार करनी पड़ी है। 'दूसरे स्थानों में इसे यों कहा जा सकता है कि आधुनिक-भारतीय आर्यभाषाओं तथा गुजराती मराठी हिन्दी, पंजाबी, बंगाली सिन्धी अछामी उड़िया आदि की जननी अपभ्रंश ही है।' किन्तु अपभ्रंश शब्द का किसी भाषा विशेष के अर्थ में सदा प्रयोग नहीं होता रहा। हमें ईसा की दूसरी सती पूर्ण इस शब्द का प्रयोग विभिन्न अर्थों में किया हुआ मिलता है। हम आये चलकर इस शब्द के इतिहास पर संक्षेप में विचार करेंगे क्योंकि इससे हमको अपभ्रंश भाषा के उद्भव और विकास का सम्यक वैज्ञानिक अध्ययन करने में पर्याप्त सहायता मिलेगी।

अपभ्रंश शब्द का साधारण अर्थ होता है—भ्रष्ट, व्युत्त, स्तम्भित, विकृत अथवा असुद्ध। भाषा के सामान्य मानक से जो शब्दकर्म व्युत्त हों, वे अपभ्रंश हैं। ऐसी चारणा से विकसित एक विशेष भाषा की संज्ञा के रूप में शब्द का व्यवहार अपने में बहुत सी संभावनाएँ छिपाए हैं अतः इसी दृष्टिकोण से हम अपभ्रंश शब्द के प्रयोग की विगत गृहस्थानों को टहोलने की कोशिश कर रहे हैं।

अपभ्रंश शब्द का सर्वप्रथम उल्लेख हमें पतंजलि (ईस्वी पूर्ण दूसरी सती) से कुछ घटावनी पूर्ण मिलता है। 'वाक्य-परीक्षम्' के रचयिता भर्तृहरि ने महामाध्य

१ डा० उदयनारायण तिवारी हिन्दी भाषा का उद्भव और विकास पृ० १२०

२ मुद्रि जिनविजय पठमसिद्धिरित-कथित प्रस्ताविक, पृ० १

भारतवर्षनी आर्यवर्षनी वैश्यभाषाओंका विकासक्रमनी विमने बोडो पन परि चय अ तैसे जाने छे के अपभ्रंश नामे बोलावती जूनी भाषा आपणा महान् राष्ट्र मानी वर्तमान गुजराती मराठी, हिन्दी पंजाबी सिन्धी बंगाली अछामी उड़िया बिनेटे, भारतनी पश्चिम उत्तर अने पूर्ण भाषाओं बोलावती प्रसिद्ध देष भाषाओंनी तनी जननी छे।

३ नामचर सिंह हिन्दी के विकास में अपभ्रंश का योग, पृ० २

४ डा० हरिचंद्र कोछा अपभ्रंश साहित्य पृ० १

कार के पूर्ववर्ती संग्रहकार व्याधि नामक भाषार्य के मत का उल्लेख करते हुए अपभ्रंश शब्द का निर्देश किया है । यथा—

शब्द संस्कारहीना नो गौरिति प्रयुयुक्षिते ।

तमपभ्रंशमिच्छन्ति विशिष्टार्थं निवेदिनम् ॥

वार्तिक—शब्दप्रकृतिरपभ्रंश इति संग्रहकारो माप्रकृतिरपभ्रंश स्वतंत्र कश्चिद्विद्यते । सर्वस्यैव हि साधुरेवापभ्रंशस्य प्रकृतिः प्रसिद्धेस्तु रुक्मितामापाद्यमाना स्वात्म्यमेव कैचिरपभ्रंशा समन्ते । तत्र गौरिति प्रबोक्तव्ये जडत्वात् प्रमादभिर्भाषा-व्यादयस्तत्प्रकृतयोपभ्रंशाः प्रयुज्यन्ते ।<sup>१</sup>

महाभाष्यकार पतंजलिद्वारा भी 'अपभ्रंश' शब्द का प्रयोग किया गया है । उनके अनुसार अपभ्रंश केवल संस्कृत के विकृत शब्द हैं । किसी एक शब्द के अनेक भ्रष्ट रूप हो सकते हैं यथा संस्कृत शब्द 'यौ' के माबी योगी पोता गोपोतनिका आदि विविध रूपान्तर ।<sup>२</sup> ये सभी रूपान्तर सिष्टसम्मत संस्कृत भाषा से विकृत या भ्रष्ट हैं । तब ऐसे अपाजिनीय असाधु शब्दों के लिए अपभ्रंश संज्ञा का उपयोग किया गया ।

यह विचारणीय है कि महाभाष्यकार की दृष्टि में अपभ्रंश केवल उन शब्दों को ही माने वाली संज्ञा है जो संस्कृत शब्दों के साधु-रूपों के विकृत या भ्रष्ट स्वरूप हैं और जिन शब्दों का उन्होंने अपभ्रंश के उदाहरण में उपयोग किया है बाब के प्राकृत-वैयाकरणों ने उन्हीं को प्राकृत के अन्तर्गत मिला है,<sup>३</sup> यह चिन्त्य है ।

ईसा की दसवीं शताब्दी की शुरुआत के लगभग मध्य में अपने नाट्यशास्त्र में संस्कृत प्राकृत और वैद्यभाषा के भेद को स्पष्ट किया है । साथ ही उन्होंने प्राकृत के स्वरूप पर भी पर्याप्त प्रकाश डाला है ।

एतदेव विपर्यस्तं संस्कारयुगावधितम् ।

विज्ञेयं प्राकृतं पाठ्यं नामावस्वाग्रपारमम् ॥

विविधं तन्म विज्ञेयं नाट्ययोगे समासतः ।

समानं सर्वं विभ्रष्टं वैसीयतमवापि च ॥

—नाट्यशास्त्र १७-२३

१ भूतहरि भाष्यपरीक्षामु—प्रथम कांड, कारिका १४८

२ Ed. kielhorn vol. 1, Page 2

एकैकस्य हि सन्तस्य बहुवोदाभ्रंशाः । तद्यथा । गौरित्यस्य शब्दस्य माबी योगी पोता गोपोतनिकेत्येवमाद्यवोदाभ्रंशाः ।

३ (अ) पंड प्राकृतलक्षणम्—२-१६

'गोपाणि-

(ब) हेमचन्द्राचार्य प्राकृत व्याकरण—८-२-१७४

'गोपाक्य' भी 'गोपी पापी पाव पापीनो'



अर्थात् प्राकृत तीन प्रकार की होती है—१ जिसमें संस्कृत के समान शब्दों का ही प्रयोग हो। २ संस्कृत के विभ्रष्ट शब्दों का प्रयोग हो और ३ जिसमें वैष्णवाचार्य के शब्दों का प्रयोग हो। दूसरे शब्दों में इसी बात को इस प्रकार कहा जा सकता है कि नाट्य-रचना में तीन प्रकार के शब्दों का प्रयोग होता है—तत्त्वम तद्गुणम अपवा विभ्रष्ट, और वैष्णव। यहाँ ऐसा लगता है कि पर्यायशब्दों की अपभ्रंस और मरुत की विभ्रष्ट शायद एक ही हो।

आगे चलकर भरत ने उत्क्रांतीय सात भाषाओं का निर्देश किया है—

मागधमन्दिना प्राच्या क्षीरसेम्यर्धमावली ।

बाह्लीका दाक्षिणात्या च सप्तभाषा प्रकीर्तिता ॥

—नाट्यशास्त्र १७-४६

मागधी अवन्ति प्रध्य क्षीरसेनी अर्धमावली बाह्लीका और दक्षिणी ये सात भाषाएँ हैं और अनेक विभाषाएँ हैं—यथा

छत्रपथीर चांडाल क्षवर इमितागमना ।

( छत्रपथीर चांडाल छवर इमिडोइवा )

हीना वनेचरणा च विभाषा माटके स्मृत ॥

—नाट्यशास्त्र १७-२०

शब्दों आभीरों चांडालों चर्चों इमिडों ओडों और हीन जाति के वनचरों की ओलिया। भरत के इस उल्लेख में अपभ्रंस का स्पष्ट नाम कहीं नहीं आया है क्योंकि उसने केवल भाषाओं का उल्लेख किया है। इससे यह जान पड़ता है कि भरत के समय तक किसी भी भाषा को अपभ्रंस की संज्ञा नहीं दी गई थी अर्थात् अभी तक अपभ्रंस का विकास उस कोटि तक नहीं हो पाया था जिससे कि उसे भाषा कह कर पुकारा जा सके। विभाषाओं के उस समय कोई अल्प नाम नहीं थे वे बोलने वाली जातियों अथवा समुदाय के नाम से ही पुकारी जाती थीं। जैसे—

अंगारकारण्यानां काष्ठमन्तोपवीचिनाम् ।

मोण्या क्षवरभाषा तु किचिदानीकसी तथा ॥

महास्वावाकिकीष्ट्राविपीयस्थान निवासिनाम् ।

आभीरोक्तिः छावरी वा द्राविडी इतिवादिम् ॥

—नाट्यशास्त्र-१७-२४-२५

अर्थात् क्षवर और वनीकसी अथवा भाषा का प्रयोग अंगारकारों कोयला बनाने वाले सिंकारियों और काष्ठ यन्त्रों द्वारा जीविका निर्वाह करने वाले प्यथियों द्वारा तथा आभीरोक्ति और छावरी का उपयोग वे अल्प ऊँट जाति पशुपालक और घोष निवासी जातियों के गाँव में रहने वाले लोगों द्वारा किया जाता है।

इससे यह ज्ञात होता है कि आभीरोक्ति पशुपालक जातियों की भाषा आभीरोक्ति के नाम से जानी जाती रही है। जैसा कि हम अग्न्यन देखेंगे यही आभीरोक्ति

इतनी विकसित हो गई कि इसने अपना स्थान प्राकृत्यादि अन्य साहित्यिक भाषाओं के समकक्ष जमा लिया ।

सम्भवतः भरत के समय भाषा के रूप में अपभ्रंश को कोई महत्त्व प्राप्त नहीं था किन्तु जान पड़ता है कि जागे चलकर इसी आभीरोक्षित को ही अपभ्रंश की संज्ञा प्राप्त हो गई । भरत ने नाटककार के लिए विभिन्न प्रदेश के निवासी पात्रों द्वारा किस प्रकार की बोली प्रयुक्त की जाए इस विषय में सुझाव दिया है । उन्होंने लिखा है कि गंगा और सागर के मध्य की भाषा एकार बहुला है । हिमालय सिन्धु और सीन्धु के तटीय प्रदेश की भाषा उकार बहुला है । विन्ध्याचल और सागर के मध्य की भाषा नकार बहुला है । सीराष्ट्र अवन्ति और वेम्बती के उत्तरीय प्रदेश की भाषा ञकार बहुला है और बर्मबती के उस पार तथा बर्बुद तटीय प्रदेश की भाषा टकार बहुला है ।<sup>१</sup> भरत ने इसप्रकार की उकार बहुला भाषा के उदाहरण भी दिए हैं यथा 'मोरस्तत्र नञ्चत्तत्र इत्यादि । इसी के इस कथन से कि काम्य में आभीरादि की भाषा अपभ्रंश कही जाती है यह अनुमान लग जाता है कि भरत की उकार बहुला आभीरोक्षित अपभ्रंश रही होगी । भरत ने जो उदाहरण इस उकार बहुला आभीरोक्षित के दिये हैं उनमें 'वेइ निञ्च 'बोम्हत् आदिषब्द हैं भी ठेठ अपभ्रंश के । परन्तु भरत के इन उदाहरणों में प्राकृत प्रभाव इतना अधिक है कि इनको निम्न अपभ्रंश का उदाहरण नहीं माना जा सकता ।<sup>२</sup> हाँ अपभ्रंश को जग देने वाली प्रवृत्तियों के बीच यही अवश्य है कि जा सकते हैं ।<sup>३</sup>

सगमय छठी सताब्दी में पहले पहल हमें अपभ्रंश का एक भाषा विषय के रूप में उल्लेख मिलता है । नल्लमी सीराष्ट्र के राजा बरसेन द्वितीय के एक विज्ञापन से ज्ञात होता है कि उसका पिता गुहसेन 'सम्स्तुत प्राकृतपद्म श भाषाव्य प्रतिबद्ध

# १ भरत नाट्यशास्त्र

यमासागरमध्ये तु ये देशाः संवर्णीतिताः ।

एकारबहुलां तेषु भाषां तञ्ज प्रयोजयेत् ॥३८॥

विन्ध्यसागरमध्ये तु ये देशाः कुटिमागताः ।

नकारबहुलां तेषु भाषां तञ्ज प्रयोजयेत् ॥५२॥

मुराष्ट्रावन्तिवेशेषु वेम्बत्युत्तरेषु च ।

ये देशास्तेषु कूर्णीत ञकारबहुलामिह ॥६०॥

हिमवत्सिन्धुसीन्धीपान्ये च देशाः समाश्रिताः ।

उकारबहुलां तञ्जस्तेषु भाषां प्रयोजयेत् ॥६१॥

बर्मबतीनवीनारे ये चार्बुदसमाश्रिताः ।

तकारबहुलां तेषु भाषां प्रयोजयेत् ॥६२॥

२ कैशवसाला ह० ध्रुव पथ रचनानी ऐतिहासिक आलोचना—पृ० २८३ २८६

३ उदयनारायण तिवारी हिन्दी भाषा का उद्गम और विकास पृ० १२१

प्रबन्ध रचना-विषयान्त-करण' वा १३ जिस कुहसेन का ऊपर उल्लेख किया गया है, उसके सिमानेस २५९ ई० से २६९ ई० के प्राप्त हुए हैं।<sup>१</sup> कुतर प्रस्तुत सिमानेस को कुछ वर्ष बाद का मानते हैं।<sup>२</sup> फिर भी यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि ईसा की छठी सताब्दी में अपभ्रंश भाषा में काव्य रचना होने लग गयी थी यद्यपि प्रमाण स्वरूप उस युग की कोई रचना अभी तक हमें प्राप्त नहीं हो सकी है।

इसी सती के अन्तिम चरण में एक और प्रमाण मिलता है। बाचार्म नामक अपभ्रंश की काव्योपयोगी भाषा और काव्य का एक विशेष कर माना है। यथा—

सम्बन्धो संहितो काव्यं गद्य पद्य च तद् विधा ।

संस्कृतं प्राकृतं चाप्यपभ्रंश इति विधा ॥

—काव्यालंकार १-१६-२८

भामह का यह उल्लेख हमें केवल यही सूचित करता है कि अपभ्रंश भी तत्कालीन एक काव्य-भाषा थी। इस भाषा का प्रयोग कौन करते थे यह कहाँ बोली जाती थी आदि प्रश्नों का उत्तर हमें भामह से नहीं मिलता।

चंड ने अपने प्रसिद्ध व्याकरण प्राकृतमहाशयम् में अपभ्रंश शब्द का प्रयोग 'न तोपोऽपभ्रंशोऽधीरेकस्य' सूत्र में विशेष-भाषावाचक कड़ संज्ञा के रूप में किया है।

चंडी ने अपने ग्रन्थ 'काव्यादर्श' में काव्य की भाषा के चार भेद बताये हैं—  
संस्कृत प्राकृत अपभ्रंश और मिश्रित।

तदेतद् वाङ्मयं भूय संस्कृतं प्राकृतं तथा ।

अपभ्रंशश्च मिश्रं चेत्याहुराश्विनुविचम् ॥

—काव्यादर्श १ ३२

आगे चलकर यह अपभ्रंश का व्याकरण सम्मत रूप और भाषा के रूप में होने वाले प्रयोगों पर प्रकाश डालता हुआ कहता है—

आमीराविचिरः काव्येऽपभ्रंश इति स्मृता ।

शास्त्रेषु संस्कृतादप्यपभ्रंशतयोरुचिताम् ॥

—काव्यादर्श १ ३६

यद्यपि भाषा शास्त्र या व्याकरण में अपभ्रंश का अर्थ है संस्कृत के विकृत रूप। काव्य में आमीराविचिरिका अपभ्रंश कहलाती है। संस्कृत से इतर भाषाओं को अपभ्रंश कहकर चंडी ने पदबलिका समर्पण किया है और साथ ही उसने अपभ्रंश और आमीरों के सम्बन्ध का भी उल्लेख किया है। इससे ज्ञान पड़ता है कि चंडी के

१ इंडियन एण्टीक्वेरी वा० १० अप्रैल १८८१ पृ० २८४

२ बाम्ने मजेटियर वा १ भा १ पृ० ६

३ इंडियन एण्टीक्वेरी (उपरोक्त) पृ० २७७

४ चंड प्राकृतमहाशयम्—पृ० २४ सूत्र ॥३

समय में अपभ्रंश का साहित्यिक भाषा बन जाती थी और इसका प्रयोग आमीरों के अतिरिक्त (आमीरादि) अन्य लोग भी करने लग गये थे । इस प्रकार भरत के समय में आमीरी नाम से प्रसिद्ध आमीरीय बंसी के समय में अपभ्रंश में परिणित होकर बोसचास तथा साहित्य की भाषा बन गयी थी ।

कुबज्यमाला कथा' के रचयिता जैन लेखक उद्योतन सूरि ने (वि० मवीं सदी) अपभ्रंश का प्रयोग एक भाषा विशेष के अर्थ में किया है । वे अपभ्रंश काव्य के बड़े प्रशंसक हैं—वे उसे प्राञ्जल, प्रवाहमय और मनोहर मानते हैं ।<sup>१</sup>

छन्द अपने 'काव्यालंकार' में काव्य को पद्य और पद्य में विभाजित करने के पश्चात् भाषा के आधार पर उसका छह भागों में विभाजन करता है । संस्कृत प्राकृत भावनी, खीरसेनी पिशाच भाषा और अंतिम अपभ्रंश जो स्वान भेदों से अनेक स्वरूप ग्रहण कर लेती है ।

भाषाभेद निमित्त योडा भेदोऽस्य संभवति ।

—काव्यालंकार २११

प्राकृत संस्कृत मागध पिशाच भाषाश्च खीरसेनीच ।

पाण्डौज भूरिभेदो वेद्य विशेषावपभ्रंश ॥

—काव्यालंकार २१२

इस प्रकार छन्द ने अन्य साहित्यिक प्राकृतों के समान ही अपभ्रंश को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया है और वेद्य भेद के आधार पर विविधता की स्थापना की है ।

पुष्करन्त ने अपने महापुराण में बताया है कि उत्काचीन राजकुमारियों को संस्कृत और प्राकृत के साथ ही अपभ्रंश का भी ज्ञान कराया जाता था ।<sup>२</sup> इसका अर्थ यह हुआ कि तत्काल बसवी सताब्दी में 'अपभ्रंश भरत की विभिन्न सम्भावनाओं से विकसित होकर शिष्ट समुदाय की भाषा बन जाती थी ।

राजसेन ने अपने ग्रंथ 'काव्य मीमांसा' में अपने पूर्ववर्ती भाषाओं की भांति ही अपभ्रंश का उल्लेख एक काव्य भाषा के रूप में अनेक बार किया है । काव्य पुष्प की उत्पत्ति का वर्णन करते हुए उन्होंने कहा है<sup>३</sup>—

अम्बार्थो वे धरीरं, संस्कृतं सुखं प्राकृतं बाहु जलपभ्रंश 'पदाचं पादो' उरौ मिश्रम् ।

१ सा० म० पांशी अपभ्रंश काव्यवर्गी—मूमिका पृ० ६७ से उद्धृत 'या कि अमहंसं होहि ?' हैं । तं पि जो जेन तं सकम्पपाय—उभय—सुखानुदयसमतरमरंय तवमिरं यव-माउस-अलपयवाहपुपपम्बासिमिपरिणहपरितं समविशम पयय कुविपयिपयवनीसमुत्सावसरितं मनोहरं ।

२ पुष्करन्त महापुराण—१. १८. ९

सबभक्त पायत पुण अमहंसत वित्तत सणाहृत सवमंसत ।

३ राजसेन काव्य मीमांसा

अर्थात् सम्म और अर्ध ठेरे घरीर हैं । संस्कृत भाषा मुल है । प्राकृत भाषाएँ ठेरी मुजाएँ हैं । अपभ्रंश भाषा जंघा है । विद्याभ भाषा भरष है और भिम भाषाएँ बल स्वल है ।

इसी प्रकार राजशेखर ने काव्य विशेषताओं के अनुसार दरबार में कवियों के बैठने के स्थान भी निश्चित किये हैं—

‘उत्तर में संस्कृत कवि, पूर्व में प्राकृत कवि, पश्चिम में अपभ्रंश कवि व दक्षिण में वैद्याभ कवि आसन ग्रहण करें ।

आगे चलकर राजशेखर ने संस्कृत प्राकृत और अपभ्रंश भाषाओं के क्षेत्र का निर्देश करते हुए सकल मव भू, टक्क और माधानक को अपभ्रंश या अपभ्रंश मिश्रित भाषा का प्रयोग करने वाला क्षेत्र कहा है ।<sup>१</sup> एक दूसरे स्थान पर उन्होंने अथन और घुराष्ट्र को अपभ्रंश भाषा भाषी कहा है ।<sup>२</sup>

नमि साधु ने कवट के काव्यालंकार’ पर टीका करते हुए अपनी ‘वृत्ति’ में लिखा है—

‘तथा प्राकृतमेवापभ्रंश स आर्यैरुपमागद्यमीशाम्बाबभेदेन विभोक्तस्तन्निपदा बंधुक्तं मूरिभेद इति । कुतो बेश विधेयात् । तस्य च सप्तमं लोकादेव सम्यक् वक्ष्यम् ।

ये अपभ्रंश को एक प्रकार से प्राकृत ही मानते हैं । अपने पूर्ववर्ती भाषाओं के द्वारा निर्दिष्ट तीन प्रकार की अपभ्रंश—उपतागर आशीर और ग्राम्या—का निर्देश करते हुए स्वीकार करते हैं कि अपभ्रंश के इससे भी अधिक भेद हैं । अपभ्रंश को जानने का सर्वोत्तम साधन शोक ही है । इससे जान पड़ता है कि इस समय तक अपभ्रंश शोकभाषा के रूप में प्रतिष्ठित हो चुकी थी ।

श्रीमदराज ने अपने ‘सरस्वती कंठाभरण’ में इसे बृहत् प्रवेश की प्रिय भाषा के रूप में ग्रहीत किया है ।<sup>३</sup>

१ राजशेखर काव्यमीमांसा पृ० ११९ ११

तस्य उत्तरतः संस्कृता कवयो निविशेरन् । पूर्वतः प्राकृता कवयः ।  
पश्चिमेतापभ्रंशिनः कवयः । दक्षिणतो भूतभाषाकवयः ।

२ राजशेखर काव्यमीमांसा पृ० १२४

सापभ्रंशप्रयोगाः सकलमवभुवध्वजकमालानकाश्च ।

३ राजशेखर काव्यमीमांसा पृ० ८३

सुपाट्टमवजघा ये पठन्वर्षितसौष्ठवम् ।

अपभ्रंशावर्धमानि ते संस्कृता वचांस्यपि ॥

४ नमि साधु काव्यालंकारवृत्ति—२ १२

५ श्रीमदराज सरस्वती कंठाभरण—२ १३

अपभ्रंशेन पुष्पाति स्वेन नाम्नेन पुर्जेया ।

बागमट ने भी बंदी के अनुकरण में समस्त बाहुम्य को चार भागों में बांटा है। बंदी ने काव्य-भाषा के चार भेद माने हैं यथा संस्कृत, प्राकृत अपभ्रंश और मिथिल। बागमट का विभाजन इससे बिल्कुल भिन्न है। वह मिथ भाषा के स्थान पर भूतभाषा का उल्लेख करता है अथ भाषाएं वे ही हैं—संस्कृत प्राकृत व अपभ्रंश।

संस्कृतं प्राकृतं तस्य अपभ्रंशो भूतभाषितम् ।

इति भाषावृत्तसौत्रिणि यान्ति काव्यस्य कायताम् ॥

—बागमटासकार २ १

जाने बसकर उसने भी अपभ्रंश को वैश्यभाषा के रूप में ही ग्रहण किया है।

अपभ्रंशस्तु यण्डुः सप्तद्वेष्टेषु भाषितम् ।

—बागमटासकार २ ३

इसी प्रकार अन्य विद्वानों यथा मम्मट, पृथ्वीधर, मार्कण्डेय, रससर्वस्वकार, विष्णुबनोत्तरकर्ता, हेमचन्द्र गारायण अथर्वचंद सखीचर, माटयद्वयकार, पिरोत प्रियर्सन सुनीति कुमार चटर्जी और मुनि जिन विजय आदि ने अपभ्रंश पर मौलिक और परम्परागत विचार व्यक्त किए हैं, जाने बसकर उन पर यथावसर विचार किया जायेगा। अभी उन पर विचार करना बनावस्थक और अवगत होना क्योंकि इनके उल्लेख महत्त्वपूर्ण होते हुए भी शब्द के हैं। अतः इस स्थान पर उनका अध्ययन अनुपयोगी होना।

अपभ्रंश विषयक इन भिन्न-भिन्न निबन्धों से निम्न परिचय निकलते हैं।

१ आरम्भ में अपभ्रंश का प्रयोग छिप्पेदार बबबा अपाधिनीय उग्र रूपों के लिए होता था।

२ भरत ने इसी अर्थ में 'निभ्रष्ट' शब्द का प्रयोग किया है।

३ भरत के समय में अपभ्रंश का विकास इतना नहीं हुआ था कि वह भाषा कहला सकती। किन्तु उस समय में अपभ्रंश बीज रूप में वर्तमान थी और इसका प्रयोग एक बोली भाषा के रूप में लखर, जागीर आदि जविलिखत बनबासी ही किया करते थे।

४ छठी शताब्दी में अपभ्रंश सदा साहित्यिक भाषा का स्रोतक बन गया था और तत्कालीन आत्मकारिक और वैयाकरणों द्वारा मान्यता पा चुका था। अपभ्रंश में पर्याप्त साहित्य-सुबल होने मग गया था जो भामह और बंदी जैसे आचार्यों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर चुका था। इतना होने पर भी अभी तक अपभ्रंश का धामीपति से निकट सम्बन्ध माना जाता था।

५ नवीं शताब्दी में अपभ्रंश को अपेक्षाकृत अधिक सम्मान से देखा जाने लगा था। अब वह केवल लखर, जागीरवालीकी बोली नहीं थी अपितु बन-शामागम की भाषा बन चली थी और उसका व्यवहार प्रायः समूचे उत्तर भारत में सौराष्ट्र से लेकर पूरुव में मगध तक होने लगा था। स्थान—भेद से इसमें कुछ अन्तर होना स्वाभाविक ही था, किन्तु काव्योपयोग में जागीरी का ही प्रयोग होता था।

१. बाण्डोपाध्याय के समय तक भाषाकारिकों, व्याकरणों और साहित्यिकों ने मान लिया था कि इस साहित्यिक भाषा के स्वाम-भेद से अनेक प्रकार हैं। अपभ्रंश का प्रयोग व्यापक रूप से होने लगा था और उसमें विपुल साहित्य-रचना होने लगी थी। सिद्धों के 'बोहान्मोप' व बौनों के 'भरित' अपभ्रंश के ही दो मिस प्रकारों में रचे गये। इस प्रकार अपभ्रंश सोरभट्ट से मध्य तक चल चली थी।

## २. अपभ्रंश भाषा का विकास

जैसा कि हम पहले देख चुके हैं मध्यकालीन भारतीय भाषे भाषाओं की उत्तरकालीन व्यवस्था को अपभ्रंश का नाम दिया गया है। अपभ्रंश का प्रचार और प्रसार वह से हुआ, इस सम्बन्ध में निश्चित तौर पर कुछ भी कहना कठिन है। डोना-माक रा दूहा के सम्पादकों के अनुसार अपभ्रंश का काल विष्णु की दूसरी शताब्दी से प्याहली शताब्दी तक माना जा सकता है।<sup>१</sup> स्वामसुन्दर दास मानते हैं कि अपभ्रंश के बीच इसी की दूसरी शताब्दी में प्रचलित प्राकृत में अवश्य विद्यमान थे और बाण्डोपाध्याय का मध्य-भाग अपभ्रंश के अस्त और आधुनिक भाषाओं के उदय का काल ब्यापकचित माना जा सकता है।<sup>२</sup> देवेन्द्र कुमार के अनुसार अपभ्रंश का प्रथम परिचय तीसरी सदी ईस्वी से मिलने लगता है, किन्तु वह साहित्यिक नहीं सही में है। सही। बाण्डोपाध्याय सही तक उसका समुचित गुण रहा।<sup>३</sup> महाकवि कालिदास के 'विक्रमोपख्यान' नाटक के अन्त्य अंक में अपभ्रंश के दोहे मिलते हैं। इनकी प्रामाणिकता के विषय में विद्वान एक मत नहीं हैं। एस० पी० पण्डित,<sup>४</sup> ज्युस स्माक<sup>५</sup> तथा जर्मन याकोबी<sup>६</sup> आदि विद्वान इन्हें प्रामाण्य मानते हैं, परन्तु डा० डा० मे० उपाध्ये<sup>७</sup> तथा डा० लमारे<sup>८</sup> इनकी प्रामाणिकता मानते हैं। सुनीतिकुमार बादरजी<sup>९</sup> इनके प्रामाण्य होने पर भी अपभ्रंश का काल ४०० ई० सं० से १००० ई० सं० तक मानते हैं।<sup>१०</sup> इस विचार से बचते हुए डा० बीरेन्द्रनाथ<sup>११</sup> डा० उदयनारायण तिवारी<sup>१२</sup> डा० हजारी प्रसाद<sup>१३</sup> आदि विद्वान इसका प्रारम्भ पाँचवीं शताब्दी सही से मानते हैं।

१. अकुर पारीक स्वामी डोना माक रा दूहा—भूमिका, पृ० ११०

२. स्वामसुन्दर दास हिन्दी भाषा पृ० १४

३. वही, पृ० १६

४. देवेन्द्रकुमार अपभ्रंश प्रकाश पृ० ७

५. उदयनारायण तिवारी हिन्दी भाषा का उद्भव और विकास, पृ० १२२३

६. डा० मुन्ने मल्लिकार्जुन राहू भूमिका पृ० १७ से उद्धृत

७. डा० याकोबी अभिसमय राहू—भूमिका पृ० ६८

८. डा० लमारे हिस्टोरिका नामर भाषा अपभ्रंश

९. डा० सुनीतिकुमार बादरजी भारतीय भाषाभाषा और हिन्दी, पृ० १७८

१०. डा० बीरेन्द्रनाथ हिन्दी भाषा का इतिहास पृ० ४८

११. उदयनारायण तिवारी हिन्दी भाषा का उद्भव और विकास, पृ० १२२

१२. हजारी प्रसाद त्रिनेनी हिन्दी साहित्य का आरम्भ पृ० ६२

मुनेरी प्रारम्भ के बचकर में न पड़ बिन्धन की बातचीत छताम्बी से म्यारहवीं छताम्बी तक अपभ्रंश की प्रचलता मानते हैं।<sup>१</sup> राहुसजी छनी घटी को हो प्राकृत और अपभ्रंश की सीमा रेखा मानने के पक्ष में हैं।<sup>२</sup>

इन विभिन्न धारणायों के आधार पर निम्न निष्कर्ष अनुमानित किये जा सकते हैं। अपभ्रंश का प्रारम्भ सबसे ईसा की चौथी सदी में हो गया होगा पाँचवीं सदी में उसका प्रयोग एक काव्य-भाषा के रूप में होना प्रारम्भ हो चुका होगा और छठी सदी से तो इसे विष्ट समाज में आदर मिलने लगा होगा। बलभी के सासक घर सेन का विसालेख इस सम्बन्ध में उचित प्रमाण प्रस्तुत करता है। छठी सदी से म्यारहवीं सदी तक इस भाषा में पूरक परिमाण में साहित्य का सुजन होता रहा।<sup>३</sup> काव्य-रचना की यह भाषा बारहवीं सदी तक चलती रही और तेरहवीं सदी में वैद्यभाषाओं में परिचित हो गई।

इसका यह बर्णन कदापि नहीं कि तेरहवीं सदी के बाद अपभ्रंश में कुछ भी रचनाएं नहीं हुईं। वास्तविकता तो यह है कि काफी समय तक संस्कृत प्राकृत और अपभ्रंश का रचना प्रवाह साथ-साथ बहता रहा। संभवतः यही कारण होगा कि छट नै संस्कृत और प्राकृत के साथ ही अपभ्रंश की भी साहित्यिक भाषा स्वीकार किया है।<sup>४</sup> भाषा शास्त्रियों ने भ० भारतीय आर्य भाषाकाल की मध्यकालीन अवस्था की साहित्यिक प्राकृतों का समय पाँचवीं ईस्वी तक और उसके उत्तरकालीन अवस्था की अपभ्रंश का समय पाँचवीं ई० से एक हजार ई० तक माना है।<sup>५</sup> किन्तु प्राकृत का साहित्य पाँचवीं ईस्वी के बाद भी लिखा जाता है। वाक्यविज्ञ के 'गीडवहो' का समय साठवीं आठवीं सदी माना जाता है। कौतूहल की 'मीनावई' कहा भी निरुद्ध उत्तरकालीन रचना है। प्राकृत व्याकरण के अध्ययन के फलस्वरूप बहिन भाट्ट के अठारहवीं सदी के एक कवि राम पालिवाल ने 'कसबहो व 'असाविच्छ' नामक दो ग्रंथों का भावगत पुराण के आधार पर प्राकृत में प्रचलन किया। अर्थात् प्रथम ईस्वी छताम्बी से लेकर बीसवीं छताम्बी तक सामान्यतः और अठारहवीं सदी के प्रारम्भ तक विरलतः प्राकृत साहित्य लिखा जाता रहा है। इसी प्रकार संस्कृत भाषा में अष्टाक्षि काव्य सुजन होता ही है। अपभ्रंश के सम्बन्ध में भी प्राकृत की बात बोहराजी आ सकते हैं। डा० उपाध्यायने योगीश्वर के 'परमपदायु' और 'योगसार'

१ चंद्रपर समी मुनेरी पुरानी हिंदी पृ० ८

२ राहुन साहूदयामन बोहाकोष-भूमिका पृ० ६

३ मेमिचन्द्र जैन हिन्दी जैन साहित्य परिषदीय-भाग १, पृ० २७

४ टेस्लीटी पुरानी राजस्थानी पृ० ८

५ छट काव्यासंस्कार पृ० २ १२

६ डा० हरिवंश कोल्हट्ट, अपभ्रंश साहित्य पृ० १६

७ डा० हरिवंश काहरी, प्राकृत और उसका साहित्य, पृ० १४२



का समय छठी सताब्दी के लगभग माना है। उस से लेकर तेरहवीं छठी तक विद्येय रस से और सप्तहवीं छठी तक अथवा चप से अपभ्रंश में काव्य रचना होती रही है। भवभूतीराय का 'भुयांक' सैदा श्रित्त या 'अग्निलेखा' विन्म संवत् १७०० म तिखा दबा है।<sup>१</sup> जिस प्रकार संस्कृत और प्राकृत में रचनायें कुछ कास तक समाना स्तर रूप से मिली जाती रहीं, उसी प्रकार अपभ्रंश का भी प्राकृत के साथ प्रचार रहा। इसी प्रकार अपभ्रंश का साधुनिक आर्य भाषाओं के पूर्ण रूपों के साथ भी प्रचलन रहा। अपभ्रंश यद्यपि १२ वीं छठी से बोलचाल की भाषा नहीं थी, केवल साहित्य की भाषा थी फिर भी वह १५ वीं छठी तक स्वतन्त्र रूप से अथवा मध्यतर प्रादेशिक भाषाओं में बुलभितकर प्रयोग में आती रही है। इस तथ्य का समर्थन हमें सिद्धसाहित्य से मिलता है।

सिद्धों की रचनाओं के दो रूप उपलब्ध हैं—१ दोहाकोष २ चर्चापत्र। डा० सुनीलकुमार चाटुर्जी ने दोहाकोषों और चर्चापत्रों में ही दो प्रकार की उपभाषाओं की ओर संकेत किया है। चर्चापत्रों की भाषा पूर्वी है, जिसे वे पुरानी बंगाली कहते हैं क्योंकि उसमें बहुत से क्रिया रूप, शब्द रूप तथा ऐसे मुहावरें हैं, जिसकी परम्परा पुरानी बंगाली में अभी आई है। दोहाकोषों में एक ही भाषा है पश्चिमी अथवा औरतेनी अपभ्रंश।<sup>२</sup> 'डाकार्ज' के सम्पादक डा० नरेन्द्रनारायण जीवरी डाकार्ज की भाषा को औरतेनी अपभ्रंश पर आधारित मानते हैं, किन्तु कहीं-कहीं पर उसमें पूर्वी बंगाल के शब्द रूपों उच्चारणों तथा मुहावरों का प्रभाव मानते हैं।<sup>३</sup> इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए डा० बर्मबीर भारती की सम्मति है—दोहे तिखते समय सिद्धों ने पश्चिमी या औरतेनी अपभ्रंश का प्रयोग किया, क्योंकि वह भाषा दोहों में रस चुकी थी, किन्तु जब उन्होंने वेग वह तिखे तो स्थानीय बोली को आधार बनाया। किन्तु चूंकि वह बोली अभी काव्य में रची नहीं थी अतः स्तान-स्तान पर उन्होंने अभिव्यक्ति और काव्य परिष्कार के लिये औरतेनी का सहारा लिया।<sup>४</sup>

भारत ने अपने मातृय शास्त्र में प्रकार बहुसा भाषा का प्रयोग द्विमत् विष्णु सोबीर और इनके आश्रित देशों के लोगों के लिये करने का आदेश दिया है।<sup>५</sup> इससे ज्ञात होता है कि अपभ्रंश की विशेषतायें भारतवर्ष के उत्तर-पश्चिमी प्रदेशों में प्रकट होने लगे गई थी। इस प्रकार बहुसा अपभ्रंश की प्रकृति पर हमें इसमें संकायें उठाई गई हैं। डा० परशुराम ल० शेष ने विद्वानों का ध्यान इस ओर आकृष्ट

१ डा० हरिचंद्र कौक्य-अपभ्रंश साहित्य पृ० १७

२ चटर्जी-आरिजिन एण्ड डेवलयमट आफ बंगाली लेखक, पृ० ११२

३ डा० नरेन्द्रनारायण जीवरी डाकार्ज, पृ० १९

४ डा० बर्मबीर भारती सिद्ध-साहित्य, पृ० २८२

५ भरत, मातृयशास्त्र पृ० १७-१२

द्विमत्विष्णुसोबीरान् ये जनाः समुपादिताः ।

उकार बहुसा उज्जस्तेषु भाषा प्रयोजयेत् ॥

क्रिया है कि अपभ्रंश के अतिरिक्त 'प्राकृत धम्मपद' 'सहित विस्तर' और 'सङ्घर्ष' पुष्करीक जैसे बौद्ध ग्रंथों में भी उकार की प्रकृति पाई जाती है। अतः उकार बहुसा भाषा का अर्थ केवल अपभ्रंश ही लगाया ठीक नहीं होया। नामवर सिंह ने विस्तर पूर्वक बताया है कि 'प्राकृत धम्मपद' की रचना ऐसावर के आसपास बेटान के निकट योग्य ग अथवा गोरीधर बिहार में प्राप्त हुई थी।<sup>१</sup> यह भारत के निर्बोधानुसार उकार बहुसा भाषा का ही क्षेत्र था और इसलिये 'धम्मपद' की प्राकृत पर स्थानीय प्रभाव पड़ना स्वाभाविक ही था। इसी प्रकार 'सहित विस्तर' में छेपकों की भरमार है। इसका रूप लगभग चौथी शती में स्थिर हुआ था क्योंकि चौथी शती में अपभ्रंश का उद्भव हो चुका था, इसीलिए 'सहित विस्तर' में इस उकार बहुसा भाषा का प्रभाव दीख पड़ता है। राजशेखर ने अपने ग्रंथ 'काव्य-मीमांसा' में अपभ्रंश का विस्तार ज्ञान सकल भक्षसूत्रि, टक्क और भावानक बताया है।<sup>२</sup> इससे प्रतीत होता है कि राजशेखर के समय तक अपभ्रंश का प्रसार राजस्थान, पंजाब, सीराष्ट्र, गुजरात तथा समस्त पश्चिमोत्तर भारत में हो गया था। धनै धनै इसका प्रसार बढ़ता गया और नवीं शती में इसका प्रचार हिमालय की तराई से योधावरी और सिन्ध से ब्रह्मपुत्र तक था।<sup>३</sup> अपभ्रंश कविता पर विचार करते हुए राहुस जी ने लिखा है—  
 वहां सरहपा और सबरपा बिहार—बंगाल के निवासी वे वहां अमुरहमान का जन्म मुल्तान में हुआ था। स्वयंभू और कनकामर घायब जबभी और बुद्विही क्षेत्रपुत्र प्रान्त के थे, तो हेमचन्द्र और सोमप्रभ गुजरात के और रसिक तथा जामययाता होने के कारण मान्यवेद (मानवेद-वर्जित ईदराबाद) का भी इस साहित्य के सुजन में हाथ रहा है। इस प्रकार हिमालय से योधावरी और सिन्ध से ब्रह्मपुत्र तक ने इस साहित्य के निर्माण में हाथ बंटाया है। इससे जान पड़ता है कि अपभ्रंश के नाम से पहिचानी जाती एक साहित्यिक भाषा होनी चाहिए जो इस विस्तृत भू भाग में कविता के अन्तर्गत् प्रयुक्त की जाती रही है। और जिससे काकाप्तर में विभिन्न अर्वा-चीन आर्य भाषाओं का विकास हुआ। लेकिन यह विष्णुस संभव नहीं है कि एक ही प्राकृतोत्तर अपभ्रंश से आधुनिक विभिन्न आर्य भाषाएँ विकसित हुई हों। उदाहरणार्थ मावधी प्राकृत से जो अपभ्रंश भाषा विकसित हुई, वही आधुनिक बंगला उड़िया, आसामी, मावधी मैथिली और भोजपुरी के रूप में बरत गई हो, यह संभव नहीं जान पड़ता है। इन सबकी पूर्ववर्ती अपभ्रंश भाषाएँ निश्चय ही असंग-असंग रूपों

१ नामवरसिंह-हिन्दी के विकास में अपभ्रंश का प्रयोग पृ० १८

२ राजशेखर-काव्यमीमांसा पृ० १२४

३ मेमिचन्द्र बीन-हिन्दी और साहित्य-परिचय, पृ० २०

४ राहुस सांस्कृत्यायन-हिन्दी काव्य आरा-भूमिका पृ० १६

में रही होगी ।' इसी मत को ग्रियर्सन<sup>१</sup>, पिघेस<sup>२</sup>, हर्नले<sup>३</sup> पंडित कामताप्रसाद गुह<sup>४</sup>, डा० बीरेन्द्र वर्मा प्रभृति<sup>५</sup>, पंडित माधवे हैं ।

भाषाकृत प्रत्येक प्राकृत के अपभ्रंश रूप की कल्पना की जाने लगी है, किन्तु व्याकरण के प्राचीन ग्रंथों में इस प्रकार का विभाजन नहीं मिलता है। उदटने जबज अपने 'काम्यालंकार' में इस भेद से अपभ्रंश के अनेक भेदों का निर्देश किया है।<sup>६</sup> अपभ्रंश में अनेकता की स्थापना बहुत से उत्तरकासीन व्याकरणों द्वारा भी की गई है । नमिसाधु<sup>७</sup> 'रामचन्द्र गुणचन्द्र'<sup>८</sup>, पुरुषोत्तम<sup>९</sup>, रामचर्क बापीश<sup>१०</sup>, कमवीरवर<sup>११</sup> शारदातनय<sup>१२</sup>, आदि ने अपभ्रंस में अपने अपने ढंग से अनेकता की स्वरना है किन्तु सभी का सम्बन्ध अपूर्ण और अपर्याप्त है। सेप्टुप्लम की 'प्राकृत चंद्रिका' में अपभ्रंस के सत्ताईस भेद स्थापित करने की चेष्टा की गई है। मार्कण्डेय ने अपने प्राकृत सर्वस्व में प्राकृत चंद्रिका से जो सहाय और उदाहरण उद्धृत किए हैं इन्हें अपर्याप्त और अस्पष्ट हैं कि स्वयं मार्कण्डेयने इनको सूक्ष्म कहकर तमस्य बताया है और इनका पुनः-पुनः सहाय निर्देश न कर सब समी की मानर, बावड़

- १ इबारीप्रसाद द्विवेदी-हिन्दी-साहित्य पृ० ९
- २ ईसाइसोपीडिया ब्रिटैनिका भाग, २२ पृ० २५१
- ३ पिघेस प्राकृत भाषाओं का व्याकरण पृ० ३८-हिन्दी अनुवाद
- ४ हर्नले-ए कम्प्रेटिव ग्रैमर ऑफ गौडियन लेग्जिजेब-भूमिका पृ० ११ १२
- ५ पं० कामताप्रसाद-हिन्दी व्याकरण पृ० १७
- ६ डा० बीरेन्द्र वर्मा-हिन्दी भाषा का इतिहास-भूमिका पृ० ४९ ५
- ७ उदट-काम्यालंकार, पृ० २ १२

पष्ठो ष भूरिभेदो देवविशेषादपभ्रंस

- ८ नमिसाधु-काम्यालंकार कृति पृ० २ १२
- ९ रामचन्द्र गुणचन्द्र-नाट्य वर्णन पृ० २ ९
- १० पुरुषोत्तम-प्राकृतानुशासन-प्राकृत विमर्श पृ० ७
- ११ रामचर्क बापीश-प्राकृत कल्पतरु-प्राकृत विमर्श पृ० ८
- १२ कमवीरवर-संक्षिप्त सार आठवीं परिच्छेद
- १३ शारदातनय-भाषाप्रकाशन पृ० ११
- १४ 'प्राकृत चंद्रिका' के भेद ये हैं—

बावड़ो काटबैवर्गविपुनावरनामरो ।  
 बार्बरावर्गवर्गवासटावकमासवर्कैया ।  
 गीडोटवर्गवर्गवात्यपावर्गकीन्तवर्गवर्ग ।  
 कालिप्यप्राप्यकालिप्यकालिप्यवा विवर्गवर्ग ।  
 अमीरी मध्यवर्गवर्ग सूक्ष्ममेव व्यवस्थिता ।  
 सप्त विद्यावर्गवर्गवर्ग वेतामाविप्रभवत ।

और उप नागर इन तीन प्रभाग भेदों में ही अन्तर्भुक्त भाषा है <sup>१</sup> 'कुपुत्रय-भाषा' में बठारह बेसी शोधियों के नाम गिनाये हैं। राहुल भी उनकी गणना अपभ्रंश के प्रकारों में करते हैं।<sup>२</sup>

अपभ्रंश का जो भी साहित्य मिलता है वह बहुत कम भाषायत्त भेदों को लिए है। यह समस्त साहित्य एक ही परिनिष्ठित भाषा का है यद्यपि उसमें स्थानीय प्रभाव बह्यभाषा में मिल सकता है। प्यारहवीं शती में नमिसाधु ने अपभ्रंश के तीन भेद उपनागर, आभीर और ग्राम्य गिनाये हैं। पुस्तोत्तम ने बारहवीं शती में अपभ्रंश के नाबरक, बाचड़ और उपनागरक भेद माने हैं। तेरहवीं शती में शारदाचतनय ने नामरक उपनागरक और ग्राम्य ये तीन प्रकार माने। सत्रहवीं शती में मार्कण्डेय ने नामर उपनागर और बाचड़ ये तीन भेद माने उसका उल्लेख हम पहले कर चुके हैं। बाचड़ अवेष्टा कृत अपरिष्कृत मानी गई है। परिष्कृत अपभ्रंश को नामर पुकारा गया है। जब यह प्राकृत से मिश्रित होती तो उसे उपनागर कहा जाता था।<sup>३</sup> यह विभाजन वैद्यगत्त न होकर संस्कार की दृष्टि से किया गया है जब आधुनिक आर्य भाषाओं की उत्पत्ति और विकास को समझने के लिए उपयुक्त नहीं है। इसी समस्या के निराकरण के लिए प्राकृतों के अनुरूप ही विभिन्न अपभ्रंशों की कल्पना की गई। वैद्यगत्त भेदों को संस्कार के आधार पर किए गए भेदों में अन्तर्भुक्त मानना अनुचित है क्योंकि जब भाषाओं के उत्पत्ति-स्थान भिन्न भिन्न प्रदेश हैं और विभिन्न प्रकृति भी भिन्न भिन्न प्रदेश की प्राकृत भाषाएँ हैं तब ये अपभ्रंश भाषाएँ भी भिन्न-भिन्न ही हो सकती हैं और उन सबका समानपद एक दूसरे में नहीं किया जा सकता।<sup>४</sup> वास्तव में बात यह है कि अपभ्रंश के वैद्यगत्त कई प्रकार के किन्तु चूंकि वे साहित्य में प्रहीत नहीं होते थे, अतः परवर्ती और उत्तरकालीन वैचारिक चर्चके नमूने नहीं पा सके होंगे। उपयुक्त उदाहरणों के अभाव में इसके अतिरिक्त और भी क्या सकता था? डा० बीरेन्द्र वर्मा भी इसी चारणा को प्रकट करते बिखार देते हैं।<sup>५</sup> अथवा ही शोलचाल की अनेक अनपचीत भाषाओं का प्रचलन होता रहा होगा।

इसी चारणा की दृष्टि हमें 'रबिकर' के कथन में मिलती है। रबिकरने अपभ्रंश के दो रूप दिये हैं—एक का विकास साहित्यिक प्राकृत के आधार पर हुआ परन्तु विभक्ति समास शब्द-विन्यास आदि की दृष्टि से वह भिन्न है और दूसरा बेसी भाषा का रूप है।<sup>६</sup> यह बेसी स्वरूप साहित्य में अधिक व्यवहृत नहीं होने के

१ मार्कण्डेय प्राकृत सर्वस्व, पृ० ३ तथा १२२

२ राहुल सांकृत्यायन हिन्दी काव्यधारा—भूमिका पृ० ७

३ कौप हिस्ट्री आफ् संस्कृत लिटरेचर, पृ० ३५

४ हरमोचन्द्रदास सेठ पादक सह महज्जबो—भूमिका, पृ० ४५

५ डा० बीरेन्द्र वर्मा हिन्दी भाषा का इतिहास—भूमिका पृ० ५०

६ डा० सरम् प्रताप अपभ्रंश प्राकृत विमर्श पृ० ८

कारण आज अज्ञेय है किन्तु अपभ्रंश का एक स्वरूप जो साहित्यिक भाषा के रूप में मान्य था, उपलब्ध है। अपभ्रंश के किस रूप (या किस रूपों) का प्रयोग साहित्य में होता था, इसके विषय में कुछ मतभेद अवश्य हैं किन्तु पश्चिमी बर्ष के विभाकरणों ने साहित्य में प्रयुक्त अपभ्रंश का आधार सौरसेनी ही माना है और यह अनुमान किया जा सकता है कि सौरसेनी अपभ्रंश ही काव्य की भाषा के रूप में प्रतिष्ठित थी।<sup>१</sup> डा० तुनीसि कुमार चाटुप्यप्पा भी यही मत है कि पश्चिमी बर्षवा सौरसेनी अपभ्रंश ही समूचे धार्यभारत, पुनरात व पश्चिमी पंजाब से बंगाल तक प्रचलित 'जिम्मा फोंका' बन गई थी जो मङ्गुर और काम्बोपयुक्त भाषा मानी जाती थी।<sup>२</sup> फिर भी उस समय साधुनिक धार्यभाषाओं का स्वरूप मठित हो रहा था। कुछ समय तक तो पुरानी सौरसेनी अपभ्रंश ही काव्य की भाषा के रूप में प्रयुक्त होती रही और विभिन्न प्रदेशों की शोनिया कभी-कभी उस प्रदेश में रहे जाने वाले साहित्य को प्रभावित करती रही। बाद में वे शोनिया भी स्वतंत्र काव्य भाषाओं के रूप में प्रयुक्त होने लगीं।<sup>३</sup> बाद में अक्सर ऐसे भी उदाहरण मिलते हैं कि एक ही कवि कई काव्य भाषा में भी रचना करता है और पुरानी अपभ्रंश में भी अपना काव्य चमत्कार दिखाने का प्रयास करता है (जैसे विद्यापति)। इस प्रकार की दोनों भाषाओं यथा अपभ्रंश और देही का प्रयोग इस बात का सूचक है कि उस काल में वे दोनों भाषा रूप प्रचलित थे और चित्तियों द्वारा समझे जाते थे।<sup>४</sup>

राष्ट्रीय धार्य भाषा के विकास की जिस अवस्था को आज हम अपभ्रंश के नाम से पुकारते हैं, उसके लिए सदा 'अपभ्रंश' संज्ञा का व्यवहार नहीं हुआ है। प्राचीन संस्कृत ग्रंथों में उसका उल्लेख 'अपभ्रंश' और 'अपभ्रष्ट' के रूप में किया गया है। अधिकांश संस्कृत विद्वानों ने 'अपभ्रंश' शब्द का भी प्रयोग किया है, 'अपभ्रष्ट' शब्द का उल्लेख बहुत कम मिलता है। विष्णु बर्मोत्तर पुराण जैसे दो एक ग्रंथों में ही 'अपभ्रष्ट' संज्ञा का व्यवहार किया है।<sup>५</sup> किन्तु प्राकृत-अपभ्रंश ग्रंथों में 'अपभ्रंश' 'अवर्ह' 'अवहृत्' 'अवहृष्ट' 'अवहृष्ट' 'अवहृष्ट' आदि नाम भी मिलते हैं। परवर्ती कवियों द्वारा इन शब्दों का प्रयोग अधिकतर किया है। अवहृष्टका अभाववि

१ डा० रामसिंह सोमर प्राकृत व अपभ्रंश साहित्य का इतिहास और हिन्दी पर उसका प्रभाव पृ० १२-७२

२ चटर्जी आरिजिन एंड डेवसपर्मिट आफ बेंगाली लेन्गेज पृ० १११

३ वही, पृ० १११ ११४

४ डा० चर्मबीर भारती सिद्ध साहित्य पृ० २८८

५ डा० भंडारकर रिपोर्ट ऑन दी लर्न ऑफ एम एस एम १८८७-९४ पृ० ७१

६ विष्णुबर्मोत्तरकर्ता विष्णुबर्मोत्तर पुराण-अं० १ अध्याय ३

अपभ्रष्ट तृतीय व सप्तमं गद्याक्षिप ।

देवभाषा विशेषेण तस्याग्री नैह विद्यते ।

भाट सबसे पहला प्रयोग ज्योतिरीश्वर ठाकुर के 'वर्णरत्नाकर'—१३२३ ई० में मिलता है ।<sup>१</sup> वहाँ राम सभा में भाट द्वारा पङ्कमापायों की गणना की जाती है । विद्यापति ने 'कीर्तिधरा' की अपनी भाषा की प्रशंसा करते हुए उसे 'अबहट्ट' कह कर पुकारा है ।<sup>२</sup> 'प्राकृत-पङ्कजम्' के टीकाकार बंसीधर की राय में 'प्राकृत पङ्कजम्' की भाषा अबहट्ट ही है ।<sup>३</sup> 'संक्षेप रासक' के रचयिता बभ्रुरहमान ने अपने काव्य की भाषा को अबहट्ट कहा है । कृष्णयामाणा कर्हा के रचयिता उद्योतनसूरी ने अबहट्ट सव्य का प्रयोग किया है ।<sup>४</sup> इसी सव्य का प्रयोग कहीं अबर्गमस के रूप में भी हुआ है ।<sup>५</sup> पुष्करन्त संस्कृत और प्राकृत के साथ 'अबहट्ट' की गणना करते हैं ।<sup>६</sup> स्वयंभू देव अपनी रामायण में इसे 'अबहट्ट' कहकर पुकारते हैं ।<sup>७</sup>

अपभ्रंश को भी जाने वाली विभिन्न संज्ञाओं पर विचार करते हुए नामवर सिंह कहते हैं कि 'अबहट्ट अबहट्ट, अबहट्ट अबहट्ट' भाषि रूप अपभ्रंश अपभा अपभ्रंश के लक्ष्य रूप हैं । प्राकृत अपभ्रंश के दर्जों में वहाँ संस्कृत के लिए सक्रिय और प्राकृत के पास पार्श्व भाषि रूप व्यवहृत है वही अपभ्रंश का अबर्गमस और

१ ज्योतिरीश्वर ठाकुर वर्णरत्नाकर—१५ ख पृ० ४४

पुनः कहसन भाट संस्कृत पराकृत, अबहट्ट वैशाखी शौरसेनी मामयी छद्म भाषाक उत्पन्न ।

२ विद्यापति कीर्तिधरा, प्रथम पङ्कज

सकय भाषी बुद्धम भावह ।

पार्श्व रस को मम्म म पावह ॥२०॥

ऐसिम बजना सब अनमिठठा ।

तं तैसन अम्पछी अबहट्टा ॥२१॥

३ बंसीधर प्राकृत पङ्कजम् टीका पृ० ३

पङ्कज भाट छरबी

नाथी छो पियकी बजह । पाया १ ।

टीका—प्रथमी भाषाछरबी प्रथम भाषा भाषा अबहट्ट भाषा

यमा भाषमा अर्थ श्रवो रचित सा अबहट्ट भाषा ।

४ बभ्रुरहमान संक्षेप रासक—प्रथम प्रक्रम—छ—६

अबहट्टय सकय पाह्यमि पैसाह्यमि भाषाय

मकलमल्लाहुरने सुकहस भूसियं धिहि ।

५ एस० बी० पांशी अपभ्रंश काव्यधमी पृ० १७-१८

६ अल्फ्रेड मास्टर बी० एस० बी० ए० एस०, भाग १३ २

कि बि अबर्गमस क्या था ।

७ पुष्करन्त महापुरुष—संभि १—कडवक १८

८ स्वयंभू पद्मचरित । रामायण १४। 'हिन्दी काव्यधारा' में संयुक्त

अवर्तित हो जाना स्वाभाविक है ।<sup>१</sup> उनकी दृष्टि में अपभ्रंश अपभ्रष्ट अवर्तम, अव  
 र्ज्मण, अवहट्ट, अवहट्ट जाति सभी एक समानापी है ।<sup>२</sup> किन्तु विचित्राद सिंह इसे  
 नहीं मानते । उनके अनुसार हम इन चर्चों के प्रयोगों के क्रमक्रम पर विचार करें तो  
 एक महत्वपूर्ण तथ्य हमारे सामने आता है । संस्कृत के अलंकारिकों ने अपभ्रंश भाषा  
 के लिए सर्वत्र 'अपभ्रंश' शब्द का प्रयोग किया । या यह कि उनके द्वारा रत्ना मया  
 यह नाम ही इस भाषा के लिए रूढ़ हो गया है । किन्तु प्राकृत के कवियों ने इसे अव  
 र्ज्मण कहा । अपभ्रंश चरित्रों पुण्डरीक जाति ने भी इसे अवर्तम ही कहा । 'अवहट्ट' कहा  
 अवहट्टमाण ( अवर्तमान ) ने 'प्राकृत पंचमम्' के टीकाकार बंशीधर ने, विद्यापति  
 और पयोतिरीश्वर ने । इस आधार पर विचार करने से लगता है कि 'अवहट्ट' शब्द  
 का प्रयोग केवल परवर्ती अपभ्रंश के कवियों ने किया । क्या इस आधार पर यह  
 नहीं कहा जा सकता कि परवर्ती अपभ्रंश के इन लेखकों ने इस शब्द का प्रयोग जान  
 बूझ कर किया । अपभ्रंश या अवर्तम या बहुप्रचलित 'देवी' शब्द का प्रयोग भी कर  
 सकते थे, परन्तु उन्होंने ऐसा नहीं किया । इससे सहज अनुमान किया जा सकता है  
 कि 'अवहट्ट' शब्द कीड़े का है और इसका उपयोग परवर्ती अपभ्रंश के कवियों ने  
 पूर्ववर्ती अपभ्रंश की तुलना में थोड़ी परिवर्तित भाषा के लिए किया । बंशीधर ने  
 तो अपनी टीका (संस्कृत) में एवम् अवहट्ट ही लिखा जब कि (संस्कृत) में अपभ्रंश  
 या अपभ्रष्ट का प्रयोग ही प्रायः होता था ।<sup>३</sup> अर्थात् इस शब्द के मूल में परिनिष्ठित  
 अपभ्रंश के और भी अधिक विकसित होने की भावना थी । इन चर्चों के आधार पर  
 कहा जा सकता है कि अपभ्रंश के बाद की स्थिति अवहट्ट है । अपभ्रंश के व्या  
 करणिक आधार पर—प्राचीन चर्चों और कवियों के मेल से जो भाषा विकसित हुई—यह  
 अवहट्ट थी इसका काल ठीक-ठीक सही से पन्द्रहवीं सदी तक माना जाता है ।<sup>४</sup> डा  
 बाटुर्म्मा विद्यापति के अवहट्ट पर विचार करते हुए इसी मायका को स्वीकार करते  
 हैं ।<sup>५</sup> दिनेशिया इसे कनिष्ठ अपभ्रंश मानते हैं और इसे बारहवीं से पन्द्रहवीं शताब्दी  
 तक की विरुद्ध भाषा स्वीकार करते हैं ।

हम पहले बता चुके हैं कि परिनिष्ठित भाषा के रूप में सीरसेनी अपभ्रंश का  
 समस्त उत्तर भारत में प्रचार था किन्तु स्थानीय बोलियों भी समानांतर रूप से विक-  
 सित हो रही थी । स्थानीय जनपदीय बोलियों का विकास कालांतर में आधुनिक  
 आर्य-भाषाओं में हुआ किन्तु परिनिष्ठित साहित्यिक अपभ्रंश अपना स्वयं स्वरूप

१ नामवर सिंह द्वितीय के विकास में अपभ्रंश का योग पृ० १

२ वही पृ० २

३ विचित्राद सिंह कीर्तिलता और अवहट्ट भाषा पृ० ६

४ देवेन्द्रकुमार अपभ्रंश प्रकाश पृ० ७

५ वही पृ० २१

६ चटर्जी आरिजिन एंड डेवेलपमेंट आफ् वीणासी सैन्जेज, पृ० ११४

७ दिनेशिया नृपराठी सैन्जेज एंड मिटरैज भाषा १, पृ० ४०

✓ कवियों के सहयोग से टिकाने का यत्न करने लगी। भाट—भारणादि कवियों द्वारा व्यवहृत अपभ्रंश भाषा में भी धन धनी परिवर्तन माना बकरी हो गया ताकि उस दरबारी तथा सामन्तगण समझ सकें। इस प्रकार साहित्यिक अपभ्रंश का यह विकृत स्वरूप अबहट्ट नाम से पहचाना जाने लगा।<sup>१</sup> डा० चाटुर्ग्या के अनुसार विद्यापति की अबहट्ट भी औपचारिक स्तुतिपरक दरबारी कविता की भाषा तक ही सीमित है।<sup>२</sup> इन सब तथ्यों के आधार पर निम्न बातें स्पष्ट हो जाती हैं।

(१) अबहट्ट वस्तुतः अपभ्रंश ही है।

(२) अबहट्ट नाम से अपभ्रंश की बिकसित अवस्था परबर्ती कनिष्ठ अपभ्रंश का बोध होता है, जो अपभ्रंश के साहित्यिक आधार पर बिकसित हुई।

(३) इसके विकास में दरबारी कविता की परम्परा का बड़ा भारी हाथ रहा है।

(४) अबहट्ट में स्थानीय प्रभाव अपेक्षाकृत अधिक है।

इसलिए प्रस्तुत ग्रन्थ में अपभ्रंश को व्यापक अर्थ में ग्रहीत किया गया है जिसमें अबहट्ट भी आ जाती है।

विद्यापति के पूर्वांकित उद्धरण 'देसिसबमना सब जन निदूठा' को लेकर कुछ विद्वानों ने अपभ्रंश को बेसी या देसी माना है। इस विद्या में विभिन्न विद्वानों ने काफ़ी काम किया है। पिरेसेने अपने प्राकृत भाषाओं के व्याकरण में 'देसी' पर विचार किया है।<sup>३</sup> डिक्सन ने अपने एक विस्तृत निबन्ध 'आन दी माडर्न इण्डो आर्यन् वर्निक्युलर्स' में भी इस सम्बन्ध में प्रकाश डाला है। डा० उपाध्येने बिम्बन एंसाइक्लोपीडिया आक डिटेरेचर में प्रकाशित अपने निबन्ध 'प्राकृत सिटेरेचर' में इस प्रश्न को उठाया है और डा० तनारेने तो अपनी पुस्तक 'हिस्टोरिकल ग्रेमर ऑफ अपभ्रंश' में 'देसी और अपभ्रंश' धीरे-धीरे अपने विस्तृत अध्याय लिख डाला है। विद्यापति की उक्त रंछियों के आधार पर डा० बाबूराम सक्सेना देसी और अबहट्ट को एक ही मानते हैं।<sup>४</sup> डा० हीरासास जीन स्वयंभू, पुण्यदत्त पद्मदेव सम्मन आदि अपभ्रंश के कवियों के सम्बन्ध उद्धरण लेकर सिद्ध करते हैं कि उनकी भाषा देसी की।<sup>५</sup> किन्तु प्रसिद्ध भाषाविद् जूलम्माक अपभ्रंश अर्थात् देसी इस धारणा को सही नहीं मानते। अतः देसी शब्द के प्रयोग का विकास-क्रम जानना ही ऐसी वस्तु में एक मात्र मार्ग हो सकता है, जिससे हम सच्चाई तक पहुँच सकें।

१ म० वि० भोवी अपभ्रंश पाठावली पृ० २०

२ चाटर्जी आरिजिन एंड डेवलपमेंट ऑफ वैयाली सैम्मेन—सूमिका पृ० ११४

३ पिरेसेने प्राकृत भाषाओं का व्याकरण (हिन्दी अनुवाद), पृ० १४ १५

४ डिक्सन इंडियन एंटीक्वेरी, १९३१ ३३

५ बाबूराम सक्सेना कीर्तिलता—सूमिका, पृ० ७

६ डा० हीरासास जीन पाहुड बोहा—सूमिका भाग

७ वही—पृ० ३३



देवी शब्द का प्रयोग भरत ने अपने नाट्यशास्त्रों में भी किया है, किन्तु वहाँ माया देवी नहीं है शब्द देवी है। उसकी राय में जो शब्द संस्कृत के उत्तम और तद्भव शब्दों से मिले हों, उन्हें देवी मानना चाहिए। भरत के देवी शब्द की यह परिभाषा प्रायः बहुत पीछे तक आलोचकों और व्याकरणों द्वारा मान्य रही है। बारहवीं शती के प्रसिद्ध व्याकरण हेमचन्द्राचार्य द्वारा रचित 'देवी नाममासा' ऐसे ही शब्दों को लेकर बना है जिसकी व्युत्पत्ति प्रकृति प्रत्यय के आधार पर न सिद्ध हो सके। उन्होंने उन शब्दों को देवी माना है जो 'लक्षण' से सिद्ध नहीं होते हैं।<sup>१</sup> देवी शब्द के बारे में व्याकरणों और आलोचकों की ऊपर कबित व्युत्पत्ति प्रणाली को ही लक्ष्य करके पिछले कुछ था कि ये व्याकरण प्राकृत और संस्कृत के प्रत्येक ऐसे शब्द को देवी कह सकते हैं जिसकी व्युत्पत्ति संस्कृत से न निकाली जा सके।<sup>२</sup> इस प्रकार हमें सात होता है कि 'देवी' का प्रयोग शब्द के लिए हुआ है और भरत छट हेमचन्द्राचार्य ने पिछले आदि व्याकरण मानकर बसते हैं कि प्रत्यय प्रकृति-विचार के मेरे के बाहर के शब्द देवी हैं।

भाषा अथवा बोली के लिए भी 'देवी' विशेषण धरवा संज्ञा का उपयोग किया जाता रहा है। 'तर्णावर्ष' कहा के प्रणेता वादसिन्ध ने अपनी प्राकृत भाषा को 'देवी वयस' कहा है।<sup>३</sup> ज्योत्सुन सूरि ने अपनी रचना 'कुवलयमासा' में महाराष्ट्री प्राकृत को देवी नाम दिया है और उसका प्राकृत—सम्भवतः धोरसैनी से भेद स्थापित किया है। कोठहल ने 'लीलावर्ष' कहा में महाराष्ट्री प्राकृत को ही देवी भाषा कहा है।<sup>४</sup> इन उदाहरणों से सात होता है कि भाषा के रूप में देवी शब्द का वहाँ प्राकृत के लिए प्रयोग हुआ है किन्तु परवर्ती कवियों ने अपभ्रंश को भी देवी कह कर पुकारा है। स्वयंभू ने अपनी 'रामायण—पठम चरित—'को ग्रामीण भाषा अथवा देवी भाषा में रचित बताया है।<sup>५</sup> अपभ्रंश के दूसरे एक महान कवि पुष्पदन्त ने भी 'महापुराण

१ हेमचन्द्राचार्य 'देवी नाम मासा

२ पिछले प्राकृत भाषाओं का व्याकरण (हिन्दी अनुवाद) पृ० १४ १५

३ वादसिन्ध 'तर्णावर्ष' कहा

वादसिन्धु रचया बिल्वरजो तस्य देवी वयसोहि ।

नामैव तर्णावर्ष कहा विजिता विजिता विजसाय ।

याकोनी द्वारा सल्लुमार चरित—भूमिका पृ० १७

४ कोठहल 'लीलावर्ष' कहा—सं० भा० मे० उपान्ये द्वारा भूमिका में उद्धृत पादय मासा रचया माहृत्य देवी वयस विवडा ।

५ कोठहल 'लीलावर्ष' कहा—भाषा १ १०

मजिद व पियस भाए रक्षय मरहट्ट देवी मासाए

अपाई हमीमे कहाय सग्या संय जोठ गार् ।

६ (क) स्वयंभू 'रामायण—पृथ्वी काव्य' द्वारा—पृ० २६

धृष्ट होति मुहासिय—वयनाई । गामैकभास परिहरनाई ।

में अपनी काव्य-भाषा को देशी के नाम से पुकारा है ।<sup>१</sup> एक सहस्रक ईसवी में कवि पद्मदेव ने अपने प्रसिद्ध ग्रंथ 'पासणाह चरित' की भाषा को 'देशी सहस्रगाढ़' से युक्त बताया ।<sup>२</sup> इन सब उल्लेखों से ज्ञान पड़ता है कि परवर्ती काल में अपभ्रंश देशी भाषा कहलाने लगी थी ।

जब अपभ्रंश साहित्यिक सिंहासन पर बसकू होकर रुढ़ि-ग्रन्थ हो गई तो जलन्धी दुमगा में ब्रह्महट्ट को भी देशी कहा जाने लगा । इसी प्रकार जनपदीय बोलियाँ भी देशी नाम से पुकारी जाने लगीं । विद्यापति का 'उत्सेल हमारे कवन का समर्थन करता है । महाराष्ट्र के सन्त कवि ज्ञानेश्वर ने भी देशी शब्द का प्रयोग परानी मराठी के लिए किया है । इन निर्वोचों से ज्ञान पड़ता है कि देशी शब्द का प्रयोग प्राकृत अपभ्रंश ब्रह्महट्ट और जनपदीय बोलियों के लिए समय समय पर होता रहा है । वस्तुतः देशी विशेषण एक सापेक्षित शब्द है । प्राकृत से भी पहले पाणि के लिए इस संज्ञा का प्रयोग किया जाता था । भगवान् बुद्ध ने अपना उत्तरेख देश भाषा में ही किया था और उसी भाषा में उन्हें सुरक्षित रखन का आदेश भी दिया था ।<sup>३</sup> तात्पर्य यह है कि प्रत्येक युग में साहित्यात्क भाषा के सामानान्तर कोई न कोई देशी भाषा रही है जो जनता के सामान्य समुदाय द्वारा प्रयुक्त होती रही है । उसे ही सदा देशी कहा जाता रहा है, अतः देशी का अर्थ केवल अपभ्रंश मानना अनुचित है ।

डाक्टर कीच ने अपने ग्रंथ 'संस्कृत साहित्य का इतिहास' में पहले खण्ड में भाषाओं का विवेचन किया है । उन्होंने खट और हथी का आशय लेकर यह सिद्ध करने की चेष्टा की है कि अपभ्रंश किसी रूप में कभी देश भाषा नहीं थी । यह आशय बुद्ध और बापि विवेची आक्रमणकारियों की भाषा थी और उन्हीं के साथ-साथ उसका प्रसार व उसकी प्रतिष्ठा हुई अतएव उसे मध्यकालीन प्राकृतों और आधुनिक

(ब) बही—

देशी भाषा उमय सङ्गम (कवि बुद्धकर-यण सह-विभावस)

१ पुनर्वन्त महापुरुष—१/८/१०

न विभयामि देशी ।

२ पद्मदेव पासणाह चरित

आमरणु देशि सहस्रगाढ़

उद्दालकार विद्याप पीठ ।

जह एबायह नहुनकरनयेहि

इय बिरहस्य कम्प विपनसनेहि ।

३ 'देशिन अपना शय जन मिट्टा ।

४ ज्ञानेश्वर ज्ञानेश्वरी अध्याय १८

अम्हो प्राकृते देशी करे बन्हे पीठा ।

५ डा० कोलटे विक्रम स्मृति ग्रंथ पृ० ४७९

६ नामवर सिंह— हिन्दी के विकास में अपभ्रंश का योग पृ० ८

भाषे भाषाओं के बीच की कड़ी घामना ठीक नहीं है।<sup>१</sup> यही हम डाक्टर कीम की मायदा पर विचार करेंगे। उनही यह धारणा कि अपभ्रंश मध्यकालीन प्राकृतों और आधुनिक भाषे भाषाओं के बीच की कड़ी नहीं है आज कोई नहीं मानता। भाला विज्ञान की दृष्टि से यह मायदा सत्य है। ब्रह्म का उल्लेख 'गच्छतु भूरिभरी देवविशेषाद्यभ्रंश' और मार्कण्डेय का उल्लेख प्रहार के विभाजन का आधार हमें अपभ्रंश को देव भाषा भाषने को बाध्य करता है।<sup>२</sup> उनही यह मायदा कि अपभ्रंश आभीर पुर्जर आदि विदेशी आक्रमकों की भाषा की पूरी ठीक नहीं लगती। हाँ, अपभ्रंश के विकास विस्तार और प्रतिष्ठा में अवश्य उस समुदाय का हाथ रहा है इससे इनकार नहीं किया जा सकता।

आरम्भ में अपभ्रंश को आभीरों की भाषा माना जाता था। 'आभीरोक्ति वा 'आभीरोक्तिः' का यही अभिप्राय है कि अपभ्रंश बहु भाषा है जिसका काव्य में उस समय आभीरोक्ति निम्न वर्ग के लोग प्रयोग करते थे। इसका यह अभिप्राय नहीं कि अपभ्रंश आभीर लोगों की निजी भाषा थी या आभीरोक्तिजन इस भाषा को अपने हाथ कहीं से लाये। वास्तव में आभीर या उनके साथी वहाँ वहाँ गये उगुंति वहाँ की स्थानीय प्राकृत को अपनाया और उसमें निज स्वभाषानुसूत स्वर या उच्चारण सम्प्रदायी परिवर्तन कर दिए। आभीर स्वभाव के कारण इसी परिवर्तित एवं विकृत अपभ्रंश विकसित भाषा को ही अपभ्रंश का नाम दिया गया है। इस प्रकार हमने देखा कि अपभ्रंश के साथ आभीरों का सम्बन्ध जुड़ा हुआ है, अब अपभ्रंश के विकास और प्रसार की समझने के लिए इस आति के इतिहास पर दृष्टिपात करना बहुत सहायक होगा।

आभीर आति का उल्लेख सबसे पहले महाभारत में मिलता है। नकुल के प्रतीको-विजय प्रसंग में आभीरों को सिन्धुके किनारे रहने वाला कहा गया है। राज्य-दर्भ में बलदेव की तीर्थ यात्रा के संदर्भ में आता है कि राजा ने उस स्वाग में प्रवेश किया जहाँ घुर आभीरों के कारण सरस्वती नष्ट हो गई।<sup>३</sup> अब अर्जुन पाद विभों को लेकर द्वारका से बापित लौटते हैं तो वसु सीमा और पापकर्म आभीर हमला करके महिलाओं को छीन ले जाते हैं। अर्जुन के साहचर्यपूर्ण जीवन में यही एक ऐसा प्रसंग है जब कि उसके विरहविजयी गाँधीबकी कुछ भी न बन सकी।<sup>४</sup> अरम्भ

१ कीम हिस्ट्री आफ संस्कृत लिटरेचर पृ० ११

२ स्वामसुन्दर बास हिंदी भाषा पृ० १५

३ हजारी प्रसाद द्विवेदी हिंदी साहित्य की भूमिका पृ० २४-२५

४ महाभारत-पर्व ७ अध्याय ३२ श्लोक १०

५ वही पर्व ८, अध्याय ३७ प्रथम श्लोक

६ वही, पर्व १५, अध्याय ७, श्लोक ४४-४७

उनको श्रेष्ठ के सुपर्य्युह में योद्धाओं की पंक्ति में रखा गया है ।<sup>१</sup> इन्हें धूम माला मया है ।

पाणिनी के समय में भी इन्हें 'महाधुद्र' कह कर पुकारा गया है ।<sup>२</sup> मनुस्मृति में जागीरों को ब्राह्मण पिता और अश्वत्थ याताओं से उत्पन्न माना है ।<sup>३</sup> इसी से अश्वत्थ विद्याचंकार इन्हें मारवाड़ व राजपूताने का भूख निवासी गिन्ते हैं । किन्तु अधिकार विद्वान इन्हें भारत में बाहर से आने वाले वर्ग में सम्मिलित करते हैं । आचार्य केसवप्रसाद ने जागीरों के दो वर्गों की कल्पना की है । पहली बार को जागीर बाए वे आर्यों की वर्णाश्रम व्यवस्था के भीतर ग्रहीत होकर 'धुद्रामीर' कहमाने लगे ।<sup>४</sup> दूसरा वर्ग बाह्य में आया वह उद्धत और कुटेरा बा । इसलिए वह भारतीय संस्कृति में अन्तर्भूत नहीं हुआ । आगे चल कर समय काल में वे सब इस्लाम धर्म में रीतिष्ठ हो गये ।<sup>५</sup> इन्हीं जागीरों की बोली, स्थानीय भाषा का संश्लेष पाकर अपभ्रंश के रूप में विकसित हुई, ऐसा माना जा सकता है । इन उर्ध्वों पर गंभीरता से विचार करने पर एक प्रश्न उत्पन्न है, कि असाधु उर्ध्वों के लिए प्रयुक्त किया जाने वाला 'अपभ्रंश' विशेषण संस्कृत शब्दाकरणों उल्लेखनी पंक्तियों, द्वारा जागीरी को 'महाधुद्रों' की भाषा मानकर तिरस्कार व बुरा है 'अपभ्रंश' अथवा 'अपभ्रंश' संज्ञा के रूप में कहीं जोप तो नहीं दिया गया है, जो कि फिर प्रपन्नित ही गया । जैसे हिन्दी की स्वर्णवर्षा और रोमांटिक कविता के लिए दिया गया 'आयाबाब' नाम ।

कुछ विशेषी इतिहासकारों ने, और उनके आचार पर अनेक भारतीय विद्वानों ने वैदिकयुग और बौद्धयुग अथवा ब्राह्मण और क्षत्रिय के संघर्षकी पृष्ठभूमि पर इन जागीर बुर्जर, हून आदि नवीन आने वाली बुर्जिय और साहूजी जातियों को क्षत्रियों के रूप में सम्मान प्राप्त करने का उल्लेख किया है ।<sup>६</sup> ब्राह्मण वर्ग ने अपनी प्रतिष्ठा को बचाये रखने के लिए हून, जागीर, बुर्जर आदि नवापत्युक्तों को अपनी छाया में छे लिया बा । उनको क्षत्रिय स्वीकार कर लिया और इस अपने कुछ यक्षानुष्ठानों के विधान किये । माउंट ब्याडू के अभिनवनीय क्षत्रियों का आधिपत्य इसी तथे विधान का परिणाम बा ।<sup>७</sup> कारण कुछ भी रहे हों इस में कोई संदेह नहीं कि इस जाति का प्रसार समस्त उत्तरांचल और मध्य भारत में हो गया और इनके साथ ही अपभ्रंश भाषा को फैलने व विकास पाने का अवसर मिला ।

इसा की दूसरी घटनाही में जागीरों का प्रसार काठियावाड़ तक बा, ऐसा अनुमान खरमन के एक अभिलेख से समयाया जा सकता है । काठियावाड़ में 'धुद्र'

१ महाभारत-पर्व ७, अध्याय २० श्लोक, ६

२ भाषुदेव धरम अपभ्रंश-इतिहास एक गोबल दू पाणिनी-पृ० ८०

३ मनुस्मृति अध्याय १० श्लोक १३

४ ईश्वर कुमार अपभ्रंश प्रकाश पृ० १७

५ डा० पुणे भविष्यपत्त कहा भूमिका, पृ० ५३

६ ईश्वर कुमार अपभ्रंश प्रकाश, पृ० १७

७ डा० मयवत धरम उपाध्याय भारतीय समाज का ऐतिहासिक विश्लेषण

पृ० १०२ तथा पृ० १२६

नामक स्थान पर २०२५ का एक अभियोग दिया है जिसमें उनके एक आभीर सेनापति 'रामजी' के दान का उल्लेख है। विज्ञान ऋषि अभियोग को १८१ ई० का मानते हैं।<sup>१</sup> एंथोवेन ने ईसा की तीसरी सतासी के अन्त में वाणिज्यालय में आभीरों की आधिपत्य की ओर संकेत करते हुए नागिक अभियोग (३०० ई०) में निम्नलिखित आभीर राजा ईश्वर सेन की ओर ध्यान आकृष्ट किया है।<sup>२</sup> गजुर गुप्त के प्रमाण-स्तम्भों में (३९० ई०) आभीरों का आधिपत्य गुप्त साम्राज्य की सीमा पर मानवा गुजरात राजस्थान आदि में बताया गया है।<sup>३</sup> बुराहों के अनुसार आदि भूपुरों के बाद दक्षिण आभीर जाति के ही ह्यस आवा और लगी छी के बाद ह्यस से निरस गया। उस समय छापी ने लेकर देवदत्त एक का प्रथम इष्टी के नाम पर विरवात था। आभीर छी में जब बागी जाति ने गौराष्ट्र में प्रवेश दिया तब भी वहाँ आभीरों का अधिकार था।<sup>४</sup> पण्डरी छी में गानदेव एक के लोग लैने हुये थे। आवा महीर द्वारा आभीरगु के विरुद्ध की स्थापना का उल्लेख परिशे ने दिया है,<sup>५</sup> कुछ लोग मध्य देश के मित्रपुर विरुद्ध के आदिरीरा स्थान का सम्बन्ध आभीरों से मानते हैं।<sup>६</sup>

रही के आभीरों की भी में आदि के द्वारा विन जातियों की ओर संकेत है? यह एक स्वाभाविक विमर्श उत्पन्न होता है। मोक्ष के 'गरम्भी कंटामर' में लिखा है कि गुर्जर अपनी आभय से ही गुप्त होने हैं। इस आधार पर आभीरों के साथ गुर्जरों का सम्बन्ध जोड़ा जाता है। यद्यपि गुर्जरों की बोली 'योग्य' का उल्लेख प्राचीन ग्रंथों में पाया जाता है फिर भी उनके द्वारा आभय को संरक्षण और मान्यता मिली, इसे निश्चित तौर पर कहा जा सकता है। भंडारकर और वैराज की शोधों से पता चलता है कि छी एतासी ईसवी में गुर्जरों ने गुजरात और महीरको जीता। उनकी मुख्य छाता की राजधानी भीममास की ओर दक्षिण छाता की के मध्य एक उन्हें जानुवों के कारण भीममास छोड़ने को बाध्य होना पड़ा। परिणाम-स्वरूप ९२० ई० में १८००० गुर्जरों ने सामूहिक रूप से एक साथ भीममास छोड़कर देवास्यर किया।<sup>७</sup> इन गुर्जरों के अतिरिक्त अन्य पशुपाक एवं दायादर जातियों के द्वारा भी आभय को प्रचार-मुविपाएँ मिली होंगी। कुछ भी हो आभय अपनी प्रारम्भिक अवस्था में जाते हमरी बोली रही हो पर बाद में बहुत धीरे धीरे सारे भारत की भाषा हो गयी। यह भाषा मूलतः जनता की जन जनी की ओर विदेशी नहीं थी।

१ डा० मंडारकर इण्डियन एंथिपेरी १९११ पृ० १५

२ एंथोवेन इण्डियन एंथिपेरी आफ बोम्बे भाग १, पृ० २१

३ विसेंट स्मिथ अरबी हिस्ट्री आफ इण्डिया पृ० २५६

४ एंथोवेन इण्डियन एंथिपेरी आफ बोम्बे-भाग १, पृ० २४

५ वही पृ० २४

६ ह्यारीप्रसाद द्विवेदी हिन्दी साहित्य की भूमिका, पृ० २४

७ (क) भंडारकर 'जान गुर्जर' वे, बी० बी० आर० ए० एस० २१-पृ० ४१२

### ३- अपभ्रंश साहित्य का विकास

यद्यपि हमने अपभ्रंश के काल को ४०० ई० से माना है किन्तु इस समय का कोई साहित्य साधक अपभ्रंश नहीं हुआ है। आठवीं शती से अपभ्रंश का साहित्य विकसित अवस्था में दिखाई देता है और तब से १२ शती तक छुटपुट और पर इसमें रचनाएँ होती रही हैं। समस्त भारतीय साहित्य की गति ही अपभ्रंश के साहित्य की भी वार्षिक भावनाओं से प्रेरणा मिली है। अपभ्रंश साहित्य के विकास को ठीक तरह समझने के लिए इन मूल प्रेरणाओं की जानकारी होना और ऐसा करने के लिये तत्कालीन परिस्थितियों से परिचित होना अनिवार्य है। अपभ्रंश कालीन युग और उसकी परिस्थितियों का विवरण हमारे अध्यायन में उपयोगी होगा।

#### राजनीतिक अवस्था

गुप्त साम्राज्य के ह्रास काय में—(ईसा की छठी शती में) राजनैतिक दृष्टि से पटना कन्नौज और श्रीमान महत्त्व के स्थान थे। समस्त उत्तरांचल में फैला हुआ गुप्त साम्राज्य सिङ्गुकर पटने के आस पास के प्रदेश में रह गया था। मध्य देश में मौखरियों का आधिपत्य स्थापित हो गया था। उनकी राजधानी कन्नौज की जगह बही महत्ता प्राप्त हो गयी थी, जो कि गुप्त काल में (छठी शती तक) पाटलिपुत्र (पटना) की थी। मौखरियों के अधीन होने पर कन्नौज पर राष्ट्रकुटों का आधिपत्य हुआ किन्तु इससे कन्नौज की महत्ता में रूच मात्र भी फर्क न पड़ा। कन्नौज एक विद्यालय केन्द्र था और उसका प्रभुत्व भारत में १२० ई० तक बना रहा।<sup>१</sup> पंजाब में गुजरात और गुजरातवासी प्रान्त, मारवाड़ में श्रीमान (भिन्नमास-भीनमास) और मुर्जरमा में (मरुच में) मुर्जर जाति का बसवाला था।

सातवीं शताब्दी में मौखरियों के बंध में हर्ष बैसा पराक्रमी राजा हुआ जिसने उत्तरी भारत की राजनैतिक स्थिति को संभाले रखा। इसके समय में भारत का अन्य पड़ोसी देशों से संपर्क बना रहा। दक्षिण भारत में पुसिकेयी द्वितीय एक शक्तिशाली राजा था। इस काल में भारत में अपेक्षाकृत अधिक स्थिरता रही यद्यपि पड़ोसी बहुत पड़बड़ी कहीं न कहीं चलती रहती थी किन्तु वह तत्कालीन अवस्थाओं को देखते हुए नगण्य थी।

आठवीं शताब्दी में भारत का एक नई शक्ति से पाका पड़ा। ७१२-७१६ ई० तक छिन्न और मुसलमान हिन्दुओं के हाथ से जबरों की जमीनता में चले गये थे।<sup>२</sup> यद्यपि जबरों की यह छिन्न विजय प्रयत्न करने पर भी धार्मिक क्षेत्र में बढ़ नहीं

(१) बीसस, बोम्बे गवर्नमेन्ट प्रेस-१-अंक-१ पृ० ४६२ ६६

विबेडिया गुजराती मैग्जिन एंड मिटरेवर, पृ० १२

१ डा० रमिय राजन प्रगतिशील साहित्य के मानवण्ड पृ० १२२

२ राहुन साङ्करायाम हिन्दी कव्य-भाषा-भूमिका पृ० १०

तकी विष्णु भीमाल और गुणानन्द पर इन लोगों के हृदये इन समय होने रहे । हपर छोटे छोटे राज्य भी एतित संघट्ट करने लगे थे ।

तभी राजागरी में हर्ष का साम्राज्य उत्पन्न-विभक्त हो गया था । जैसा कि पहले बताया जा चुका है अनेक छोटे छोटे राज्य क्षीयगामी बन गये थे । इनमें से बंगाल और बिहार के नाम, पश्चिम में गुजरात भागवा के प्रतिहार और दक्षिण में माय्य गेट के राष्ट्रकूट मुख्य थे । ये तीनों कभीन को हस्तगत करना चाहते थे । कभीन नगरी एक ऐसी स्वयंवर बग्या थी, जिसे राष्ट्रकूट प्रतिहार और पाल तीनों घ्याहता चाहते थे लेकिन यह स्वयंवर बग्या सीउ बनकर नहीं रहना चाहती थी । जब तीनों उम्मीदवारों को जीतना करना था—कोन आता देख छोड़ बाणभुज्य जाने के लिए तैयार है । प्रतिहार नाकनट्ट ने जीतना किया वह कभीन का स्वामी बन गया, बाकी दोनों मुहू ताभते रह गये ।<sup>१</sup>

दसवीं शती में अनेक छोटे-बड़े साम्राज्य प्रचलन बन गये थे । आगरा में छोटी बातों को लेकर लड़ने होते रहते थे । पड़पड़ और विदेही सहायता के बग पर भी धनु-गद को पराजित करना उचित समझा जाता था । स्वामीय प्रदेशों को अधिक महत्ता दी जाने लगी थी । देश बलि का संकीर्ण स्वरूप 'स्वस्वाम्य भक्ति' प्राप्त बन जाता था । इतने राजनैतिक उन्नत-भुवन के होने पर भी जनता के जीवन में कोई विशेष परिवर्तन नहीं आता था ।

ग्यारहवीं शताब्दी में महामुह ब्रजगरी के आक्रमण हुए । इस काल में प्रतिहारों की शक्ति क्षीण हो चुकी थी और फलस्वरूप उनके अधीन रहनेवाले अनेक कल बुरि तथा बौद्धान स्वरूप होने लगे थे । इन सभी स्वरूप राज्यों में परस्पर सद्भाव सहयोग और सहिष्णुताका अभाव था । वे आन्तरिक संघर्षों व वसह से जर्जर हो गये थे । इनमें से कोई भी राज्य इतना शक्तिशाली नहीं था कि वह विदेही आक्रान्तों को दीर्घकाल तक पराजित कर सकता ।

बारहवीं शताब्दी में कुछ नये राज्य फिर उठाने लगे । उत्तरभारत में पालों महकवारों, चानुवनों, चन्देलों और चौहानों के अतिरिक्त गुर्जर-सोलंकी और माकवा के परवार भी पर्याप्त प्रभावशाली हो गये थे । चम्पवर्ती सम्राट कृष्णदेव की सासना से प्रायः इन सब में संघर्ष और मनोव्यसिन्धु चलता रहता था । जबमेर के चौहानों से से पुष्कराज और बीसल देव तुर्कों से टक्कर लेते में लक्ष्मण रहे । बीसल देव स्वयं जम्प्रा कवि था ।<sup>२</sup> दिल्ली के सोहू सम्राट पर उसने पूर्वपूर्वक घोषणा की थी<sup>३</sup> कि

१ राहुल साहसरायन हिन्दी काव्य चारा—भूमिका, पृ० ३०

२ हमारी प्रस्ताव द्वितीय हिन्दी साहित्य का आर्थिक काव्य—पृ० ३३

३ वहीं—पृ० ३४ से उद्धृत

आविष्कारा हिमाद्रि विरचितविजयस्तोत्रवागप्रसंकाश

उद्गीर्णेषु प्रहृष्टी नृपतिषु विजयलक्ष्मणेषु प्रसन्न ।

आर्जवित्तं वनार्थं पुनरपि कृतवान् म्लेच्छ-विजये—

मने विष्णुपूजन से हिमात्मक तन्त्र की सभी सुनि को प्रेक्ष्य-विहीन करके समर्थ आर्मा  
मर्त बना दिया है। अपने बंधनों को पुकार कर बहकहता है कि मैंने तो हिमात्मक  
और विष्णुपूजन के मध्यवर्ती रेश को करव कर दिया है, परन्तु बायीं पृष्ठी के  
सीतने में तुम लोगों का मन उद्योग-धूम्य न हो इस बात का ध्यान रहे।

तेरहवीं शताब्दी हिन्दू-धर्म्य सत्ता के पतन का युग था। सामाजिक संकीर्णता,  
अपसी कसह शत्रु स्वार्थ और आसक्त्य के कारण नवागस्त्यु हस्ताम के ओष का ठीक  
से मुकाबला नहीं हो सका।

### धार्मिक अवस्था

अपभ्रंशकालीन राजनैतिक सधन-पुषन की संश्लिष्ट जानकारी या मने के बाद  
हमें अवगत हो जाता है कि इस युग में बौद्ध, जैन ब्राह्मण और इस्लाम इन चारों धर्मों  
का प्रचार हुआ जाता था। हमारे आलोच्य-युग के कवि-जनों में बौद्ध जैन, हिन्दू और  
मुसलमान चारों प्रकार के लोग हैं। अधिकांश साहित्य धार्मिक परम्पराओं से अनु-  
प्राप्त रहा है। ऐसी वधा में हमें आलोच्य-युग की स्थिति पर भी विचार कर लेना  
चाहिए। हमारी भारतीय नव्य-व्यवस्था ने ब्राह्मण को धार्मिक क्षेत्र में सदा से  
अपुषा मान रखा है। जब ईसा के पहले की दो तीन सदियों में यवन शक्त, आभीर  
युर्जर आदि जातियाँ बाहर से आ रही थीं उस समय ब्राह्मणधर्म और बौद्धों में संघर्ष  
जम रहा था। बौद्धों ने ऐसे विवेची वर्गों को प्रोत्साहन दिया जिससे कि ब्राह्मण धर्म  
समाप्त हो जाये किन्तु ब्राह्मण धर्म वैदिक काल से इस वरणी पर फैला हुआ था।  
छटे नष्ट न किया जा सका क्योंकि उसकी जड़ें गहरी थीं। यवन में उसने इन्हें धर्मिय  
के धर्म में स्वीकार कर अपने में अन्तर्भूत कर लिया। अशोक के समय बौद्ध धर्म ने  
एक बार पुन हिन्दू धर्म पर छा जाना चाहा। प्रतिक्रिया स्वल्प शताब्दी शताब्दी के  
अन्त में कुमारिक भट्ट ने वैदिक धर्म की पुन प्रतिष्ठा स्थापित करने का बीड़ा  
छाया। आठवीं शती में शंकराचार्य के हाथों बौद्धों और जैनो के नास्तिकवाद को  
बहुत हानि पहुँची पड़ी।

वैदिक ज्ञान के मन्त्र हो जाने पर पुराणों का प्रचार हुआ। नवीन संस्कारों  
का प्रचलन हुआ। यज्ञ कम हुआ किन्तु कर्मकाण्ड याद, तर्पणादि में पर्याप्त बुद्धि  
हुई। मन्दिरों व मठों का निर्माण होने लगा। एलोरा के कैलाश-मन्दिर के समान  
अन्य कलात्मक मन्दिर बने। शरीर तथा श्रायविशेषों का विषय स्मृतियों में स्थान  
पाने लगा। भगवान के भिन्न नामों को बेजता मानकर उनकी पूजक-पूजक उपासना

नामिरेव शाकम्भरीन्तो नमति विजयते बीसस खोपिपात्र ।

ब्रूते सम्प्रति बाह्मणतिलकी सङ्गमरी-भूपति

श्री मद्रिप्रहृष्ट एव विजयी सन्तानजानात्मजान् ।

अस्माभि करव व्यवाधि हिमवद् विष्णुस्तुतयं युव

सेप—स्वीकरनाय मास्तु मवतामुद्योग सुखं मन ॥

—इंडियन एंटीक्वेरी—अक्ट १९, पृ० २१५



कारण हो गई थी। ईश्वर की निम्न निम्न शक्तियों और देवताओं की प्रतिमों की भी पूजा होने लगी। काशी, माहेश्वरी, कोमाटी, वैष्णवी, माराही मार्चण्डी और एग्री-इन पाँच शक्तियों को मातृका नाम दिया गया है। काशी, कदाही, चामुंडा व चण्डी नामक चार और दस शक्तियों की भी कथाएँ की गईं। मानस-औरवी शिवुर सुन्दरी और सतिता आदि विषय-विभाज-परक शक्तियों की भी कथाएँ की गईं।<sup>१</sup>

भारतीय इतिहास में ब्राह्मण और शक्तियों का जब एक और भिन्न हुआ तो वह राज्यतन्त्र में कला-भूला है। अर्थिक शक्तिकृत जन-व्यवस्था में वे और ब्राह्मण की सर्वोपरि नहीं मानते थे। वे ही बौद्ध और जैन बनकर समूह हुए। पक्षि गन्धर्व-व्यवस्था उगते सामन्तपाद के सामने द्विज-भित्त हो गई और कामान्तर में बौद्ध और जैनों को भी सामन्तीय व्यवस्था के अनुकूल बनने की कसबना पड़ी। परन्तु उन्होंने एक काम किया। वे शक्ति ही पुरोहित बन नये बल्कि बौद्ध और जैन शक्ति जो वेद को नहीं मानते थे, उन्हीं सामन्तकाम के बिकाश काल में क्योंकि ब्राह्मणों से पुरोहितत्व नहीं छीन सके थे उन्होंने संघट्ट होकर अपने भीतर ही भग्नभोर परम्परा बालकर एक नये पुरोहित वर्ग को बना लिया।<sup>२</sup> कहने का बर्ब यही है कि ब्राह्मण, जैन, और बौद्ध सभी वर्ग एक दूसरे से कुछ ठाव और विशेषताएँ ग्रहण कर रहे थे।

कामान्तर में ब्राह्मण, जैन और बौद्ध वर्ग की अनेक अवान्तर घाटाएँ हो गईं। पक्षि अनेक बार इन वर्गों में छोटा बड़ा घटभट्ट या लकड़ा लड़ा हो जाता था किन्तु अधिकतर जन मानस दृष्टि से सहिष्णु ही थे। ब्राह्मण वर्ग की विभिन्न शाखाओं में परस्पर विभिन्नता होती हुई भी उनमें एकता थी। पंचायतन पूजा इसी एकता का परिणाम थी। अनेक व्यक्ति अपनी दण्डानुसार किसी भी देवता की पूजा कर सकते थे। सभी देवता ईश्वर की विभिन्न शक्तियों के प्रतिनिधि थे। कर्त्रीय के प्रतिहार पदाओं में यदि एक वैष्णव या तो दूसरा परम शैव, तीसरा जयवती का उपासक, चौथा परम साध्वि-मठ।<sup>३</sup> इन्हीं के समय में कुछ और हिन्दू देवताओं की साव-साव पूजा होती थी, कुछ काल में तो एक ही मन्दिर में गुरुदेव, चण्डी, यमुना, ब्रह्मदेव-चण्डी, वेपसायी विष्णु ब्रह्मा जैन तीर्थंकर पारश्वनाथ तथा कुछ मूर्ति भिन्न जाती थी।<sup>४</sup> यही कारण है कि इनमें तरकारीन साहित्य में प्रायः सम्प्रदाय विशेष के अतिरिक्त अन्य वर्गों तथा सम्प्रदायों के संकेत भी मिल जाते हैं।

बादलों घटी के कारण से ही शक्तियों का भारत से सम्बन्ध बनने लगा था। ब्रह्माव के कर्त्रीयों ने भारत से अनेक विद्वानों को सम्मान मुसावा या भिन्नोति भारतीय दर्शन शैलिक, बलिष्ठ और पयोषिप के बहुत से ग्रंथों के कर्त्री अनुवाद करने में सहायता की थी। बादलों घटी तक मुसलमान और सिख तक बरब फैल गये

१ दीर्घा ईश्वर हीराचन्द्र बोझा भारतीय संस्कृति पृ० २७

२ रमिय रायच प्रमोदपील साहित्य के मानवपृ पृ० १९६

३ मोरीचन्द्र हीराचन्द्र बोझा मध्यकालीन भारतीय संस्कृति, पृ० ३७

४ ब्रीहार् रायचन्द्र सिंह शिवपुरी का इतिहास, पृ० ७२

ये और बाह्यही होती तक मुसलमानी शासन कलौज तक फैल गया था। इस समय तक भारतीय समाज में सन्धीशता बर कर चुकी थी। हमारे कविबन्धु समाज में अंधमान भी नमनीयता मही बची थी। धर्म केवल बाह्याचारों और कर्मकाण्ड के सम्मान नाम में ललस कर रह गया था। इसकी प्रतिक्रिया में भागवत धर्म से अनुप्राणित हो देश में भक्ति की सहर जल पड़ी। मठों सन्तों और सूफी-सामर्थों ने बाह्यी कर्मकाण्ड के स्वान पर आन्तरिक भाव प्रकणता को महत्व दिया। विष्णु की प्रायः दूसरी सत्ताम्नी से लेकर उसकी चौबहरी सत्ताम्नी तक के इस अन्धे युग में भक्ति ने अनेक रूप तथा प्रेममयी भक्ति तपोपचारमयी भक्ति, ज्ञानमूलक भक्ति, रागात्मिका भक्ति आदि ग्रहण किये।<sup>१</sup> अनेक मुसलमान और हिन्दू सन्तों ने जाट-जाट कर्मकाण्ड, बाह्यानुष्ठान आदि भेद मूलक बातों का विरोध किया और समाज में भाईचारा स्थापित करना चाहा। कृष्ण-सन्तों ने अपने ढंग से भारतीय व्याख्यानों को कहा। इस युग के मुसलमान कवि भारतीयता में जोड़ प्रोव थे। 'संवेद रासक' के रचयिता मुसलमान कवि अब्दुल रहमान की कविता में जो भारतीय वात्सा जोस रही है यह बनावटी बात नहीं थी। अब्दुल रहमान ने देवता का समसाधारण करते वक्त अपने को मुसलमान भक्त साबित किया है।<sup>२</sup> इस्लाम की मारज में प्रतिष्ठित हो जाने पर भी अनेक हिन्दू और मुस्लिम संत परमोक्तवाच और मानव की सहज सहृदयता के बल पर सामाजिक रचना का उपदेश दे रहे थे।

### सामाजिक अवस्था

मध्यकालीन भारत की सामाजिक अवस्था का विस्लेषण करने में एक विशेष कठिनाई इसलिए उपस्थित होती है कि मध्यकाल में और विशेषतया हर्ष के बाद जाने वाले, प्रस्तुत विषय के विवेचन काम में किसी एक केन्द्रीय सत्ता के न होने के कारण सभी प्रांतों और प्रदेशों में विभिन्न रूप में सामाजिक तथा आर्थिक विकास हो रहा था। अतः हमारे अध्ययन में यह अधिक वैज्ञानिक होगा कि हम मध्यकालीन भारतीय समाज-व्यवस्था पर समग्रता से विचार कर सकें। इसी कारण से प्रस्तुत विवेचन सामान्य अवस्था को लेकर चल रहा है।

आर्थिक दृष्टि से ग्राम भारतीय समाज-व्यवस्था की धुरी रहा है। बेटी हमारा प्रमुख उद्योग था और है। सामन्तों में परस्पर संघर्ष होते रहते थे। किन्तु उनसे किसान को अधिक हानि नहीं उठानी पड़ती थी। मेगस्थनीज कहता है कि कुछ काल में भी कृषि कार्य चलता रहता था।<sup>३</sup> सिक्ता है कि दोनों पक्ष एक दूसरे के संहार में जीत रहते हैं परन्तु किसानों को कोई हानि नहीं पहुंचाता। हर्ष

- १ परमुराण चतुर्वेदी उत्तरी भारत की परम्परा, पृ० १३
- २ पद्म साहित्यमय हिन्दी काव्यधारा पृ० ४२
- ३ बर्मबीर भारती सिद्ध साहित्य, पृ० ५६
- ४ बल्लेकर प्राचीन भारतीय शासन पद्धति, पृ० २१९

के काम में भी किसान परेशानी से मुक्त था ।<sup>१</sup> सरकारीन सरकारें किसान व सेती के विकास के लिये सिंचाई साधनों का निर्माण और मरम्मत किया करती थीं ।<sup>२</sup> किसान के साथ गांव स्वशासन में स्वतन्त्र थे । ये ग्राम वेष्ट के छारे प्रबन्ध, राज नीति, व्यवसाय और संस्कृति की इकाइयों से पुष्कल थे । ग्राम जनतन्त्र अपने में सर्वथा स्वतन्त्र सत्ता होते थे, जिस पर राजपति का कुछ बल नहीं चल पाता था ।<sup>३</sup>

आसौख्य युग में भारतीय समाज-व्यवस्था का आधार वर्ण-व्यवस्था बिगड़ पड़ी थी । प्रत्येक वर्ण जातियों और उपजातियों में बिभक्त हो जाता था । छोटे छोटे कारकों से यह सब भाव बढ़ता ही जा रहा था । विभिन्न वर्णों में क्षत्रिकों का विपर्यय प्रचलित हो गया था । मनुस्मृति में कहा गया है<sup>४</sup> कि आठ में ऐसे ब्राह्मणों को न बुलाये जो कितन मांस विषयी पशुपाल और सैनिक हों । इसी प्रकार कुचीर जीवी पशुपालक सोम विवेता सैनिकार, धनुष-बाण निर्माता, पत्नी-पालन से जीवन निर्वाह करने वाला ब्राह्मण भी आठ भोजन में निषिद्ध ठहराया गया है । इससे स्पष्ट है कि ब्राह्मणों का बहुत बड़ा भाग शुद्ध कर्मकांड और स्मृति प्रतिपादित पौरोहित्य छोड़कर कृषि व अन्य व्यवसाय अपना चुका था । इति-कर्म मरम्मत में वैश्यों का ही कार्य था किन्तु बीड़ और जैन धर्म के प्रभाव के कारण अनेक वैश्यों ने उसे अपावन समझ त्याग दिया और अनेक शूद्रों ने इसे ग्रहीत कर लिया । ब्राह्मणों व क्षत्रियों के लिये भी कृषि का विधान किया जाने लगा ।<sup>५</sup> इसी प्रकार क्षत्रिय भी धर्म के साथ शास्त्र का भी अभ्यास करने लगा । अनेक शासक भाव गोविन्दचन्द्र बल्लभानन्द सप्तमगणेश बिसहराज (चतुर्थ) राजेश्वर बोल बादि अपने पारित्य के लिए प्रख्यात हैं ।

जातियों की सापेक्ष स्थिति की दृष्टि से अमर हन देखें तो स्वतन्त्र और पर अपभ्रम काम में हमारे समाज-युग में बहुत सी नई जातियों का समावेश हुआ है बहुत सी जातियों के स्तर बढ़ने हैं और बहुत सी पुरानी जातियों का परिवर्तित समावेश हुआ है ।<sup>६</sup> आचार्य तिलिचोहन सेन का मत है कि उस समय जाति व्यवस्था इसनी चढ़ नहीं थी । बहुत सी जातियों का पर उठता निरुद्धा रहता था । बहुत सी नीची जातियाँ ब्राह्मण बन गई थीं । इन जातियों में बहुत से कृषक भी थे । बहुत सी

१ अस्तौकट प्राचीन भारतीय शासन-व्यवस्था पृ० २१९

२ सरकार पोसिटिवस ईस्टीडुगान्त एण्ड प्योरीज आफ हिन्दूज पृ० १०३४

३ मावर्त एण्ड एनेक्स आम इंडिया पृ० ७५-७६

४ मनुस्मृति अध्याय ३ १ श्लोक १३१ ३२

५ वीच हिस्ट्री आफ मेडिवल हिन्दू इंडिया भा० २ पृ० १८३

६ बर्मबीर भारती सिद्ध साहित्य पृ० ८९९०

७ तिलिचोहन सेन भारत में जाति भेद पृ० ४९

जातिवादी अपने को ब्राह्मण मानती थीं, पर अन्य ब्राह्मण अपने से उन्हें हेम समझते रहे । इसी प्रकार अनेक क्षत्र जातिवादी अपने को क्षत्रिय और क्षत्रिय जातिवादी अपने को वैश्य बनाने के लिए यत्न करती रहीं ।<sup>१</sup> ऐसे ही ब्राह्मण और अन्य जातिवादी सामयिक बाह्य बलकर साम्प्रदायिक और जातिवादी भावनाओं तथा अनुष्ठानों को प्रोत्साहन और संरक्षण देती रहीं होंगी ।

समाज में बहुपत्नीत्व की प्रथा प्रचलित थी । शाताचार्य सामन्ती था । शात-याग में छुआछूत वर्ग के क्षेत्र में कर्मकांड और ऊपरी आडम्बर बढ़ जाता था । सामाजिकता बहिर्मुखी थी ।

### अपभ्रंश साहित्य की स्फुरेखा

हम पहले देख चुके हैं कि छठी सताब्दी में अपभ्रंश-काव्य संस्कृत व प्राकृत काव्य की बराबरी में आ बैठा था ।<sup>२</sup> अद्यपि अभी तक हमें इस कालकी कोई रचना उपलब्ध नहीं हो पाई है । हमें आठवीं शती की अनेक रचनाएँ अपभ्रंश में मिली हैं जिनकी काव्यगत और भाषागत ग्रीकता चिन्त्य है । अपभ्रंश में साहित्य निर्माण सोलहवीं शताब्दी तक होता रहा, किन्तु इसका उत्कर्षकाश आठवीं से तेरहवीं शती तक ही माना जाता है । वास्तविक भारतीय कार्य भाषाओं के उदय के साथ अपभ्रंश मुख्यतः वे तीन वर्ग की भाषा होकर रहे वहीं और उसमें साहित्यरचना उत्तरोत्तर कम होने लगी ।<sup>३</sup> श्वेताम्बर संप्रदाय के तीन ११वीं १४वीं शताब्दी के परमात्मा अपभ्रंश में रचना करना छोड़कर उत्कालीन लोकभाषाओं में रचना करने लगे श्वेताम्बर सम्प्रदाय के तीन विद्वानों ने ११वीं शताब्दी तक भी अपभ्रंश भाषा को अपनाये रखा । रम्भू जाति तीन कवियों के काव्य ग्रंथ इसके प्रमाण हैं ।

अध्ययनकी सुविधा के लिये अपभ्रंश साहित्य की अनेक प्रकार से वर्गीकृत किया जा सकता है । विभिन्न प्रदेशों में उपलब्ध अपभ्रंश साहित्य के आधार पर इसका प्रादेशिक-विभाजन किया जा सकता है—यथा

### १ पश्चिमी प्रदेश का अपभ्रंश साहित्य

इसमें स्वयम्भू गोपीभू, जनपास हेयवन्त अश्विनरश्मान, रामसिंह आदि कवियों की कृतियों को गिना जा सकता है ।

### २ महाराष्ट्र प्रदेश का अपभ्रंश साहित्य

१ कितिवीहल सेन संस्कृति-संग्रह पृष्ठ ११११

२ डा० हीरासाह जीव 'अपभ्रंश भाषा और साहित्य'—नामरी प्र० पत्रिका वर्ष ५०, अंक १४, पृ० १०६

३ डा० चम्पूनाथसिंह द्विवेदी महाकाव्य का ऐक्यविकास—पृ० १७२

४ अपभ्रंश साहित्य—बीर भाषाभाषणका तीन भाषा साहित्य—ना० प्र० प० वर्ष १, अंक १—२ पृ० १०

इसमें पुष्पवन्त, मुनिजनकामर आदि कवियों की रचनाएँ मूढीत की जा सकती हैं।

### ३ पूर्वी प्रान्तों का अपभ्रंश साहित्य

इसमें सिद्धों की कविता और विद्यापति की कीर्तिसत्ता को मिला जा सकता है।

### ४ उत्तरी प्रदेश का अपभ्रंश साहित्य

इसमें माधवपिप्लो के अपभ्रंश पदों की परिवचना की जा सकती है।

यदि व सम्प्रदाय की दृष्टि से भी अपभ्रंश साहित्य का विभाजन व वर्गीकरण किया जा सकता है। अपभ्रंश साहित्य के निर्माण व संरक्षण में तीन वर्ग का बड़ा भारी हाथ रहा है, यह ठप्पर दिखाना जा चुका है। इसी तथ्य को नियाह में रखते हुए अपभ्रंश साहित्य के दो विभाग किये जा सकते हैं।

क—जैन अपभ्रंश साहित्य

ख—जैनोत्तर अपभ्रंश साहित्य

### जैन अपभ्रंश साहित्य

जैन अपभ्रंश साहित्य को समग्रतः तीन उपविभागों में बाँटा जा सकता है।

१—सिद्धान्त साहित्य २—पुराण-परिचय साहित्य ३—कथा साहित्य।

१ सिद्धान्त साहित्य के अन्तर्गत उस समय साहित्य को ग्रहण किया जा सकता है जो धार्मिक सिद्धान्त सम्प्रदाय विषय की साम्यताएँ कर्मकाण्ड और भावकों के लिये आदर्श उपासना पद्धति आदि बातों को लेकर बनता हो। योगीश्वर 'परम प्रबानु' (परमार्थ प्रकाश) व 'योगसार' रामसिंह का 'वाङ्मयसौहार्द' देवनेन द्वय 'साम यजुर्मन्त्रोद्धार' जैसे ग्रंथ भी इस विभाग में स्वीकृत किये जा सकते हैं।

२ पुराण-परिचय साहित्य के अन्तर्गत तीर्थकरों, चक्रवर्तियों, बसवों वासुदेवों, प्रतिवासुदेवों आदि विरहठ श्रद्धाका पुरस्चों के जन्म जन्मान्तर की जीवन यात्राओं को उन्नीस्य बनाकर रचा गया समस्त साहित्य जा जाता है। भारतीय साहित्य में एक मुख ऐसा भी जान पड़ता है कि जब कि प्रत्येक वर्ग के जात्राओं ने बहुत बड़ा वैमानेतर पुराण साहित्य की रचना की है। विद्वानों का अनुमान है कि सामान्य जन समूह तक शास्त्र और भाषाओं की विचारधारा को लोकप्रिय तथा बोध योग्य ढंग से पहुंचाने के लिए पुराण साहित्य का आविर्भाव हुआ।<sup>१</sup> कहीं कहीं इन साहित्य बीड और जैन पुराणों में एक ही तथा एक से ही महापुरुषों की जीवन यात्राएँ मिलती हैं। ठीकही उनके अपने-अपने धार्मिक आदर्शों से उन यात्राओं में जोड़ा बहुत परिवर्तन कर जाता है।<sup>२</sup> इन्हीं धार्मिक ग्रंथों के कमलकलप रामकथा और हनुमन्त के कई कालान्तर रूपान्तरित हो गये। अस्तु। जैनो के पुराण साहित्य में पुनरुक्त प्रणीत 'महापुराण' (निगटि-महापुराण-मुधारणकार) स्वयंमुक्त 'परम-चरित' 'रिटुमेचरित' तथा 'कनकामर द्वय करकंदुचरित का अन्तर्भाव होया।

१ नामचरितहू हिन्दी के विभाग में अपभ्रंश का योग—पृ० १८४

३ कथा काव्य के अन्तर्गत हमें यह सारा साहित्य मानना होगा जो चाहे बालिक अपवा लौकिक प्रेरणा के प्रभस्वस्व रचा गया हो और काल्पनिक कथानों अपवा लोकप्रचलित कथानकों को लेकर लिखा गया है। जगन्नाथ रचित 'महोदध' कथा' एक ऐसी ही रचना है। श्रीचन्द्र कवि रचित 'कथाकोष' ऐसा दूसरा उदाहरण है।

### औरत अपभ्रंश साहित्य

औरत अपभ्रंश साहित्य के भी दो विभाग किये जा सकते हैं—लौकिक और बालिक। औरत लौकिक साहित्य में अर्थीन सेतकों द्वारा रचित समस्त कथा साहित्य, मुक्तक और कूटकर साहित्य प्रहीत किया जा सकता है। प्रेम शृंगार, और भावादि संबंधी कूटकर पद्य व बोहे अनुकरहृमान कृत 'सुखेसरासक', बिद्यापति रचित 'कीर्ति मता' आदि रचनायें ऐसी ही कृतियाँ हैं। इसी प्रकार औरत बालिक साहित्य में शास्त्राण सिद्ध भाषा सभी पंक्तियों द्वारा रचित साहित्य माना जायेगा। नाचों व छंदों के वर्णन और बोहे इसमें मिले जा सकते हैं।

तीसरा वर्गीकरण ऐतिहासिक विकासकी दृष्टि से किया जा सकता है। प्रत्येक शती के साहित्य का अलग-अलग अध्ययन किया जा सकता है।

हमारे विषय की दृष्टि से ये तीनों प्रकार के वर्गीकरण अनुपयोगी हैं। प्रवेश की दृष्टि से किया गया विभाजन वैज्ञानिक नहीं कहा जा सकता। उसके दो कारण हैं। यदि एक ग्रन्थ का निवासी सेतक दूसरे प्रदेश में जाकर रचना करता है तो उसकी रचनाओं में पहले ग्रन्थ की विशेषताएँ आवश्यक रूप से होंगी। यद्यपि प्रस्तुत वर्गीकरण में उसे हम दूसरे प्रदेशका कवि ही मानेंगे। दूसरी कठिनाई पर्वत प्रामाणिक सामग्री के अभाव में अनेक रचयिताओं के प्रदेश के संबंधमें विद्वानों में मतभेद का होता है। उक्त दोनों कारणों से प्रस्तुत प्रबंध में यह वर्गीकरण स्वीकृत नहीं किया जा सकता।

दूसरे विभाजन का आधार बालिक है। इससे बिभिन्न बसों व सम्प्रदायों के सिद्धान्तों साम्यताओं और विस्वास्तों के अध्ययन में सुवीता हो सकता है परन्तु काव्य-रूपों के तुलनात्मक अध्ययन के लिये इसकी अनुपयोगिता निर्विवाद है।

तीसरा विभाजन ऐतिहासिक है। आमतक प्रकाश में आये साहित्य को लेकर अपभ्रंश साहित्य के विकास का ऐतिहासिक ढांचा लक्ष्य तो किया ही जा सकता है, किन्तु प्रामाणिक तिथिनिर्देशों के अभाव में उसे सर्वमान्य स्वरूप नहीं दिया जा सकता। दूसरा इस प्रकार के अध्ययन व वर्गीकरण से हमें अपने अनुशीलन में कोई सहायता नहीं मिल सकती। हमें विगत कविता के स्वरूप विकास का अध्ययन करना है तो उसके लिए अपभ्रंश साहित्य का समग्र भी काव्यरूपों के आधार पर ही करना होगा। साहित्य की तुलनात्मक समीक्षा करने वाले के लिए समूचे अपभ्रंश काव्य के प्रबन्ध व मुक्तक स्वरूपों का अध्ययन ही अधिक संयत, व्यवहारी व उपयोगी होगा इसलिये इसी नीचे प्रकार के वर्गीकरण के आधार पर आगामी पृष्ठों में अपभ्रंश

साहित्य के अध्ययन का प्रयत्न किया गया है। द्विगक काव्य-रूपों के विकास को ठीक प्रकार से समझने के लिए यह पुष्ट प्रामाणिकता की उपयोक्ती सिद्ध होगी। इस घटी के धारम्भ में अपभ्रंश साहित्य के सम्बन्ध में हमारी जानकारी सीमित थी। कुमे, पाहुन बलाक, मुनि विनविजय डा० हीरासाल जीन पी० एल० बीए नैमिताम लपाम्मे नामाणी पाचुराम त्रेमी, कोसङ्ग नामची प्रकृति भारतीय विद्वानों व जेठोदी जैसे विदेशी संशोधकों के प्रयत्नों से अपभ्रंश साहित्य सम्बन्धी हमारी जानकारी बहुत कुछ बढ़ी है फिर भी उसे पर्याप्त नहीं कहा जा सकता। अपभ्रंश का विपुल साहित्य अभी तक ज्ञात और अप्रकाशित है अतः अपभ्रंश साहित्य को लेकर जो भी विवेचना की जायेगी वह अस्थिर नहीं हो सकती। अतः वहाँ केवल प्रकाशित और ज्ञात किन्तु अप्रकाशित महत्वपूर्ण ग्रंथों को आधार बनाकर प्रस्तुत विवरण दिया जा रहा है। साहित्यिक प्रवृत्तियों के विकास के अध्ययन की दृष्टि से इसका काफी होना।

### अपभ्रंश महाकाव्य

इसी नामहू आदि भाषाओं ने महाकाव्य के जिन लक्षणों व स्वरूप की व्याख्या की है उन्हीं भाष्यताओं के अनुसार अपभ्रंश के महाकाव्यों को नहीं परखा जा सकता। संस्कृत में पुराण चरित व कथा के काव्य-रूपों में आसानी से विभेद स्थापित किया जा सकता है ऐसा अपभ्रंश में सम्भव नहीं है। अपभ्रंश में चरित नाम से अनेक पुराण रचे गये हैं और पुराण नाम से अनेक काव्यग्रंथ। वस्तुतः पौराणिक काव्य और चरितकाव्यों में भयानक सा अन्तर है। स्वरूप की दृष्टि से अपभ्रंश के पौराणिक काव्यों और चरितकाव्यों में बहुत अन्तर नहीं है। पौराणिक काव्यों में विषयका विस्तार बहुत अधिक होने से संघियों की संख्या पचास से सवा सौ तक होती है जब कि चरितकाव्यों में विषय विस्तार समाहित होता है जिससे संघि संख्या अधिक नहीं होती। शेष बातों-जैसे धर्मिक तत्त्व, कहकह पंक्तिगुण आदि दृष्टि से दोनों में कोई भेद नहीं है।<sup>१</sup> अपभ्रंश के पौराणिक काव्य ही चरित काव्य हैं और चरित काव्य ही पौराणिक काव्य हैं। दोनों की दोषीय सीमारेखा बहुत धीकी है। उदाहरणार्थ स्वयंभुके 'रिद्धिमेनि चरित' को 'हरिवंश पुराण' भी कहा जाता है। वास्तविकता यह है कि अपभ्रंश के अधिकोद्यत पौराणिक एवं काव्य इतनी ही हैं। अधिक से अधिक उन्हीं पौराणिक सीली के प्रबन्धकाव्य अथवा महाकाव्य माना जा सकता है।

'कन' कहलाने वाले अपभ्रंश ग्रंथ भी ऐसे ही हैं। जननाम इत 'मविद्यत नह' जैसे प्रथम कथा से अधिक काव्यकृति हैं। चरित कथा और पुराण की तरह ही राघव चर्चरी पामु लता नैति रसावन, प्रकाश कौमुदी संक्षिप्त विमल विजय करक आदि नाम देकर भी इन काम में प्रसिद्धि-मुक्त प्रबन्ध काव्य लिखने की प्रथा प्रचलित हो गई थी जैने अपभ्रंश में 'अरत बाहुबलिरात' 'रत्नसिन्धुरात' 'संदेश

रासक' 'कीर्तिसता, जादि । अतः केवल नाम के आधार पर ही काव्य रूप का निर्णय करना भ्रुटिकर होगा ।

जैसा कि हम ब्यक्त करता चुके हैं, अपभ्रंश में प्रबन्ध काव्यों की बहुलता है । इन अपभ्रंश प्रबंधात्मक काव्यों का बहुत बड़ा भाग महाकाव्यों के रूप में है । महाकाव्यों के अन्तर्गत प्रायः समस्त पुराण काव्यों और विद्यामन्तरि काव्यों की परिचयना की जा सकती है । जाकार और सन्तु वितुवस्यास की दृष्टि से जनेक प्रबन्धात्मक काव्य खण्ड काव्य माने जा सकते हैं । ये खण्ड काव्य भी तीन प्रकार के हो सकते हैं (१) कल्पना प्रधान संवेष्ट रासक' जादि (२) ऐतिहासिक जैसे 'कीर्ति सता' (३) वृत्तादि की पद्यबद्ध कथाएँ जैसे द्युतिपंचमी रास । अपभ्रंश के उपलब्ध महाकाव्यों में प्राचीनतम स्वयंभू के 'पठम चरित और 'हरिवंश पुराण' है । उसके बाद हैं १७ वीं शताब्दी तक के ऐसे प्रमुख प्रबन्ध काव्यों की जिन्हें परम्परागत परिभाषा के अनुसार महाकाव्य माना जा सकता है, सूची नीचे दी जा रही है ।'

१ पठम चरित— (रामायण)	स्वयंभू	९० श्रविका = १ शताब्दी
२ रिद्वेमि चरित— ( हरिवंश पुराण )		११२ ८-९
३ महापुराण— (त्रिषद्विपुरिषपुराणालंकार)	पुष्पदन्त	११२ , १०
४ भविस्यत् कथा—	बनपाल	२२ , १०
५ सुवंसव चरित—	नयनमि	१२ १०
६ हरिवंशपुराण—	बनस	१२२ १०
७ बन्धुसामि चरित—	वीर कवि	११ ११
८ पासुपुराण—	पद्मकीर्ति	१५ ११ ,
९ पासचरित—	विजय श्रीधर	१२ ,, १२
१० जेमिनाहचरित—	हरिमत्र सूरि	१२
११ विद्यासवईकथा—	सिद्धसेन	११ १२
१२ करकंदु चरित—	कनकामर	११ १२
१३ पञ्चुनकथा—	सिद्ध व सिद्ध	१२ ,, १२ ,,
१४ त्रिभरत चरित—	कवि लक्ष्मण	९ ,, १३
१५ पांडवपुराण—	यश-कीर्ति	११ ,, १२ ,
१६ बन्धुपहचरित—	यश-कीर्ति	११ , १२ ,,
१७ बाहुबलिचरित—	बनपाल	१८ ,, १२ ,
१८ शान्तिनाहचरित—	सुमकीर्ति	१९ ,, १२ ,

१ डा० संभुनाथ सिंह हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकास—पृ० १७५

२ डा० संभुनाथ सिंह हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकास—पृ० १७६



११ मेहेसरचरित—	रघु	१४,, १५
२० पद्मपुराण—	रघु	१४,, १५
२१ तिरियालकहा—	रघु	१०,, १५
२२ धम्मज्झावृत्त—	सैवपास	१०,, १५,
२३ पावकुमारचरित—	माधिकराज	९,, १५,,
२४ सान्तिपाह्वरित—	महीपु	११,, १५,
२५ बटवमाच कम्बु—	अयमिहसल	११,, १५,,

डा० सम्भूताय सिंह द्वारा दी गई प्रस्तुत सूची से ज्ञतयेव हो सकता है। डा० हरचलाल ने 'करकंडुचरित' तथा 'अम्बुसामि चरित' को महाकाव्य न मानकर लघु काव्य माना है। हम इस समुची सूची को इसी रूप में ग्रहण करने के पक्ष में नहीं हैं। इसलिये हम प्रस्तुत सूची में से केवल मुख्य और प्रविष्टि रचनाओं पर ही विचार करेंगे। अपभ्रंस महाकाव्य निम्न कोटि के मिलते हैं।

(क) पौराणिक सौरी के महाकाव्य—यथा—'पद्म चरित', 'रिद्धेभि चरित' 'महापुराण' 'हरिवंश पुराण' आदि।

(ख) रोमांचक सौरी के महाकाव्य—यथा—'वसिष्ठय कथा' 'सुदर्शन चरित' 'विलासवईकहा' आदि।

यहाँ हम इन दोनों कोटि के महाकाव्यों पर विचार करेंगे। 'पद्म चरित' आकाशनि उपलब्ध अपभ्रंस महाकाव्यों में सबसे अधिक पुराना और एक महत्व का महाकाव्य है। यह राम कथा का जैन संस्करण है। राम कथा भारतीयों की सबसे अधिक लोकप्रिय कथा है और इस पर विपुल साहित्य का निर्माण हुआ है। हिन्दू, बौद्ध और जैन इन तीनों में ही यह कथा अपने अपने रूप से लिखी गई है और तीनों ही धर्म राम को अपना अपना महापुरुष मानते हैं।<sup>१</sup> अभी तक अवकाश विद्वानों का मत यह है कि इस कथा को सबसे पहले वात्सीकि मुनि ने लिखा था और संस्कृत का सबसे पहला महाकाव्य वात्सीकि रामायण है। उसके बाद यह कथा महाभारत ब्रह्मपुराण, पद्मपुराण अमिपुराण बाहुपुराण आदि सभी पुराणों में बोढ़े बोढ़े हेरहेर के साथ संक्षेप में लिखित की गई है। इसके विवाह आध्यात्म रामायण, आत्म रामायण अद्भुत रामायण आदि रामकथा की लेकर अनेक रामायण लिखे गये। जैन और बौद्ध आचार्यों ने अपने जैनिक विचारों के अनुसार इसी कथा को परिवर्तित अपना परिवर्तित एवं सम्पादित किया। बृहत्तर सांस्कृतिक भारत के आचार्य, सुभाष आदि देशों के साहित्य में भी इसका अनेक काल्पनिक के साथ विस्तार हुआ।<sup>२</sup> अपभ्रंस के आदि महाकाव्य 'पद्मचरित' की भी रामकथा होने का जैन जाता है। 'पद्मचरित' के रचयिता अपभ्रंस के प्रथम महाकवि हैं। प्राकृत की की

१ नाबूराम प्रेमी जैन साहित्य और इतिहास पृ० ६१

२ विशेष विवरण के लिए — डा० काशिमनुके रामकथा

दृष्टि में तो वह भारत के एक सर्वत्र जयमर कवियों में से एक था ।<sup>१</sup> स्वयंभू कृत 'पद्म चरित' अनेक दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण रचना है । यह ग्रंथ बारह हजार श्लोक प्रमाण में है और इसमें सब मिलकर ६० संक्षिप्तां हैं—विद्याधर काण्ड में २०, जयो घ्याकाण्ड में २२, सुन्दरकाण्ड में १४, मुद्रकाण्ड में २१ और उत्तरकाण्ड में १३ ।<sup>२</sup> इनमें ८१ संक्षिप्तां स्वयंभू की और शेष ७ उनके पुत्र त्रिभुवन स्वयंभू की हैं । ८१वीं संक्षि के अन्त की पुष्पिका में भी यद्यपि त्रिभुवन स्वयंभू का नाम है इसलिये स्वयंभू देव की रची हुई ८२ ही संक्षिप्तां होगी चाहिए, परन्तु प्रचलित में त्रिभुवन ने अपनी रामकथा — कन्या को सप्तमहासर्पोंकी या सात सर्पोंवासी कहा है इसलिये ८४ से ६० तक सात संक्षिप्तां ही उनकी बनाई जान पड़ती हैं । सम्भव है ८३वीं संक्षि का अपनी भाषे की ८४वीं संक्षि से ठीक संदर्भ बिठाने के लिए उसमें भी उन्हें कुछ कड़क बोलने पड़े हों और इसलिये उसकी पुष्पिका में भी अपना नाम दे दिया हो ।<sup>३</sup>

इस प्रकार से 'पद्म चरित' को त्रिभुवन स्वयंभू द्वारा पूरा किया गया । नागूराम प्रेमी का निश्चित मत है कि स्वयंभू का 'पद्म चरित' उनकी रचि और समस्त के अनुसार सम्पूर्ण ही था । अचूरा नहीं था । पीछे उनके पुत्र त्रिभुवन ने अचूरे को पूरा नहीं किया है बल्कि उसमें इलाफा किया है । त्रिभुवन ने जो अंश बढ़ाये हैं वे 'पद्म चरित' की प्रधान कथा के लिये अनिवार्य और प्रासंगिक नहीं हैं । डा० भासाजी प्रेमी जी के मत से अचूकमत जान पड़ते हैं ।<sup>४</sup> हम प्रेमी जी की मान्यता का समर्थन करते हैं । उन्होंने सप्रमाण इस प्रश्न को सुलझा दिया है ।<sup>५</sup>

काव्य-सौखी की दृष्टि से स्वयंभू का प्रस्तुत महाकाव्य विशेष महत्त्व रखता है । परवर्ती विमल महाकाव्यों में हमें जो विषयपदाएँ मिल पड़ती हैं उनकी परम्परा को पूर्णतः समझने के लिए प्रस्तुत रचना का महत्त्व अक्षरिब है । दिनस के प्रबंध काव्यों में जो काव्य-कड़ियाँ और शीर्षागत मोड़ जाये हैं उनमें से कुछ तो संस्कृत प्राकृत से ग्रहण किये गये हैं किन्तु अनिवार्य अपभ्रंश परम्परा के द्वारा होकर जाये हैं । काव्यात्मक में श्रेष्ठता की स्तुति विषयवस्तु का निर्देश, अपनी असमर्थता और शून्यता का निवेदन पूर्ण-कवि प्रशंसा सम्मन-स्तुति और दुर्जन-निन्दा, प्रयुक्त शब्दों का

१ राहुम साङ्करभाषन हिन्दी काव्यशास्त्र सूचिका पृ० ५०

२ 'पद्म चरित' अंतिम प्रशस्ति ।

धिरि-विज्याहार-कंडे संक्षिप्तां हुंति बीच परिमाण ।

छन्ना कंडामि तद्वा बाधीस कुनीह गनबाए ।

अठरह सुन्दरकंडे एकाहिय बीच जुगलकंडे य ।

उत्तरकंडे षेरह संक्षिप्तां जवह छम्माउ ॥

३ नागूराम प्रेमी बीन साहित्य और इतिहास पृ० २००

४ वही पृ० १०४

५ डा० भासाजी पद्मचरित सूचिका, पृ० ४३ ४४

६ नागूराम प्रेमी बीन साहित्य और इतिहास पृ० २०४





यद्य कीर्ति की रचना मान्य होती है, जो पश्चिमी वातावरण के आग पास हुए हैं।<sup>१</sup> इस ग्रन्थ का आरम्भ 'पठमचरित' के श्लोक से ही देखसुति, पूर्व कवि भ्रंश, बिभ्रता प्रसन्न, विषय की महत्ता और अपनी अस्थिरता निवेदन आदि के बाद भौतिक और मनसिक के प्रयोगों पर ही हुआ है। यह प्रयोगों की तरिका बदलवारी के पुष्पीराज पद्यों में भी है जहाँ कविपत्नी कवि से पुष्पीराज की कीर्ति को लेकर प्रसन्न हो बैठी है। अन्त में अन्धकार में इसपर गहराई से विचार किया जायेगा।

कवि ने कथा का आधार महाभारत और हरिवंश पुराण को ही रखा है किन्तु कहीं-कहीं समकालीन परिवर्तन भी कर दिए हैं। उदाहरण के लिये डीपरी स्वयंवर में मत्स्यवेषकी प्रतिष्ठा के स्थान पर केवल वनपुत्र वक्राक्ष का कवि ने उल्लेख किया है। इस परिवर्तन में जैन धर्म की अहिंसा का प्रभाव स्पष्टगोचर होता है।<sup>२</sup>

कथा को देखते हुए यदि ग्रन्थ में बिबरण की अधिकता हो तो स्वाभाविक ही होगा किन्तु कवि ने अपनी कृति को सरस बनाये रखा है कहीं-कहीं का मत ऊँचा नहीं। कुछ वर्णन का तरीका परबर्ती हिमस काव्यों के तरीके से बहुमूल साम्य रखता है। वही ध्वनि प्रभाव वही ही मर्यादामय छंद योजना और योजनाओं की सुठनेक का बीजा ही सजीव बिज देखिये—

मज्जंत समाजह । पुणमज्जंत मुहुराह ।

बिगंत अवाह । मिज्जंत गवाह ।

कोटंत बिभाह । तुटंत वराह ।

—हरिवंशपुराण ४-६।

रथ टूट रहे हैं मोड़ा मुड़ करते जा रहे हैं प्रहार से आँतें बाहर निकल पड़ती हैं नाथ धमिर से भीग रहे हैं श्वाश्वें मल्ल हो पुष्पी पर सोठ रही हैं और छत्र टूटते जा रहे हैं। वैसे कवि ने संस्कृत का विशेषतः नाथ का प्रभाव स्पष्ट है। उसने स्वयं स्वीकार किया है कि नाथ से उसने बड़े-बड़े समाजों या सम्प्रदायों का बीजा बोया है।<sup>३</sup>

महापुराण या विविदिष्ट महापुराण गुणार्णवकार पुण्यवन्त द्वारा रचा हुआ काव्य है। पुण्यवन्त नामदेव के भरत और उनके पुत्र मल्ल के आश्रित कवि थे और इन्होंने अपने कवित्व का बड़ा अभिमान था। इन्होंने अपने को कव्य-पितृव्य अभिमान-मेव कविकुलसिंहक काव्यरत्नाकर सरस्वती-निलय आदि उपाधियों से

१ हेमचन्द्र मोदी अपभ्रंश पाठावली टिप्पणी पृ० ३३-२३।

२ डा० रामचंद्र सोमर प्राकृत अपभ्रंश साहित्य और इसका हिन्दी साहित्य पर प्रभाव । डा० कोयल द्वारा पृ० ६५ पर उद्धृत।

३ हरिवंश पुराण, १-२।

आने का समकालीन कविवर्य डॉ० अक्षर-ध्वज अप्पल

४ श्री सी० एल० शर्मा द्वारा सम्पादित माधिरयचन्द्र जैन ग्रंथमाला से तीन श्लोकों में सं० १९९१, १९ और २० में प्रकाशित।

विभूषित किया है<sup>१</sup> । विद्वानों द्वारा इसका समय ईसा की दसवीं सदी माना गया है ।<sup>२</sup> उनका व्यक्तित्व तेजस्वी और प्रगल्भ था । वे स्पष्टवक्ता थे और बिमल के परवर्ती विसरकाव्य रचयिताओं की निडरता की याद दिलाते हैं । इस महाकाव्य के दो खंड हैं— आवि पुराण और उत्तरपुराण । आविपुराण में प्रथम तीर्थंकर ऋषभनाथ का चरित्र है और उत्तर-पुराण में भगवेष तेरह तीर्थंकरों की जीवन-गाथाएँ हैं, जिनका एक दूसरे से कोई विशेष संबंध नहीं ।<sup>३</sup> साथ ही में पद्मवतियों, वासुदेवों प्रतिवासुदेवों व बसवों कुल ६१ महापुरुषों की कथाएँ दी गई हैं । यह विद्यामहाय ग्रंथ अनेक दृष्टियों से महत्वपूर्ण है । राम और कृष्ण कथाओं का जीवनस्वरूप भी हमें यहाँ मिल जाता है । पुष्पदन्त के बीर योद्धा और बीर नारी के बिच उत्तर-कामीन राजपूत योद्धा और बीर भामिनी जान पड़ते हैं वही रंग वही षटक वही ठेग वही प्राणवक्ता । इस महाकाव्य में अनेक ऐसे शब्द हैं जिनका प्रयोग उसी अर्थ और संदर्भ में ङिगल में भी हुआ है । इस दृष्टि से प्रस्तुत रचना का महत्व बढ़ जाता है स्वयंभू में जहाँ सारज्य है वहाँ पुष्पदन्त में भग्नकार मोह । अवाहरण देखिये—

बहु कासु बि बेह व बहिव तिसउ अहिलसह बहरिबहिरेश तिसउ ।

बहु कासु बिबह व भनकपाठ कलबह करि मोसिय वषकायाठ ।

हरिवंश-पुराण—१२ ११ । ४३

अर्थात् किसी युद्धांग्मुख योद्धा की बधू उसे वचि तिसक नहीं भयाती वह उसे बैरी के बहिर से तिसक लगाना चाहती है । किसी की बधू अपने पति को भयत का टीका नहीं लगाती वह शत्रु के बाह्य हाथियों की पत्र-मुक्ताओं से अपने पति का टीका करती है ।

इसी प्रकार आग्ने-धामने एक दूसरे से भिड़ने को उत्तर सेनाओं का चित्रण करते हुए कवि कहता है—

जल परम बार आभिय बराहँ ओत्साभिय भिरि बिबरंतराहँ ।

बलहभिय बुभिय बिर बिसहुराहँ भयततिर रसिय वण बभयराहँ ।

भल्लभभिय बभिय सामर जसाहँ जल जभिय काभ कोवाभलाहँ ।

पय ह्य रय छरय जहंतराहँ जलभभिकय हिमयर बिभयराहँ ।

करि बाहणाहँ सपसाहणाहँ हरि हरि गीबाहिव राहणाहँ ।

आभहँ जण्यण्यहँ समुहाहँ अतिवाहालहँ थं जंज मुहाहँ ।

—हरिवंशपुराण—१२-१४। २-११ ।

१ डा० हरिवंश कोछड़ अपभ्रंश साहित्य—पृ० ७१

२ माधुराम प्रेमी जीवन साहित्य और इतिहास—पृ० १२२

३ वैदिकग्रंथास्त्री हिन्दी जीवन-साहित्य परिचीक्षण भाग १—पृ० ४८

अथवा हम इस दृष्टि से विचार सुलभ करते हैं : जैसे कवि अपनी रचना में महाभारत में प्रभावित मान पड़ता है। जिस तरह महाभारत अपने बारे में कहता है कि 'यन्निहारितं पश्यन् यत्तेह्यारितं न तरयन्ति'—अर्थात् जो नहीं है, वही अर्थ भी है जो नहीं है। वह अर्थ भी नहीं मिलेगा। पुराण एक ब्रह्म आदि कहकर कहते हैं—

अथ शास्त्र सद्यमानि सकृत्ता नीतिः स्थितिरस्यसामर्थ्यमनुभूतयो रत्नाव  
विनिवारतरवार्यनिर्मितम् ।

किं चायन्निहारितं जैनचरिते नायनं तद्विद्यते द्वावेष्टी भरतेमनुभवचनो  
पिच्छं ययोरीदृशम् ॥

—महापुराण—२९ वीं अधि-प्राद्विष्ट प्रथम

अर्थात् इस रचना में शास्त्र के सदाग समस्त नीति छत्र अंतर्कार रत, तरवार-निष्पन्न सब कुछ आ गया है। वही एक कि इस जैन चरित में जो कुछ है, वह अर्थ नहीं मिलेगा।

इसी प्रकार पुष्पीराजराजों में भीपणा की गई है—

उत्ति नम विद्यालय राजनीति नव रत्न ।

यद्भाषा पुराणं च कुराणं कथितं मया ।

—पुष्पीराजराजों—१—८९

इस परम्परा का विकास अव्युत्त है।

जन्मपात रचित मन्त्रिमत कहा मुक्त-यन्त्री का महारथ प्रदर्शित करने में उद्देश्य से लिया गया काव्य है। इसकी कथा लौकिक आधारों पर बनी है। इसकी नायिका कथाओं में लौकिक और अलौकिक का अद्भुत मिश्रण देखा पड़ता है। वही इतिहास भी है। अनेक अतिप्राकृत प्रसंगों की अवधारणा प्रस्तुत काव्य में हुई है जो इस रचना का लोचनीय बना देती है। संक्षेप में कहना यह है—

राजपुर में जन्मपात नामक एक नगरसेठ रहता था। उसने उसी नगर के एक दूसरे बौद्ध हरिवल की कन्या कमलभी से विवाह किया जिससे कुछ दिनों बाद मन्त्रिमत नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। न जाने पूर्वजन्म के किस कर्म के कारण जन्मपात का प्रेम कमलभी से हुट गया और उसने कमलभी को पीछे भेजकर एकमात्र नामक एक दूसरी लड़की से शादी कर ली। कुछ समय बाद एकमात्र से बन्धुवत् नामक पुत्र हुआ। बन्धुवत् के लज्जे होने पर उसके पिता ने उसे व्यापार के लिए देशान्तर जाने की आज्ञा दी। बन्धुवत् ने अनेक अन्य बौद्धों के साथ कंचन देश की यात्रा की। भाई को व्यापार के लिये जाते देखकर मन्त्रिमत ने भी साथ ही लेना चाहा। कमलभी ने अपने पुत्र को बहुत मना किया कि बन्धुवत् के साथ मत जाओ, लेकिन मन्त्रिमत ने बन्धुवत् पर विश्वास करके यात्रा आरंभ कर दी। यात्रा पर जाने से पहिले बन्धुवत् की माता ने अपने बेटे से कहा कि अवसर पाकर तुम

भविष्यवत् को समुद्र में सटाकर फेंक देना, दूसरी ओर कमलम्बी ने अपने पुत्र भविष्यवत् को नीति और सलाहकार की बातें बताईं व उनके पासन का उपदेश दिया । यात्रा आरम्भ होने के कुछ अरसे बाद अज्ञानक तुफान का मया और इस सार्धकी नौकाएं तिलक द्वीप से जा लगीं । वहाँ उतरने पर जब भविष्यवत् उपाधमा के हेतु पुण्यादि जाने कहीं चला गया तो बंधुवत् उसे उस द्वीप में अकेला छोड़कर चल पड़ा ।

अकेला भविष्यवत् इधर-उधर भटकते हुए एक ऐसी वैभवशाली नगरी में पहुँचा जो जन-सुख थी । वहाँ उसे एक सुखी मिसी और वहीं एक राजस भी का टपका । उसने उन दोनों का विवाह करा दिया । बारह वर्ष तक उस नगरी में सुख पूर्वक जीवन बिताने के बाद भविष्यवत् अन्त में अपार जनराशि लेकर अपनी पत्नी के साथ घर चलने को प्रस्तुत हुआ । ज्यों ही वह समुद्र तट पर पहुँचा उसने अपने सीतेले माई बंधुवत् को देखा, जो अपने घर बापिस सीठ रहा था । बंधुवत् ने अपने किए पर परमात्मा प्रगट किया । चलने से पहले भविष्यवत् ज्योंही जिन-मण्डिर में प्रणाम करने गया, बंधुवत् उसकी पत्नी सहित सारी जनराशि लेकर निकल गया । घर आकर बंधुवत् ने भविष्यवत् की पत्नी को अपनी भावी पत्नी बतलाया और विवाह इत्यादि की विधि निश्चित कर ली । इधर भविष्यवत् की माँ धृत्-पंचमी का ब्रत रक्ती है और भविष्यवत् जिन-पूजा करता है । फलस्वरूप उसकी सहायता के लिए एक देव उपस्थित होता है । उस देव ने भविष्यवत् को अपार जनराशि की ओर संकुलन उसके घर पहुँचा दिया । भविष्यवत् ने वह पहुँचकर अपने माई बंधुवत् की पोल खोस दी और राजा से न्याय की करिवाह की । राजा ने बंधुवत् को बंध बैकट भविष्यवत् को उसकी पत्नी बापिस बिना दी । वहीं प्रथम अष्ट समाप्त होता है ।

दूसरे खंड में कमलम्बी प्रकार की कहानियाँ हैं । पहली तो यह कि कुहराज और लक्ष्मिना-नरेश में सझाई हुई जिसमें भविष्यवत् का काम महत्वपूर्ण रहा और उसीके पराक्रम से कुहराज की विजय मिली । पुरस्कार स्वरूप राजाने अपना राज्य और अपनी पुत्री भविष्यवत् को दी । कहानी का अन्तिम मोड़ यह है कि उसमें भविष्यवत् के विविध पूर्वजन्मों की बहुमूल कहानियाँ कही गई हैं और जिनके सुनने-पर वह अपने पुत्र सुभ्रम को राज्य दे कर उपस्था को निकल पड़ा । कहानी के पहले खंड में लोक कथा का तो सहज रस है वह अन्तिम खंड के छोड़ेय मोड़ से मष्ट हो जाता है । संभवत इसीलिए जनपान ने स्वयं ही इस कथाके दो खंड कर दिये हैं ।<sup>१</sup>

जैसाकि अभी हमने देखा 'भविष्यवत् कहा' एक लोककथा की सरसता लेकर जबी । प्रसंगानुक्रम काव्यमयता भी इसमें है । देखिये बुद्धों बुद्धसार योशार्जों का हाल—

ती हरि चर करुण्य सर्वाद्वाहृत रज्जु अतोरने ।

न भवमन्तराभि संपुनकण भूय समंभयारने ॥

—भविष्यवत् कहा—पृ० १०२-३ ॥



अर्थात् षोडशों के तीक्ष्ण धूराओं के संघर्ष से उत्पन्न रखे छोड़ने रहित मुख मूर्ति प्राप्त हो गई । वह रज मानों योद्धाओं की अभ्यास से उत्पन्न भूया हो ।

इस संघ की भाषा में बहुत से शब्द इस प्रकार के प्रयुक्त हुए हैं जो प्राचीन हिन्दी कविता में यम-तन्त्रबिछाई दे जाते हैं ।<sup>१</sup> इसी प्रकार से कथा में चित्रित पोषक पुर के राजा का चरित्र भारतीय सामन्तवादी चरित्रों का ही प्रतीक है ।

चक्रवर्ति द्वारा १२२ संश्लेषों एवं १८ सङ्कल्प श्लोक परिमाण में रचित हरिवंशपुराण अभी तक अप्रकाशित है । इसकी एक प्रति भूसे कारंवा के ज्ञानभंडार में देखने को मिली उसमें से मैंने कुछ स्थलों का निबेल उतार लिया है । उसी के आधारपर प्रस्तुत जानकारी दी जा रही है । बड़े प्रस्तुत संघ में कोई विशेष बात नहीं है । जैनो के हरिवंश पुराण कथाओं की परम्परा से ही इसे लिया जा सकता है । कथा का स्वरूप यही है जो स्वयंभू तथा इतर जैन कवियों में उपलब्ध है । हाँ कुछ वर्णन बड़े सजीव हैं । वे परवर्ती हिमाल-वर्णन और काव्यों की परम्परा की पूर्ण सद्दी हैं, इसे आसानी से कहा जा सकता है । उदाहरण है—

रघुवर रघु ममहृमठ भाविक, बाभूकक बाभूक परायत ।

पुरत पुंनय कुक्षय बिहृनक, अतिवन्धरतु मनु मय बतत ।

मज्जहि मज्जि तुर हय हितहि गुनु गुनत मयवर बहु बीसहि ।

इनुइनु मात मात पमचतिहि ।

मसिय वरति रेणु बहि बाधत लहु पिचमुठत कुठत वाधत ।

पिककारत करति सिबदाकणु मुम्मई मुइक भमति किरिराकणु ।

ममहस सेत कुंठतर भिन्ना गय वर हय करवासहि क्षिप्वा ।

वर वर बाह पथिय वो क्षथिय वर लवचमि पकर कहि मडिया ॥

बिबहि ठकात्रका मुधिहि मडा मडा ।

कूत मात बारिया लज्जहि विमारिया ।

जीव मात मैलिया कामरा निचस्तिया ।

कण्य हृत्त कुनहो सीहमाई मुक्कहि । ८९-९०

अर्थात् रबी रथकी ओर गय यम की ओर बीड़ा । बाभूकक बाभूक की ओर भाषा । षोड़ा षोड़े से निश्चय निश्चय से ओर अति निर्णय हो कथन से जा बिड़ी । बाध ओर ओर से बज रहे हैं, षोड़े दिनहिना रहे हैं और हाथी बिबाकते हुए विलाई दे रहे हैं ।

—मारो मारो सैनिक भिन्ना रहे हैं ? पञ्चालित मूर्ति आकाश में छेक रही है । बीघर रक्त मोमय पिशाच फिर जाते हैं । श्रुमान् भयंकर शब्द कर रहे हैं । रत्नरचित मोटा तलवार धूम रहे हैं घट्ट भिद्य हो रहे हैं हाथी और षोड़े तलवारों से घिर हो रहे हैं राजा हिमा निमज्ज हो गिर रहे हैं ।

१। डा० हरिवंश कोटक अपभ्रंश साहित्य—पृ० १०२

२। यही—पृ० १०१-१०७

मोटा बिड़ही रहे हैं, घट मुछित हो रहे हैं कोई भालों के प्रहार से बिरींग हो रहे हैं, कोई सड़म से छिन्न त्रिन्न हो रहे हैं, बीबन की भाषा को छोड़ कामर भाग रहे हैं ।

इस प्रकार हमने कुछ प्रमुख अपभ्रंश के महाकाव्यों का अपने नियम की अनुकूलता के सूचन में अध्ययन किया । यहाँ जान बूझकर इन महाकाव्यों का सांख्यिक अध्ययन नहीं किया गया है, क्योंकि ऐसा करना हमारे अध्ययन के लिए अनावश्यक ही नहीं अनुचित भी होता । अतः द्विगत काव्योंकी सूचिका की दृष्टि से इन काव्यों के बीररसात्मक अंशों को ही यहाँ प्रस्तुत किया गया है ।

अपभ्रंश खंडकाव्य

अपभ्रंश खंडकाव्यों का निम्न प्रकार से विभाजन किया जा सकता है ।

- १—शुद्ध धार्मिक दृष्टि से लिखे गये काव्य, जिनमें किसी धार्मिक या पौराणिक महापुरुष के चरित का वर्णन किया गया है ।
- २—धार्मिक दृष्टिकोण से रहित ऐतिहासिक भावना से युक्त काव्य, जिनमें किसी लौकिक घटना का वर्णन है ।
- ३—साम्प्रदायिक भावना बिहीन ऐसे काव्य जिनमें किसी राजा के चरित का वर्णन है ।

प्रथम प्रकार के इन काव्य ग्रंथों का विवेचन ही यहाँ अभीष्ट है, जिनसे द्विगत काव्यकर्मियों को समझने में सहायता मिले । इस दृष्टि से सबसे पहले पुण्यवन्त विरचित ग्वायकुमार चरित पर विचार किया जाय । यह कवि पुण्यवन्त द्वारा रचा हुआ है संनियों का एक खंडकाव्य है जिसका उद्देश्य श्रुतपंचमी व्रत का महारम्य प्रदर्शित करना है । अनेक कथात्मक कद्वियों अलौकिक घटनाओं तथा इन्द्रबाबादि के वनस्कारों से भरे इस कथाकाव्य में हर्षा कच्छ, शौर्य स्नेह आदि बखानों के सुन्दर चित्र हैं । कथा के नामक नायकुमार को कवि ने बीर रसका आभय दिखाया है । यह बीररस शृंगार से परिपुष्ट है ।<sup>१</sup> नायकुमार के शौर्य और शौर्य को देखकर मोहित हुई स्त्रियों की उद्विग्नता का कवि ने सुन्दर वर्णन किया है ।—नायकुमार के शौर्यसे उद्भूत नारी हृदय के प्रेम की व्यंजना कवि ने स्वान-स्वान पर की है । ऐसे स्वसोंपर शृंगार रस बीररस को समृद्ध करता है । प्रस्तुत कृतिवले देखकर बीर और शृंगार की उस संयुक्त धारा की परम्परा का परिचय मिलता है, जो परवर्ती द्विगत रचनाओं व हिन्दी के अन्य बीर काव्यों में प्रवाहित होती रही । नायकुमार मयब देशीय कनकपुर के राजा बर्यवर की दूसरी रानी पुष्पीदेवी के पुत्र थे । बर्यवर की पहली रानी विशालसेना भी बीर उससे उन्हें भीमर नाम का एक पुत्र भी हुआ था । राजा ने दूसरी शारी यों की कि इनके यहाँ एक दिन एक अनुभूत व्यापारी आया और उसने राजा को गिरिधर की राजकुमारी पुष्पीदेवी का चित्र दिया । जिन राजा को इतना

पसंद आया कि उन्होंने उस राजकुमारी से शादी कर ली । बाद में मासूम हुआ कि व्यापारी के बैग में स्वयं पातल ही आए थे ।

पृथ्वीदेवी रानी होकर आई तो सेकिम पहली रानी विद्यालयेन के बीमब से उन्हें ईर्ष्या होने लगी । एक दिन जब विद्यालयेन राजा ने छाय उद्यान में भीड़ा के लिए गई तो पृथ्वीदेवी जिन मंजिर पसी आई । यहाँ मुनि विहिताभय से उन्हें धर्मो पदेश दिया और छाय ही पुत्रवती होने का आशीर्वाद भी । नामकुमार उस पुत्र का नाम इसलिए पड़ा कि पुत्र उत्पन्न होने के बाद राजा और रानी पुत्रको लेकर फिर मुनि के दर्शन के लिए गए । इसपर राजा रानी मुनिसे बात करते थे । उपर पुत्र कर्मों पिर पड़ा । कर्मों में एक माग में उस राजकुमार की रसा की और वहाँ से वह राजकुमार को माय-मोक से गया । वहाँ उसका नाम मायकुमार हुआ और उसने एक नामकन्या से शादी भी की । कुछ दिन मायसोक में रहने के बाद मायकुमार पृथ्वीपर आया । यहाँ उसने अपनी माँ की दुर्दशा देखी । राजा ने उसे दण्ड देकर उसके सभी आभूषण छीन लिए थे । मायकुमार अपनी माँ को आभूषण पहनाने के लिए जुआ खेलने गया और जीतकर बहुत से आभूषण से भी आया । जब राजा ने यह सुना तो स्वयं भी उसे जुआ खेलने के लिए बुलाया और अपने पुत्र से कूदे में सात राज-पाट हार बैठा । मायकुमार ने कैवल अपनी माँ के पहले लेकर बाकी सब कुछ पिता को सौटा दिया ।

नामकुमार के ऐसे ही प्रतापी कार्यों से सोतेसे आई बीबर को ईर्ष्या हुई । उसने नामकुमार की हत्या करने का प्रयत्न किया लेकिन सफल न हो सका । इसके विपरीत मायकुमार ने विषकुल हाथी का टीका करने जैसे बीबट के कार्यों से लेकर बंछीबादन जैसे कलापूर्ण कार्यों में भी उसके ऊपर विजय प्राप्त की । इस विजयिसे में मायकुमार ने अनेक साधिकाँ की लेकिन सभी रानियों में उसे लक्ष्मीपती ही प्रिय थी । एक दिन उसने मुनि विहिताभय से इसका कारण पूछा तो उन्होंने बताया कि पूर्वजन्म में दोनों ने 'सुतपञ्चमी' व्रत किया था । इसपर मुनि 'सुत-पञ्चमी व्रत' का विधान बताते हैं । नामकुमार बहुत पितृ तन्य सुकपूर्वक जीवन बिताने के बाद अंत में तपस्या करने लगे खुते हैं और मोक्ष प्राप्त करते हैं ।<sup>१</sup>

'असह्य चरित कवि पुण्यवन्त द्वारा चार संधि में लिखा गया काव्य है । असह्य वा मसोहर की कथा और साहित्य में बहुत प्रसिद्ध है । यह कथानक और सम्प्रदाय में इतना प्रिय रहा है कि सोमदेव बाहिराज बासवसेन सोमजीति हरिसद्व समाकस्यान आदि अनेक विगम्बर लेखकोंने इसे अपने अपने रंग में प्राकृत और संस्कृत में लिखा है । कथा संक्षेप में निम्न है ।

धोबेब-देवीय राजपुर नगर में एक दिन कापामिकाचार्य श्रीरत्नानंद पचाते । उनकी महिला सुनकर राजा ने उन्हें पाछ बुलाया और आकासमें चढ़ने की छिद्रि मानी । श्रीरत्नानन्दने इस छिद्रि की प्रप्ति के लिये देवी की विधिवत् पूजा का विधान बताया । पूजा-विधिका मुख्य अंग वा नरसुग्मकी बलि । राजपुरुषों को तत्काल आजा

हुई और वे नगर में घूमते हुये दो बालक और बालिका शूल्सकों को पकड़ लाये । ये शूल्सक सुवत्त नामक तपस्वी के शिष्य थे । राजा के सामने जब ये शूल्सक लाये गये तो उनके मुखपर कुछ ऐसे सामुद्रिक चिन्ह दिखाई पड़े कि राजाने उनके रूप की आशा होने की बगल उनका परिचय पूछा । शूल्सकों ने अपने गुह से बीसा सुना या, उसीके अनुसार उन्हें अपने पूर्व जन्म की सारी कहानी सुना दी । कथा प्रसंग में भेद सुना कि हममें एक पूर्व जन्म का यक्षोवर है और दूसरी बालिका उसकी माँ है । विविध कर्मों के अनुसार ये कभी पक्षु योनि में पैदा हुए और कभी मर योनि में, कभी पति पत्नी के रूप में कभी साई-बहिन के रूप में और कभी माँ-बेटे के रूप में । वर्तमान राजा और रानी भी उनके साथ पूर्व जन्मों में अभिन्न रूप से जुड़े हुए थे ।

यह सब सुनकर राजा को बड़ा परचाठाप हुआ और अंतमें धैरवान्त्यके साथ राजा-रानी शूल्सकोंके मुख सुवत्त के पास जाकर जीवनधर्म में दीक्षित हो गए ।<sup>१</sup>

इसकी पूरी कथा बड़ी ही पेचीली है—केसा के पात-यात में पात की तरह इसमें कहानी के भीतर कहानी है, माना जन्मांतरों की ऐसी पेचीली कहानी अपभ्रंश में कोई नहीं है ।<sup>२</sup>

‘नामकुमार चरित’ तथा ‘बसहूर चरित’ में भारतीय कथा साहित्यकी विविध विशेषताएँ बीज पड़ती हैं । अनेक स्थलों पर लोकविश्वास छनर छटे हैं । परवर्ती राजस्थानी बात साहित्य में इन्हीं के समान अलौकिक तरलों की भरमार है जो भारतीय कथा साहित्यकी अभिव्यक्ति कायकी चोख है ।

नगर्नदी द्वारा रचित ‘सुवर्चस चरित’ अपभ्रंश की एक महत्वपूर्ण रचना है जो बारह संक्षिप्तों में लिखी गई है । चंपापुरी में अक्षयमयास नामक एक श्रेष्ठीका एक पोताक मित्र था । पञ्चमस्कंद के कमस्वरूप ब्रह्म परले पर बहू गोपाल अपने मित्र श्रेष्ठी के यहाँ अन्मा । उसका नाम सुवर्चस रखा गया । सुवर्चस का विवाह वहीं के एक जन्म श्रेष्ठी सानरवत्त की पुत्री मनोरमा के साथ हुआ । विवाह के अवसरपर ही जानेबाली दावत और भोजन का वर्णन कवि ने बमकर किया है । परवर्ती हिन्दी-राजस्थानी रचनाओं में इस प्रकार काय पद्याचोंकी परिमलना करने और बमकर वर्णन करने की प्रवृत्ति लीक पड़ती है । बाड़ीबाहुल राजाकी रानी अमया सुवर्चस पर मुग्ध हो अपनी एक पंडिता सखी के द्वारा उसे बुलवा र्यपाती है । पर सुवर्चस अपने बावर्चस नहीं डिगता । कमस्वरूप रानी मूठ मूठ छोर मचाकर सुवर्चस को गिरफ्तार करना बेटी है । एक अठिमायन-रूप जाकर सुवर्चस की रखा करता है । राजा परावित होता है । कवि फिर नायिक जहेत्य से पञ्चमस्कंदका महारम्य प्रतिपादित करता है और इस प्रकार काव्य का अन्त होता है ।

नगर्नदी की भाषा और वर्णन शैली को देखने में ‘सुवर्चस चरित’ निस्तन्देह

१—नामवरसिंह हिन्दी के विकास में अपभ्रंश का योग—पृ० २२५

२—नामवर सिंह, हिन्दी के विकास में अपभ्रंश का योग—पृ २२५

अपभ्रंश का एक संक्षुब्ध वाक्य सिद्ध होता है। कवि ने तो इसे पूर्णरूप से शोध रहित पोषित किया है।<sup>१</sup>

मुनि कलकामर द्वारा रचित 'करकंड वरिष्ठ' १० संक्षिप्तों में रचा हुआ एक रोचक लंछनात्म्य है। तीन चौथाई भाग में करकंडकी मुख्य कथा है और शेष में भी आशान्तर कथाएँ हैं, जिन्हें राजा को नीति की शिक्षा देने के बहाने कहा गया है। चम्पा के सासक पांडीबाहुन एक बार बोहव इच्छा पूरी करने अपनी पत्नी पद्मावती के साथ हाथीपर चूमने निकला। हाथी बिगड़ उठा। रानी ने राजा को अपने प्रान्त बचाने को राजी किया और स्वयं हाथी पर ही बैठी रही। हाथी के अलाप में प्रवेश करने के बाद वह संकुचन उत्तर जाती है। उसे पास के समथान में एक पुत्र होता है, जिसे एक विद्यापर ले जाता है। बच्चे के हाथपर कंडु अर्थात् दुबली होने के कारण वह करकंड कहलाता। यही पुत्र विद्यापर द्वारा पोषित होकर बन्तिपुरका कालान्तर में राजा बना। चम्पानरेश ने करकंड को अपनी अधीनता स्वीकार करने को कहा। फलस्वरूप करकंड भीरु उसके पिता चम्पानरेश में युद्ध हुआ। रानी पद्मावती ने दोनों का परस्पर संबंध बताकर शान्ति स्थापित कर दी। पिता पुत्र को राज्य के बन में तपस्या के लिए चले गये।

इसके बाद विमलकवि की कामना से करकंड चेर भोल पांड्यनरेशों पर आक्रमण करता है और संकष्टा पाता है। फिर अनेक अलौकिक घटनाओं के वास्तविक में सहासा संकट उठाता किन्तु अन्त में सिद्धि पाता वह अपनी राजधानी आ पहुँचता है। नगर में एक बार धीनमुष्ट नामक मुनि जाते हैं। वे राजा को प्रबोध देते हैं। फलस्वरूप करकंड अपना राज्य अपने पुत्र को देकर संन्यासी हो जाता है। प्रस्तुत कृति के युद्धवर्जन अनुराजनात्मक शब्दों के संयोजन से अत्यधिक प्रभाव-मय हो गये हैं।

बाह्य कवि विरचित 'पद्मसिरी वरिष्ठ' चार संक्षिप्तों का खंड काव्य है। यह काव्य धार्मिक आचरण से आनृत एक सुस्वर में कथा है। पद्ममी कथा की नायिका है। वह न तो ऐतिहासिक पात्र है और न पौराणिक ही। कवि ने पूर्ण अम्म की कथाओं का वर्णन कर अज्ञाना बाह्य है कि प्रत्येक व्यक्ति अपनी करनी के अनुसार फल पाता है और प्रयत्न करने पर अपने सद्कायों और पृथ्वय जीवन से मोक्ष प्राप्त कर सकता है। कविकी साहचर्यता ने काव्य को सरल बना दिया है। पद्ममी का विधोम वर्जन राजस्थानी लोकगीतों की विरहिणी गायत्री यात्रा दिसा देता है। यही सरसता है सादरी है और जीवन है। विमल के लिए प्रस्तुत इतिहास विषय महत्त्व नहीं। बाह्यी शशी में ही रास या रासक नामक काव्य विषाका भी पद्य दिखाई देता है। इसका प्रथमस्वरूप हमें घातिमहामुरि (वि० १२४६) के भरत बाहुबलिरास में मिलता है। रास काव्यों में अगले अध्याय में विस्तार से विचार किया जायेगा। भरतबाहुबलि रास भीरु रासका काव्य है जिसमें भरत तथा बाहुबलि के परस्पर युद्ध का वर्णन है।

इस काव्य में हमें उस रूढ़ मुद्र-वर्चन-शैली का रूप मिलता है जो बाद के श्रीरामायण काव्यों की विशेषता बन गई है ।<sup>१</sup>

अस अमाम करिमास नु स कइतस कोरव । ३।  
 झलकई सावस सखन-येतहम मसल पमव । ३।  
 सिबिणि नुप टंकार सहित बागाबनि ताणई  
 परमु उमानई करि बरहू पाठा उलाई ॥

इसकी भाषा परिनिष्ठित अपभ्रंश से आये की स्थिति की बात पड़ती है क्योंकि इसमें नव्यभाषाओं का स्वरूप जगह जगह साँक उठा है ।

अपभ्रंश के दूसरी कोटि के संस्कारों में 'संदेशरासक' एक मात्र उत्कृष्टनीय रचना है । अरहमाम का 'संदेशरासक' अनेक दृष्टियों से महत्त्व का स्थान रखता है । इस काव्य का रचयिता आठि से मुगलमान होते हुए भी संस्कृत तथा प्राकृत काव्य परंपरा का पुरा जानकार दिखाई पड़ता है । परम्परागत काव्यरूढ़ियों का जो प्रयोग संदेशरासक में मिलता है, वह इसका प्रमाण है । संदेशरासक की भाषा यद्यपि पूर्वतः परिनिष्ठित अपभ्रंश नहीं कही जा सकती, तथा यह उसकाव्य की रचना है, जब नव्य भाषाओं का उदय होने लगा था ।<sup>२</sup> तथापि संदेशरासक की भाषा में नव्यभाषाओं का आदि रूप इतना स्पष्ट नहीं हुआ है । संदेशरासक की भाषा उस स्थिति का संकेत करती है जब उसमें आगे बढ़ने की सामंसा थी है पर रह रह कर पुरातन का प्रभु उसे पीछे खींचे लिए जा रहा है ।<sup>३</sup>

संदेशरासक एक संदेशकाव्य है । कथामुक्त इतना ही है कि विजयनगर की एक प्रोपितपति का अपने प्रिय के विमोह में रोती हुई एक दिन राममार्ग से जात हुए बटोही को देखती है और रोड़कर उसे रोकती है । पथिक को रोड़कर उससे पूछती है कि कहाँ से जा रहे हो और कहाँ जाओगे ? पथिक बतलाता है कि मैं रामोर से जा रहा हूँ और स्वर्गतीर्थ को जा रहा हूँ । स्वर्गतीर्थ का नाम गुप्त से ही नायिका मान-विह्वल हो गठती है और पथिक से कहती है कि मेरा प्रिय अर्ध प्राण के लिए खंभाट गया है कृपाकरके मेरा संदेश उसे दे देना । इस तरह वह धम-धम कर धीरे धीरे अपनी विरह-मय्या कहती जाती है । पथिक जाने की जल्दी मन्नाता है फिर भी नायिका के स्नेह से प्रभावित हो रुक जाता है । वह पूछता है—तुम्हारा पति किस जगह में तुमसे अलग हुआ ? यह प्रश्न नायिका में अतीत स्मृति जगा देता है । उसे याद आता है कि तब भीष्म का जब उसका पति उसे छोड़कर गया था । सालभर पुरा हो गया । इसके संदर्भ में उन्होंने जगहों में विराहिल की गया अवस्था रही, इसका व्योम दिया

१—भोलाचंदकर व्यास हिन्दी साहित्य का मूह्य इतिहास खंड १-पृ० १४१

२—मुनिबिनविजय संदेशरासक—भूमिका—पृ ११

३ भोलाचंदकर व्यास हिन्दी साहित्य का मूह्य इतिहास खंड १, पृ४ १२१

है। काम्य का तीसरा प्रक्रम इही पद्यभूत वर्णन के हेतु रचा गया है ऐसा जान पड़ता है। पदिक को संक्षेप देकर गायिका ज्यों ही बिदा करती है कि वक्षिण दिशा में उसका प्रिय उसे आते बीर जाता है।

‘रासक’ शब्द का ‘रास’ नाम से मिले हुए काम्यश्रवण अपभ्रंश में तथा उसके बाद पुरानी रासस्थानी और हिन्दी में भी मिलते हैं लेकिन विषय को देखते ‘संक्षेप रासक’ उन सबसे भिन्न है। उससे मिलता जुलता केवल एक रास काव्य रासस्थानी में है—‘बीसमदेरास’<sup>१</sup>। अथवा काम्य रासनाम्य एक तरह से चरितराम्य है जिनमें किसी राजा के युद्ध और बिवाह की कहानी बखित बिछाई पड़ती है।

संक्षेप रासक के अनेक स्पष्ट मावसोदर्य, चिन्ताधारा अभिध्वजना की तीव्रता और तात्परी की दृष्टि से चिन्त्य है। उसकी जैसी ही उत्तिष्ठा और भावनाएँ हमें हिमस व दिगस की अनेक परवर्ती रचनाओं में स्पष्ट बीस पड़ती है।

तीसरे प्रकार की रचनाओं में बिद्यापति रचित कीर्तिसत्ता महत्त्वपूर्ण रचना है। यह एक ऐतिहासिक चरित काव्य है जिसमें कवि ने अपने प्रथम आभयदाता राजा कीर्तिसिंह के मरका पान किया है। अपभ्रंश में इस प्रकार की यही एकमात्र उपलब्ध रचना है। इस प्रकार के अनेक काम्य भी रचे गये होंगे किन्तु वे या तो संरक्षण के अभाव में नष्ट हो गये होंगे अथवा अभी भी अज्ञात होंगे। चरित काव्य होते हुए भी कीर्तिसत्ता एक दृष्टि से तथाकथित अथ ऐतिहासिक काव्यों से भिन्न है। इसमें ऐतिहासिक तथ्यों या घटनाओं को बिकृत नहीं किया गया है। इसलिये चरितकाव्य होते हुए भी कीर्तिसत्ता में के कथानक बर्णन बहुत कम पाई जाती है जो उत्कासीन और बाद के चरितकाव्यों में गरी पड़ी है। कीर्तिसत्ता चार पल्लवों में विभाजित है। रासो में कवि और कवि की पत्नी के संवाद से कथा का आरम्भ होता है और बीच बीच में छुक और सुकी पूछते रहते हैं। कीर्तिसत्तामें मृग और मृगी के प्रश्नोत्तरके रूप में कथा चलती है। इस साम्य की ओर हजारीप्रसादजी ने हमारा ध्यान आँचा है।<sup>२</sup> कीर्तिसत्ता की वस्तु बड़ी संक्षिप्त है। मलिक असलान नामक मुसलमान सामन्त ने काम्य के नायक के पिता का बंध कर तिरहुतपर अधिकार जमा दिया। कीर्तिसिंह तथा वीरसिंह असलान की सहायता देने के लिए जीनपुर के बादशाह इनाहिमछाह के पास गये। द्वितीय पल्लव में जीनपुर की समृद्धि बाजोर सोमों के रहन सहन का चित्रण है। तृतीय पल्लव में दोनों साहब बादशाह के पास पहुँचते हैं। बादशाह प्रसन्न होकर असलान को बंध देने के लिए एक सेना दोनों साहबों के साथ कर देते हैं। चतुर्थ पल्लवमें सेना प्रयागका वर्णन है। बादशाह की फौज की सहायता से युद्ध में कीर्तिसिंह विजय पाता है और असलानको मार पिता के बंध का बदला चुका लेता है।

✓ कीर्तिसत्ता की भाषा में अनेक बिबेधी शब्द हैं—जिनका कवि ने अपने तरीके से प्रयोग किया है। उत्तरकासीन हिमस रचनाओं में भी यह प्रवृत्ति काफी बीस पड़ती

१—नामचरितसिंह हिन्दी के विकास में अपभ्रंश का योग—पृ. २२२

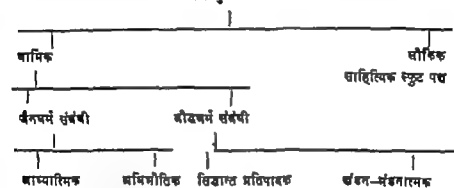
२—हजारीप्रसाद द्विवेदी हिन्दी साहित्य का माविकास—पृ. ६१-६२

है। इस प्रकृति से भूमिलाकर मोतीनाम मैनारिया तो कह उठे हैं—एक बात जो डिगम के सभी कवियों में समान रूप से पाई जाती है वह है शब्दोंकी मनमाने ढंग से तोड़-मरोड़।<sup>१</sup> यही विभावल डा० कोझर को भी विद्यापति से है। केही बिचित्रता है।<sup>२</sup>

अपभ्रंश मुक्तक काव्य

अपभ्रंश का मुक्तक काव्य दो मार्गों में विभाजित किया जा सकता है— १। वार्तिक काव्य । २। लौकिक काव्य । वार्तिक काव्य के प्रेरणा स्रोत बीड़ और जैन धर्म रहे हैं और लौकिक काव्य के उदाहरण विभिन्न व्याकरण ग्रंथों अक्षरप्रबंधों तथा इतर रचनाओं में उद्धृत मिल जाते हैं। इनमें बीछटा प्रेम, मृगार आदि की भाव भावों को तीव्र अभिव्यक्तता मिली है। अपभ्रंश की मुक्तक रचनाओं को निम्न प्रकार से विभाजित किया गया है।<sup>३</sup>

### अपभ्रंश मुक्तक रचनाएँ



परवर्ती डिगम काव्य पर अपभ्रंश के वार्तिक काव्य का प्रभाव गहन था है। हाँ उसने हिन्दी राजस्थानी के संवसाहिरय को प्रबल प्रभावित किया है। किन्तु बूँकि वह प्रस्तुत प्रबंधके क्षेत्र के अंतर्गत नहीं आता अतः हमने अपभ्रंश के वार्तिक मुक्तक काव्य का विषय विवेचन अप्रासंगिक समझ यहाँ नहीं किया है। मात्र सामान्य परिचय से ही हमने संतोष कर लिया है।

जैनों के वार्तिक मुक्तक काव्यों में योगीश्वर का 'परमप्रयास' (परमार्थ प्रकाश) व योगसार<sup>४</sup> भूमि रामसिंह द्वारा 'पाहुक बोझ' व केमसेन रचित, 'सावयवम्न बोझ'<sup>५</sup> विनयतसूरिका अपभ्रंश रसायन रास आदि प्रमुख व अत्यंतसुखीय रचनाएँ हैं। बीड़:

१—मोतीनाम मैनारिया डिगम में बीररस—पृ० २१

२—हरिबंस कोझर अपभ्रंश साहित्य—पृ० १६४

३—डा० हरिबंस कोझर अपभ्रंश साहित्य—पृ० २६७

४—डा० आ० मे० तपाध्वे द्वारा संपादित व १९३७ ई० में प्रकाशित

५—डा० हीरासास जैन द्वारा संपादित—कारंवा सीरिब—सं० १९९० में प्रकाशित

६—यही— " " " " " १९८९ "



छिड़ों की कविता के मुख्य विषय थे,—रहस्यमयी भाषा में छिड़ान्त-मतिपादन, सहजमार्ग, मृत की महत्ता कायारूपी पुण्य-शीर्ष बाह्याध्वर का विरोध आदि ।

छिड़ों के काल के संबंध में पर्याप्त मतिभेद है । श्री विनयतोष भट्टाचार्य ने सरहपा छिड़का समय वि० सं० १२० माना है । श्री राहुस सांकरायण इनका काल सन् ७९० ई० मानते हैं । इस प्रकार राहुसजी छिड़ों का काल ८०० ई० से १२०० ई० तक मानते हैं । डा० चाटुर्ज्या छिड़ों की भाषा को इसका काल के बादकी समझते हैं और भाषा के आधारपर छिड़ों का काल १००० ई० सं० १२०० ई० के समय मानते हैं ।<sup>१</sup>

छिड़ों की संख्या बीसवीं मानी गई है । राहुसजी ने बीसवीं छिड़ोंकी नामावली भी दी है ।<sup>२</sup> छिड़ वास्तव में बीसवीं ही थे या इस संख्या का कोई विशेष महत्त्व था, यह कहना कठिन है । इन बीसवीं छिड़ोंकी परम्परा में अनेक छिड़ समसामयिक हैं । अनेक सहज मानी छिड़ों के नाम नाथछिड़ों की सूची में समानरूप से मिलते हैं ।<sup>३</sup> छिड़ोंके नाम के पीछे पात्र शब्द सम्मान का चोटक है । इसका विकृत रूप 'पा' है । इनकी सभी रचनाओं में प्रायः मिलती जुलती बातें व्यक्त की गई हैं । अविद्या से मुक्त होकर अपने ही अंतर्मन रखनेवाले सहजानन्द की प्राप्ति इनका परम लक्ष्य है ।

छिड़ों के छंदोंमें विविधता नहीं है । 'चर्चापीठ' में येय पद्य है । 'बीहारीय' में प्रभाव छंद बोझा है । कुछ छोटे तथा अन्य छंद भी हैं, परन्तु उनकी संख्या कम है । छिड़ों की भाषा को छेकर बड़ा भ्रम पैदा है । विनयतोष भट्टाचार्य इनकी भाषा छिड़वा ह्रस्वसार सास्त्री बेंगला \* राहुसजी मगही \* मानते हैं । किन्तु डा० अपर्णा और चटर्जी \* छिड़ों की भाषाको निश्चित ढंग पर अपभ्रंश ही मानते हैं । वस्तुतः छिड़ों की भाषा के दो रूप हैं । एक तो पूर्वी अपभ्रंश जिसमें परिचयी अपभ्रंश के रूप भी मिल जाते हैं और दूसरा छोरसेनी अपभ्रंश ।

छंदशास्त्र से संबंधित महत्त्वपूर्ण अपभ्रंश कृति 'शाकार्थ्य छंद' है । इसमें बज्रमान के छिड़ावोंका विवेचन है । भाषा छोरसेनी अपभ्रंश पर आधारित पूर्वीप्रभावकुछ अपभ्रंश है । इसमें बीपार्थ्य आदि प्रमुख छंद हैं । इसका रचनाकाल ग्यारहवीं शतीके लगभग है ।

१—चटर्जी ओरिजिन ऐण्ड डेवलपमेंट ऑफ बेंगाली लैंग्वेज पृष्ठ १-पृ० १२१

२—राहुस सांकरायण पुरातन मिर्चबाबली में इसीपर लेख—

३—हजारी प्रसाद: नाथ संप्रदाय—पृ० २७-३२

४—विनयतोष भट्टाचार्य: साधनमासा-गायकबाइ चिरीज—पृ० ४१

५—ह्रस्वसार सास्त्री: बीह गान जो बोझा—पृ० २४

६—राहुस सांकरायण: गंगापुरतर्का—पृ० २३४

७—मनोवर्चस् कामपी ओरिजिनल वर्नस—भा० १-१९११-१४—पृ० २३२

८—चटर्जी ओरिजिन ऐण्ड डेवलपमेंट ऑफ बेंगाली लैंग्वेज—पृ० १-पृ० ११२

करमीरी शैव-सम्प्रदाय की भी कुछ रचनाएँ अंशतः अपभ्रंश में मिलती हैं । अभिनव गुप्त के 'संनसार' का इनमें प्रमुख स्थान है । इसमें शैवमत की व्याख्या है जिसके अनुसार व्यक्ति ही परम शिव है, किन्तु अशुद्धि के कारण वह अपने आप को नहीं देख पाता । यों तो यह ग्रंथ संस्कृत में है, किन्तु प्रत्येक अध्याय के अन्त में प्राकृत-अपभ्रंश में पूरे अध्याय का सार दिया गया है । इसका रचनाकाल १०१४ ई० के आसपास माना गया है । दूसरी महत्त्वपूर्ण कृति सितिकंठाचार्य कृत 'महानय प्रकाश' है जिसमें १४ अपभ्रंश पद्य हैं । इसका रचनाकाल १२ वीं सदी ई० का उक्तार्थ है । शैव-सम्प्रदाय की इन रचनाओं में साहित्यिकता का अभाव है और अन्तर्गत भाषासम्प्रदाय के कुछ श्रमाश के जो जोधपुर नरेश महाराजा मानसिंह के समय अवधि में बढ़ गया था, जिससे साहित्य पर इनका प्रभाव नगण्य सा है । यही कारण है कि हमने बीड़ों, छिड़ों, लैलों तथा जैनों के कुछ धार्मिक साहित्य पर विस्तृत विचार नहीं किया है । ऐसा करना हमारे लिए अनावश्यक होता ।

अपभ्रंश मौखिक अथवा ऐतिहासिक मुक्तक काव्यपरंपरा का अर्द्ध तक प्रसार है उसमें अत्यधिक साहित्यिक सीपवर्ष है । ये मुक्तक पद्य संस्कृत प्राकृत के पंक्तों से इतस्ततः विकीर्ण मिलते हैं, जिन्हें अलंकार व्याकरण और छन्दों के ग्रंथों में नियमों और उदाहरणों के रूप में प्रस्तुत किया गया है ।

ये साहित्यिक सुमायित रूप से प्राप्त मुक्तक पद्य हमें मुख्य रूप से निम्न लिखित ग्रंथों में मिलते हैं —

१—काशिदास के विष्णुमूर्तसीय नामक नाटक का चतुर्थ अंक

२—हेमचन्द्र के प्राकृत व्याकरण का ८ वाँ अध्याय सम्बन्धुशासन और प्राकृत इतिहास काव्य ।

३—सोमप्रभाचार्य कृत 'कूमारपाल प्रतिबोध' ।

४—मैत्रेय पाचार्य कृत प्रबन्धचिन्तामणि ।

५—पद्मसेनार सूरि कृत प्रबन्ध कोश ।

६—प्राकृत पिबल ।

७—पुण्डरीक प्रबन्ध संग्रह ।

इनके अतिरिक्त जगन्नाथचरण के जगन्नाथलोक चरित के काव्यालंकार जीव के सरस्वती कण्ठाभरण, वर्णचय के वराहमिह आदि अलंकार ग्रंथों में भी कतिपय अपभ्रंश पद्य मिलते हैं ।

इन पद्यों के विषय में यह बात ध्यान में रखनी चाहिये कि विविध ग्रन्थों में प्राप्त इन अपभ्रंश पद्यों के काल के विषय में कुछ नहीं कहा जा सकता । जिन ग्रन्थों में ये पद्य उद्धृत किये गये मिलते हैं वे पद्य ग्रन्थकार के अपने भी हो सकते हैं और यह भी संभव है कि उनको ग्रन्थकार ने अपने से पूर्वकालीन किसी कवि के ग्रन्थ से उदाहरण रूप में उद्धृत किया हो । कौन सा पद्य स्वयं ग्रन्थकार का बनाया हुआ है और कौन सा उसने किसी दूसरे कवि का उदाहरण रूप से उद्धृत किया है, इसका ज्ञान सरल नहीं ।

[ प्राकृत और अपभ्रंश विंगत साहित्य पर प्रभाव  
ऐसी परिस्थिति में इन पद्यों के विषय में इतना ही कहा जा सकता है कि ये पद्य  
जिस भी सम्प्रकार से उत्पन्न किये हैं उन पद्यों की उस काम में या उस काव्य से पूर्व  
रचना हो गई थी ।

इन पद्यों में भू गार, भीर वीर्यम् नीति सुमायित प्रकृति-विषय अग्योपि  
राजा या किसी ऐतिहासिक पात्र का उल्लेख, यात्रि विषय अंकित हुए हैं । इन पद्यों में  
कविता है रस है, समस्कार है और हृदय की स्पर्श करने की शक्ति है । ये पद्य साहित्यिक  
सुमायित और मुक्ति रूप काव्य के सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत करते हैं । ये पद्य पात्रों  
सम्बन्धी यात्रा सम्बन्धी सुमायित रत्नावली यात्रि पंक्तों की तरह मध्यम संयुहीत  
रूप में नहीं मिले तथापि इनका कोई संघट्ट शब्द हीरा जिनमें से अनेक कवियों  
ने उदाहरण के लिए अपनी शक्त के अनुकूल अनेक पद्य चुने ऐसी कल्पना अंकित  
मान पड़ती है । एक ही पद्य का अनेक सम्प्रकारों के पद्यों में उल्लेख इसी विधा की  
ओर संकेत करता है । उदाहरण के लिए निम्न निम्नित पद्य हमें कुमार पात्र  
प्रतिबोध में और प्रबन्ध विन्तामनि' दोनों में मिलता है —

‘रावन्तु आवर वहि विग्रहि वह-मुहु पच्छ-सरीव ।  
चिन्ताविग्रह वहि विग्रहि अन्तु पियावहं बीव ॥

कु० पा० प्र० पृष्ठ-१९०

‘वहियह रावन्तु आवर वह मुहु पच्छ सरीव ।  
अन्तु पियावहं विन्तामनि अन्तु पियावहं बीव ॥

प्र० वि० पृष्ठ ९५

इसी प्रकार हेमचन्द्र के प्राकृत व्याकरण और प्रबन्ध विन्तामनि के अनेक पद्य  
समान रूप हैं । हेमचन्द्र के और भीमप्रस के अनेक पद्यों में एककथा है । इतने  
कल्पना कर सकते हैं कि इन सम्प्रकारों ने इस प्रकार के पद्यों की किसी संघट्ट शब्द से  
निया होया ।

हेमचन्द्र के प्राकृत व्याकरण और उदामुसासन में संघट्टित अपभ्रंश मुख्यतः  
अपनी अनोखी शब्दों के लिए वृष्ट्य हैं । कहा नहीं जा सकता कि हेमचन्द्र ने यह  
मनुर मनुष्यक किन्-किन् काव्य-शब्दों से तैयार किया है । इनके रचयिता कवियों के  
नाम अज्ञात हैं । हेमचन्द्र के व्याकरण में जो नीति अग्योपि अथवा शर्ष संबंधी रच  
गए हैं उनमेंसे कुछ का आदिशब्द तो जैन काव्यप्रयोगों में मिल गया है । लेकिन शीर्ष  
और मृ गार के ऐसे बहुत से होते हैं, जिनका आदिशब्द अज्ञात है । आते  
इनके रचयिता जैन कवि हैं अथवा जैनैतर लोक कवि इतना निश्चित है कि संयुक्त  
अपभ्रंश साहित्य में इनका सीधे सखे समय है । यहाँ मुख्य का शीर्ष ही नहीं उनके  
पार्श्व में और रमणी का शर्ष भरा प्रोत्साहन भी मिलेगा यदि एक ओर शिवका

तात्पर्य है तो दूसरी ओर उनके पार्श्व में सक्ति का सात्य भी है ।<sup>१</sup> बरा बातगी देखिये ।<sup>२</sup> —

संयोग मृगार—जिने जिने ककिम सोजणहं भिब सामलि सिक्कोह ।

तिने तिने बम्महु निज्जम-सब सर उत्तरि तिक्कोह ॥

हे० प्रा० व्या० ८-४-१४४

अर्थात् ज्यों ज्यों वह श्यामा सोचनों की बगला— कटाक्ष पाठ सीखती है  
त्यों त्यों कामदेव अपने बाजों को कठोर परस्पर पर ठेक करता है ।

‘पिय संयमि कउ निहूँ पियहो परोक्कहो केम्प ।

मइ मिति बि बिजासिया निहू न एम्ब न तेम्प ॥’

हे० प्रा० व्या० ८-४-४१८

अर्थात् नायिका कहती है—न तो प्रिय संगम में निद्रा है और न प्रिय के परोक्ष होने पर । मेरी दोनों प्रकार की निद्रा बिभट हो गई न इस प्रकार से नींद है न उस प्रकार है ।

विशेष—‘ये महु विज्जा बिमहका बहरें पवसत्तेप ।

ताज कपन्तिअ अंगुलिउ बज्जरिजाउ नहेण ॥’

हे० प्रा० व्या० ८-४-१११ ।

अर्थात् प्रिय ने प्रवाधार्य जाते हुए जितने दिन बताये थे उन्हें गिनते गिनते मल से मेरी अंगुलियाँ भीखें हो गई ।

कीर् के सत्य को सुनकर निराश हो कीर् को उड़ाती हुई विरहिणी के मीरास्य मान और प्रिय वर्णन से उत्पन्न आनन्दोत्साह का सुन्दर चित्रण निम्नलिखित पद्य में निबटा है—

भावसुं छावावन्तिअए पिउ बिट्ठ सहसति ।

बडा बलया महिहि गय बडा मूट्ट वसति ।

हे० प्रा० व्या० ८-४-११२ ।

प्रवाही भावक वरकते मेव को संशोधन करते कहता है—

➤ ‘अइ ससणेही तो मुअहु अइ बीमह मिलेहु ।

बिहि बि पयारैहि मइअ यक कि गज्जहि अल मेहु ॥

वही ८-४-११७ ।

१—नामवरसिंह हिन्दी के विकास में अपभ्रंश का योग—पृ० २४२

२—सूत्रों का निर्देश डा० पी० एल० शीघ द्वारा संपादित हैमचन्द्र के प्राकृत व्याकरण के अनुसार है ।

अर्थात् वह मुसो प्यार करती है तो मर गई होती, यदि जीवित है तो निःस्नेह होती । अरे सल वीर ! दोनों ही तरह से वह सुन्दरी मने ली हो, भयं क्यों करबते हो ?

वीरता—अस्मां हुवा अ मारिषा बहिनि महाध कम्पु ।

सकमेज्जं तु अर्पसिअहु अह आग्गा अर एणु ॥

वही = ४ ३३१ ।

अर्थात् बहिन अस्मां हुवा जो मेरा पति रणभूमि में मारा गया । यदि पति जित हो वह अर सौटता तो मैं अपनी सखियों के साथसे सज्जित होती ।

निम्नलिखित पद्य में प्रियतम की मृदु-वीरता की प्रशंसा करती हुई कोई नायिका कहती है—

प्रे-‘मनु कल हो के दोसदा हैनि म संकहि आन ।

उ-केत हो हउ पर सम्परिअ सुजसतहो करवासु ॥’

वही = ४ ३७९ ।

अर्थात् हे सखि ! मेरे प्रियतम मैं कैबक हो घोष हैं झूठ मत कहो । उसके बाल बेटे हुए कैबक मैं अब रहती हूँ और युद्ध करते हुए कैबल लसवार ।

सुभाषित—

क्यों के दृष्ट अशर्मा के कान में पड़ने की अपेक्षा वन में फूलों के फल खाकर संतुष्ट रहना अच्छा है ।

‘अरु अडाअरु अथि ठरुं अठविहं पवक फसाई ।

सो अरि सुकसु परहु नवि कज्जहि अल-अवसाह ॥

वही = ४ ३४० ।

प्रेम के लिए दूरी का अवकाश गुप्त होता है । दूर स्थित छत्रजनों का भी प्रेम असाधारण होता है ।

विहं संसहस कहि मपरहस कहि अरिहिनु कहि मेहु ।

दूर-ठिआई नि अज्जमहं होइ असहुनु मेहु ॥

वही = ४ ४२२ ।

सायोलि—

‘अज्जमे मुण्डर फलई अणु कअ तस्सअ अज्जेह ।

तो नि महवुणु मु सुअणु जिअं ते अज्जवि अरेई ॥

हे० प्रा० व्या० = ४-३३६ ।

मनुष्य बुरा के करने वृत्तों को छोड़कर कर्मों का ग्रहण कर सेवा है, तथापि महादुम छत्रज के समान उन्हें अपनी गोरी में धारण करता है ।

अभी तो हम भाग इसी उपाहरणों से संतोष करते । जाने बस कर पाँचवें अध्याय में अधिक विस्तृत विवेचन दिया गया है । विद्वानों की दृष्टि से हेमचन्द्र द्वारा उक्त पद्यों में से प्राकृत व्याकरण और छंदानुशासन के पद्यों की भाषा में समानता

नहीं है। इस भाषा विषमता के कारण कल्पना की गई है कि कुछ पद्य उनके अपने हैं और कुछ अन्य कवियों के जो यथास्थान उदाहरण के रूप में प्रस्तुत किये गये हैं।

सोमप्रभाचार्य हुए 'कुमारपास प्रतिबोध' में कवि ने अपभ्रंश में बहुत वर्णन किया है। इसके अतिरिक्त स्वस स्वस पर स्फुट पद्य भी मिलते हैं जिनमें सुभाषित, प्रेम प्रसंग कथा संदर्भ, उपदेश आदि मिलते हैं। कुछ पद्यों में समस्यापूर्ति का ढंग भी दीख पड़ता है। यथावश्यकता आये इनके उदाहरणों का अध्ययन किया जायेगा।

मेरु पाचार्य रचित प्रबन्ध चिन्तामणि' में भी अनेक अपभ्रंश मुक्तक उपसम्भ हैं, जो काव्य की दृष्टि से उच्चकोटि के हैं। पता नहीं ये बोहे मुज के बीजन पर लिखे हुए किसी प्रबंध काव्य के कुछ अवशिष्ट मणि हैं अथवा मुक्तक रूप में ही छोक परम्परा में बन पड़े थे। फिर भी एक बोहे में पूरे प्रसंग का मार्मिक निष्कर्ष मरा पड़ा है।<sup>१</sup> मुज की कहानी अपने आपमें इतनी काव्यात्मक है कि ये सीधे-साधे बोहे भी प्रसंग-अर्थत्व के कारण हृदय पर सीधे चोट करते हैं। तैलपराज की कैद में पड़ा हुआ मुज अपने किये पर संतुष्ट रहा है। एक ठो उसने अपने मन्त्रि खादित्य मेहुता के मना करने पर भी गोदावरी पार करके तैलप पर बढ़ाई की और अपने उस घुम-बिचक मन्त्री को छोड़ दिया। दूसरे यहाँ जाने पर तैलप-मयिनी मृणालवती पर विश्वास करके भ्राम निकलने की बनाई योजना उससे कह भी और इस तरह अपनी जान ही नहीं अपने साथियों की जान भी सतरे में डाल दी। इतनी घूर्णों का कस उसे भीपना पड़ा और वह भी इस रूप में कि उसे रस्ती में बाँधकर नद पर उससे भीख मँगवाई गई। मुज सम्बन्धी बोहों में इसी पीड़ामय अनुभूति को बाँधी मिली है।

सोची छुट्टि कि न मूठ कि हूज न छारह पुज।

हिण्डू बोरी बोरिबड बिम मंकडु तिम मुजु ॥<sup>२</sup>

मुज के मृणालवती को कहे गये पद्य भी सरस हैं—

मुजु भगव मुणालवह बुल्लन वयस न बूरि।<sup>३</sup> आरु

वह सनकर सयबन्ध कियु सोइ स मीठी बूरि ॥<sup>४</sup>

अर्थात् मुज मृणालवती से कहता है कि तुम अपनी मये हुए योजना को याद करके दुःखी मत हो। मिथी सतर्क होकर बूर बूर हो जाये तो भी उसकी मधुरता नष्ट नहीं होती।

एक अन्य उदाहरण देखिये—जो हेमचन्द्र-व्याकरण में पाठान्तर के साथ उपसम्भ है।

एह जम्मु भग्गह मियत मरुतिरि जगा न भग्गु।

तिक्काँ सुरिय न बाहिया गोरी गभिन सग्ग ॥<sup>५</sup>

१—नामवर्त्तसह हिन्दी के विकास में अपभ्रंश का योगदान—पृ० २५० २५१

२—मुनि विनविजय प्रबंध चिन्तामणि—पृ० २३

३—मुनिविनविजय प्रबंध चिन्तामणि पृ० २३

४—वही—पृ० ३२

अर्थात् दिग्भ्रमर पत्र पासना करते करते अन्त भीत गया । किसी घोड़ा के सिरपर न सड़क प्रहार किया न तेज घोड़ा बनाया और न किसी सुन्दरी को गले लगाया । यह जीवन तो व्यर्थ ही बीता गया ।

अन्य घण्टों में अपभ्रंश होने वाले नमूने भी इसी भाग्यपारा को मिले हैं । अतः व्यर्थ के विस्तार से बचने के लिए हम उनकी चर्चा यहाँ नहीं करेंगे । अभी तक विवेचित उदाहरणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि अपभ्रंश के इन नमूनों का उत्तराधिकार हिमस को मिला है । निस्तुत विवेचन के लिए कृपया पाँचवीं अध्याय देखिये ।

अब तक अपभ्रंश साहित्य के जिन स्वकणों पर विचार किया गया वा के सब पद्य में ही थे । अब मैं बहुत कम साहित्य अद्यावधि प्राप्त हुआ है । हाँ अन्य नमूनों में कुछ मध्य प्रयोग मिल जाते हैं । उद्योतक सूरि कृत 'कृष्णवमाला कथा' में अपभ्रंश पद्य के कुछ शब्द मिल जाते हैं—

जनार्दन <sup>देखो</sup> पिस्तु कल <sup>देखो</sup> तुलने कल जिमि अस्तया ? तेन भविष्य-साहिब के तेतवतस्त बनव-बहएस्तमह तयए जिमिअस्तया ।<sup>१</sup>

अर्थात् हे जनार्दन ! मैं पुछता हूँ तुमने कस कहाँ बीना (बाना लाया) ? उसने उत्तर दिया—वही जो अनसूचित, उसके यहाँ ।

आचार्य हजारी प्रसाद त्रिवेदी ने 'हिन्दी साहित्य का आदिकाल' नामक अपनी पुस्तक में इसी रचना से एक अलग उदाहरण दिया है ।<sup>२</sup> यह यदुना स्थित अनावासद के कोठियों पंजुनों, बंजों अपाहिजों आदि की भाषा का नमूना है—

'सयसं पुहईमंडलं पवित्रमिद्रम संपत्तो महुत्तरीए । एव एकमि अनाह मण्डने पवित्रो । अवि न तय ताव मिलिवातए कोइहीए । बसस्त पदमए । दीन दुम्बव । अयतम । पंजुनय । किंच कहवा जो भाउ-विउ-पूठेअत ॥ वो सभो बित्तम मिलिएस्तत ति । ताई न तेएय मिलिएस्तय सह लयायह एवकेक महा बानावा पपत्ता । ओ ओ ! कयईह तित्त है (है) वा यवाई कबय बाहि पाव वा पिट्टु ति । एवकेक अनिअं अमुकका बाजारसी काहिईह । तेन बाजारसी यवाव कोहु पिट्टु ति ।

अन्नेन भविअं—हुं हुं कहिउ वुत्तवउ पंविएस्तत । कहि कोई । कहि वावा-रही । मुरतायु भजारत मो (को) कह जे पैव । उहामि सोमहुं ।

अन्नेन भविअं—काह हयेन जन्म चिरपकड वाउ पिट्टुह तुम्मे उद्विह तित्त ।

अन्नेन भविअं—प्रयावउ उपडिअहुं चिर परत नाम बिहन्म वि पिट्टुति ।

अन्नेन भविअं—जरे । पाव पुण्डिय पाव साहिह ?

१—अपभ्रंश काव्यवली पृ० १०४ से उद्धृत

२—हजारीप्रसाद त्रिवेदी हिन्दी साहित्य का आदिकाल—पृ० ९०

अन्धेय भजिज—सेवु मैरुमहं । यह परमाहं । पिद्वहृकयहं पि  
महापावहं मंगासंगमे ग्हायहं भद्वमहारयपविजहं भासहं रि ।

इस उद्धरण में पहिले उद्धरण की अपेक्षा संस्कृत के उत्तम शब्दों की बहुलता नहीं । ऐसा होता 'स्वामाधिक ही वा । फिर भी प्रयाग गया संगम, सेव आदि कुछ उत्तम शब्द प्रयुक्त हो ही गये हैं । इस प्रकार नहीं शताब्दी में सिन्धुमासी या मुक्ति रित सोवों की भाषा में ही नहीं व्यक्तिगत या अथ मिश्रित सोवों की भाषा में भी उत्तम शब्द प्रयुक्त होने आरम्भ हो गये थे ।

अपभ्रंश वच का ग्रीक उदाहरण हमें विद्यापति के कीर्तिलता में देखने को मिल जाता है । परवर्ती हिमल काव्यों में बचनिका दवावैत वावि क्यो में वच का जो प्रयोग हुआ है उसकी बीजन्त परम्परा हमें विद्यापति में मिल जाती है । वैया ही तुकान्त वच, वैया ही बावय-विभ्यास । वचा—

वचन गलन मुख ।

मारि इस सवि मानुस करो मुख ।

विम्व सको विवातामे किनि काकल ।

कुम्भोद्वसव करे नियमाविश्रम पेनि पम्बतको बाइल ।

बाए खनए मारए जान,

महाचको क बाहुस महते मान ।<sup>१</sup>

हिमल के दवावैत विष्णुस इसी पद्धति पर रचे जाते रहे हैं । विस्तृत अध्ययन के लिए देखिए चौथा अध्याय ।

हमारे द्वारा अब तक किये गये अपभ्रंश के अध्ययन से उसके विपुल साहित्य और उसके सामर्थ्य से हमारा परिचय हो गया है । इसमें संधि कुलक चतुर्ध, रामना, रास पांचर फल स्तुति, स्तोत्र कथा चरित, पुराण आदि प्रकार के कव्यों में मानव जीवन और मृत्यु की अनेक भावनाओं और विचारों को बाणी मिली । यदि एक ओर इसमें जैन मुनियों के चिंतन की विशालता है तो दूसरी ओर बौद्धों की सहज सज्जना की सिद्धि भी है, यदि एक ओर वैदिक आदर्शों का व्याख्यान तो दूसरी ओर लोकजीवन से उत्पन्न होने वाले ऐहिक-रस का रागरहित अनुकूलन । यदि यह साहित्य माना जाता है तो पुण्यों के पश्चात् जीवन चरित से सम्पन्न है । सामान्य बहिक पुण्यों के दुःख-सुख की कहानी से भी परिपूर्ण है । तीर्थंकरों की शोभाचरित स्तुतियों अनुभव मरी सूक्तियों रहस्यमयी अनुभूतियों वैभव-विभास । शक्तिमें आदि के साथ ही उन्मुक्त बन्ध जीवन की शीघ्र स्नेह-सिक्त यात्राओं के विषय विचारों से अपभ्रंश साहित्य की विशाल विचाराणा सुशोभित है । स्वयम्भू जैसे



[ प्राकृत और अपभ्रंश हिमसाहित्य पर प्रभाव ]

महाकवि के हाथों इसका बीमारोपण हुआ पुष्पदन्त मत्तपाल हरिभट्ट बोद्धमु-  
 चरसिंह, देवदेव कलकामर, हेमचन्द्र सोमप्रभ जिनप्रभ जिनदत्त जिनपद्म जिनय-  
 चन्द्र, रामसेनर घातिमद्र अम्बुस रहमान सरह और काव्हु जैसी प्रतिमाओं ने  
 इसे प्रतिष्ठित किया और अंतिम दिनों में भी इस साहित्य को यश कीर्ति और रश्मि  
 जैसे सर्वतोमुखी प्रतिमावासे महाकवियों का संनिक प्राप्त हुआ। ऐसे महाकवियों और  
 इतने महाशाय्यों तथा गीत काव्यों के इस साहित्य का जो बाढवीं शताब्दी से बीस  
 हवीं शताब्दी तक सुदूर दक्षिण को छोड़कर रोप संपूर्ण भारतवर्ष के सामान्य लोक  
 तथा विलित मंडिनी के हृदय की बाणी या भारतीय साहित्य में फिटना महत्वपूर्ण  
 स्थान हो सकता है—यह सहज ही अनुमेय है।<sup>१</sup> ॥

१—नामवरसिंह हिन्दी के विकास में अपभ्रंश का योग—पृ० १८३

## डिगल : भाषा और साहित्य

### डिगल की व्युत्पत्ति और विवेचन

डिगल राजस्थान की कुछ साहित्यिक भाषा रही है।<sup>१</sup> मने ही गले यह नाम बाब में मिला हो। यह भाषा पहले मारवाड़ी, मर भाषा, मरु-धर-भाषा मरसेलीया भाषा आदि नामों से पुकारी जाती थी।<sup>२</sup> राजस्थानी की उपभाषाओं में 'मारवाड़ी' सब से प्रचलित है और सबा से रही है। जिस प्रकार आजकल हिन्दी की अनेक उपभाषाओं में से 'बड़ी बोली' साहित्य की भाषा है और इन दिनों हिन्दी का अर्थ ही बड़ी बोली से किया जाता है उसी प्रकार 'मारवाड़ी' भी राजस्थान की साहित्यिक भाषा रही है। साहित्य सर्जना के लिए इसी का बहुविध उपयोग किया जाता रहा है। राजस्थान के सभी वर्गों के लेखकों ने साहित्य रचना के लिए 'मारवाड़ी' को अपनाया।<sup>३</sup> इसका यह अर्थ कदापि नहीं कि राजस्थानी की अन्य उपभाषाओं यथा मेवाड़ी हाड़ीली डूडाड़ी भाषि में कोई साहित्य लिखा ही नहीं गया। इन उपभाषाओं में भी थोड़ी बहुत काव्य रचना हुई है किन्तु मारवाड़ी साहित्य की दृष्टि में परिमाण और स्तर दोनों दृष्टियों से उसका कम महत्व है। जिस प्रकार आज भी इन मोरपुत्री मैथिली बुद्धिखंडी राजस्थानी आदि उपभाषाओं में अनेक कवि कविताएँ लिखते हैं, किन्तु बड़ी बोली हिन्दी ही आधुनिक साहित्यिक भाषा मानी जाती है उसी प्रकार मारवाड़ी भी राजस्थान की साहित्यिक भाषा के पथ पर आधीन रही है। कालान्तर में यही भाषा डिगल नाम से पुकारी जाने लगी। 'मरभाषा' का प्राचीनतम उल्लेख कहाँ और कम पाया जाता है और किसलिए यह 'मरभाषा' डिगल कहलाने लगी, इसपर आगे विचार किया जायेगा, तब तक हम बस मरभाषा की इस बचीन संज्ञा 'डिगल' की व्युत्पत्ति पर विचार करें, तो समीचीन ही होगा।

१—मिलोकी नारायण बीकितः अजभी और उसका साहित्य—पृ० २५

२—नरोत्तमदास स्वामी राजस्थानी—भाग १—पृ० ८

३—वही—पृ० ३



किया गया है बिना ब्रजभाषा के कवियों ने अपनी रचनाओं में किया है ।<sup>१</sup> द्विगुण भाषा तत्कालीन राजवरदारों में ब्रजभाषा से भी अधिक भाव्यता और सम्मान पाती थी अतः इस सिद्धि समुदाय की प्रिय भाषा द्विगुण को 'अभियमित अथवा 'गैबाक' कहना युक्तिसंगत नहीं जान पड़ता ।

दूसरा मत डा० हरप्रसाद शास्त्री का है । शास्त्रीजी ने द्विगुण की व्युत्पत्ति ब्रज से बतलाई है । उनकी धारणा है कि प्रारम्भ में इस भाषा का नाम ब्रज या पर ब्रज में प्रियतम शब्द के साथ दूगु मिश्रण के सिद्ध द्विगुण कर दिया गया ।<sup>२</sup> अपने मत के समर्थन में उन्होंने जोधपुर के कबिराबा मुरारीदास द्वारा प्रस्तुत एक प्राचीन छंद का उदाहरण भी दिया है जिसे वे चौदहवीं शताब्दी की रचना मानते हैं । वह अंश यह है—

बीसै अंगन ब्रज, जेय बल बल बाटे ।

अनहुता यल बिये, गल हुता यल काटे ॥

शास्त्री जी ने इसका कोई अर्थ नहीं दिया है और केवल यही कह कर छोड़ दिया है कि 'इससे स्पष्ट है कि अंगन शेष अर्थात् मन्त्रेश की भाषा द्विगुण कहावती है । इन पंक्तियों का अर्थ प्राचीन परंपरा के वर्तमान कवि उदैराज उज्ज्वल ने 'मन्त्रेश की भूमि और बल बल के वर्णन के रूप' में ग्रहण किया है ।<sup>३</sup> किन्तु यह अर्थ सीधे-साधे कर दिया गया है । मेनारियाजी ने इसी गीत को पूरा उद्धृत किया है और सज्ज, सज्जमान सिद्ध किया है कि यह गीत अस्मृजी चारन का भिन्न तुल्य है जो १७ वीं शताब्दी में हुए हैं । इसमें ईश्वर की सर्वशक्तिमानता का बखान किया गया है । हमें तो यही अर्थ समीचीन जान पड़ता है अतः यह कहा जा सकता है कि शास्त्री जी का यह मत किसी वैज्ञानिक आधार के अभाव में अनुपयुक्त ही ठहराया जायेगा ।

नागरी प्रचारिणी पत्रिका में गजराज बोष्टा ने अपना एक लेख प्रकाशित कराया जिसमें उन्होंने द्विगुण के नामकरण का आधार द्विगुण भाषा की 'ड' कार बहुलता को माना है । उनके विचार में 'ड' वर्ण की प्रधानता को ध्यान में रख कर ही विगुण के साम्य पर इस भाषा का नाम द्विगुण रखा गया है ।<sup>४</sup> यह मत केवल किम्वदन्त-कल्पना मात्र है । अनेक द्विगुण रचनाओं में 'ड' वर्णों का बाहुल्य नहीं है और

१—डा० मोतीलाल मेनारिया : राजस्थान का प्रियतम साहित्य पृ० १२

२—हरप्रसाद शास्त्री मिलीमैरी रिपीट जान बी आपरेसन इन बी सर्व आफ एम० एच० एस० आफ बाइक फनिकल्स—पृ० १२

३—उदैराज उज्ज्वल राजस्थान भारती—भाग २, अंक २ पृ० ४६

४—मोतीलाल मेनारिया राजस्थानी भाषा और साहित्य—पृ० १७-१८

५—गजराज बोष्टा नागरी प्रचारिणी पत्रिका—भा० १४ पृ० १२२ १४२

[ प्राहुत और अप्रगद्य हिमस साहित्य पर प्रभाव

न किसी भाषा का नाम किसी वर्ण की बहुलता के आधार पर ही रखा जा सकता है। संसार की किसी भी भाषा के नामकरण का यह आधार वायद नहीं मिलता। ऐसी दशा में इस मत को महत्व नहीं दिया जा सकता।

पुरुषोत्तम स्वामी के मत में 'हिमस' शब्द टिम-गम से बना है। टिम का अर्थ है—डमरू की ध्वनि तथा गम का अर्थ से तात्पर्य है। डमरू की ध्वनि रत्नचट्टी का आह्लास करती है तथा यह बीरों को उत्साहित करने वाली है। और रस के देवता महादेव का प्रिय नाम डमरू है। गले से जो कविता निकल कर टिम टिम (डमरू ध्वनि) की तरह बीरों के हृदयों को उत्साह से भर दे उसी को हिमस कहते हैं। हिमस भाषा में इस तरह की कविता की प्रधानता है इसलिये यह हिमस के नाम से प्रसिद्ध हुई।<sup>१</sup> इस मत के प्रमुख संरक्षक हैं—अयोध्या नरेश महाराज प्रतापनाथपति सिंह। उनके अनुसार न तो महादेव बीर रस के देवता हैं और न डमरू की ध्वनि नरसाह के अर्थ ही मानी गई है,<sup>२</sup> बीर रस के देवता महादेव नहीं दण्ड हैं। महादेव तो रस के अपिष्टाता बड़े का खपते हैं अतः यह मत भी निराधार है। इनके समकक्ष राव मोहनसिंह का आक्षेप कुछ समय से ओजस्वुद्धि करने वाली भाषा है।<sup>३</sup>

अनवीर्यसिंह यहलौट एक नई भाष्यता का उत्प्रेषण करते हैं। उनके अनुसार हिमस टिम+गम न बना हुआ है। इस मत के समर्थक 'टिम' का अर्थ बासक और गम का अर्थ गला लेकर हिमस का अर्थ करते हैं—बासक की भाषा। अर्थात् प्राहुत किसी समय बास भाषा कहलाती थी उसी तरह राजस्थान की यह काव्य भाषा हिमस या हिमस कहलाई। नामक की भाषा स्वाभाविक होने पर भी अपरिभाषित और अपरिष्कृत होती है अतः इस मत को भी ग्रहण नहीं किया जा सकता।<sup>४</sup>

पंडित मोतीलाल मेनारिका की भाष्यता है कि प्रारंभ में हिमस एक लघु से चारन माटों की भाषा थी और वे लोग अपनी काव्य रचनायें बहुधा इसी भाषा में किया करते थे। अपने आध्यय शताब्दों के कार्यकर्ताओं का उनके साथी पद्यकन का वे लोग बहुत बड़ा बड़ा कर वर्णन किया करते थे। इन के साथी के आधार को धार कुरुक्षेत्र की सुन्दर मूर्त को पंडित और रूपक को वाली कह देना इनके लिए एक

१—पुरुषोत्तम स्वामी नामकी प्रचारिका पत्रिका भा० १४ पू० २५५

२—महाराजा प्रताप नारायणसिंह रस कुसुमाकर—पृ० १६१

३—राव मोहन सिंह प्राचीन राजस्थानी गीत भाग १ संपादकीय पृ० १

४—अनवीर्यसिंह यहलौट का मत स्वामीविराट उद्धृत—किसम रुकमिणी बेनि प्रा

साधारण बात थी ।<sup>१</sup> जबकि वे डींग हीका करते थे, इसीलिए जो भाषा इस प्रकार डींग हीकने के काम में ली जाती थी, उसका शीतल श्यामल, भूमिल आदि शब्दों के अनुकरण पर जोनों ने—संभवतः मोतीबाँ में डींगल (डींग से मुक्त) नाम रख दिया यथावत 'द्विजल' शब्द डींगल का परिवर्तित रूप है । प्रारंभ में जिस समय मारवाड़ी के सिधे इस शब्द का प्रयोग होता धुक हुआ उस समय यह डींगल ही बोला और लिखा जाता था । बाद में धीरे धीरे द्विजल हो गया जिसका मूल कारण डा० प्रियदर्शन भावि अंग्रेज लेखक है । द्विजल शब्द के उच्चारण से अपरिचित होने के कारण इन्होंने 'पियल' और 'डींगल' के उच्चारण में कोई भेद नहीं किया और अपने ग्रंथों में दोनों की द्विज एक ही तरह से लिखी Pingala और Dingala । Pingala का उच्चारण हिन्दी वाले 'पियल' करते आ रहे थे इसीलिए यह समझकर कि 'डींगल' भी इसी तरह बोला जाता होगा उन्होंने इसे 'द्विजल' बोला और लिखना शुरू कर दिया ।<sup>२</sup> यह मत भी सहीय सम्मत नहीं मान पड़ता क्योंकि कौन ऐसा स्वामिमानी कवि होगा जो अपनी भाषा को डींगल बोली हीनता बोधक संज्ञा से संबोधित करे । इसमें कोई संदेह नहीं कि द्विजल में अत्युक्तिमूलक कविता काफी है ।<sup>३</sup> किन्तु व्यंग्यिक रूप में इसका आरोप संस्कृत प्राकृत अपभ्रंश आदि साहित्योपर भी लगाया जा सकता है । अनेक चारणों और भाठों द्वारा अत्युक्ति मूलक रचनायें लिखी गई, किन्तु हमें यह भी नहीं भूलना चाहिए कि अनेक द्विजल कवि बड़े विद्वान स्वामिमानी और भारमचेता थे । बाँकीबास ने अपने काव्य को द्विजल में रचित माना है । इनके स्वामिमान के विषय में प्रसिद्ध है कि वे अपने आध्यात्मता ओषधुर नरैश के बीमार पड़ने पर इसलिये मिलने नहीं गये कि चिकित्सक के आदेशानुसार मिलने वाले दरबारों की पर्षे के बाहर से ही हाकिमी बलागी पकड़ी थी और महाराजा को गैर ब्यापक के कारण बाहर जाने की मनाई थी । बाँकीबास तब ही उनसे मिलने गये जब कि यह असम्मान जनक घट्टे उनके लिए हुआ था ।<sup>४</sup> द्विजल के अनेक कवि अपने स्वामिमान के लिए इसी प्रकार प्रख्यात हैं । कहना न होना कि ऐसे स्वामिमानी व्यक्तित्व अपनी प्रिय भाषा को हीनता सूचक संज्ञा 'द्विजल' कह कर नहीं पुकार सकते थे । अतः इस मत को कहीं तक वैज्ञानिक माना जाय, यह विचारणीय प्रश्न है ।

गणपति चन्द्र मुष्ट ने अपने एक लेख 'द्विजल शब्द की व्युत्पत्ति का इतिहास' में हमारा ध्यान एक नई संभावना की ओर आकर्षित किया है ।<sup>५</sup> उन्होंने द्विजल को

१—मोतीबास मेनारिया द्विजल में और रस पृ० ७

२—मेनारिया राजस्थानी भाषा और साहित्य पृ० २१

३—डा टीसीटेरी जलन एवम प्रोसिडीगस् आफ ऐतिहासिक सोसायटी आफ बेंगल भाग—११, १९१७ पृ० २२५

४—यं रामकर्म आसोपा बाँकीबास ग्रंथालयी भाग १, भूमिका पृ० १५

५—गणपति चन्द्र मुष्ट द्विजल शब्द की व्युत्पत्ति—साहित्य सन्देश वर्ष १२ अंक ८, पृष्ठ १४९

किसी प्राचीन कव्य प्रबंध की भाषा माना है । इस मान्यता का आधार ह्रस्वप्रभाव शास्त्री द्वारा उद्धृत 'दीर्घे अवलङ्गल' वासा बोद्धा है । उनकी धारणा है कि भाषाओं के नाम बोले जानेवाले प्रदेश पर आधारित होते हैं यथा बंगाल की भाषा बंगाली असम की असामी अवध की अवधी, फारस की फारसी चीन की चीनी इस की इसी मारवाड़ की मारवाड़ी और गुजरात की गुजराती । अतः हमें यह मानने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिये कि उगस प्रदेश की बोली का नाम ही उगस है जो धीरे धीरे व्यापक बन गई है । वैसे देखने में यह मठ उर्क-संगठ जान पड़ता है किन्तु इस संबंध में दो मुख्य आपत्तियाँ हैं । उगस प्रदेश की भाषा उगसी होनी चाहिये न कि दिवस । इसपर लेखक चुप रह गये हैं । दूसरी बात यह कि इतिहास से इस मठ की पूर्णता नहीं होती । सभी प्रमुख विद्वानों के अनुसार इस भाषा का क्षेत्र राजस्थान ही रहा है किन्तु उसके किसी भी भूभाग का नाम उगस नहीं रहा है । पौराणिक काल में पश्चिमोत्तर भारत के विभिन्न भू भागों के नाम अवस मरस विभि मरु, मालव मरुद माङ्ग आदि पाये जाते हैं<sup>१</sup> मध्ययुग में इस प्रदेश का उत्तरी भाग अवल दक्षिणी भाग मेरवाट बायड़, मालव प्राग्वाट, गुर्जरवा पश्चिमी भाग मरु माङ्ग, बस्स बबणी और मध्य भाग अबुध सपाहलस आदि नामों से पुकारा जाता था ।<sup>२</sup> किन्तु उगस नाम का कहीं भी उल्लेख नहीं मिलता । माना कि वह प्रदेश कालांतर में किसी दूसरे नाम से पुकारा जाने लगा होया किन्तु उसका नहीं उल्लेख न मिलना ही सिद्ध करता है कि ऐसा प्रदेश कभी पाया ही रहा हो । जिस प्रदेश के आधार पर किसी भाषा का नामकरण होता है उसका महत्वपूर्ण होना अनिवार्य होता है और ऐसे महत्वपूर्ण प्रदेश का कोई उल्लेख कहीं न पाया जाय आश्चर्य की बात ही है इसीलिये इस मठ को कलाना के अतिरिक्त कुछ नहीं कहा जा सकता । डा० सुनीलकुमार भट्टजी ने दिवस की उत्पत्ति गुजर राज्य से मानी है । राजस्थानी में गुजर का अर्थ पर्वत या पहाड़ी है । अतएव दिवस का अर्थ समस्त पर्वतीय भाषा होया ।<sup>३</sup> डा० भट्टजी अपने इस मठ के संबंध स्वयं अनिश्चित हैं अतः इस पर विरोध विचार करना अनावश्यक है ।

राजस्थानी की प्राचीन परंपरा के वर्तमान कवि उमरराज उज्ज्वल उगस 'दीर्घा' 'आयत्ता' उग आदि शब्दों के अर्थों को स्पष्ट करते हुए, दिवस का अर्थ उड़नेवासी भाषा मानते हैं । उनकी धारणा है कि दिवस के कवि विमल को पंगु भाषा बहने है और सापेक्षता में दिवस को उड़नेवासी भाषा मानते हैं ।<sup>४</sup> दिवस के अन्य विद्वान किशोरसिंह बाहूपर्य के अनुसार दिवस शब्द द्विक विहायता गयी

१-चण्डगुप्त बार्हस्पत्य राजस्थान दिग्दर्शक-पहला अध्याय

२-नरोत्तम स्वामी राजस्थानी-भाषा १ पृष्ठ ४

३-मगदोग श्रीवास्तव दिवस साहित्य-पृ ४ पर उद्धृत

४-उमरराज उज्ज्वल शास्त्र अर्थ संक्षेप-अप १ अंक ६-७ पृ० १८

५-उमरराज उज्ज्वल राजस्थान भारती अप २ अंक २ पृ० ४३

अर्थात् उड़ना अर्थ वाली भाषा 'डी' से बना है और इसका अर्थ है उड़ने वाली भाषा ।<sup>१</sup> डिगल भाषा के व्याकरण छन्द शास्त्र काव्य-न्यायि आदि को जब भाषा से अधिक सरल मानकर उसे उड़ने वाली भाषा के रूप में छिड़ करने की चेष्टा की गई है । वस्तुतः बात ऐसी नहीं है । डिगल किसी भी दृष्टि से सरल नहीं कहों जा सकती । क्या सगई जैसा बंधन भी इसमें प्रचलित रहा है अतः इस मत को समीचीन नहीं ठहराया जा सकता ।

मुँछी बेबीप्रसाद बहरीबान कविया सत्यदेव बाड़ा इसी बात को प्रकाशित करने के लिए करते हैं । मुँछी डी का कथन है कि गला का अर्थ भारवाड़ी भाषा में बात और बोली का है । डीगा जैसे जैसे को और पांगला पंगु तथा कूसे-संमड़े को कहते हैं । चारण अपनी कविता बहुत जैसे स्वरों से पढ़ते हैं और जब भाषा की कविता पीरे पीरे मंद स्वरों में पढ़ी जाती है ।<sup>२</sup> इसी लिये डिगल और पिगल संज्ञा हो गई जिसको दूसरे शब्दों में जैसे बोली और सीधी बोली की कविता कह सकते हैं । इसमें कोई संदेह नहीं कि बीर रस प्रधान कविता बाड़े बहु जब भाषा में भी क्यों न लिखी गई हो और से ही पढ़ी जायेगी अतः यह तर्क सारहीन है । न कभी ऐसे आधार पर किसी भाषा का नामकरण ही समझ है ।

डा श्यामसुन्दर दास ने सिखा है कि जो लोग जब भाषा में कविता करते थे उनकी भाषा पिगल कहाँ जाती थी और इससे भेद करने के लिये भारवाड़ी भाषा का उची की ध्वनि पद गढ़ा हुआ नाम डिगल पड़ा।<sup>३</sup> प रामकर्म बासोपा की भी यही मान्यता है । वे मानते हैं कि डिगल शब्द की कल्पना पिगल शब्द की समकक्षता में की गई है । डिगल शब्द रुढ़ प्रतीत होता है ।<sup>४</sup> गुजेरीजी के मत में डिगल केवल अनुकरण शब्द है । काधिया न मिलेगा ठो बोलीं ठो मरेगा—की कहावत के अनुसार पिगल से भेद दिखाने के लिए बना लिया गया है ।<sup>५</sup> मनोहर स्वामी ने इस पर विस्तृत प्रकाश डालते हुए सिखा है कि संस्कृत—प्राकृत की कविता पिगल रचित छंद शास्त्र में बसाये छंदों में लिखी गई । अपभ्रंश ने लोक साहित्य से अनेक नये छंद बनाये, जिनका समावेश प्राकृत—पिगल स्वयंभू-छंद आदि नवीन छंद श्रृंखला में किया गया । इस भाषाओं के विकास के समय लोक साहित्य के आधार पर और नये प्रकार के छंद बनाये गये । पूर्व में कवियों ने जिन में जाट (ब्रह्ममट्ट) प्रजापति के पक्षों का आधिकार किया और पश्चिम के चारण कवियों ने (चारणी) भीलों का । ब्रह्ममट्ट लोग पियसानुमोदित छंदों में भी रचना करते रहे, उनकी रचनाओं में पक्षों की अपेक्षा पियसानुमोदित छंदों की ही प्रधानता

१—किशोरसिंह बाईसत्य रामस्वाम—अर्थ १ अंक १

२—मुँछी बेबीप्रसाद नमू हि सा० अर्थ का कार्य विवरण पृ० ४४

३—श्यामसुन्दरदास हिन्दी शब्द सागर—भूमिका पृ० २८

४—रामकर्म बासोपा एकाग्र हि० सा स० कलकत्ता का कार्य विवरण पृ १७

५—चन्द्रचर दास गुजेरी ना० प्र० पत्रिका भाग ३ अंक १ पृ २८ नवीन संस्करण



रही। पर चारणों ने इन छंदों की अपेक्षा गीतों को प्रधानता दी। विजयानुमोदित छंदों में किसी पयी कविता की भाषा (व्रजभाषा) विजय नाम से प्रसिद्ध हुई। उसी के बजन पर विजय के छंदों से भिन्न गीतों में किसी कविता की भाषा का विजय नाम पड़ा।<sup>१</sup> ये सब चारणार्थे एक पूर्वाग्रह लेकर बसती है कि विजय नाम प्राचीन है और इसी के आधार पर विजय नामकरण किया गया, जो अनुचित है। जहाँ व्रजभाषा के लिए विजय छन्द का प्रयोग कोई अठारहवीं शताब्दी में पाया जाता है, वहाँ राज स्वामी (मारवाड़ी) भाषा के लिए विजय छन्द का उल्लेख अपेक्षाकृत पहले पाया जाता है। विजय छन्द का प्रयोग छंद शास्त्र के अर्थ में तो बहुत पुराना है किन्तु व्रजभाषा के अर्थ में अठारहवीं शती में भुव पीबिंद सिंह ने अपनी कृति 'विभिन्न नाटक' में इसका प्रयोग किया है जैसे भाषा विजय ही।<sup>२</sup> किन्तु मारवाड़ी भाषा के लिए विभिन्न छन्द का प्रयोग अठारहवीं शताब्दी में होने लग गया था। प्रसिद्ध जैन कवि कुसुमसाम ने (१६१६ वि०) विजय छिरोमणि' नाटक ग्रंथ लिखा है जिसमें मारवाड़ी भाषा के लिए पहले पहल विजय छन्द का प्रयोग मिलता है।<sup>३</sup> इससे सिद्ध होता है कि विजय छन्द विजय की अपेक्षा प्राचीन है अतः विजय के ध्वनिसाम्य के आधार पर विजय छन्द की उत्पत्ति की कल्पना करना इतिहास विरुद्ध है।

विजय भाषा का संबंध चारण भाट राज डाड़ी मोठीसर आदि जातियों से रहा है जिसका उल्लेख डा० हरप्रसाद शास्त्री ने अपनी खोज रिपोर्ट और पीछे से डा० मेनारिया ने अपने ग्रंथों में किया है। इस छन्द को ध्यान में रख कर उपसिंह भटनागर ने एक नई कल्पना की है। उन्होंने लिखा है कि ये जातियाँ सारे राजस्थान के राजपरिवारों से संबंधित रहती आई हैं, इनका कार्य बिस्व और पाषाण रचना और गाना है। इनकी गीतों और उनकी भाषा की परम्परा काव्य के रूप में विकसित हुई और विजय साहित्य और भाषा के रूप में प्रसिद्ध हुई। राजस्थान से संबंधित और प्रभावित अन्य लोगों ने भी इस शैली में रचना की है। परन्तु प्रमाण रूप से विजय का सम्बन्ध इन्हीं जातियों से था। इस कथन के प्रमाण में उन्होंने विजय छन्द की व्युत्पत्ति को खोजा बाढ़ा है। विजय छन्द को उन्होंने बिबर से विकसित माना है। जनका प्रश्न है—यह शींगरो क्या है? संस्कृत कोषों में एक बिबर शब्द मिलता है जिसका अर्थ मीनिकर विविधमय ने अपने संस्कृत कोष में पृ० ४३० पर अमरसिंह हंसायुध, हैमचन्द्र आदि के कोषों के आधार पर दास शब्द गाने-बजाने वाला दिया है। अतः बिबर शब्द इन्हीं जातियों—चारण भाट राज मोठीसर डाड़ी आदि से

१—नरोत्तम स्वामी विजय वक्रमानि री बेसि—प्रस्तावना पृ० ७

२—भुव पीबिंद सिंह वसंत ग्रंथ—पृ० ११७

३—अमरचन्द्र लाहटा राजस्थान चारली भाग १ अंक ४ पृ० १४

४—उपसिंह भटनागर हिन्दी अनुशीलन-वर्ष ३ अंक १ पृ० ६४

सम्बन्ध रखता है। डिगरका अर्थ 'र' 'स' मूक्य ल में परिवर्तित हो गया है। इस तर्क के आधार पर भट्टनाथ जी ने डिगल शब्द की व्युत्पत्ति बूना निकामी है। डा० सुकुमार सेन<sup>१</sup> और बाबाय बिबनाथ प्रसाद मिश्र<sup>२</sup> भी इसी समझना के समर्थक हैं। किन्तु इसे मानने में बड़ी हिचकिचाहट होती है। चारनों की भापा बहुधा विपक्ष रही है किन्तु भाटों की पिगल। चारनों ने कविता के क्षेत्र में जो कुछ योगदान दिया, भाटों का योग उससे किसी भी भाँति कम नहीं रहा। राजस्थानी साहित्य में डिगल भापा के ग्रंथों की तुलना में पिगल भापा के ग्रंथों की संख्या कुछ अधिक हो है। अनेक रासो ग्रंथ पिगल ग्रंथ अधिक हैं। अनिश्चित इससे कि उन्हें डिगल के ग्रंथ माना जाय। ऐसी स्थिति में केवल परम्परायुक्त मारवाड़ी में रचित चारणी साहित्य अपने लिए डिगल नाम क्यों पा सका यह समझ में नहीं आता। डिगरों (सेबकों—जाने बजाने वालों) की भापा डिगल—इस मूल के आधार पर तो प्रत्येक राज्याभिन्न कवि की भापा डिगल कहलाने की हकदार हो जाती है। फिर क्या कारण है कि भाटों व इतर कवियों की रचनाओं को हम पिगल मानते हैं—डिगल नहीं। हमारी इस टाँका का समाधान इस मत द्वारा नहीं हो सकता अतः इसे किस दिया एक स्वीकार किया जाय यह विम्व है।

डिगल भापा के नामकरण के संबंध में नरोत्तम स्वामी ने हमारा ध्यान एक नवीन समझना की ओर आकषित किया है। उन्होंने बताया है कि कुसुमलान—रचित पिगल पिरोमणि ग्रंथ में उडिगल नागराज का एक छंदपास्तकार के रूप में उल्लेख हुआ है। छंदों का सर्व प्रथम विवेचन करने वाला पिपलनाग हुआ। जब अपभ्रंस काल में नवीन मात्रिक छंदों का प्रयोग होने लगा तो उनका आविष्कारक भी पिपल ही माना गया और उड़ी के नाम पर प्राकृत पिगल ग्रंथ बना। इस प्रकार पिगल कविता में प्रयुक्त छंदों का आविष्कारक पिगलानाथ प्रसिद्ध हुआ। जब डिगल गीतों का आविष्कार हुआ तो उनका संबंध भी किसी प्राचीन महापुरुष से जोड़ना आवश्यक मान पड़ा और पिगल नागराज के समान उडिगल नामराज की कल्पना की गई। यह 'उडिगल शब्द ही डिगल का मूल है।' स्वामी जी ने इस चारणा के द्वारा हमारा ध्यान भारतीय मानसा के स्वभाव की ओर अनवरत आकषित किया है जिसके अनुसार हम अपने ज्ञान विज्ञान साहित्य शास्त्र सभी का संबंध प्राचीन के साथ असीत्तिक के साथ जोड़ना चाहते हैं। अब एक इस प्रकार के उल्लेख कहीं अग्र्य नहीं मिलें इसे अनुमान ही अधिक माना जायेगा। किन्तु संभव है भविष्य में इसी दिशा में कहीं और सूत्र हमारे हाथ लग जाए।

हमने ऊपर सभी प्रमुख विचारकों की चारणाओं को परखा किन्तु वह सब करने पर भी हम किसी निश्चित स्थान पर नहीं पहुँच पाये। नामकरण के प्रश्न को

१—डा. हीरालाल माहेश्वरी राजस्थानी भापा और साहित्य—पृ० १४९

२—बिबनाथ प्रसाद मिश्र हिन्दी साहित्य का अतीत पृ० २९ व ३१

३—नरोत्तम स्वामी किमन चन्द्रमणी पी केमि—प्रस्तावना पृ० ७-८

मेकर विभिन्न अटकलों सगाने से कोई विशेष लाभ होने की संभावना नहीं है। वैज्ञानिक अध्ययन में अनुमान का बलना का योग एक विशेष सीमा तक ही लिया जा सकता है अतः इस सम्बन्ध में और भी अधिक कल्पना करने के स्थान पर हमें हिमाल के स्वरूप का अध्ययन करना चाहिए, संभव है इसी के द्वारा हमारी इस नामकरण की जटिल समस्या का निदान निकल आये।

हिमाल को मेकर अनेक संकायें उठाई गई हैं (१) हिमाल राजस्थान की कुछ विभक्त जातियों की माया-सीसी मात्र है वह कोई स्वतंत्र भाषा नहीं है।<sup>१</sup>

(२) मारवाड़ी और हिमाल एक नहीं मानी जा सकती। प्रश्न है कि क्या समूचा मारवाड़ी (राजस्थानी) साहित्य हिमाल कहा कहा जा सकता है? न तो सारे राजस्थानी साहित्य को ही मारवाड़ी कहा जा सकता है न छारे हिमाल साहित्य को ही। अतः हिमाल और मारवाड़ी दोनों भिन्न हैं।<sup>२</sup>

(३) हिमाल एक द्वितीय भाषा है। वह बोलचाल की भाषा कभी नहीं रही।<sup>३</sup>

यद्यपि हम तीनों संकायों पर हमने अपने विचार प्रारंभ में ही स्पष्ट कर दिये हैं—किर भी वे वैज्ञानिक विवेचन की अपेक्षा दलभ है अतः उन पर तब-एक कर विचार दिया जायेगा।

कह्य विद्वानों में हिमाल को कह्य जातियों की माया-सीसी मात्र माना है। वे उस स्वतंत्र भाषा नहीं मानते। उनही सम्मति में तब स्वतंत्र भाषा के लिए यह आवश्यक है कि उसके रूप का बोलचाल में प्रयोग हो। इस दृष्टि में हिमाल में कोई स्वतंत्र रूप-सीकता अवका वाक्य विधान नहीं दृष्ट गवना। उसकी रूप-सीकता और वाक्य विधान का आधार राजस्थानी वाक्यों में रहा है। अतः हिमाल इन वाक्यों में स्वतंत्र नहीं है और न कोई स्वतंत्र बोली है। इसका सर्वप्रथम स्रोत में चारन, मातृ राज माड़ी माणीमर आदि जातियों में ही रहा है किन्तु उम्मेद डाक्टर हरप्रसाद तारपी में और बीरे में डा० मेनारिया में अपने पत्र में लिखा है। ये जातियाँ लारे राजस्थान के राज परिवारों में सम्मिलित रहनी आरंभ हैं इसका कार्यविषय और माया-सीसी रूप में लिखित हुई और हिमाल साहित्य और भाषा के नाम में प्रसिद्ध हुई। राजस्थानियों में सम्मिलित और प्रभावित अन्य भाषा में भी इस बोली में रचना की है परन्तु प्रमाण रूप में हिमाल का सम्बन्ध इसी जातियों का।<sup>४</sup>

इन मायना के दो अंग हैं। १—हिमाल भाषा नहीं—सीसी मात्र है। २—वह केवल कुछ जातियों द्वारा लिखित मात्र लिखा गया है। वाक्य सीसी में रूप में

१—उत्तर हिमाल में मारवा राजस्थानी भाषा हिमाली अनुदीपन-व २ अंक ३ पृ १२

२—वही

३—डाक्टर सिंह मारवा हिमाली और उद्देश्य भाषा-वा वैज्ञानिक दृष्टिकोण पृ ३८

४—उत्तर हिमाल में मारवा राजस्थानी भाषा हिमाली अनुदीपन व २ अंक ३ पृ १३

प्रयुक्त की जाती रही है । जहाँ तक हिमाल को माया मानने का प्रश्न है—हिन्दी के अधिकांश विद्वान इसे माया ही मानते हैं । व्याकरण की दृष्टि से हिमाल एक भाषा ही ठहरेगी है । डा० सुमित्राकुमारी सिन्हा<sup>१</sup> आचार्य हुमारी प्रसाद द्विवेदी<sup>२</sup> डा० सुनीति कुमार चाटुर्ज्या<sup>३</sup> मरोत्तम स्वामी<sup>४</sup>, आदि हिमाल को माया मानने के पक्ष में हैं । जहाँ तक हिमाल को कुछ विशेष बातियों से सम्बन्ध होने की स्थापना की जाती है उसमें काफ़ी सम्झाई है । मिस्रवेह चारण, भाट मोतीचर राय झाड़ी आदि बातियों द्वारा हिमाल के विकास में महत्व का योग-दान रहा है फिर भी हमें यह याद रखना होगा कि इन बातियों के अतिरिक्त अन्य बातियों के लोगों ने भी हिमाल में काफ़ी काम्य रचना की है । हिमाल साहित्य के दो सर्वप्रसिद्ध काव्य “डोला-माक रा हुआ और “बैसि जिनन रुकमणी री चारवेसर कवियों द्वारा ही रच हुए हैं । हिमाल का सर्वोत्तम उपग्रन्थ “नीलसोरी क्वाठ भी एक बरब लेखक की रचना है<sup>५</sup> । मत संशेप में कहा जा सकता है कि हिमाल एक भाषा है, जिसे बाहे प्रारम्भ में कुछ विशेष बातियों द्वारा भले ही अपनाया गया हो, किन्तु बाद में वह सभी द्वारा समानुप साहित्यिक भाषा बन गई । उसे मातृ धैनी नहीं माना जा सकता ।

मारवाड़ी को हिमाल माना जाय खतरा नहीं—इस खंका का कारण पृष्ठभूमि की उपेक्षा है । हम पहले ही बता आये हैं कि अनुसूति भाषासात्व और इतिहास-सीनों दृष्टि से हिमाल मारवाड़ी (राजस्थानी की प्रमुख साहित्यिक उपभाषा) से भिन्न नहीं है । संशेप में मरभाषा (मारवाड़ी) और हिमाल एक ही भाषा के भिन्न भिन्न नाम हैं । राजस्थानी के अग्र्यतम कवि सूर्यमल्ल मिश्रण ने यही मत व्यक्त किया है<sup>६</sup> ।

हिमाल उपनामक कर्तुक मरवाणीहु विषय ।

अपनु उ नामे अधिक सवा बीर-रस-स्नेह ॥

—बंश भास्कर खंड १, दोहा ४०

‘हिमसंत’ और टेसिटरी<sup>७</sup> ने भी हिमाल का भव मारवाड़ी ही लिया है ।

१—डा० सुमित्राकुमारी सिन्हा मध्यकासीन हिन्दी कवयित्रियाँ—पृ० २७

२—हुमारीप्रसाद द्विवेदी हिन्दी साहित्य पृ० १६-१७

३—सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या राजस्थानी भाषा—पृ० १८

४—मरोत्तम स्वामी जिनन रुकमणी री बैसी प्रस्तावना पृ० २

५—डा० मोतीलाल नेहारिया राजस्थान का हिमाल साहित्य—पृ० ५

६—सूर्यमल्ल मिश्रण बंश भास्कर खंड १, पृ० १४७

7. Dr. Grierson Linguistic Survey of India, Vol. IX, Part II page 19

Marwari has an old literature about which hardly anything is known. The writers some time composed in Marwari and sometimes in Brajabbasha. In the former case the language was called Dingal and in the latter Pingal.

8. Dr. Tensitori—Journal of the Asiatic Society of Bengal Vol. V, No. 10, page 375 (Quoted on next page)

मोहनलाल<sup>१</sup> जिज्ञासु इसीलिए डिंगल को राजस्थानी (मारवाड़ी) का मध्यकालीन रूप समझते हैं<sup>२</sup>। उनकी मायता है कि ज्यों-ज्यों महभाषा (मारवाड़ी) का रूप परि-  
 माणित होता गया और वह साहित्यिक रचनाओं के लिए प्रयुक्त होने लगी त्यों-त्यों  
 उसका नाम डिंगल प्रसिद्ध होने लगा। प्रारंभ में डिंगल काव्यभाषा बोलचाल की  
 भाषा से भिन्न नहीं—केवल वह उसका परिष्कृत स्वरूप था। जैसे केचवरास बिहारी  
 पद्मानन्द सभी ब्रजभाषा के कवि हैं परन्तु उनमें ब्रजमंडल में प्रयुक्त होने वाली भाषा की  
 भाषा से थोड़ा बहुत अन्तर है और सूरपूर्व ब्रजभाषा में भी थोड़ी विभिन्नता है। उसी  
 प्रकार आज की मारवाड़ी और प्राचीन मारवाड़ी में अन्तर है और बोलचाल एवं  
 साहित्यिक मारवाड़ी में भी भिन्नता है जो स्वाभाविक ही है। अतः साहित्यिक  
 परम्परा-सम्मत मारवाड़ी के साहित्य को हम निस्संदेह डिंगल साहित्य के रूप में ग्रहण  
 कर सकते हैं। राजस्थानी में अनेक उपभाषाएँ हैं और उनके साहित्यों को डिंगल के  
 रूप में उसी तरह ग्रहण नहीं किया जा सकता जैसे हिन्दी की विभिन्न उपभाषाओं के  
 साहित्यों को छोड़ी-बोली साहित्य में नहीं गिना जा सकता।

दोसरी शंका है कि डिंगल एक कृत्रिम भाषा है। डिंगल भाषा में राज्यादित  
 कवियों ने ही बहुधा अपनी रचनायें की हैं। ये भाट और चारण इन वीर गाथाओं को  
 अपने आचरण तथा किसी सामन्ती सरकार अथवा राजदरबार की प्रशंसा में कहते थे।  
 उनकी भाषा साधारणतया किसी जूनी की और आम बोलचाल की नहीं होती थी  
 तथा प्रायः एक राजदरबार से दूसरे ठग बदलती रहती थी क्योंकि जब वे चारण  
 एक राजदरबार से दूसरे में जाते तो उन्हीं वीर-गाथाओं और चारण-काव्यों में छन्द  
 तथा भाषा का हेर फेर करते जाते वही काव्य नये सामन्त की स्तुति के काम आ  
 जाता और उसके दरबार के जीवित या मृत वीरों के नामों का उसमें समावेश कर  
 दिया जाता। ये भाट एक दरबार से दूसरे दरबार में भाषा ग्रहण करते थे और  
 निम्नवर्ती दरबारों में समझी जानेवाली विभिन्न भाषा का प्रयोग करते थे। जब  
 किसी राजा या सामन्त का आगमन होता तो उसके दरबार की भाषा उस विभिन्न  
 भाषा में प्रयुक्त रचाना ग्रहण कर लेती थी<sup>३</sup>।

उपग्रन्थ इसी नाम में जर्मनी के राजदरबारों में जागरी भाषा अस्तित्व में  
 आई थी जो ऐसी ही किसी-जुसी थी। निम्न जातिजन्म जर्मन भाषा का उद्गम इस

It is well known that there are two languages used by the  
 bards of Rajputana in their poetical compositions and they are  
 called Dngala and Purgala. These are no more 'Styles of  
 poetry' as held by Mahamahopadhyaya Hara Prasad Shastri,  
 but two distinct languages the former being the local Dhasha  
 of Rajputana and the latter the Drajbhasha, more or less  
 situated under the influence of the former.

१—मोहन लाल जिज्ञासु प्रस्ताव वर्ष ४ अंक ७ पृ० १८

२—समग्रविह नमना हिन्दी और प्रादेशिक भाषाओं का वैज्ञानिक इतिहास—पृ०

भाषा से नहीं भाषा जाता । वह चांसरी भाषा अमेरिकन, क्राफिस, बनेरियन और स्वाबियन से जो पूर्ववर्ती घटावियों के क्वालिफाय्ड सामान्य राज्यों की भाषाएं थी, मिश्र थी । वह चांसरी भाषा व्याकरण के कम-से कम नियमों को लेकर उन सामान्य राज्यों की भाषाओं में साधारणतया समझे जाने वाले शब्दों के मेस से बनी एक कृत्रिम भाषा थी । रासो काव्यों की हिमस भाषा भी ऐसी ही थी—बुनी भाषा थी<sup>१</sup> ।

निसंदेह भी नदसा की इस साम्यता में काफी संशय है । किन्तु वे भी हिमल की विमल का स्वाभाविक मान गये हैं । राजस्थानी विंगल रचनाओं की भाषा का स्वरूप अवश्य कृत्रिम है किन्तु यह उक्ति हिमल पर लागू नहीं की जा सकती । बन्व बरबाई की 'पृथ्वीराजरासो' विंगल रचना है । हिन्दी के समस्त विद्वानों ने इसे विमलकृति ही ठहराया है । (विस्तृत विवेचन इसी अध्याय में आगे देखिये) । इसकी भाषा केवल में डा० मुनीतिकुमार चाटुर्ज्या का कथन है 'रासो की जैसी भी भाषा है वह भीवित बोली नहीं है—वह किसी भी काल या प्रदेश में बोली जाने वाली भाषा नहीं है । वह एक कृत्रिम साहित्यिक बोली है जिसका स्वरूप कई घटावियों की और सहस्रों बर्गमीस में फँसे सुलभ को कई बोलियों द्वारा निर्मित हुआ था । उसमें मुख्यतः पश्चिमी अपभ्रंस का है जिसमें पश्चिमी हिन्दी के साथ राजस्थानी बोलियों और प्रारंभिक पंजाबी की मिश्रितताएं हैं । इस प्रकार की एक मिश्रित बोली राजस्थानी कविता में १२० ई के बाद क्रमशः प्रचलित हो चली थी और उसका विंगला या विमल नाम था । किन्तु राजस्थानी चारण काव्य की यह मिश्रित बोली केवल विशिष्टजनों द्वारा समझी जाती थी जनसाधारण की वह भाषा न थी<sup>२</sup> । इस संदर्भ से स्पष्ट हो जाता है कि कृत्रिम भाषा विमल है, न कि हिमल । हिमल की कृत्रिम भाषा मान लेने से बड़ी हास्यास्पद स्थिति हो जाती है । विंगल को हम कृत्रिम भाषा मानते हैं हिमल को भी ऐसी ही भाषा ठहरा देने से मानना पड़ेगा कि उस युग में लोकवास की भाषा का कोई साहित्यिक स्वरूप ही नहीं था । यह कल्पना अवेज्ञानिक ठहरती है ।

हिमल भाषा का आधार भारवाड़ी रहा है । भारवाड़ी काफ़ी प्राचीन समय से मकभाषा के नाम से जानी जाती रही है । हम इस सम्बन्ध में अल्प विचार कर चुके हैं तो फिर विंगल का वास्तविक स्वरूप क्या था ? पंडित भगवान् बोधा के अनुसार हिमल का मूलतः प्राचीन काल की या उसके इन पर सिखी हुई साहित्यिक राजस्थानी से है । अनेक लोग हिमल की चारणों की बनावटी भाषा मानते हैं, पर यह केवल भ्रम है । इस भ्रम का कारण यह है कि प्राचीनकाल में विंगल-अथ रचना का प्रचार प्रायः सभी जातियों के लोगों में था । राजपूत, साधू ब्राह्मण शैवक, पंचोली आदि भी हिमल में कविता करते थे परन्तु सबही घटावरी परचात् जिन

१—मनोरेख नदसा हिन्दी और प्रादेशिक भाषाओं का वैज्ञानिक इतिहास—पृ०

७२ ७९

२—मुनीतिकुमार चाटुर्ज्या भारतीय कार्यभाषा और हिन्दी—पृ० १ ३

सोनों का गीत वर्य वरिण करमा गरी या और ओ मनाचिना- माग के गिए ही करिण करत ये उनका सुवास उग समय की जगती भाषा या और हुआ । हिन्दु उगने धीरे धीरे छू गे और वह केवर उड़ी जानिया ये रह गई बिजवा जीविका निर्वाह परम्परा मे इसी क सहारे होता था । ये जानिया बिजवा के कारण मीठीगर माट राव हाड़ी दम्पती भाति है । इन्होंने पुरानी परियाटी की कटुता मे रक्षा की और हिन्दु वरिण मे प्राचीन मे प्राचीन गायों का जो अब जनगाना के ज्ञान न बाहर हो चुके हैं प्रयोग करमा न छोड़ा । इन हिन्दुवाण समय विगत गायों का समानता जनगाना के लिए कठिन हो गया । इन उद्देश्य मे वह समय जिया बिजा न हो वह भाषा चारणों की एक निजी एवं बनाबटी भाषा ही है तब माचारण की नहीं । परन्तु कारण मे हिन्दु बनाबटी भाषा नहीं है ये राजस्थान की विगत प्रयोग भाषा है । प्रचारात् उ डा० स्वामिभुवराज भी इसी का समर्थन करते हैं । डा धीरेन्द्र वर्मा हिन्दु का पुरानी साहित्यिक मारवाड़ी दर्शाते हैं । गरीयम स्वामी डा० रामसिंह सोमर रानी लक्ष्मीकुमारी बृहत्त जी पांडुरंग कण्ठकर्णी सभी विज्ञान हिन्दु को प्राचीन मारवाड़ी मानते हैं ।

इन उद्देश्य होता है कि राजस्थान की प्रमुख साहित्यिक भाषा का नाम प्राचीन काल मे मरवावा या बड़ी मध्यकाल मे हिन्दु कहलाया । आज हम उमे हो राजस्थानी भाषा के नाम से पुकारने लगे हैं । अर्थात् मध्यकालीन मरवावा का साहित्यिक रूप हिन्दु कहलाया और आज की बोसवाल की भाषा राजस्थानी बड़ी जा रही है । हिन्दु भाषा के विकास को समझने का अर्थ हमारे लक्ष्य मे राजस्थानी भाषा के उत्पन्न और विकास का अध्ययन मान है अतः अब हम राजस्थानी भाषा के विकास पर विचार करेंगे ।

### राजस्थानी भाषा का विकास

किसी भी भाषा के उद्भव व विकास का अध्ययन करने हुए हमें उसके ध्येय और वैज्ञानिक विकास के इतिहास से परिचित होना आवश्यक हो जाता है ।

१—पञ्चराम कोशा—हिन्दु भाषा नामरी प्र० पत्रिका—भाग १४ अंक १ पृ० ९४

२—डा० स्वामिभुवराज हिन्दी भाषा—पृ ४१

३—डा० धीरेन्द्र वर्मा हिन्दी भाषा का इतिहास—पृ० १५

४—गरीयम स्वामी जिसन कर्मणी री वेति प्रस्तावना—पृ० ९

५—डा० रामसिंह सोमर हिन्दी साहित्य कोश—पृ ११४

६—रानी लक्ष्मी कुमारी बृहत्त राजस्थानी भाषा और साहित्य—पृष्ठ ७

७—बृहत्त जी पांडुरंग कण्ठकर्णी मराठी उद्भव व विकास पृष्ठ १९

८ अ—गुरवोत्तम मेनारिया राजस्थानी भाषा की रूपरेखा—पृ० १७

ब—राजमोहनसिंह प्राचीन राजस्थानी धीठ भाग १—छपावकीय पृ० २

भाषा वैज्ञानिकों ने राजस्थानी को अपभ्रंशोत्तर भाषा माना है। अपभ्रंश और प्राचीन राजस्थानी के काल में सीमा रेखा दीखना कठिन है क्योंकि राजस्थानी भाषा पर अपभ्रंश का प्रभाव इतना अधिक मिलता है कि राजस्थानी भाषा का पुरा ज्ञान नहीं रखने वाले व्यक्ति वर्तमान और मध्य कालीन राजस्थानी रचना को भी बहुत पुरानी समझ बैठते हैं<sup>१</sup>। इसी प्रकार राजस्थानी भाषा का सम्बन्ध किस अपभ्रंश से हुआ है इस सम्बन्ध में सभी विद्वान एकमत नहीं हैं। पुरुषोत्तम मेनारिया इसे नागर अपभ्रंश से उत्पन्न मानते हैं<sup>२</sup>। जनार्दनराय नागर ने इसे साय ही सोरसेनी अपभ्रंश से सम्बन्ध ठहराया है<sup>३</sup>। कुछ लोगों के मत में राजस्थानी का विकास सबसे पहले नागर एवं अवन्ती अपभ्रंशों से हुआ है<sup>४</sup>। मुलेरी<sup>५</sup> श्यामसुन्दरदास<sup>६</sup> उदयनारायण तिवारी सभी का मुकाब सोरसेनी अपभ्रंश की ओर है। मुदी राजस्थानी को मुन्जरी अपभ्रंश से उत्पन्न बताते हैं<sup>७</sup>। चादुर्गम उत्कामीन अपभ्रंश को सोराष्ट्र अपभ्रंश की संज्ञा देते हैं<sup>८</sup>। कुछ जो ही सन् १९०० ई० से १९०० ई० तक समय पत्राब राजस्थान, गुजरात, सम्भवतः सिंध और अन्धकोश में भी एक साहित्यिक अपभ्रंश प्रतिष्ठित थी जिसे हम अपनी सुविधा के लिए पश्चिमी अपभ्रंश कह कर पुकार सकते हैं<sup>९</sup>। इसी अपभ्रंश से विकसित की भाषा ईस्वी की बारहवीं शती से सोलहवीं शती तक इस विस्तृत भू भाग पर प्रयुक्त होती रही छत्ते ही टेसिटरी ने 'पुरानी पश्चिमी राजस्थानी' का नाम दिया है<sup>१०</sup>। उसे ही गुजराती विद्वान उमाशंकर बोसो 'मासुमूर्जर' संज्ञा देते हैं<sup>११</sup>। निम्नोक्त बोसो की का यह नामकरण जबकि वैज्ञानिक और उचित है। उस समय तक राजस्थानी और गुजराती एक भाषा थी<sup>१२</sup>। इसके लिए मेरी निम्नोक्त में एक नया नाम 'व्यास' का रास्ता पहले समय जाया जिसकी ओर मुनि जिन विजय की ने संकेत भी दिया है<sup>१३</sup>। वह नाम है 'मासु-सोरठ'। इस प्रकार प्राचीन राजस्थानी-गुजराती सोलहवीं शताब्दी तक प्रचलित थी।

१—पुरुषोत्तम मेनारिया राजस्थानी भाषा की स्वरूपा—पृ० ११

२—वही

३—जनार्दनराय नागर हिन्दी की प्रादेशिक भाषाएँ—पृ० ६

४—पारीक—ठाकुर जेसि क्रिष्ण लक्ष्मीरौ—पृ० ८ सुविधा कह

५—अन्धपर सभी मुलेरी—पुरानी हिन्दी—भा० प्र० प० भाग २, पृ० २४३ ४४

६—श्यामसुन्दर दास हिन्दी भाषा—पृ० १२

७—उदयनारायण तिवारी हिन्दी भाषा का सम्बन्ध और विकास—पृ० १७८-७९

८—क० मा० मुंजी अ० मा० सा० ०० के ३३ में व्यवस्थित का विवरण पृ० ९

९—डा० सुनीलकुमार चादुर्गम राजस्थानी भाषा पृ० ९२

१०—डा० सुनीलकुमार चादुर्गम राजस्थानी भाषा पृ० ९०

११—टेसिटरी अनरम जाठ ए० एल० माफ बेगास व० १ अंक १० पृ० १७४

१२—अनंतराय म० रायस गुजराती साहित्य पृ० २

१३—गजराज बोसो विषय भाषा भा० प्र० प० भाग १४, अंक १ पृ० ११४

१४—मुनि जिन विजय व्यास का रास्ता—किचित् सुविधा—पृ० ७



सोमहरी से उन्नीसवीं सताब्दी तक राजस्थानी भाषा का भाष्यमिश्र स्वरूप दिखाई देता है। इस युग की साहित्यिक भाषा के दो रूप हमें साफ़ मज़र आते हैं। एक तो वह जो बोलचाल की भाषा के अत्यधिक निकट रहा है। ऐसी भाषा हमें भोजपुरी, संतकाव्य और जैनसाहित्य में देख पड़ती है। उत्कामीन भाषा का दूसरा स्वरूप अत्यधिक साहित्य परम्परा-सम्मत रहा है। आभोज्य-काव्य की इस प्रकार की भाषा के दो रूप हमें स्पष्ट ज्ञान पड़ते हैं जिन्हें राजस्थान में विंगल और पिगल के नाम से पुकारा जाता रहा है।<sup>१</sup> विंगल भाषा मारवाड़ी का साहित्यिक और अपभ्रंश प्रभावित रूप थी यह हम पहले देख चुके हैं। विंगल भाषा मध्य बघीय भाषा से प्रभावित थी। बहिक जमका मुसाधार ही बजभाषा थी। मुजरात और मारवाड़ के जैन आचार्य और पण्डितों के द्वारा शौराष्ट्र अपभ्रंश (पश्चिमी अपभ्रंश) से उद्भूत पुरानी पश्चिमी राजस्थानी में साहित्य-सर्जना होने लगी पर साथ ही साथ खोरसेनी-अपभ्रंश साहित्यिक भाषा में पूर्ववत् काम्यादि साहित्यिक रचना की रीति ब्रह्मास्त रही। फिर, यह शौरसेनी अपभ्रंश-साहित्यिक भाषा पूर्व से बढ़ती गई इसका एक लचीलतर या कर्वाचीन रूप पिगल नाम से राजस्थान और मालवा के कवियों में पूर्वतया गृहीत होकर पिगल का एक साहित्य बन गया। पिगल को खोरसेनी अपभ्रंश साहित्यिक भाषा और मध्य काशीन बजभाषा के बीच की भाषा कहा जा सकता है।<sup>२</sup> आगे चलकर इन दोनों भाषाओं में कठिनिमिता बढ़ती गई और फलस्वरूप उनमें कृत्रिमता आती गई।

आधुनिक राजस्थानी साहित्य पुनः अभिव्यक्ति, सैली रुढ़ि तथा भाषा की दृष्टि से जनसाधारण के निकट आ रहा है। उत्सवगयी कोई चर्चा असम्भव होने से यहाँ बर्नीष्ट नहीं है।

राजस्थानी भाषा राजस्थान की मातृभाषा है। राजस्थान से हमारा तात्पर्य वर्तमान सीमाओं से नहीं होकर सांस्कृतिक और भाषिक इकाई से है जिसका क्षेत्र वर्तमान राजस्थान से विस्तृत है। विमर्शन ने इसे राजपूताना और मालवा की भाषा माना है।<sup>३</sup> प्रायः में हिन्दी को छोड़कर इतना अधिक विस्तृत क्षेत्र अन्य किसी भाषा का नहीं है।<sup>४</sup> राजस्थानी बोलने वालों की संख्या बड़े कोड़ से ऊपर है। इन दृष्टि से उसका स्थान भारतीय भाषाओं में हिन्दी बंबला तैमयू तामिल और मराठी के बाद छठे और विंगल की भाषा में कोई पच्चीसवां है।

१-डा सुनीतिकुमार जाटव्याँ भारतीय भाषा और हिन्दी-पृ० १८३

२-डा सुनीतिकुमार जाटव्याँ राजस्थानी भाषा-पृ ६५

३-विमर्शन निगिदस्तिक् सर्वे भाष इण्डिया व १ भा० १ पृ० १७१

४-नरोत्तम स्वामी राजस्थानी भाषा और साहित्य - आभोजनता अ० ६

राजस्थानी के पूर्वोत्तर में हिन्दी की बांगड़ बोली, उत्तर में पंजाबी, पश्चिमोत्तर में हिन्द की पश्चिम में सिन्धी दक्षिण-पश्चिम में गुजराती दक्षिण में मराठी और पूर्व में हिन्दी की मुन्हेली और ब्रजभाषा नामक बोलियाँ बोली जाती हैं ।

राजस्थानी भाषा की अनेक शाखा प्रशाखाएँ हैं । प्रायः सभी विद्वान राजस्थानी को चार विभागों में बाँटते हैं । बीरेन्द्र वर्मा<sup>१</sup> डा० उदयनारायण तिवारी<sup>२</sup> डा० श्यामसुन्दरदास<sup>३</sup> नरोत्तम स्वामी<sup>४</sup> प्रियर्सन आदि सभी विद्वानों ने इसके (१) पश्चिमी राजस्थानी या भारवाड़ी (२) मध्य पूर्वी राजस्थानी—जयपुरी या डूँडाड़ी (३) उत्तर पूर्वी राजस्थानी मेवाड़ी और (४) दक्षिण-पूर्वी राजस्थानी मातली—विभाग माने हैं । इसके अतिरिक्त राजस्थान की कठिपय और भापायें हैं जैसे भीली जपभाषा समूह पहाड़ी बर्ग की भापायें खानाबदोश आदिमों की बोलियाँ आदि जिन्हें राजस्थानी में गृहीत किया जाता रहा है । इनमें से प्रमुख ये हैं—

(१) बंजारी—यह राजस्थान से बाहर रहने वाले बंजारों की भाषा है । स्थानानुसार इसके कई भेद हैं । ये बंजारे राजस्थान के मूल निवासी थे और व्यापार के सिलसिले में माल लादकर दूर-दूर तक पहुँचते थे । कालान्तर में वे दहर-उदहर बस गये । उनकी भाषा का मूल डीचा राजस्थानी से प्रभावित ही रहा, यद्यपि स्थानीय प्रभाव से उसमें थोड़ा बहुत परिवर्तन भी हुआ— जो स्वाभाविक था ।<sup>५</sup>

(२) गुजरी—यह विशेषतः हिमाचल की तराई काश्मीर और पंजाब में बसे हुए गुजरी बहिरों आदि पशुपाकक आदिमों की बोली का समूह है ।<sup>६</sup>

(३) भीली—यह गुजराती और राजस्थानी के बीच की भाषा है और भीलों द्वारा प्रयुक्त होती है । खानबैदी राजस्थानी व मराठी के बीच से बनी है ।<sup>७</sup>

(४) पहाड़ी बर्ग की भापायें—इनका भी राजस्थानी के साथ बहिष्ठ संबंध है । राजस्थान से कुछ व्यक्ति नेपाल में जाकर बहुत जल्द पहिले स्थाई तौर पर बहाँ बस गये थे—फलस्वरूप नेपाली, कुमाऊँनी, गढ़वाली आदि राजस्थानी पर आचारित हैं ।<sup>८</sup>

१-बीरेन्द्र वर्मा हिन्दी भाषा का इतिहास—पृ० १५

२-उदयनारायण तिवारी भोजपुरी भाषा और साहित्य—पृ० ७३

३-श्यामसुन्दरदास भाषा-रहस्य—पृ० १३

४-नरोत्तम स्वामी राजस्थानी भाषा और साहित्य—राजस्थानी भाषा १ पृ० १०

५-नरोत्तमस्वामी राजस्थानी भाषा और साहित्य—आलोचना बंध १—पृ० १०७

६-पुरुषोत्तम मेनारिया राजस्थानी भाषा की कल्पना—पृ० १

७-सुनीतिकुमार आदुर्गवा राजस्थानी भाषा—पृ० ९

८-श्यामसुन्दरदास हिन्दी भाषा का संक्षिप्त इतिहास—पृ० १९

(५) ताम्रमहाद्व में 'प्रचलित खीराष्टी' भी राजस्थानी के अन्तर्गत आती है ।<sup>१</sup>

(६) भारतीय साहित्यों, कंजरीं गटां जादि की बोलियों का सम्बन्ध राजस्थानी से है । इनके पहवाड़ी, मामटी मेनवाड़ी ओड़री, माड़ी, मज्जरिया, सोनी कंजरी, गटी, सोनी जादि अनेक प्रमेद हैं ।<sup>२</sup>

उक्त प्रमुख चार में—यथा (१) पश्चिमी राजस्थानी (२) मध्य पूरा राजस्थानी (३) उत्तर पूर्वी राजस्थानी (४) दक्षिण पूर्वी राजस्थानी को अने प्रकार से विभाजित किया जाता रहा है । प्रियर्सन ने राजस्थानी के २० भेद गिनाए हैं । जोर मेकासिस्टर ने कन्नड अमपुरी ने पञ्जाब में बोलों का उल्लेख किया है । डा. मेनारिया ने राजस्थानी बोलियों की संख्या १०० से अधिक अनुमानित की है । जनार्दन नागर राजस्थानी की नौ प्रमुख बोलियाँ मानते हैं परन्तु इन सब प्रमुख तो मारवाड़ी—पश्चिमी राजस्थानी ही है जिसका साहित्यिक महत्व है । इसे के आधार पर हिमाल भाषा का विकास हुआ है ।

जैसा कि हम पहले देख आए हैं—प्राचीन राजस्थानी और प्रचीन गुजराती—एक ही भाषा थी । प्रियर्सन<sup>३</sup> सुनीतिशुमार बादर्यार<sup>४</sup> बेचरदास दीप्ती<sup>५</sup> सभी विद्वान एकमत हैं कि समय-समय खोमहूषी खनाम्नी में ये भाषाएँ जुड़ा पड़ने लगीं । राजस्थानी के मध्यकालीन स्वल्प की व्याप्ति अभीसखी धर्ती के उत्तरार्द्ध तक रही । इसने पश्चात्तु आधुनिक रूप माना जा सकता है । प्रस्तुत प्रबन्ध में हम आधुनिक साहित्य पर विचार नहीं करेंगे इसी प्रकार मारवाड़ी अबका हिमाल साहित्य तक ही अपने अध्ययन को सीमित रखेंगे क्योंकि हमारे उद्देश्य की दृष्टि से राजस्थानी के अन्य प्रकारों का विवेचन अनावश्यक है ।

किस ग्रंथ को हिमाल का माना जाय और किस ग्रंथ को पिंगल का माना जाय अनेक बार यह एक विवादास्पद प्रश्न बन जाता है । कदाहरण के लिये 'पूष्पी राज रासो' को लें । मोठीनाम मेनारिया एक स्थान पर इसे हिमाल रचना मानते हैं<sup>६</sup>

१—उदयनारायण तिलारी हिन्दी भाषा का उद्गम और विकास—पृ० १०९

२—नटोत्तम स्वामी—राजस्थानी भाषा और साहित्य—राजस्थानी भाग १—पृ० १०

३—मोठीनाम मेनारिया राजस्थानी साहित्य की रूपरेखा—१९

४—जनार्दन नागर हिन्दी की प्रादेशिक भाषाएँ पृ० १५

५—प्रियर्सन लिथिस्टिक सर्वे आफ इण्डिया—भित्त १ भाग १—पृ० १००

६—नटोत्तम ओरिजिन एण्ड डेवलपमेंट आफ बँगाली लिथिस्ट सर्वे १ पृ० ९

७—बेचरदास दीप्ती गुजराती भाषानी उत्कृष्ट—पृ० १२५

८—मोठीनाम मेनारिया हिमाल में और रस—पृ० १

दूमरी और वे ही उसे अल्पतः पिगल की रचना मानते हैं<sup>१</sup>। पंडित रामकर्म भासोपा<sup>२</sup> उसे द्विगल ही मानते हैं। मरुत्तम स्वामी<sup>३</sup> बीरेन्द्र वर्मा<sup>४</sup> घाऊड<sup>५</sup> नामवर सिंह<sup>६</sup> आदि विद्वानों ने इसे पिगल अथवा वज्रभाषा की कृति ठहराया है। निमंदह भाषा क अध्ययन के आशय पर पृथ्वीराज रासो को वज्रभाषा अथवा पिगल की रचना मानना ही उपयुक्त है किन्तु सीली और काम्य-पद्धति की दृष्टि से रासा के अनन्य स्पष्ट द्विगल क हैं। हजारीप्रसाद जी के घरों में 'युद्धों के प्रथम में रासो की भाषा द्विगल का रूप धारण कर लेती है'। चूँकि हम इस प्रस्तुत प्रबंध में भाषा का वैज्ञानिक अध्ययन न कर साहित्यिक अध्ययन तक अपने को सीमित रख रख रहे हैं अतएव यहाँ उन सभी घरों पर जो चाहे पिगल में अधिकतम लिख गये हों किन्तु अन्ततः म ही सही, द्विगल में रचित हो विचार कर सकेंगे। अपनी मुद्रिका के लिए हम उन्हें द्विगल-मिश्रित रचनाएँ मानेंगे। नीचे का उदाहरण हमारे मध्य का और भी अधिक स्पष्ट कर देगा।

(१) युद्ध द्विगल रचनाएँ—रथमस्त छव बलि जिसन दकमणीरी बीर  
नगमई तथा द्विगल भीतादि सामग्री

(२) द्विगल मिश्रित रचनाएँ—पृथ्वीराजरासो बीर बिनाइ बंसभास्करादि।

प्रथम सेली की रचनाएँ भाषा की दृष्टि से पुरातन द्विगल की हैं किन्तु दूमरी रचनाएँ पिगल रचिन होने पर भी द्विगल मिश्रित हैं। उनमें अनेक स्थान ऐसे हैं जो द्विगल में हैं और द्विगल-भाष्यकारों के अध्ययन के लिए अत्यंत महत्व क हैं 'सलिए ऐसी द्विगल मिश्रित रचनाओं का भी मयावश्यकता प्रस्तुत प्रबंध में विवेचन किया गया है।

### द्विगल का स्वरूप

यही द्विगल क स्वरूप के संबंध में डा. टीसीटरी की धारणा पर भी विचार कर सना आवश्यक है। इसके अनुसार द्विगल के दो स्वरूप हैं। (१) प्राचीन द्विगल जिसका समय लगभग तेरहवीं सताब्दी के मध्य से लेकर सत्रहवीं सताब्दी के मध्य तक है और (२) प्रार्थीन द्विगल जिसका समय सत्रहवीं सती के मध्य से आज तक माना जा सकता है। उनकी धारणा है कि प्राचीन द्विगल में अह व अउ का प्रयोग

१ मोतीनाथ मेनारिया राजस्थान का पिगल साहित्य-पृ० ३१

२ रामकर्म भासोपा राजकपक-मुद्रिका-पृ० २

३ मरुत्तमराज स्वामी पृथ्वीराजरासो-राजस्थानी भाग १ पृ० १-१

४ बीरेन्द्रवर्मा काशी विश्वविीठ रत्नजयंती अभिलेखन ग्रंथ-पृ० १७८

५ घाऊड—जर्नल आफ़ दी एशियाटिक सोसायटी आफ़ बेंगल-१८७१

६ नामवरसिंह पृथ्वीराज रासो की भाषा-अन्तिम अध्याय

७ हजारीप्रसाद द्विवेदी हिन्दी साहित्य-पृ० १७

होता था, जबकि अर्वाचीन हिमाल में उनके स्थान पर क्रमशः ऐ और औ का<sup>१</sup>। उनकी इस साम्यता का आधार हिमाल में प्रयुक्त कुछ शब्दों के शिष्टों तथा उच्चारण संबंधी विशेषताएँ हैं। व्याकरण भेद या शब्द भेद नहीं<sup>२</sup>। डा० मेनारिया इस मत को प्रमत्तपूर्ण समझते हैं। उनकी मान्यता है कि प्राचीन और अर्वाचीन हिमाल का यह भेद हिमाल की प्रवृत्ति एवं उच्चारण सीसी के विपरीत है। दूसरे, शब्द रचना का उनका अर्थ अतः बासा तरीका भी ठीक नहीं है। सिर्फ हिमाल का प्राकृत अपभ्रंश से संबंध बतलाने के लिये इसकी कल्पना कर ली गई है।<sup>३</sup> डा० मोतीराम मेनारिया के मत का समर्थन करते हुये डा० हीरासाध माहेरवरी ने अनेक प्रमाण लेकर सिद्ध किया है अह और ऐ इसी प्रकार अउ और औ दोनों प्रकार के रूप एक ही हस्तप्रति में मिल जाते हैं।<sup>४</sup> लगभग एक ही समय में रची गई अपभ्रंश एक ही कृति की समसामयिक हस्तप्रतियों में भाषा की ये दो प्रवृत्तियाँ क्यों दीप्त पड़ती हैं? उत्तर स्पष्ट है किसी भी भाषा का विकास क्रमशः होता है। अपभ्रंश से जब इस भाषाओं का विकास हुआ तो उनमें अपभ्रंश से मिलते जुलते रूप भी परम्परानुसार चलते रहे। यह स्वाभाविक ही था। साथ ही में उन्हीं के मधीन रूपों का विकास और व्यवहार होता गया। जैन सेनी और उससे प्रभावित रचनाओं में सब अगह अह और अउ की प्रवृत्ति मिलती होती है। चारण साहित्य और जैन साहित्य के तुलनात्मक अध्ययन से यह बात स्पष्ट हो जाती है। बूढ़े जैनो का धार्मिक साहित्य अपभ्रंश में रहा है उनका इससे अच्छा सम्पर्क रहा है। अतः जब भी किसी जैन परम्परा वाले लिपिक ने किसी रचना की अनुकृति तैयार की तो उसमें अह या अउ का प्रयोग कर दिया। उदाहरण के लिए चारण भाषावाचक पचिवाडिया रचित हिमाल रचना 'रामरासो' का संपादन करते समय लेखक को एक ही पंक्ति के निम्न दो रूप मिले।

गुण रामरासउ पचवाडिया भाषवाचकी रउ कहीअउ

हस्तप्रति—भात भाई दसपत भाई भारतीय संस्कृति मंदिर

गुण रामरासो पचवाडिया भाषवाचकी रउ कही

हस्तप्रति—अमरचंदकी नाहटा द्वारा प्रेषित

इससे स्पष्ट बात होता है कि जैन सेनी में अउ अह का प्रयोग हुआ है इस आधार पर प्राचीन और अर्वाचीन हिमाल बीसा विभाजन करना अनुचित है।

राजस्थानी साहित्य के विद्वानों ने बहुधा विस्तृत कारण दिए बिना ही हिमाल साहित्य का विभाजन इस प्रकार किया है। गजराज ओझा ने हिमाल साहित्य को

१ टैसींगी बचनिका राठीइ रउमसिहजी री—भूमिका पृ० ४

२ जर्नेल आफ रायल एथिग्राफिक सोसायटी आफ बेंगाल  
वर्ष १० अंक १० पृ० १७६-७७

३ मोतीराम मेनारिया राजस्थानी भाषा और साहित्य—पृ० ३

४ डा० हीरासाध माहेरवरी राजस्थानी भाषा और साहित्य पृ० १८-२८

निम्न कालों में विभाजित किया है ।<sup>१</sup>

[ १ ] प्रारंभकाल—संवत् १००० वि० से १४०० वि० तक

[ २ ] मध्यकाल—संवत् १४०१ वि० से १८०० वि० तक

[ ३ ] उत्तरकाल—संवत् १८०१ वि० से आज तक

मोतीलाल नेनारिया ने राजस्थानी साहित्य की विकास परम्परा व काल का ध्यान रखते हुए इस प्रकार विभाजन किया है ।<sup>२</sup>

( १ ) प्रारंभकाल—सं० १०१३ से १४९० वि०

( २ ) पूर्वमध्यकाल—सं० १४९० से १७०० वि०

( ३ ) उत्तरमध्यकाल—सं० १७०० से १९०० वि०

( ४ ) आधुनिककाल—सं० १९०० से २००३ वि०

नेनारिया ने अपने इस विभाजन का आधार स्पष्ट नहीं किया है । उही प्रकार डिगल के एक नये विद्वान डा० जयवीर प्रसाद भीवास्तब का विभाजन है । आधारहीन विभाजन होने से इसकी कोई उपयोगिता नहीं ।<sup>३</sup>

( १ ) प्राचीन काल—लगभग ११०० ई० से १६३० ई० तक

( २ ) मध्य काल—लगभग १६३० ई० से १८३० ई० तक

( ३ ) आधुनिक काल—लगभग १८३० ई० से आज तक

नरोत्तमदास स्वामी द्वारा किया गया विभाजन इस प्रकार है ।<sup>४</sup>

( १ ) प्राचीन काल—सं० ११३० से १३५०

( २ ) मध्य काल—सं० १३५० से १८७३

( ३ ) अर्वाचीन काल—सं० १८७३ के पश्चात्

स्वामी जी ने आधुनिक भाषाओं को अपभ्रंश से भ्रमण करने वाली आठ प्रमुख विशेषताओं का उल्लेख करते हुए लिखा है कि ये विशेषताएँ सं० १२०० के आसपास स्पष्ट हो जाती हैं अतः उसी से आधुनिक भाषाओं का काल मानना उचित होता ।<sup>५</sup> पंडित बजरदास बोली भी गुजराती भाषा की उत्पत्ति इसी समय मानते हैं । इसी समय अन्य बेसी भाषाएँ भी विकसित हो रही थीं । बारहवीं शताब्दी में उचित उक्तिव्यक्ति प्रकरण की भाषा को चम्बी द्वारा कोशनी कहा गया है ।<sup>६</sup> अतः जूनी गुजराती या जूनी राजस्थानी कही जाने वाली भाषा का

१ गजराज ओझा 'डिगल भाषा व साहित्य'—ना० प्र० प० भाग १४ अंक १

पृ० १८-१९

२ मोतीलाल नेनारिया 'राजस्थानी भाषा और साहित्य'—पृ० ७७

३ जयवीर प्रसाद भीवास्तब 'डिगल साहित्य'—पृ० ११

४ नरोत्तम स्वामी 'हिन्दुन इकमशीरी बेसि-प्रस्तावना'—पृ० ९

५ 'राजस्थानी साहित्य'—एक परिचय—पृ० ३

६ बजरदास बोली 'गुजराती भाषा की उत्पत्ति'—पृ० १८३

७ हीराभास माहेश्वरी 'राजस्थानी भाषा और साहित्य'—सू० ३० पर उद्धृत



नहीं कम सचा । यहाँ क राजपूत उन्हें लड़-सगड़ कर भगा दते थे । ११९३ ई० म महाबुदीन योरी से पुष्पीराज चौहान को परास्त होना पड़ा । इसी समय में राजस्थान ही नहीं जगिु भारत के इतिहास में परिवर्तन आरंभ हो गया । महाबुदीन न पुष्पीराज क पुत्र गोविन्दराज का अपनी आधीनता स्वीकार करा अजमेर की यही पर बैठाया पर पुष्पीराज के भाई हरराज ने अपने भतीज स अजमेर छोड लिया । महाबुदीन क बाद उसके गुजाम कृतुबुदीन न हिम्मी का अपन अधिकार मे कर लिया और उसे अपनी राजधानी बनाया । बाद म ११९३ ई० म कृतुबुदीन ने हरराज को हराकर अजमेर पर अपना अधिकार जमाया और वहाँ मुसलमान हाकिम नियुक्त किया<sup>१</sup> । उस समय अजमेर का राज्य काफी पैसा हुआ था । अस्तित्वमय न आसौर साँवर, रणचंभोर और सवानक को विजय किया और वहाँ क राजाओं स अपनी आधीनता स्वीकार करा सी । उसने मेवाड पर चढ़ाई की किन्तु उसे सफलता न मिल सकी ।<sup>२</sup>

अलाउद्दीन खिलजी ने १३० ई० में रणचंभोर के राजा हुम्मीर चौहान को हरा कर किता अपने आधीन में कर लिया । उसके तीन ही वर्ष बाद उसने बितौर स एक बिकट युद्ध लड़कर विजय प्राप्त की और अपने पुत्र सिद्धर खा को वहाँ का अधिपति बनाया । यह वही युद्ध है जिसमें राणा लक्ष्मणसेन मारे गये । राजपूतों ने कैथरिया छाका किया और राजपूत मसनाएँ चौहुर की आग म अल गयीं । इसी कबानक को लेकर आधी का पड़मावत बसा है । परन्तु यह आधिपत्य बहुत कम समय तक टिक सका और १३७५ ई० में महाराणा हुम्मीर ने वापिस चित्तौड़गढ़ जीत लिया । १३९८ ई० में अलाउद्दीन ने सिवाने का किता और १३९८ वि० सं० में आसौर जीत लिया । तुमलकों के समय में मुसलमानी राज्य कमजोर हो गया । यह देख राजपूत राजाओं ने अपने अपने राज्य वापिस जीत लिए । मेवाड़ के महा राणा अजसिंह कुम्भा रायमल और साँवा ने भाँड़ के मुस्तान ३३ का पहले दिल्ली के बादशाह के हाकिम थ कई लड़ाईयाँ लड़ीं और उन्हें हराया । नागौर तथा मुबरात के मुस्तानों म भी अनेक युद्ध हुए ।

इसके बाद लगभग दो सौ वर्ष तक राजपूत राजाओं के राज्यों पर कोई बाहरी आक्रमण नहीं हुए । वि० सं० १५५५ में महाराणा साँवा न बाबर से भोला लिया लेकिन यह आनवा क मेवाग म हार गये<sup>३</sup> । बाबर के बाद शेरशाह ने राज स्थान पर आक्रमण किया । मारवाड़ गरेल राज मालदेव से भयकर मुठभेड़ हुई, बड़ी गठिनाईयों और कूटनीति से शेरशाह सफलता पा सका<sup>४</sup> किन्तु यह बस्बाई रही ।

१ अजमीर सिंह बहुलोत राजपूतान का इतिहास—पृ० १०२

२ राजस्थान दिग्दर्शक—दूसरा अध्याय—इतिहास की रूपरेखा

३ रघुवीर सिंह पूर्व-आधुनिक राजस्थान—पृ० २०

४ अजमीर सिंह बहुलोत मारवाड़ राज्य का इतिहास—पृ० १३३, १५५



सीध ही मारबाड़ पुग खेरसाह के हाथ से मिकल गया । खेरसाह का चितौड़ का भागमन भी ब्यब रहा ।

अकबर ने पिछले राजाओं की विजय और पराजय से एक अमूल्य पाठ पढ़ा । उस यह पूर्ण विश्वास हो गया कि जब तक वह इस बैध को अपना ही बैध न समझेगा और राजपूतों का अपना सहायक न बना लेगा तब तक एक सुदृढ़ राज्य स्थापित न कर सकेगा । राजस्थान में उस समय कल म्यारह राज्य थे—उदयपुर डगरपुर बांसवाड़ा प्रतापगढ़ जोधपुर बीकानेर, बाम्बेर सूदी सिरोही करीमी व बीसमेर जिनमें मुख्य उदयपुर और जोधपुर के राज्य थे । बाम्बेर का राज्य उस समय कोई शक्तिशाली राज्य नहीं था । यहाँ के राजा ने सर्वप्रथम अकबर की लाचीनता स्वीकार की<sup>१</sup> । इसके बाद बीरे बीरे अन्य राजा भी अकबर की लाचीनता में आ गए । तथा तो केवल मेवाड़ । अतः अकबर ने मेवाड़-विजय की मालसा से १५९७ ई० में बड़ाई की और अमरक संवत् के बाद उसे चितौड़ पर विजय मिली । लेकिन बड़ाई के महाराजा उदय सिंह ने लाचीनता स्वीकार नहीं की । उदयसिंह की मृत्यु के बाद उपाध्याय मेवाड़ नरेल बने । अकबर का मुख राणा से भी बनता रहा । १५७९ ई० में हस्तीनाटी में बमसाग युद्ध हुआ<sup>२</sup> । पराजित होने पर भी महाराजा प्रताप जनसायक बन गए । उनकी बीरता ने उन्हें अमर कर दिया । चितौड़ से लेने के बाद अकबर ने रणबंशोर भी जीत लिया ।

सन् १५१४ ई० में मेवाड़ के राजा अमरसिंह ने अकबर के पुत्र जहांगीर के लाचीन रहे से ईकार कर दिया । इस पर माहबाबा खुर्रम ने राणा व उसके पुत्र को अपनी लाचीनता स्वीकार करने के लिए बाध्य किया ।

औरंगजेब ने अकबर की नीति को एकदम उलट दिया । जोधपुर के महाराजा जसवंत सिंह के काबुल में बेहामसान हो जाने पर १६७८ ई० में उसने जोधपुर को अपने अधिकार में कर लिया तथा जसवंतसिंह के नाबालिग पुत्र जजीतसिंह को हिरासत में रखा परंतु राठीड़ और बुर्जियास उसे औरंगजेब के जगल से छुड़ा लाया । उदयपुर के महाराजा राजविह ने मारबाड़ का पक्ष लिया । जयपुर का राजा मुगसोंके साथ रहा । सम्पूर्ण राजपूताना औरंगजेब से बिगड़ खड़ा हुआ । अन्त में बाबसाह ने उदयपुर के राजा के साथ संधि कर ली और जजिया उठा लेने का बयान दिया । इधर औरंगजेब की मृत्यु के बाद महाराजा जजीतसिंह ने जोधपुर पर बाजिस अधिकार कर लिया ।<sup>३</sup>

औरंगजेब की मृत्यु के बाद राजस्थान के लगभग सभी नरेल दिल्ली से स्वतंत्र हो गये । वि० स० १७११ में माह आसम द्वितीय की कृपा से जसवर का

१ राहुम साहस्याय अकबर—पृ० ७९

२ हरिभाऊ उपाध्याय—बाबुराव जाधो राजस्थान के ज्योतिर्विद—पृ० १९५

३ जगदीशसिंह गहलोत मारबाड़ राज्य का इतिहास—पृ० १५९

राज्य स्थापित हुआ ।<sup>१</sup> इस वरसे मैं मरहटों का बल बढ़ने लगा और उन्होंने आपसी बल और फूट का लाभ उठाकर राजस्थान में भी अपने पैर फैलाने शुरू किए । उन्होंने यहाँ के राजाओं से किराज बसूस किया और प्रजा को भी लूटा । अन्त में जोधपुर अजमेर और बीकानेर के राजाओं ने मिलकर मरहटों से मुक्ति पाने की योजना बनाई । इस कार्य में और भी कई राज्य शामिल हुए । जयपुर से ४३ मील दूर गांव दूगा में सन् १७८७ ई० को राजपूतों और सिंधिया में अर्पक मूठ हुआ । इस मूठ में सिंधिया को पराजित होना पड़ा । किन्तु राजपूतों का यह संगठन अधिक दिन टिक नहीं सका क्योंकि कछवाहों और राठीयों में फूट पड़ गई थी ।<sup>२</sup>

मार्च ब्रैजेजली के समय में जर्नेल मेक ने सिंधिया की शक्ति को निर्बल कर दिया ।<sup>३</sup> सन १९०४ ई० में असबन्तराव होस्कर ने अजमेर नरेश महाराजा जयसिंह को बा हवाया किन्तु अंग्रेजी सेना ने उसे कौटा से खदेड़ दिया । बाद में मार्च मेक ने होस्कर और भरतपुर के राजा दोनों को सन् १८०४ ई० में डींग की लड़ाई में परास्त कर दिया । डींग पर अंग्रेजों का अधिकार हो गया । भरतपुर के किले को जीतने के अंग्रेजों द्वारा बार बार असफल प्रयत्न किये गये और अन्त में बीरकान्त के सिये मेरा काम दिया गया । तीन माह के घेरे के बाद राजा ने संधि कर ली । अन्त में होस्कर को भी अंग्रेजों से संधि करनी पड़ी । इस पर राजपूताना का जितना हिस्सा उसने हवा लिया था वह वहाँ के राजाओं को वापिस मिल गया ।

अब उदयपुर की राजकुमारी कृष्णकुमारी के विवाह के लिए अजमेर तथा जोधपुर के बीच लड़ाई ठग गई तो वहाँ के नरेशों ने मराठों की सहायता लेनी चाही पिछारी नेता जमीर खाँ की मांग पर कृष्णकुमारी को विधवापन करना पड़ा तब कहीं बाकर शान्ति हुई ।

सिंधिया ने वि० सं० १८७१ की भाषण बरी ११ को अजमेर अंग्रेजों को सौंप दिया । इसके बाद धीरे-धीरे राजपूताने की सभी रियासतों से अंग्रेजों की संधियाँ हो गई । इसके बाद अंग्रेज सरकार ने धीरे-धीरे राजपूताने के राजाओं की निर्बल बनाने की नीति अकस्मिकार की तथा उन्हें विभाजित रखकर भारत में अपना साम्राज्य मजबूत करने का साधन बनाया । आपसी लड़ाई सगड़ों से आरम्भ होकर राजा सोम अत्यधिक विभासी हो गये ।

हमने ऊपर संक्षेप में प्रमुख और महत्वपूर्ण घटनाओं का सन्देश किया है । यह धमका काल ही और उषस-पुष्प का युग था । समाज में कोई आदर्श नहीं थे । बड़ा राज्य के लिए अपने बाप की हत्या कर सकता था ।<sup>४</sup> माई अपने माई के विरुद्ध

१ जयसिंहसिंह महाराज राजपूताने का इतिहास-पृ २६६

२ राजस्थान विवरण-दूसरी अध्याय-इतिहास की स्प्रेड

३ ईरमरीप्रसाद भारतवर्ष का इतिहास-भाग २-पृ १२०

४ ब्रिटेनसरलायन देश राष्ट्रपुटों का इतिहास-भाग १-पृ० ४७६

५ कन्हैयालाल सहज राजस्थान के सांस्कृतिक वसाधन-पृ० ७६

मुठेरों को आर्म्भित कर सकता था। परस्पर ईर्ष्या मनमुग्धता और प्रतिष्ठा की मृगी माय्मत्ताओं ने समूचे समाज की जर्जरित कर टासा था। भयंकर अराजकता और निरन्तर उलटफेरों के कारण सरदारों के साथ राजाओं की स्थिति भी सशैव ही डावा टोल ही रहती थी। परिस्थिति-जन्म दस बिना पूर्ण आकुलता को भुगतान के लिए ही राजा और एक सब ही समान कर म ऐश्वर्य-विभास की और अन्तर्माद्य आरुपित होते थे।

### सामाजिक अवस्था

भौतिक जीवन के इन कठार सख्यों को भुमाने के लिए मिले सब उत्सवों का आयोजन होता था। आडंबरपूर्ण जनसों की तड़क भड़क बेध पड़ती थी और नाच गान राग रंग और ऐश्वर्य विभास का समाई बचने का निरन्तर प्रयत्न होता था। नैतिक बलाचार बढ़ता जाता था। कमी न समाप्त होने वाले युद्ध-युद्धों के साथ ही यह असीम व्यभिचार का भी यग था। प्रजा का बुरा हास था। उसका हर प्रकार से शोषण किया जाता था। अराज पीकर भोग विभास म पड़े रहना और प्रजा को बूझना ही ज्यादातर जमींदारों का रोजाना जीवन कहा जा सकता था। सामन्त जाही के अग होने कारण दूसरी योग्यताएँ न होने पर भी रियासत की हुकूमत में इनका काफी हाथ रहता था।<sup>१</sup> उनकी निरंकुशता अमानवीय सीमा तक पहुँच जाती थी।<sup>२</sup>

### धार्मिक अवस्था

राजस्थान म सबसे सामारिक प्रेमियों और ऐश्वर्यकांक्षी बीरों का श्रीरक्षित रहा है। वरन् ॥ मुक्तिकामी और आध्यात्मिक प्रेमियों का कर्मक्षेत्र भी रहा है। बहुत प्राचीन समय से—मिठों के समय से तो निश्चित रूप से राजस्थान आध्यात्मिक हलचल का केन्द्र रहा है। सिद्धोंकी साधनाके कुछ विशिष्ट केन्द्र देश के विभिन्न भागों में थे जिन्हें सिद्धपीठ कहा गया है। एक परम्पराके अनुसार आतंजर आश्रित अजुद और पूर्णगिरी सिद्धपीठ माने गये हैं।<sup>३</sup> अजुद राजस्थान का आज ही है। राजस्थान की सामान्य जनता पर सिद्धों नामों और सन्तों का बहुविध प्रभाव रहा है। विशेषकर के मोरमनाथ का। मोरमनाथ अपने मुख के सबसे महान् चर्ममेता थे। उनकी संकलन प्रति अपूर्व थी। उनका ज्ञान केवल बुद्धि विभास नहीं है वह साधना का विषय है। दीर्घ आवास के बाप उन प्राप्त किया जाता है।<sup>४</sup> सामान्य से लेकर गुड संतजन का किसी न किसी रूप में जलना में प्रचार रहा है। जनक बार सिद्धा और नामों के विचरानों संन-विद्या और जीवन-दर्शन का मय भक्ति

१ रघुबीरसिंह पूर्व-आधुनिक राजस्थान—पृ. २६२

२ रामनारायण चौधरी वर्तमान राजस्थान—पृ. ०

३ जोह-मारवाडी अरु-विशेषांक

४ चर्मवीर भारती। सिद्ध साहित्य—पृ. ६१

५ बनदेव उपरण्याय भारतीय दर्शन—पृ. ५०८

की भावनाओं और सतत की निरन्तर निष्ठा के साथ हो गया है, जिसकी विविधता अष्टमेता के लिए अटल पहेली बन जाती है।<sup>१</sup> यही पहेली अनेक ऐतिहासिक व्यक्तियों अपना अर्द्धऐतिहासिक चटनाक्रमों को लेकर लोक में निर्ज्वरी आख्यान और सिद्धियाँ प्रचलित हो गई हैं। ऐसे व्यक्तियों में पाबूजी रामदेवजी, हड़बूजी, मोगोबी, जामाजी तेजाजी मेहाजी, बसनाथजी, मस्सिनाथजी आदि बहुत प्रसिद्ध और लोकप्रिय हैं।<sup>२</sup> इन सबका काफ़ी प्रभाव राजस्थानी के लोक-साहित्य पर पड़ा। यह बात अचर्य है कि प्रकारान्तर से इनके मूल और महिला ने द्विगुण साहित्य को भी किञ्चित् प्रभावित किया।

राजस्थान में अनेक सम्प्रदाय पनपे जिनमें से मुख्य हैं—बाबूपंथ, बसनाथी सम्प्रदाय, सानावासी पंथ, निरंजनी पंथ, रामसनेही पंथ, पाथपंथ, कबीर पंथ आदि। इन सभी सम्प्रदायों का अपना साहित्य है, किन्तु द्विगुण रचनाओं पर इनका सीधा असर नहीं पड़ा बीसा कि आये चलकर बताया गया है। अतः इस स्थान पर इस प्रकार के साहित्य और इन सम्प्रदायों के विस्तृत विवेचन की कतई आवश्यकता नहीं है।

अब हम इस बात को जानने की कोशिश करेंगे कि किन कारणों से द्विगुण कविता में परम्परा और कड़िवाकविता का बोलबाला हो गया एवं कला के सभी क्षेत्रों में राजस्थान में संकीर्णता आ गई। हम देख ही चुके हैं कि मध्यकाल में राजस्थान का क्षेत्र सांस्कृतिक दृष्टि से समृद्धिदायी था। उस समय यहाँ जैन व जैनोतर विद्वानों द्वारा त्रिपुल परिमाण में साहित्य रचा जा रहा था। उसमें ताजगी भी थी, परम्परा-निर्बाह भी था और वा जीवन से लगाव। अब मुमकिन है राजस्थान का विभिन्न रूपों में सम्पर्क बढ़ा उसका प्रभाव यहाँ के साहित्य पर, कला पर और स्थापत्य पर पड़ा जो कि स्वाभाविक ही था। जिस समय मेवाड़-मुगल संघर्ष चल रहा था, राजस्थान के अन्य हिस्सों में बहुत कुछ शान्ति थी। फलस्वरूप वहाँ नव जीवन के बंदूक फूटने लगे। राजस्थानी साहित्य के इतिहास में यह युग बहुत ही महत्वपूर्ण है। बीकानेर के शासक रामसिंह के छोटे भाई पृथ्वीराज ने इसी काल में 'बैलि क्रिस्तन इकमयी री' जैसे सर्वोत्कृष्ट काव्य की रचना की थी। राजस्थान के इस अमर जन्म-सिद्ध कवि आड़ा कुरसा की यह शोधपूर्ण भाषी तथा उसकी वे भावपूर्ण मर्मभेदी कृतियाँ इसी काल में प्रथम बार सुन पड़ीं। राधा प्रताप के स्वात्मव्यंजन तथा उसकी उस अनुकरणीय बुद्धता को लेकर इन दोनों ही कवियों ने कई एक अमर स्मृतियों की रचना की।<sup>३</sup>

मुख्य सम्मनन से संवि हो जाने के बाद सब ओर अपेक्षाकृत शान्ति छा गई। इसी काल में जूँपरपुर में<sup>४</sup> बीरबर्तननाथ के विशाल मन्दिर का निर्माण हुआ।

१-बीरबर्तन धर्मा-राजस्थान का लोक-साहित्य-राष्ट्रभाषा-व० १० ख० ४

२-बीरबर्तन धर्मा राजस्थानी कवि खंड २-सूरिका पृ० १९-पृ० ७

३-रघुबीर सिंह पूर्व-आधुनिक राजस्थान-पृ० ९०

४-बीसा जूँपरपुर राज्य का इतिहास-पृ० १९७

जाम्बेर, जोधपुर, बीकानेर और जयपुर के नरेशों ने कई एक नये प्राचाओं का निर्माण कर राजस्थान की स्थापत्य कला में सम्मिलित राजपूत मूल्य सीली के विकास में पूर्ण सहयोग दिया<sup>१</sup>

राजस्थानी चित्र-शैलियों के विकास के इतिहास में यह शांति-समृद्धि काल बहुत ही महत्वपूर्ण है। मुगल दरबार के निरन्तर छाया के कारण राजस्थान के राजाओं, उनके सामन्तों तथा उच्च पदाधिकारियों की वैद्य भूषा में होने वाले परिश्रमों, मुगल स्थापत्य कला की नई सीली, तथा चित्रों के संवदन की कला, आदि पर पड़ने वाले नये प्रभावों का प्रतिबिम्ब समकालीन राजस्थानी शैली के चित्रों में भी देख पड़ने लगा।<sup>२</sup>

मुगलसत्ता के पतन के साथ ही मराठों के निरन्तर आक्रमणों ने राजस्थान में अराजकता की स्थिति उत्पन्न कर दी। भोज विभाज्य की प्रकृति निरुपेक्षता सीमा पर आ पहुँची इसे हम पीछे देख ही चुके हैं। विवरण के लिए देखिये—इसी अध्याय का प्रारम्भिक अक्ष। राजस्थान के राज्यों और वहाँ के समाज में इस सर्वप्रथम पतन का सर्वव्यापी प्रभाव वहाँ के साहित्य और कला में भी स्पष्ट होने लगा। साहित्य सामाना मातों राजस्थान से अलग हो रही थी। कविता राजदरबार के मनोविनोद एवं सत्तों के विचार प्रदर्शन की ही वस्तु रह गई थी। शृंगार रस का ही प्राधान्य था कहीं-कहीं शांति और भक्ति रस की भी चर्चा होती थी। संक्षिप्त स्फुट काव्य की रचना करना ही कवियों का प्रधान कार्य रह गया था। इन दिनों (१७५१ से १७९२ ई०) राजस्थान में किसी भी महत्वपूर्ण स्थायी साहित्य की सृष्टि नहीं हो पाई। राजस्थान की आत्मा ही मूर्च्छित एवं निरुपेक्ष हो गई थी। उसकी यह लज्जा राजस्थान की कला को भी बीरे-बीरे अनुपेक्षित बहिर्हीन भावुकता-रहित एवं निमग्न बना रही थी। कलाकारों का दृष्टिकोण निरन्तर संकीर्ण एवं उनके चित्रों के विषयों की संख्या सीमित होती जा रही थी।<sup>३</sup>

अंग्रेजों से सम्पर्क करने पर दो प्रतिक्रियाएँ स्पष्ट हुईं। पहली तो यह है कि इस विदेशी शक्ति के सामने राजा लोग हीन-भावना अनुभव करने लग गये थे, फलस्वरूप वे अपने पूर्वजों के कृत्यों पर अभिमान करने लगे। प्रायः सभी राज्यों के शासकों ने अपने अपने राज्यों के इतिहास अपनी ओर से तैयार करवाए और उन्हें प्रकाशित करवाया। टाडकी प्रवृत्ति ने तो सारी राजपूत जाति को भुसाने में काम किया।<sup>४</sup> फलस्वरूप राजपूत नरेश अपने पूर्वजों की महत्ता के आचार पर अपना व्यक्तित्व महत्व जोड़ने लगे। अपने जयिग्य कृपापात्रों में विरेह नृप नरेश असह्य और विभक्तता से ऐश्वर्य विभास में दूबे गयी पराधीनता के कठोर सत्य को भूलकर

१-वही-पृ० १०९

२-वही-पृ० ११०

३-वही-पृ० २१९

४-वही-पृ० २८९

जनकी राजनैतिक चेतना तथा गौरव का डोंग रखने वाले ज्योती दिखाने को ही पूरा महत्व है रहे थे ।

दूसरी प्रतिक्रिया जनता में हुई । जनता में घनी घनी परिचयी प्रभाव के कारण नई चेतना उत्पन्न होने लगी । अंग्रेजों के आधिपत्य ने जनता के हृदय में अपने गरीबों के प्रति अगाध विश्वास को बड़ से हिसा दिया था । गरीबों के बड़ से हुए अत्याचारों और सरदारों के गिरथर विद्रोहों ने प्रजा के लिए कई एक नई संसर्गों पैदा कर दी थीं । समुचित नेताओं के अभाव में जनता विकर्तव्य विमुख हो पड़ी थी । अपनी विचलता का अनुभव कर उसके जीवन में असीम असीम निराशा भर कर गई ।<sup>१</sup>

इन दोनों प्रतिक्रियाओं का प्रभाव राजस्वाम के साहित्य पर पड़ना स्वाभाविक ही था । साथ प्रांतीय जीवन ही उत्थल-पुथल हो रहा था और प्रत्येक बात का सापेक्षित महत्व बदल रहा था । संस-अरंभरागत राजपूती बीरता और सैनिक क्षमता निरर्थक सिद्ध हो चुकी थी । साहित्य के क्षेत्र में सबसे प्रमुख व्यक्तित्व महाकवि सूर्यमल्ल मिश्रणका था । पाण्डित्य से पूर्ण इस महाकवि की कविता सर्व साधारण की वस्तु नहीं बन सकी, और उसके अनुयायी कवियों ने उसकी भावना और अन्तर्भूति को मुलाकर उसके पाण्डित्यपूर्ण सख्य कौशल तथा बाबाईबर को ही अपनाने का प्रयत्न किया । इससे बाब की हिमल कविता निष्पन्न हो गई । उसका जीवन से सम्बन्ध विच्छिन्न हो टूट गया । एकर सामन्तों में खोखलेपन के बड़ों के साथ ही कवियों का आकर बटने लगा । उबर हिमल कविता जनता से दूर हो चुकी थी । उसका विकास अव्यवस्था हो गया । इसी से महाकवि सूर्यमल्ल मिश्रण को 'नास्ट बाफ दी बाइगटस् कहकर पुकारा गया है ।'<sup>२</sup> हिमल काव्य सूर्यमल्ल के वस्तु होते ही क्षिप्त गया । वस्तु ।

#### ४ हिमालय साहित्य का अध्ययन

अब हम हिमल की प्रमुख रचनाओं का परिचय प्राप्त करेंगे । चूंकि हमारे अध्ययन का आधार काव्यरूपों का विकास है, अतः हम हिमल कविता के विकास को इसी आधार पर समझने की कोशिश करेंगे । अतः उपर्युक्त साहित्य का विवेचन निम्न तीन चरणों में अन्तर्भूत किया जायेगा ।

- (१) हिमल प्रबंध काव्य ।
  - (अ) प्राचीन राजस्वामी या मारवाड़ी
  - (ब) परिभाषित हिमल ।
- (२) हिमल मुक्तक काव्य ।
  - (अ) हिमल बीर गीत ।

१-रघुवीर सिंह पूर्व आधुनिक राजस्वाम पृ० २८४

२-बीर सतसई-मुनिनि कुमार चाटुर्ग्या का प्राणकथन-पृ० ९

(क) बीहे छणय, छोरठे, क बनिमी, प्रमाण बारि पर ।

(ख) हिमाल निमित्त रचनाएं ।

हिमाल की प्रारंभिक रचनाओं को लेकर विद्वानों में मतभेद नहीं है । बात यह है । बारवार के आक्रमणों से, परस्पर की मारकाट से जनता अधिकारियों की उपेक्षा से हिमाल का विपुल साहित्य लब्ध हो गया है । उपमन्य रचनाओं की प्रतिनिधियाँ बीहे की मिलती हैं और अधिक एवं प्राधान्यिक तत्वों के सम्भाव में अनुश्रुतियों को प्रथम विन्यास रहा है ।

राजनैतिक परिस्थितियों में अनुरित, चोपित एवं संवर्धित होने के कारण हिमाल कविता का कालभर प्रधानतया बीर रसात्मक है । यदि यह कहा जाय कि हिमाल भाषा का बीर-साहित्य विभवसाहित्य के लिए एक अनूठे उदाहरण है तो अत्युक्ति न होगी । बीर रस के अन्तर्गत माय्य मुक्त दाम ददा बीर धर्म चारों प्रकार के बीरों के लोभी, स्वाम्यविक तथा लोभीवांग विष काव्यचारों से अलङ्घित है । इस विषय में अनुसृत्युक्त उपमता प्राप्त होती है । बारम्बार बीरोचित श्रुतियों का प्रथम दर्शन एक स्वानुश्रुति है ।<sup>१</sup> रबीन्द्र नाथ ठाकुर के कथनानुसार बीरता का भाव जो कि राजस्थानी के अनेक बीहे तथा बीठ का छार है स्वयंसेवक ऐसा अनूठा एवं अनोका है कि इसके लिए सम्पूर्ण राष्ट्र को गर्व हो सकता है । मुक्त तथा मुक्तचलन का भयानक आठावरण रण के विरोधी प्रतिश्रुतियों के पीछे पराक्रम बीरार्थ और आर्तक, सेना नियों की बहुलता तथा जल-मयों की प्रचुरता के बचन पद्यों अत्युक्तिपूर्ण एवं अतिशय चोपितों से अनुरजित और अनुप्राणित है तथापि प्रभावशाली मनोमुग्धकर एवं अनुपम है । बीर नर नायियों का अनोखीसेवक वास्तविक तथा आत्मिक है । विदेष तथा बहिर्मुखी कल्याणती, पञ्चाक्षर वाई कल्याणकारी भाषा बीरान्तों के छात्र, बीरता तथा बीर । लोभी के रत्नार्थ चोपित अग्नि प्रवेश कर मृत्यु का वरम कुट्टि के इतिहास में आनन्दजनक घटनाएँ हैं ।<sup>२</sup>

विद्वानों ने राजस्थान के बीर साहित्य की भूरि भूरि प्रशंसा की है । डाक्टर एच० पी० टेसीटरी के अनुसार यह बृहद् साहित्य समस्त राजपूताना तथा कुबरात में जहाँ जहाँ कहीं भी राजपूत ने अपनी भूमि के विजय के हेतु रक्त का बलिदान किया पस्तकित तथा पुण्डित हुआ ।<sup>३</sup> डा० सुनीति कुमार चटर्जी का मत है कि राजस्थानी साहित्य बीररस से ओतप्रोत बीरान्त और बीर की संज्ञा प्रवाह लक्ष्म्य मृत्यु का उद्देश है । ये राजस्थान के भीत में जिनमें कि अनेक शक्ति एवं अविविध सोह-मुक्त साहस का फेसिल स्तोत्र प्रकाशित होता था और जिन्होंने कि राजपूत मोक्ष को व्यक्तियुक्त युद्ध तथा आक्रमण को विस्मृत कराकर सर्व शिवं एवं वरम के लिए लड़ने को वाच्य किया ।<sup>४</sup>

१-डा० जगदीश श्रीवास्तव हिमाल साहित्य—पृ० १९

२-मोती लाल मेनारिया राजस्थानी भाषा बीर साहित्य पृ० १७

३-राजदेव चोखानी : राजस्थानी साहित्य का महत्त्व पृ०-६८

४-जही -पृ० १५

श्रीमान हरिविनायक सारवाने राजस्थान में हिन्दी के हस्तलिखित ग्रंथों की खोज ( भाग १ ) के प्रकाशन में लिखा है कि यह केवल राजपूत ही नहीं बल्कि समग्र १६ जातियों के लोग थे जो कि राजस्थान के बीरों के वीरतापूर्ण कृत्यों के गान को सुनकर मुग्ध करने के लिए कटिबद्ध हो जाते थे । इसी कारण राजस्थान को वीर भूमि (लैण्ड ऑफ वीरर्स) को संज्ञा प्रदान की गई है ।<sup>१</sup>

उमर के सङ्ग्रहों से स्पष्ट है कि राजस्थानी साहित्य में वीर रस के प्राधान्य में विशेष कर साहित्य के विद्वानों का ध्यान आकृष्ट किया । फलस्वरूप राजस्थान की भाषा द्विपल को अधिकांश साहित्यकारों ने केवल वीर रस के लिये ही उपयुक्त समझा जो कि वास्तुतः एक भ्रम है ।<sup>२</sup>

द्विपल में रीतिबंध, भक्तिकाव्य तथा इस प्रकार की रचनायें भी उपलब्ध होती हैं जिन पर ध्यान भल कर विस्तृत विचार किया जायेगा । इसी तरह द्विपल गद्य की रचनाओं को भीने छन्द में आसीपित किया जायेगा ।

सबसे पहले हम कुछ द्विपल की प्रचलित रचनाओं को लेंगे ।

( १ ) धीवर, रणमल्ल छन्द

राजस्थानी वीर काव्यों तथा पृथ्वीराज रासो कुमार रासो हम्मीर रासो, आदि की प्रामाणिकता और रचना कास को लेकर विद्वानों में पिछले काफी समय से मतभेद है । ऐतिहासिक दृष्टि से तो इनमें से अनेक काव्य ग्रंथों की खन-परीक्षा भी की जा चुकी है और उनमें से अधिकांश को अतिहासिक भी ठहराया जा चुका है । काव्य से इतिहास की अपेक्षा करने में और क्या मिलेगा ? काव्य और इतिहास दोनों के तत्व, आचारधिता और क्षेत्र भिन्न हैं, दोनों के बाधितों का भी रूप भिन्न है किन्तु ऐतिहासिक काव्य से हम इतिहास व काव्य दोनों के बाधितों का समान निर्वाह करने का पूर्वाग्रह रखते हैं । बहुधा ऐतिहासिक काव्य हमारी निर्धारण रैखा से नीचे ही ठहरते हैं । उनमें इतिहासतत्व व काव्यतत्व दोनों का सम्यक निर्वाह नहीं हो पाता है किन्तु धीवर व्यास द्वारा निमित्त 'रणमल्ल छन्द' नामक रचना एक अपवाद है । इस छोटे से वीर गायालयक काव्य में जहाँ इतिहास की पूरी रक्षा हुई है । वहाँ कुछ स्थानों पर हमें बड़ी सघट्ट अभिव्यक्ति भी मिलती है ।

धीवर के जीवन के सम्बन्ध में हमारी जानकारी बहुत सीमित है । हमें उसकी अम्मभूमि अम्मतिवि और वचन के बारे में कोई जानकारी नहीं मिलती है । उनकी तीन रचनायें मानी जाती हैं—( १ ) रणमल्ल छन्द ( २ ) लच्छरी अपवा साहित्यिक छन्द ( ३ ) कवित्त भागवत । इन तीनों कृतियों में इस विषय की कोई जानकारी नहीं की गई है । अन्तर्वास्य अपवा बहिरास्य के आधार पर केवल यही

१-हरिविनायक सारवा : राजस्थान में हस्तलिखित ग्रंथों की खोज भाग १

भूमिका पृ० २

२-अगरीब कीवास्तव द्विपल साहित्य-पृ० २०

३-मोहरीन छायी राजस्थानी कवि भाग १ पृ० ४३ से ५२ पर प्रकाशित



कहा जा सकता है कि श्रीरत्न वि० सं० १४५४ में विद्यमान था। यह ईश्वर के राठौड़ नरेश रणमल्ल का राज्याभिषेक था और उस समय ईश्वर में ही रहना था। रणमल्ल छत्र में प्रारम्भ में रची गई ११ भागों में उसे अच्छा संस्कृत में लिख करती है। अरबी-फारसी के शब्दों का प्रयोग भी उसकी कविता में हुआ है और टीका टीके पर हुआ है। यह सब उसकी अच्छी शिक्षा का प्रतीक है। उसकी आज्ञा का उद्देश्य 'क्यास' कह के विद्वानों ने किया है।<sup>१</sup> किन्तु उसकी अप्रकाशित रचना 'कविता भाष्य' में भाष्यक की कथा के स्थान पर ऐसी ही रसुति है। वास्तव में उसका मूल नाम 'कविता भाष्य' रहा हो। यदि ऐसा हो तो यह शब्दों का उच्चारण टकराता है। उनमें अपनी तीनों रचनाओं में मात्रिक छन्दों का प्रयोग भी अधिकतर किया है और उसके बीच कवि प्रिय छन्द आनाये है। इसकी दृष्टि 'रणमल्ल छत्र' का उद्देश्य उद्देश्य मटनावर ने कुछ द्विज न पारसी साहित्य की परम्परा में किया है। 'रणमल्ल छत्र' छतर छत्रों का और काव्य है जिसमें पाठन के सुखदायक छन्दों ( बाह में मुखरकर छाह ) और ईश्वर के राठौड़ नरेश रणमल्ल के युद्ध का सजीव वर्णन है। इस युद्ध में रणमल्ल ने अपने सन् पर विजय पाई थी। गुजरात के प्रसिद्ध विद्वान के० ह० प्रभु की मान्यता है कि यह युद्ध ई० सन् १३२० में हुआ था।<sup>२</sup> किन्तु के० का० घास्त्री का इससे मत-भेद है।<sup>३</sup>

रणमल्ल छत्र एक छोटा काव्यग्रंथ है किन्तु बड़ा ही जीवपूर्ण है। नैपथ्य का भाषा पर पर्याप्त अधिकार जान पड़ता है। वर्णन प्राचीन परम्परा के मानों की लेकर चलते हैं फिर भी बहुत सजीव हैं। कवि नाद-शोभ्य का चतुर नियामक है और अपनी कविता में ऐसी शब्द योजना रखता है जो ध्वनि की दृष्टि से और रस के प्रत्यय के उपयुक्त होती है। कविशास्त्राचार्य माणिक्यनाथ मूषी ने कवि पर आरोप लगाया है कि उसकी भाषा में अनेक बार नाद-शोभ्य को लाने के हित में कई शब्दों इतना अधिक बदल दिया गया है कि वे पहिचाने भी नहीं आते।<sup>४</sup> किन्तु मेरी धारणा है ऐसी मान्यता भ्रान्ति पर आधारित है। एक उदाहरण मेरी धारणा को स्पष्ट कर देना। राजस्थानी साहित्य के क्षेत्र में डा० भीतीनाथ मेनारिया का योगदान महत्त्व का रहा है किन्तु वे भी ऐसे प्रयत्न से अपने को बचा नहीं पाये हैं। उन्होंने अपनी पुस्तक 'द्विज में और रस' में लिखा है—एक बात को द्विज के सभी सभी कवियों में समान रूप से पाई जाती है वह है शब्दों की मगमाने बंध से तोड़ मरोड़।<sup>५</sup> एक ही शब्द को इस-वृत्ति तरह तोड़ा है कि आज तो उसके मूल रूप को पहचानने में भी भारी कठिनाई का सामना करना पड़ता है। जाये जलकर उन्होंने शब्दों को ऐसे

१-के० का० घास्त्री कविचरित—पृ० २९

२-हिन्दी अनुसूचन—वर्ष ५, बंक ३, पृ० ९९

३-के० ह० प्रभु प्राचीन गुर्जर काव्य—प्रस्तावना—पृ० ६

४-के० का घास्त्री भाषणा कविजी—भा० १, पृ० २९९

५-के० प्र० म० म० पण्डित पण्डित पण्डित पण्डित—पृ० १००

अनेक उदाहरण दिये हैं। जैसे बुद्धकव्य 'भुविष्ठिर' का द्विपद कवियों द्वारा प्रयुक्त 'बुद्धिष्ठि' यहाँ इस प्रसंग में अधिक कहना प्रसंग से बाहर की बात होगी, किन्तु उदाहरण में दिये गये सभी शब्द उत्तरकासीन अपभ्रंश (अवहट्ट) में मिलते हैं, किन्तु महाट्ट-अपभ्रंश के प्रख्यात और महाकवि चतुर्भुज स्वर्णगू ने स्वयं 'बुद्धिष्ठि' शब्द का प्रयोग किया है। केवल यह उदाहरण ही पर्याप्त होगा। इसी प्रकार अन्य शब्दों का मूल उत्पत्ति भी बूझा जा सकता है। येही मूल सम्प्रति के अनुसार भाषा सरस और निमग्नानुभूत है। हमें ऐसे प्राचीन शब्दों की भाषा का अध्ययन करते हुए उनके वास्तविक समय को ध्यान में रखना होगा। 'रणमत्त अन्ध' की भाषा 'अवहट्ट' से निकल मान वैश्य भाषा है। अध्ययन की दृष्टि से कहीं कहीं कविता बड़ी सुन्दर बन पड़ी है—यथा—

मुस सिर कमल मेच्छय मयह,  
तु गयचंगणि भाव न उगाह ।  
जां अम्बर पुठसि सरणि रमह,  
तां कमल कम्ब न भगड़ नमह ।  
बीर बडवानस तब सास रामह  
पुप मेच्छ न बापू बास किमह ।

( यदि मेरा सिर कमल मेच्छ के चरणों में झुक जाय, तो वयस में सुख नहीं पड़े। जब तक बाकास में सुख उगता है, तब तक कमल ( चढी रणमत्त ) तुर्क को सिर नहीं झुका सकता। जाहे समुद्र जल से बाढ़वालि भी बूझ जाय किन्तु मैं मेच्छ को एक इंच भट्ठी नहीं भेजे दूंगा। )

मुद्रचर्चन परम्परागत होने पर भी अनेक स्थलों पर कवि की प्रतिभा और वाग्विहगताका परिचायक है—जैसे —

साहस बसि सरठांगल समुहिरि तिम अमकंठ ।

तिम रणमत्त-ह-रोस-बसि मुस-सिहिरि कुरकम्ठ ॥

( अरे ही सुल्तान की सेना बुराह से उत्तेजित होने लगी त्यों ही क्रोध के मारे रणमत्त की मुँहें फटने लगीं। )

बीरर में काव्य प्रतिभा की और पर्याप्त पहचान है। यह उसकी रचनाओं से स्पष्ट बात पड़ता है। अन्य बीर रस के कवियों की भाँति यह एकांगी नहीं थी, न अपने आभयवाता की प्रसंसा में उसने अतिशयोक्ति से ही अधिक काम लिया है। सारा काव्य प्रासंगिक और सौष्ठव पूर्ण वर्णनकारों से युक्त है। यह रचना इतिहास, काव्य अन्वेषण और भाषा चारों दृष्टियों से महत्वपूर्ण है। कवि की दोष दोनों रचनाओं में भाषा की दृष्टि से तो अधिक नहीं पर सामग्री की दृष्टि से बड़ा अन्तर रहती है। कवि विजयी वा नन्मीर या यह सत्यवादी हैं स्पष्टता बात पड़ता है। यह काव्य १२० शब्दों का है और इसका आरम्भ संस्कृत में एक चारुल निश्चिड़ित

छन्द द्वारा किया गया है। उसके बाद ही कवि ने कहा है—

धीपर कवित कहइ मती मंदहु ।

पूर्व छावो भाषा छंदहु ॥

अपने को मतिमय कह कर पुकारना ही उसके विनयी होने का प्रमाण है। इसी प्रकार कवि ने 'कवित मनवती' में देवी की स्तुति की है, यह पहेल कहा जा चुका है। इस तीनों रचनाओं में सबसे प्रमुख 'राममस्त छन्द' ही है जो ऐतिहासिक जानकारी के लिये महत्वपूर्ण है।<sup>१</sup>

(ब) बाबर डाढ़ी बीरबाण<sup>२</sup>

बीरबाणका रचयिता बाबर या बहादुर जाति का मूलजमान डाढ़ी बा।<sup>३</sup> पण्डित रामकर्म बासोपा ने इसके रचयिता का नाम रामचन्द्र लिखा है,<sup>४</sup> जो ठीक नहीं है। जयबीस सिंह यहलोट की मायता है कि कवि बाबर जाति का डोसी या और यह बीरमजी के सत्कार में ऊट के नक्कारे पर बा। यह स्वयं लखेरा के मुठ में बा और उसने छठ मुठ का विस्तृत वर्णन अपने ग्रंथ में किया है।<sup>५</sup> मोतीलाल मेनारिया इन्हें डाढ़ी मानते हैं<sup>६</sup> और राज बीरमजी का बाधित ठहराते हैं।<sup>७</sup> कुछ भी हो बीरबाण का रचयिता निश्चयेह डाढ़ी बाबर या।<sup>८</sup>

इसके रचनाकाक को लेकर भी मतभेद है। और तो और मोतीलाल मेनारिया दो ग्रंथों में भिन्न रचना काक निर्धारित करते हैं। हिमाल में बीर रस में उन्होंने रचना काक संवत् १४४० के लगभग माना है। दूसरी ओर राजस्थानी भाषा और साहित्य में वे लिखते हैं— परन्तु जैसा कि कुछ लोग मान बैठे हैं यह बीरमजी की समकालीन रचना नहीं है। कोई अठारहवीं शताब्दी के मध्य में यह रची गई है।<sup>९</sup> डा० सुकुमार सेन के मत का समर्थन करते हुए डा० हीराबाल माहेश्वरी इसे पन्द्रहवीं शती की रचना मानते हैं।<sup>१०</sup> श्री गणेशम स्वामी जी इस काव्य की पद्यता चारन सैनी की प्रारम्भिक रचनाओं-राममस्त छन्द तथा जयलाल जीजीरी वचनिका के साथ करके

१—सैयद अबुलफर नदवी राममस्त छन्द जने तेनो समय ।

२—राजी बक्सी कुमारी बूढावत बीरबाण

३—बही—सुमिका—पृ० १९

४—रामकर्म बासोपा रामकर्म—सुमिका—पृ० २

५—जयबीस सिंह मारवाड़ राज्य का इतिहास—पृ० १६

६—मोतीलाल मेनारिया राजस्थानी साहित्य की स्परेखा—पृ० २९

७—मोतीलाल मेनारिया हिमाल में बीररस—पृ० ३७

८—बोवर्द्धन शर्मा बाबर नामक शैख—अमर ज्योति—वर्ष १० अंक २

९—मोतीलाल मेनारिया हिमाल में बीररस—पृ० ३७

१०—मोतीलाल मेनारिया राजस्थानी भाषा और साहित्य—पृ० १७०

११—डा० हीराबाल माहेश्वरी राजस्थानी साहित्य—पृ० ७५

इसी मठ की पुष्टि करते हैं ।<sup>१</sup> इसी रचना को बीरमाध, जिसकी बीरमभीरी बीरमान, जिसकी बीरमभीरी आदि नामों से भी पहिचाना जाता रहा है । अन्तर्वास्य के आधार पर इसे संवत् १२०० के आस पास की रची हुई कृति माना जा सकता है । जैसे—भोसा भी के अनुसार बीरमदेव की मृत्यु संवत् १४४० हुई ।<sup>२</sup> बीरमान में राजबीरम के द्वितीय पुत्र राज जूडा के साथ ईश्वरों के मुखिया सममसीकी पोती के विवाह और शायदे में मंजोवर बिये जाने का उल्लेख है—

सममसी इन्दोतर्न पोती परबने ।

मंजोवर में बी कर सहूर माछा फरमावे ॥१०३॥

\* \* \*

मुयका बोप ह्वारहुँ बोरी बसवाया ।

राज मणोवर बुंरुं नामण्ड बसवाया ॥१०६॥

मणोवर पर जूडा का अधिकार संवत् ११३१ में हुआ था ।<sup>३</sup>

इसी प्रकार बोसा का जोश्वरों के साथ युद्ध में बाधित होने और बलम्बरनाथ द्वारा उसकी काया बयार बनाने तथा उसे बसवा सिद्ध मान कर अपने साथ किया ले जाने का भी वर्णन है —

बय तोहुव जोश्वर बडा बिठै कर समर ।

कठीये पग मोम किमो निव साव नरैसुर ॥

बरसण सिव भावै दिवो माये कर पीहर ।

पाव सकटा साबीवा बालपाव लयीवर ॥

इस अंवर मोवाकरी तो काया बमर ।

हुय सिव बसमो हाकीमो संग नाथ जसंबर ॥१२६॥

जसंबर नाथ द्वारा बोसा को बमर करने का वर्णन अन्तिम बीठ में है ।

नाथ राजक देव भाटी सबमडो बर साव ।

कमल पोपो बमर कीमो लमो जसंबर नाथ ॥

नवभावबी नवनाथ नावाँ ऊपरों नवनाथ । ६ ।

देवजी ने गोगा का जन्म संवत् १४३३ तथा स्वर्णवास संवत् १४३३ १० में माना है ।<sup>४</sup> अतः प्रतीत होता है कि संवत् १४६० के आस ही किसी समय इसकी रचना हुई है पहले नहीं । अनुमान है कि इसकी रचना संवत् १२०० के आसपास हुई होगी जबकि मोसा भी के कल्लटे पाँव जुड़ने काया बमर होने और बसवें सिद्ध के रूप में बलम्बरनाथ के साथ साव बसे जाने की किंवदन्ती लोक-जीवन में प्रचलित हो

१—नरोत्तमवास स्वामी राजस्वामी साहित्य-एक परिचय—पृ० २९

२—भोसा कोकपुर राज्य का इतिहास—भाग १ पृ० ३३६

३—रैऊ मारवाड़ का इतिहास—भाग १—पृ० ६१ फुडगोट

४—विश्वेश्वरनाथ रैऊ मारवाड़ का इतिहास—प्रथम भाग पृ० २६ ३७

नई नी ।<sup>१</sup> काव्य में आई हुई निम्न वृत्तियों में भी वही प्रतिष्ठा होता है कि रचना के लक्षण गीताभी को हुए वगैरे समय अवसर और तथा पर—

बर बीरम तनो बाही निर्गम ओष ।

नीहा रहस्य मोबादेव हुंता बगई हन बार ॥

रग बार भी रनबार बानी रन तनी रन बार ।

कटे उदम टनो कन्धो भीर हैगु बैर बैर ।

बीरम तनो बाये बानरे हय बैर ॥

हय बैर ओ हय बैर बोये बानोयो हय बैर ॥३॥

इनमें इतिहास की आख्या मूलप्रधान सामग्री सुरक्षित है । अतः, देव तथा ब्राम्हणा प्रभृति विद्वानों के इतिहास ग्रन्थों में यह बात स्पष्ट है । इसमें रावण मही नाथ जो और उनके ज्येष्ठ पुत्र अकाल के वीरपुत्रों, राव वीरमही का इतिहास और अष्ट में इनके पुत्र मोबादेव का करने रीति की मृत्यु का वर्णन होने कुछ, कुछ में वीरवनि को ब्रह्म करना सविनार बजित है । आया और पुत्र-मन्त्र बोनबाय की राजस्थानी है विनर्म उमरही हुई बहावी मही को ली गति आई जानी है । बर्नियों की भाँति, एक के बाद एक घटनाओं जानी है और बर्न उन सबका सरल वर्णन करता बमता है । समस्त काव्य वीररम की फरकही हुई रचना है । सबसे बड़ी बात यह है कि कवि अपने चरित नायक का घणादर्य वर्णन करता है— उसके गुणों को बही अतिशयोक्ति पूर्ण नहीं लिखाता । यही कारण है कि वीरम का विशेष आदर तथा काव्य के अष्ट सर पाठक की महानुभूति नहीं गीता, उनके जोड़ों के विनाश पर पुन ही होता है । तथा को वीरम के प्रति हनप्रता मह्य मानवीय महानुभूति और वीरोचित तथा भावना इसके कारण है । कवि ने तीन विविध पात्रों की सृष्टि की है—वीरम उनकी बली माँसिलबानी और जोड़वा बना । रावण महीनाथ वीरम जनमात और मोगा से सम्बन्धित विविध घटनाओं एवं उनके वीरपुत्रों की वृष्टभूमि में उत्क्रामीन सामन्तीय एवं राजपूनी समाज आने समस्त वैभव तथा दुर्बलता के साथ उत्तर आया है । प्रतिशोध मावना प्रतिज्ञा-नाथय आन-आन की डेक तथा भीषण घटों के क्षेप में गुप्तते हुए राजपूनी जीवन का बड़ा बगुना विष बर्न में उत्तरा है । सिक्काय की तरह वीरभावण के कवि ने भी इतिहास के विरमृतभाव जीर्ण तीर्ण बर्नों की रक्षा की है । एक घु घनी किन्तु जीवन घटना की सृष्टि सरिताय रही है । कुछ अघटकारपूर्ण बर्णों का भी समावेश किया गया है और सेवा की संस्था आदि में अनिष्टावृत्ति हो सकती है किन्तु यह तो एक प्रकार से सरासरीन काव्य पद्धति ही बन गई थी ।

राजी माँसिलबानी का अपने पति वीरम की लक्षितों आन बनने जोड़ों के साथ कुछ में आते हुए रोकना और वीरम की गवौल्लवी काव्य सीगर्द और उत्क्रामीन राजपूत-जीववृत्ति के स्पष्टीकरण की वृष्टि से बहुत ही सुन्दर बन पड़ी है ।

बात प्रतिपाद के कारण कभी कथा बटना प्रधान और कभी वर्णन प्रधान होती हुई  
चरम सीमा तक पहुँचती है। वर्णन की रचना और घटना की सेमी एक दूसरे को  
ठेलते हुए अन्तर्गत स्थान तक चकते हैं। काव्य के कुछ पलों में तो भाव कहानियों का  
मा रूप धारण कर लिया है, जिससे इसकी प्रसिद्धि का पता चलता है—

(क) पग पग मैना पाड़ीया पग पग पाड़ी हाम ।

बीबी बूझे पान नी, बोज बिता बयमान ?

(ख) पीबोली बीबी गले बयमान बगाई

जको न देखी बीबतो कुप मार बीरपई

(घ) भुपा छीरसा आपरा, बीबी जै बोड़ा

हमीया हत न आवही बोवा रे बोड़ा । आदि ।<sup>१</sup>

‘बीरबीज’ में ऐतिहासिक घटनाओं का यथा तथ्य निरूपण किया गया है।  
साथ ही नायिक प्रसंगों के अनुक्रम भावनापूर्ण काव्यात्मक अभिव्यक्ति भी हुई है।  
काव्य में वर्णित प्रमुख घटनायें निम्नलिखित हैं—

(१) जैतसिंह रो सवको—जैतसिंह द्वारा युवराज के दरबारों पर आक्रमण  
कर राजचक्र पर अधिकार करना ।

(२) मासदेवी रो समो—महमदाबाद के मुहम्मद बँगड़ा से युद्ध कर  
पीबोली का हरण करना । इसमें पाँच सवकों अर्थात् युद्धों का वर्णन है ।

(३) बीरम बी और बोहियों का युद्ध जिसमें बीरमबी और बोहियों के  
सम्बन्ध युद्ध के कारण, युद्ध का वर्णन और युद्ध के परिणाम दिये गये हैं। इसी प्रसंग  
में दिल्ली बादशाह के अधिपतियों से सवे ऊँटों की राठोड़ों द्वारा हुई लूट और युद्ध  
का वर्णन भी दिया गया है ।

(४) बीरम बी के पुत्र भूषा द्वारा मंजोर पर अधिकार करना ।

(५) बीरमती के एक पुत्र योगदेव द्वारा बोहियों से युद्ध कर बीरम बी  
की मृत्यु का बदला लेने और बीरगति प्राप्त करके का वर्णन ।

उपरोक्त पाँचों ही घटनायें इतिहास प्रसिद्ध हैं और सम्बन्धित ग्रंथों से  
प्रमाणित होती हैं। विशेषप्रमाणों के अभाव में इन घटनाओं को अतिहासिक नहीं  
ठहराया जा सकता ।<sup>२</sup>

‘बीरबीज’ की प्रमुख विशेषता यह है कि इसमें कवि ने सुसज्जमान होते हुये  
भी नायिक कवयिता का परिचय दिया है। बोहिया मुसलमानों की सहनशीलता का  
परिचय भी प्रस्तुत काव्य द्वारा प्राप्त होता है। बोहियों ने वास्तव में बीरम बी  
और उनके साथियों की हठमूर्खीपूर्ण कामों और अपराधों से विवश हो कर ही युद्ध

१—हीरादास माहेश्वरी राजस्थानी साहित्य—पृ० ७७

२—लक्ष्मी कुमारी भूषावत बीरबीज—भूमिका—पृ० १२—१३

किया था । फिर बीरमजी की रानी मांजलियाणी ने ओहिया मुसलमानों को मरना पायीरूप भाई बनाया तो दोनों ही पक्षों ने अपने-अपने सम्बन्धों का विरहा किया । यहाँ तक कि बूझा जी भी अपने मामा पर तलवार चलाये के लिए नहीं तैयार होते हैं और मोनादेव जी को बीरमजी का बदला लेने के लिए भिजते हैं ।

‘बीरबाण’ में बीररस का उत्कृष्ट निरूपण हुआ है । बीरबाण भारतवर्ष में बीररसप्रधान काव्य है और इसमें मासंजन, उद्दीपन, रवाई एवं संवारी भावों का विस्तृत वर्णन हुआ है । युद्ध के कारण व्यपयुक्तीन परिस्थितियों के सर्वना अनुकूल है जैसे स्त्रीहरण, मार्ग में आते हुए घन का मूटना, बाढ़ों में भीरु भावों को बेरना, धार्मिक भावनाओं पर आघात करना आदि । युद्ध का वर्णन तो कवि-कल्पना और जीव से जीतमोह हुआ है ।

‘बीरबाण’ की तीसरी विशेषता कथावस्तु का सुसंरचित होना है । काव्य सम्बन्धी प्रत्येक घटना विस्मयी घटनाओं के जुड़ी है और बीरम जी तथा ओहियों के युद्ध में संघर्ष चरम सीमा पर पहुँचता है । संघर्ष का अन्त मोनादेव द्वारा ओहियों से मदमा लेने से होता है और वहीं काव्य पूर्ण भी होता है । इस प्रकार काव्य की कथा वस्तु भी पूर्ण संरचित है ।

‘बीरबाण’ की भाषा विंगल है । बीरबाण की भाषा पूर्वस्थेन परिभाषित नहीं होते हुए भी नियम के अनुकूल औरपूर्ण है ।<sup>१</sup>

### (१) पद्यमात्र कागृह्ये प्रबन्ध-<sup>२</sup>

रस की परम्परागत आवाश्यकताओं के अतिरिक्त पद्यमात्र सदा पद्यार्चवादी रहा । समसामयिक अनेक कवियों में से पद्यमात्र ही एक मात्र ऐसा कवि है जिसने घटनाओं और चरित्रों का हृदयी चतुराई से निरूपण किया है कि समस्त समूचा ‘कागृह्ये प्रबन्ध’ कविकार बन गया है । राजपूत एवं मुसलमान दोनों का वर्णन वास्तविक और जीवन के अनुकूल है ।<sup>३</sup> तत्कालीन समाज के बिभ, रसमिरासि, वर्णन चातुर्व-प्रबन्धात्मकता और सामाजिक परिस्थितियों का व्यापक विवरण संपन्न कल्पना, उचित काव्य कवियों व परम्पराओं का वासन किन्तु ‘मति सर्वं वर्णितुं का ध्यात आदि अनेक विशेषताओं के होने पर भी कवि पद्यमात्र हिन्दी विद्वानों द्वारा उचित सम्मान न पा सका ।

पद्यमात्र की एक मात्र छति ‘कागृह्ये प्रबन्ध’ ही मिली है और उसके उद्धार का योग भी प्रसिद्ध वर्णन विद्वान बुद्धर की ही है जिन्होंने इसे एक जैन बंधार से प्राप्त किया था । कवि के सम्बन्ध में कविक जानकारी तो मिलती नहीं है किन्तु अन्तर्धर्म के आधार पर हिन्दू भाते नहीं जा सकती हैं । पद्यमात्र विसनगर का

१ लक्ष्मी कुमारी बूझावत बीरबाण-भूमिका-पृ० ११

२-क० जी० व्यास-कागृह्ये प्रबन्ध

३-पोखरण राजा राजस्थानी कवि-मात्र-१-पृ० १९

नामर बाह्यन का और बाहीर ( मारवाड़ ) के एक राजपूत सामन्त बहीराज चौहान का आविष्ट था । उसने संवत् १५१२ में अपने ओष्ठ काव्यग्रंथ 'कान्हूदे प्रबन्ध' की रचना की । राजस्थानी ही नहीं हिन्दी के भी प्रारम्भिक युग के ग्रन्थों में कबानिष् ही कोई ऐसा माना जा सकता है जिसकी रचना तिथि इतनी निश्चित हो । इसी प्रकार इस ग्रंथ का पाठ भी अपने मूल रूप में प्रायः सुरक्षित है और अपने युग की भाषा के अध्ययन के लिए एक बड़ा आधार प्रस्तुत करता है ।<sup>१</sup>

पद्मनाभ ने अपने आध्ययनात्ता बहीराज चौहान के पूर्वज बाहीर नामर के शासक कान्हूदे के चरित व वीरता को लेकर अपने काव्यग्रंथ की रचना की । कान्हूदे प्रबन्ध में विस्तार पूर्वक अल्ताउद्दीन खिलजी और उसके सेनापति अलफ़्हा द्वारा गुजरात काठियावाड़ व राजस्थान पर किये गये दुर्बल आक्रमण का वर्णन है । अहिंसबाड़ा से हिन्दू राज का अन्त और सोमनाथ के ज्योतिर्लिंग का लूटने का वो मुख्य ऐतिहासिक घटनायें हैं । बाहीर के शासक कान्हूदे को जब इस धार्मिक अत्याचार का समाद ज्ञात हुआ तो अभियोचित गुर्जों के अनुसार ही उसने मुसलमानी सेना का मुकाबला किया । बारह वर्ष के बेटे के बाव भी मुसलमानी सेना को सफलता न मिल सकी । अन्त में उन्होंने सैन्य और नीतिनुरसक साधनों का आश्रय लिया । इस सबका वर्णन कवि ने बड़े चरित्रवाणी ढंग से किया है । अनेक स्थान पर पाठक स्वयं कविता पढ़ते पढ़ते वीर भावना में चत बिष्ट हो उठता है । यही कवि का रस कौशल है । खैली छौली छाही है, जर्जकार, विषय और वस्तु कविता के मर्म से दूर नहीं पाये न अन्य राज्याभिष्ट कवियों की भांति पद्मनाभ ने चमत्कार और कठि प्रस्त परम्पराओं का ही प्रयोग किया है । कवि की अभिव्यक्ति जितनी सरल है उतनी ही प्रभावजनक और सशक्त भी । इतिहास की दृष्टि से प्रस्तुत काव्य ग्रन्थ का महत्त्व काफ़ी है । अतिरंजना के बोध से कवि सर्वत्र बच सका है जिससे प्रस्तुत कृति और भी अधिक विकसत हो गई है । डा माता प्रसाद गुप्त की माधता है कि चम्पकार उसी राजवंश से सम्बन्धित था जिसको रंग के कबानायक ने पवित्र किया था । इस बात की सम्भावना स्पष्ट है कि उसको कबा की सामग्री उस राजवंश के लिखित और अनलिखित इतिहासों से प्राप्त हुई हो । इसीलिए उस युग के इतिहास के अध्येता के लिये यह ग्रंथ अत्यन्त मूल्यवान् होता है । यदि हम वर्तमानक समाज और मूल्यों की विशुद्ध और प्रामाणिक जानकारी चाहते हैं तो पद्मनाभ के 'कान्हूदे' प्रबन्ध को सबसे उपयोगी पायेंगे ।

पद्मनाभ की प्रतिभा ने हमें वो अत्यन्त ही समीच और विशिष्ट चरित्र दिये हैं — एक तो है कबानायक कान्हूदे और दूसरी है साहूबाबी फिरोजा । दोनों पात्र अनेक दृष्टियों से विशेषता रखते हैं । अन्य वीरकथाओं अथवा प्रबन्ध काव्यों के नायकों के प्रतिकूल कान्हूदेवैय गुणार से दूर है । वह समूचे हिन्दू समाज का पाठा



आग पड़ता है । असफलान ने सोमनाथ को छोड़ दिया और उठे वह नाइमों में साव कर दिखने से चला । प्रत्येक धर्मनिष्ठा हिन्दू विचार कर उठा ।

आगई रुद्र । धमई कोपानलि रीत्य सवे तिहुँ बासा ।  
तिहुँ पुष्पी मांही पुण्य बरताभीऊँ देवमोहि भय टास्या ॥  
ति बलकाक विपुर बिचरितउ पवननेमि त्रिम तुल ।  
पद्मनाभ पूछई सोमईया । कैपळ कर्क विगुल ।

हे रुद्र ! पहले तो तुमने अपनी कोपानलि में अनेक ईर्ष्या को जला दिया । संसार में पुष्प का प्रकार तुम्हीं ही है । ययातुर देवताओं को अभयदान देने ही दिया, जिस तरह प्रयत्न कई का नाश कर देता है उसी तरह तुम्हें शक्तिशाली विपुर राजस को नष्ट कर दिया । पद्मनाथ पूछता है कि हे सोमनाथ । अब ठीक विगुल को क्या हुआ ?

ऐसी विप्लव परिस्थितियों में कान्हूदे अपने धर्म भावना से अनुप्राणित हो जाये बड़ता है—मुसलमानों की सेना की मार भगाता है और उसी प्रस्तर अण्ड की मई मूर्तियाँ बनवा कर विभिन्न स्थानों में स्थापित करता है । यहाँ अन्य नायकों के समान किसी राजकुमारी के हृदय के लिए कान्हूदे नहीं बड़ता किन्तु कैवल्य रता के लिये । उसके वैश्वी उत्तर—बैठे कि पुरु ने विकल्पर को दिये थे—सुन कर चित फड़क उठता है । मान पर भिटने वाला वैश्वी साइसी उत्सर्गमय कटूटर टूटने को तैयार पर झुकने को तैयार नहीं पराक्रमी अचनपाल सवार और निर्भीकता से व्यवहार करने वाला कान्हूदे अन्त में पराजित होता है । कान्हूदे एक पात्र विदेप है किन्तु वह सामान्य जनता की भावनाओं का सक्रिय प्रतीक है अतः वह सामान्य पात्र भी है । सामूहिक हलचल का नेतृत्व करने वाला कान्हूदे परम्परा से सर्वथा भिन्न हाड-भांस का सबीन पात्र मान पड़ता है । उत्क्रांती कवियों की कला से तुलना करने पर पद्मनाथ की सराहना किये बिना नहीं रखा जाय ।

दूसरा चरित्र है फिरोजा का जो अजाउद्दीन की पुत्री है और कान्हूदे के पृथ्वीरमदेसे प्रेम करती है । यहाँ कवि ने लोक कथाओं से पूर्वमव सम्भव का उत्पन्न उठाया है और फिरोजा के प्रेम की साक्षरत चिरपुरातन अम्बुनामस्तर से माना है । महा इतिहास की दृष्टि से असंभव मान पड़ती है । ऐतिहासिक काव्य की विशेषतायें यहाँ पाँच हो उठती हैं और कथा लोककथा की तरह मोड़ से लैरी है । वस्तुतः इस देश में इतिहास को ठीक आधुनिक अर्थ में कभी नहीं लिया गया । हमारे काव्यों में तथ्य और कल्पना का, फैक्टस और फिक्शन का सम्पूर्ण योग हुआ है । कर्मफल की अनिवार्यता में दुर्भाग्य और सीमाय की सम्पूर्ण शक्ति में और मनुष्य के अपूर्व शक्ति भण्डार होने में कुछ विश्वास ने इस देश के ऐतिहासिक तथ्यों को धरा काव्यनिक रंगों में रंगा है ।<sup>१</sup> इस पृष्ठ-भूमि में ही हम फिरोजा के चरित्र की उद्भावना को ठीक से समझ सकेंगे ।

पद्यनाम ने लक्ष्मीन भोक्तृप्रिय स्तुत यथा जीपाई हुआ, सबीया आदि का प्रयोग किया है। बीच में पाँच मातृकता से लभालभ येम पीलों का भी सुजन किया है। दो स्तम्भ पर गद्य का भी प्रयोग हुआ है। समग्रतः कहा जा सकता है कि कविता समिष्मति इतिहास, भाषा सभी दृष्टि से 'कागजदे प्रबन्ध' एक महत्त्वपूर्ण कृति है और पद्यनाम राजस्थानी के श्रेष्ठ कवियों में से एक।

(४) शिवदास अचलदास बीबीरी बचनिका<sup>१</sup>

यह सुकल्ल गद्य पद्य मिश्रित रचना है जिसमें सोहा, सोरठा अल्प और कुंडलिया स्तम्भों का प्रयोग हुआ है। गद्यसमुच्चय और स्तम्भों की कुल संख्या १२० है। इसके रचयिता चारण शिवदास हैं। ये गाऊन साखा के चारण हैं।

इसमें मांडू के बाबसाह होसंयपौरी और नायरीमगढ़ के राजा अचलदास बीबी हैं। मुंड तथा राजपूत स्थानों के बीहूर का अत्यन्त सफल विजय किया गया है। डेसिहरी इसे मुंड की समकालीन रचना मानते हैं। बिजलीपुर राज्य की स्वातंत्र्य के अनुसार इस मुंड का समय १४८२ वि० है।<sup>२</sup> किन्तु रेड्डी इस मुंड की १४६० के लगभग मानते हैं।<sup>३</sup>

लोक प्रचलित बात बीबी में रचना का प्रारम्भ सरस्वती बंदना में हुआ है। शब्दों की अधिक छोड़ मरोड़ नहीं है और नहीं अन्यायक अनुसार बहुलता तथा श्लेषवर्णों का प्रयोग है। बीररस की प्रमुक्तता है। कवि ने दोनों पक्षों का ज्ञान बैठे हुए मुठमेड़ का रोचक वर्णन किया है। मुंड की मर्यादता ने अचलदास के मार्ग अवलंब कर दिये।

मुंड में विजय की बाधा न देखकर बाबक राजकुमार पाण्डवली को बंदरसा निर्मित किले से बाहर अन्धध मेजने की बाजना हुई। बाबर बीरांवालों ने बीहूर की सैना की और उधर राजकुमार ने सवा के सिधे सखसे विद्या की। घरे हुयम से संसार का ऊँचनीच उसको समझाया गया। बड़ा कबज बुद्ध उपस्थित हो गया—

पाण्डवली बला भला लोका का कहुआ करना बार सायल्या मांडू पुंति बंकरमान बीबी। बिजह बंन बगड़ी की माई सकल ही प्रियवी प्रतिपिग्यो यो गढ बीबस। इमारत बहर सुरिठांन गोरी राजा सख बीबवो।

पाण्डवली पुत्रबिहि रह्यो भनि संयह्या सरणि।

ठिगि बेला हीया भरी राइ राइ रोबल लनि।

अब बीहूर के सिधे पाबक सैयार की गई। प्रत्येक सामाजी ब्याका में एक के बाद एक 'सिब' 'सिब' 'हरि' 'हरि' क्यूटी हुई क्यूने कपी। प्रत्येक को बस मरने की बन्नी बी—

१—अनूप सस्तुठ नायदेरी—अंति संख्या ११

२—राजस्थान भारती—भाग १—पृष्ठ १—पृ० ५४

३—रेड्डी पाण्डुकुटी का इतिहास—भाग १—पृ० १४६

बीरबिबी बहूबाणि बज हर की मांडर पुगति ।  
 हब हुरहरी हर पुर दिसा बेगा बेगि बिहानि ॥  
 ब्योमोहो बर बीर, परि परि सत है धनर ।  
 माया राहु हरि आपरह, समहरि अचल लधीर ।  
 बैसा तिनि बसुहाणि, पबहुरी धूवा पवद ।  
 लभो अतेवर कठिरी, अंग हूँ जानै जाणि ॥  
 ठै चामी ठिनि ठाहि, आहसि अचलैवर लरी ।  
 कसि बयनी सिब सिब करे, पइछै पावक माहि ॥  
 छुटि न जाई छेहि माहे बजहर मेछरी ।  
 बार बार बडे सतावनी पटरांनी पावेहि ॥  
 वरहर बालनहार अनह अनह ताहु कचरै ।  
 हरि हरि हरि होइ रहो बिछन बिछन तिनि बार ॥

इधर, लसकारें किए, अचलवास छवि, सब मोछा पड़ हैं निकल कर प्रानु  
 सेना पर दूट पड़े और कन्हनि हंसते हंसते प्राण की जाहति की । बँतार में उनका  
 नाम अचल हो गया—

सातम सोम हमीर कन्हनिम कोहर बालिप  
 बक्रिय देति बहूबाणि जाणि कलवठ लबालिब  
 मुयस बिहुर सिर मंडि मणि कंठि तुनली कासी  
 भोवाउठि घुब बसहि कठिहि करिमार कालासी  
 बड बंडि पडली कामुरणि, रिड बीये कुरिछाण दस  
 सतारि नाब काठम सरणि अचल बैबि बीबा अचल ॥

(५) बीदू लूबा: राव जीतसीरो बाबड़ी जन्म

इनमें बीकानेर के राव जीतसी के पूर्वजों के—राव लूबा से लेकर राव  
 जूलकरन के पराक्रमों तथा जीतसी की हुमायूँ के भाई कामरों पर विजय प्राप्ति के  
 वृत्तपद्यही वर्णन हैं । बीता कि नाम से विदित होता है, काव्य नुस्यतया बाबड़ी छंद  
 में ॥ सिद्धा गया है । प्रयोग में आने वाले अन्य छंद हैं—बाहा बोहा और कलस'  
 सब मिलाकर ४०१ छंदों में काव्य समाप्त हुआ है । इनकी रचना संवत् १२९१  
 और १३९८ के बीच किसी समय हुई थी ।

यह काव्य अपनी रचना के लगभग १० साल बाद संवत् १६२९ में निविष्ट  
 किया गया था जब उस समय की आपा का स्वरूप इसमें है वही नहीं बिदेही आक्रम-  
 मकरियों के प्रति राजपूतों की मनोवृत्ति का सुदूर चित्रण इसमें मिलता है । एक  
 और बिदेहिबा की मदान्यता तथा विजयलिप्ता और दूसरी ओर, स्वदेश प्रेम का  
 भाग तथा आधिक्य और की भावनाओं से ओत प्रीत राजपूतों का उनसे जुगता  
 काव्य का प्रभाव विषय है । जोन बटनारों में राव के पूर्वजों के विभिन्न कारणों से  
 गये राजपूत नरेशों और मुसलमानों से हुए कुछ प्रभाव हैं । उस समय युद्धों के

१-हीरासात माहुरकी राजस्थानी साहित्य—पृ० ८६-८७

२-देहिदरी घाट भरतसी राज ध्वज

कारण कुछ इसी प्रकार के हुआ करते थे । अतः सामूहिक रूप से सरकारीन युष्मत्पापी सामरिक मनोवृत्ति के विनाश एवं बढता क्रम के स्पष्टीकरण के लिए, इस काव्य को एक प्रतिनिधि रचना कहा जा सकता है । यह काव्य वर्णनप्रधान और वीररस से परिपूर्ण है । युद्ध और उसके सम्बन्धित प्रायः प्रत्येक छोटी से छोटी वस्तु का वर्णनकवि की वैनीवृत्ति का परिचायक है । भाषा में भाव एवं स्वाभाविक प्रवाह है । यथावसर यह प्रवाह तुङ्गान की सी तेजी धारण कर लेता है । धीमी में सारथी किन्तु प्रभा होताकर शक्ति है । काव्य को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है । पहले में राम जूना से लेकर बैतली के पिता राम जूनकरन तक के वचन और दूसरे में मुगलों के राजा राम बैतली के युद्धों के वर्णन सम्मिलित हैं ।

राम बैतली में पूर्वजों की परम्परा का वर्णन करते हुए कवि बैतली और कामरान के बीच हुए युद्ध पर जा जाता है । यहाँ वह अमर कर निकलना शुरू करता है । युद्ध में कितने सरकार कौन कौन से वर्षों पर बड़े इमकी विस्तृत सूची दी गई है ।<sup>१</sup> अस्त्रसम्पन्न छि सैठ होकर सर्व राशि की उम्मीने हुन पति से मुाम मेना पर छापा मारा । राशि की निस्सम्पत्ता मंग करते हुए 'अयरात कहकर ने रिल वड़े, मानों हाथियों के मुण्ड पर कुछ सिद्ध झपट पड़ा हो । 'महुम्पद' 'महुम्पद' कहते हुए मुगलों ने भी हथियार संभाले । जनबौर मुद्ध हुआ । राजपूतों ने प्रथम मचा दी और मुगल सेना भीहार की ओर जान लगी । बैतली की विजय हुई । राम ने जिस तरह सीता को छुड़ाया था उसी तरह बैतली ने अपनी मकदम को—

जुवाहर सीमी सेन कोइ हरनै बलि हुई होइ होइ ।

मुहुमव गीब जपिय मुहाइ सेग वहि छठिया मीर ताइ ॥३७३॥

छात्रिय जंमोय जंमोय तुंग, बाभाडलि छठिय कोइ बूंग ।

बाइ राम जपिय होइ बनेहि बाटिया तांग मोडा बनेहि ॥३७४॥

राठजकि रोमि रेवंत रब विस्तुन बांलि संकसी बब ।

पठिसाइ सेग हुबतइ पगेहि माभै बसि बाड़िय मारने हि ॥३७५॥

साफरौ कहत बाहुइ सज्जन बासवे बांलि बने बिलग ।

ऊठरा सेनि जहतत बबीइ, सीबरे पईठत बांलि सीइ ॥३७६॥

भइ ॥३७७॥ कोल जूयई बरठि, पठिनालपि बरठइ बौडपठि ।

बीकाहर राजा ईद बनि साफरौ छिरे छिबिया बरठि ॥३७८॥

रजबतई कंठ बांठे निबंठ छात्रियां तुंड पठिया प्रबंध ।

सी मणी मोधि बाहुक सीत बैवता राज पाहुइ बईत ॥३७९॥

युद्ध के वृत्त का विचारमक वर्णन पाठक की कल्पना में साकार उपस्थित हो जाता है । यह रजमेरी का तुमुन निगाह मुगलों के मुहुम्पद और राजपूतों के राम की

अपकार, योद्धावर्धों का पावर भूमी की शक्ति कटना और रख से परिपूर्ण रमभूमि पर मुठिन मुठों और कवियों को प्रत्यक्ष देखने सपता है। कवि के प्रस्तुत वर्णन की समीक्षा स्वाभाविकता विनोदमत्ता और कदाचित्ता की मिलनी ही प्रशंसा की जाय, कोडी है और इससे भी अधिक बलाध्य राय धीरसी को अपरारण प्रदान करने वाली यह विषय है जिसकी इति उसके रमकीयता तथा तारकानिक युद्धनीति के परिज्ञान से है।

प्रस्तुत कृति में कवि द्वारा वी नहीं बंध परम्परा को देखकर डा० अवधीय भीरास्तन कह उठते हैं<sup>१</sup>—रचना के आसव तथा कसेवर एवं कथानक के लिए यह अतिरिक्त सामग्री अनुपयुक्त है अतिरिक्त तथा सारवधिक है और प्रत्यक्ष अंतर्गत भी। यदि इस अतिरिक्त सामग्री को प्रथ की सुविधा या पीठिका स्वीकार किया जाय तो भी यह प्रथ के लिए अति विस्तृत तथा अनोमनीय भी है। सामय विज्ञान सैद्धांतिक विषय भारत काव्यों की परम्परा की समझा नहीं है। विगत के प्राय सभी काव्यों में आत्मव्यथा की अपारम्परा देने का रिवाज रहा है। करबीवान ने तो सूरज प्रकाश में अपने आत्मव्यथा के बंध डा प्रारम्भ कहा से किया है।<sup>२</sup> मचुरी नामकारी से ऐसी ही आत्मियों का जग्य होता है। अस्तु।

#### (६) मीरू माता मूनमा महाराज अपरिपरीरा

यह लगभग १०० पंक्तियों की छोटी की रचना है। कवि सर्व प्रथम राय सिंह की के पूर्वार्थों—राय बीडा से लेकर नरवानस के पराक्रमों का सजिष्ठ वर्णन करके रायसिंह की का वर्णन प्रारम्भ करता है। टर्नसिंह की से सम्बंधित दो मुख्य घटनाओं का कवि ने वर्णन दिया है। एक उनकी उनक और लोपा पर कहाई और विजय तथा दूसरी मुजरात विजय। अकबर की सहायता के लिए मुजरात पर क्रिये आक्रमण का विवर देखिये—

दूरीई भारत मंडीयी मुजरात नटके  
नाद नकरी नहुनई नवान नहुके  
अनीयी ऊमा ऊमरे अरहा उनके  
अपकर पाकर अपत तर मय बावक बके  
आना मीर बहादरा से अद्विषा अके  
पैठा पीठ निनीठ अव पन कव कटके  
विष मैनानुर घरीया तिर बरख नटके  
गुह भुज मारत सेनीया दक्ष आगु नटके।

१-अवधीय भीरास्तन-विषय साहित्य—पृ० ११४।

२-विरचित नामकारी देखिये—अध्याय बीडा।

१-अति० म० बी० १५ ११रायन एगिवाटिह भीतापटी, कटकता

(७) पृथ्वीराज राठीक बैलि किसन बकमजीरी ॥१

पृथ्वीराज कीकानेर गरीश रायसिंह के अनुग्रह से और जाने बड़े माई की राज नीतिक भारश्रवणा के कारण अकबर के बहाँ रहते थे । इनका जन्म मार्गशीर्ष कृष्ण एकादश १९ १ में बीकानेर में ही हुआ । तरकारीन राजपूनों की धानि ही इनका सामन पालन हुआ । बड़े होकर जिन उच्च पुणों के भण्डार से बने ऐसे डिगने ही राजपुत्र हुए हैं । पीपल के निम्न डिगन ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं—(१) बेनिबिन्धन बकमजीरी (२) बसम भागवत रा बूझा (३) गंगासहूरी (४) बसदेराबठठ (५) बसरपराबठठ (६) फूटकर पव-बीठादि ।

इनका सर्वश्रेष्ठ काव्य ग्रन्थ 'बेनि' है । नामावाच से मल्लमाण में इनकी मज्जा कर<sup>३</sup> बुरसा बाढ़ा ने 'बैनी' को पाँचवाँ पैर मान<sup>४</sup> और बनधुति से इनकी मृत्यु के समय सफेद कोरे के आपस की कपा गड़<sup>५</sup> उन्हें मल्ल बना दिया है और बेनि को भक्ति काव्य का कन दे दिया है । किन्तु उन्होंने स्वयं उसे नायिका<sup>६</sup> की प्राक्निष्ठता देकर भू नार काव्य-बोधित किया है<sup>७</sup> और बसवि नखसिख संयोग यु गार, पदभक्तु बर्जन पर पूरा ध्यान दिया है । बूसरी और बकमजी हरण व सिधुनाम बसम बसराम व कृष्ण के मुँह का बर्जन कर उसे बीर काव्य बना दिया है । भक्ति बीछा और भू नार की ऐसी मिश्रणी मजा कहाँ मिलेगी ? डा० टैसिटरी ने बेनि की प्रशंसा में लिखा है, यह काव्यकला की श्रद्धा का निरालम नमूना है जिसमें आपरा के ताजमहल की तरह, यात्र की एकाग्र सहजता के साथ अनेकानेक

- १ (ब) बटोसम स्वामी-किसन बकमजीरी बैलि
- (ब) टैसिटरी बोल किसन बकमजीरी
- (स) ठाकुर पारीक बैलि किसन बकमजीरी
- (द) जानम्य प्रसाद बीछित बैलि किसन बकमजीरी

- २ समया पीछ समोक बैलि होहा नुन नब रस ।  
विपल काव्य प्रमाण विविध विधि नायो हरिबस ॥  
परिबुद्ध विबुद्ध सलाह्य बचन रचना नु उचारे ।  
बर्न विविध भिमोल सबै सागर सहमारे ॥  
बकमणि मठा बरचन अनुप नागीसबहन कप्रमाण मुख ।  
गर-देव बर्न-बाळा निपुन पृथ्वीराज कवि-राज हुन ॥

- ३ बकमणि गुण सखन रूप पुन रचन  
बैलि ताछ नुन करह बसाय ?  
पाँचमठ बैह याक्षियठ पीपल,  
पुनियठ उमनीसमठ पुराण ॥

- ४ जानम्य प्रसाद बीछित बैलि किसन बकमजीरी—भूमिका—पृ० १७

- ५ मुकदेव व्यास बीदेव सारिता मुकवि अनेक है एक सत्य ।  
जी बरपण पहिलो कोरी तिथी, नू बिदे बैलि सिनार ग्रन्थ ॥

वाध्य मृग विस्तार का सुशर संविधान हुआ है और जिसमें रक्त और मांस का तर्पणरूप तोरये तथा वाध्य के बाह्य आवरण की निर्वर्णक गुणता को जगज्जमान का मे प्रशंसित किया गया है<sup>१</sup> । यह विषय का भेद नम 'व्येयिक' है । राजस्थान के प्राचीन युद्धकालमें और जैन अहारी में शावर कोई किया है । अर्थात् इनकी ही चार प्रतिमा न मिली । इसी वाध्य ग्रन्थ का मरहट्ट में टीका लिखी जाने का लोभान्न मिला । राजस्थान की विभिन्न बीलियों में भी इनकी टीकायें मिली गई हैं ।

‘दत्तम आगच्छत रा दृष्ट्वा तावत्त एव की कृष्ण मतिः को आचारः कदा जितो  
 दृष्टि रचना है। मंगा लहरी से आधीरबी की रगुति से क० के लनमन राहें रच बसे  
 हैं। हठारण रावठउ और बनदेव राठान कापों में जमल राय मति न कृष्ण  
 मति के बोहे हैं। इनके अतिरिक्त पीपल रचित अनेक बीररत्नरसक कूटकर भी  
 बोहे न कविता की रात्रापान के प्रचलित हैं। ये रचनाएँ युग लोच्य हैं और तरापीन  
 मुमल आर्तक के भीक कराहती मानवता की अभिप्रायि है। इनमें अमाचारण जन  
 प्रबंध प्रवाह और प्रगर तेजस्विता है। इनो युग को रंग कर ही तो डा० टी०टी०  
 ने उन्हें हिमल का होरेल बहा और टाड जैसे इतिहासकार को उनको कविता में  
 दल सहस्र पोडों का बल रबीकार करने में वर्ष अनुभव हुआ। वहना न होगा,  
 पीपल हिमल के सर्वभेष्य कवियों में से एक है।

बर्मन टाउ ने इनके सम्मुख ने लिया है—पृथ्वीराज अपने समय के शत्रुओं में एक अष्ट बीर के और पश्चिमीय द्यूद्धर राजपूतों की जाति अपनी ओरस्थिनी नबिता के द्वारा मानव दुष्ट को हर्षु और प्रोत्साहित कर सकते थे तथा आवश्यकता पड़ने पर हाथ में तलवार लेकर स्वयं लड़ भी सकते थे। इतना ही नहीं राजस्थान के कवि समुदाय ने एक स्वर से काव्य सुकोशर्व का सेहरा भी इन्हीं बीर राठोड़ के सिर पर बांधा था। यह निश्चित है कि वीर्यम् निपुण योद्धा और निपुण कवि दोनों थे।

ऐति कथा को मोटे रूप से पूर्वाह्न और उत्तराह्न दो भागों में बांटा जा सकता है । पूर्वाह्न में कृष्ण द्वारा दशिमयी हरण की कथा का विविध प्रसंगों सहित वर्णन है । इसमें प्रारम्भ से लेकर कृष्ण दशिमयी के विवाहोपरान्त मिलन और प्रभाव वर्णन, छन्द संख्या १८६ तक का भाग सम्मिलित है । उत्तराह्न पद्यों का वर्णन के बचवाद् शुंगाररस धर्म धर्म लौकिक धरातल छोड़ना बलवत्ता है और अन्त में भक्ति में पर्यवसित हो जाता है । कवि की आत्मव्यथा या मनो इस दिव्य प्रेम और भक्ति की बोधना है । कलाकृति को देखते हुये कवि की आत्मव्यथा को डा० टैल्लरी ने भी स्वाभाविक ही बताया है ।

१. टिपिटरी केसि-जसेवी प्रथिका-पृ० ३

२ टाड एनस एण्ड एष्टिविटीज् आफ राजस्थान—एनस आफ मेवाड़—  
स्यारहवां अध्याय ।

१ मोठीसाळ भेजारिजा राजस्थानी भाषा बीर साहित्य—पृ० १३१

भाषामुक्त भाव सोम्यं मुक्त राक्षस्यम और प्रसंगानुक्त भाषा के लोच ने वेति की रमणीयता में चार चाँद लगा दिये हैं । उदाहरणार्थ निम्नलिखित सूत्र देखे जा सकते हैं —

बलकलिया मुक्त किरण कसि ऊकसि,  
बरजित बिदिल बिबिरजित बाज ।  
बड़ि बड़ि बरकि बार बाक जस  
सिहरि सिहरि समझै सिघाउ ॥११९॥

कासी करि काँठसि ऊजल कोरन  
घारे भावम बरजुरिया ।  
गभि बाभिया दिसो बिधि बलप्रम  
वंनि न बिरहिय नयन पिया ॥१२३॥

बरसठै बड़ि नड़ि बतड़ बाजिया  
सबज बाजिया गुहिर सधि ।  
बलनिधि ही सामाह नही  
बल बल बाधा न समाई बलधि ॥१२६॥

कलापल और भावनापल के सामंभस्य चम्पारनक राज्यों के प्रयोग, भाषा के साहित्य एवं महत् प्रभाव, रसानुक्त भावोत्प्रेषण के यथावसर प्रकटीकरण और इन सबके उचित सम्मिलन के कारण वेति एक जलजत प्रीति कलाकृति हो गई है ।

### (८) भाषावाच बहिर्बाह्या रामरासो<sup>१</sup>

ये चू डाही बहिर्बाह्या के पुत्र थे । इनका जन्म मेरठा परगने के बलूदा गाँव में संवत् १६१-१६१३ के आषाढ हुआ था । कहा जाता है कि वे जोधपुर के महाराजा सूरसिंह जी के आश्रित थे ।<sup>२</sup> अभी तक इनके तीन ग्रंथों का उल्लेख मिला है—(१) रामरासो (२) भाषा पदमस्तंभ तथा (३) पद्ममोक्ष या गुप्त पद्ममोक्ष ।

रामरासो में बोलचाल की राजस्थानी और साहित्यिक-द्विपल का मिश्रण है । वैद्य—सगाई का पावन यथासंभव किया गया है । इसमें राम जन्म से लेकर रावण की मृत्यु के उपरान्त अयोध्या में राम के राज्यारोहण होने तक सम्पूर्ण रामकथा का वर्णन है । कवि का उद्देश्य सीधे साने ढंग से राम की केवल राम की कथा कहना है । अतः उसने किसी प्रकार के अनावश्यक या हठर विस्तार में न जाकर मूल कथामुख पर ही अपना ध्यान रखा है । प्रसंगवश कुछ मोटी-मोटी जग्य घटनाओं का भी उल्लेख हुआ है जो रामचरित के साथ अनिश्चित रूप से जुड़ी हुई हैं । यह भीररस का उत्कृष्ट कोटि का वर्णन प्रमाण महाकाव्य है । विविध घटनाओं और वर्णनों के संयोग

१ सामभाई बलपतभाई संस्कृति मन्दिर, जहमशाबाद की प्रति

२ हीराबाद माहेस्वरी राजस्थानी साहित्य पृ० १६६



ऐ कथा बड़े रंग से रंगव्य एवाम तक चलती है। प्रारम्भ से लेकर राम से समुद्र पार उत्तरमे तक के विविध बीररस के प्रसंगों के अतिरिक्त अथ के रावण की समा से मोट जाने के प्रसंग से लेकर रावण की मृत्यु तक, लगभग ३३० छन्दों में बीररस से परिपूर्ण युद्ध का ही वर्णन हुआ है। यह अत्यन्त सजीव बन पड़ा है। अन्य रसों की भी प्रसंगवत्त यत्र तत्र शक्तियाँ देखने को मिलती हैं। किन्तु प्रधान रस बीर ही है। मुख्य कथा से विषयांतर कहीं भी नहीं हुआ है और नहीं इधर उधर की घुर प्रसंगों की कथाएँ कवि ने भी हैं। विषयांतर अथवा घुर प्रसंगों के वर्णन उतने ही हुए हैं जो या तो मुख्य कथा में आवश्यक हैं अथवा समझी पति आये बढ़ाते हैं। नक्का-मोटा के जोड़े अथवा कथा के सगों या काणों में विभाजन के कोई प्रसंग नहीं है। स्वयं कवि ही कथा कहता है।<sup>१</sup>

महमग के सक्ति लगे पर राम के युद्ध का वृष्य देखिए—

बूझो बरा छेस बड़हाडीयी, पडती संख्या लपमच पडियो।  
बडी बाँक एक उरिबाहे, मोहडि बजु कबमन सो बाह्य।  
हुँ लायो पग माँडि थीर ह्व बैषिबि कर म्हाारा कर बावब।  
रामन बाब राम छेरे रन रावब बाहे छेरे रामच।

मजमोज़ गिलाबी छन्द में रचित सचुद्धि है जिसकी कथा का मूल भाषा भाषवत है। सरोवर में पानी पीते समय गज को घाहू ने पकड़ लिया। मार्त नज की प्रार्थना पर मजमान जाकर घाहू को मारते हैं और नज का उद्धार करते हैं।

कथा के आरम्भ में कवि ने पहाड़ बंगल और सरोवर का सुन्दर चित्रण किया है। इसकी हस्तलिखित प्रतियों में पाठ-भेद मिलते हैं। छन्द संख्या भी कहीं ८० और कहीं ९८ पाई जाती है। सीधी-सादी प्रवाहपूर्ण भाषा में बड़े रोचक ढंग से कवि ने मजमोज़ की कथा का वर्णन किया है। कुछ उदाहरण देखिए—

मंडे लंडक झंड झंड निर और मस्हारा  
पापर भापर बनसपटी वीहरी बूह पारा  
तेन सरवर बंन अतरै बसे गर्ब बडासा  
सोबंग नील कपोल नील बुनर डीचासा  
बाज करेता राज-मत्त बंजम निज बाया  
बारन बरंग विरोल से जम घाहू बगवा  
घाहू राहू ग्यारे गहे (५) ट हनी पाया  
ऊमे शीप भवसेप कुल बलबंत बंजाया  
पुत कमल परवार पूँडि पय बवा पराया  
पु निम दूतीब बंद जमु बटीबा मज राया

+

+

+

## (९) साया बी झूला नामवमन ।<sup>१</sup>

सायाबी झूला ईदर राज्य के सीलछा याँ के भिवासी चारन स्वामि बाब के द्वितीय पुत्र थे । इनका जन्म सं० १६३२ में और देहाव सं० १७०३ में हुआ था । ईदर नरेश राम कल्याणमल इनके आभयदाता थे जिन्होंने इनको एक लाख पचास और कृदाबा नामक एक याँ प्रदान किया था ।

सायाबी भयवान बी कृष्ण के जनम्य भक्त थे । इनकी कविता कृष्णभक्ति से ओतप्रोत है । भाषा इनकी द्विगल है जिस पर मुखराती का भी बोझ सा रंग मया हुआ है जो स्वाभाविक है । क्योंकि वे काठियावाड़ी थे । इनके दो ग्रंथ उपलब्ध हैं, बहिनबी हरम और नामवमन ।<sup>२</sup>

नामवमन में कानिय बर्नन की कथा कही गई है । उसमें ४ बोहे ११४ मुखमप्रकाश और १ छप्पय सब मिला कर १२९ छन्द हैं । नामवमन का विषय महत्त्व उसके बर्ननों और संभावों के कारण है । ये बहुत ही पुष्ट और सजीव बन पड़े हैं । बर्नन ऐसे हैं कि जिनसे सारा का सारा बुझ अपने बस पास क बातावरण के साथ साकार हो जाता है । इसी प्रकार संभावों में विरोधतया नायबी और कृष्ण के संशर्दों में माधुर्य वास्तव्य आश्चर्य भव उरसाहू आदि भावों का एक साथ सुन्दर धामंजस्व मिलता है । वे कड़े फटते हुए और उपमुक्त हैं । संलग्न बर्नन और सुन्दर संवाद एक दूसरे से पुनकर पाठक की और विज्ञासा बढ़ाते रहते हैं । अन्त में जब बी कृष्ण नाय को नाय कर अनुना के अन्तर जाते हैं तो हर्ष और भक्ति से सारा बातावरण रस लिम्ब हो जाता है । बर्नन दो प्रकार के पाए जाते हैं—बुरय बर्नन और कपबर्नन । इनके प्रसंग निम्नलिखित हैं—

१—आत-कास पायों को छेकर बन जाना

२—बी कृष्ण की कपमाधुरी

३—कानिय नाय का बल बीनब तथा कृष्ण की सुकुमारता और निरस्त्वता

४—कानिय नाय का जागना तथा उसकी भयंकरता

५—नाय मुँह—उसके कपों पर बी कृष्ण का मृत्य आदि ।

कृष्ण के सुकुमार और नाय के भयंकर रूप बर्नन की पुष्टभूमि पर नाय का नाया जाना एक अलौकिक वक्ष्य उपस्थित करना है । एक बुरय देखिए कानिय नाय मूढ़ हो फल उठाने बीडा । उसकी पूरकार से अब रे उठने लगे रोपनाग का ओज बट बमा और बरती डोल छडी ।<sup>३</sup>

१ चारन हमीरवाम द्वारा पामनपुर से प्रकाशित ।

२ मोटीसाध मैनारिया राजस्थानी भाषा और साहित्य पु० १३२

३ भवेरचन्द मैनाजी चारनो बने चारनी साहित्य—पृ० ३३

मये मूढ मारा सरे जोन शारा,  
 काशारा बजारा करे फूसकरा ॥१०३॥  
 ठडाडे गस फेंसारा भेंगरा,  
 भन्नारा शगारा सभे कीच मारा ॥१०४॥  
 भुमोरा धसारा सहे छाम सारा  
 मडडावा गमारा मडी गुठपारा ॥  
 मये भोज पारा भसो शेष मारा,  
 बृबंटी धराय बरबके रंमारा ॥१०५॥

अन्त में कवि ने अपने काव्य और कृष्ण की इस सीमा का वर्णन यों किया है ।

सरो पणै समबाव, नंद नंदन अहिनापी  
 समर्र पार संसार होय गोपद अनुहारी  
 अमल अनल आनन्द सबै बपु ठास पुहावे  
 मयल मुनल भंडार कल मुपठाव कह्वावे  
 रबिमयी करिअ राबारमण सो मज कन कानी बसव ।  
 वैठवण सुजय महारा सजा मटण काज आवा गमण ॥

रविमयी हरण में श्री कृष्ण रविमयी के विवाह का वर्णन है । यह एक और रस पूर्ण वर्णनात्मक काव्य है जैसा कि प्रारंभ के बोधों में कहा गया है—

हुँ पायेस अपमन हरण मंगलाप्पार सुकंद ।  
 कुल आदर पूरण कला, प्रपटे परम अर्चन ॥

गीत रूप से बीमरस रस का वर्णन भी मिलता है । इसमें रसानुकूल शब्द योजना और विषयव वर्णन स्वान-स्वान पर पाये जाते हैं । गायबमण की प्राति 'हरण' में भी संवाद और विविध वर्णनों के प्रसंग प्रमुख हैं । रविमयी के विवाह के विषय की लेकर, संवाद का प्रसंग राजा जीमक और खमी के बीच प्रारंभ के समय १० छन्दों तक चलता है ।

- १-धिशुपाल के कुम्भनपुर आते समय विविध सकृन्ती का होना
- २-अनंदन के द्वारका से रवाना होते समय उनकी मुठ की टीपारी
- ३-रविमयी हरण पर मुठ तथा
- ४-विवाहोत्सव पर द्वारका नगरी की सजावट ।

रविमयी जब अन्धिका पूजनार्थ जाती है तो कृष्ण उसे अपने रस में बिठा लेते हैं । साथ में रसान्धे आई सेना ने यह देखा कीरन रणतूर्य बज उठे । दोनों पक्षों में मुठ प्रारंभ हो गया । काव्य का सर्वोत्तम प्रसंग इस मुठ वर्णन का है । कवि ने पहले से ही हमकी पृष्ठभूमि तयार कर रखी है । मुठ का बहुत ही सापेक्षान वर्णन कवि ने दिया है । हुँकार और जयघार मना की बटा, घस्त्रस्त्र उनके चसने की आवाज, दिवस में रात्रि का सा अन्धकार हावियों की सुहों और सैनिकों का बट

कर पिरना, उसबारों की भिड़स्त संघ, सांझ जाहि का धोय, राजुओं की मुरमु आदि के सभीष वर्णन मारमय शब्दों में अंकित किये गये हैं। उदाहरण के लिए निम्नलिखित छन्द देखे जा सकते हैं—

भेटटी बंदका हुयी मन भावियो अत रथ वेड़ मे महे मोहैय भावियो ।  
हुनहुनी बस बैसाइयो देवियो, ऐक्यो सेन पय नय जोधवियो ।।  
छनपटी बड़ बड़ा कलण नै छै तरन, हावियो जुगत सु करे बचमय हरन ।  
संपनन पूरिया संपरी नाब सुन, मयो बीकार तै बार नेशी भवभ ।।  
बर हर बंदरे रात बाबन भुरे रैरम हिरस रैरन पापरै ।  
पूह मूळ भसी रोत बाबन बड़े बड़े सिधपास जगुरन फीच बड़े ।।  
ऊनही बावना रजमबर बरै, बंध कोरन बाराह बड़ कड़कड़े ।।  
बारवे पारवे सारवे बंदये हावियो बंध परबत पंथ हुये ।  
मंसल बंधस मेन बहेठा मयी सूर सुखे न को सूर रथ स्वारथी ।  
एतरे बंदयी भाविया ऊनरे, पूरि संपरा नाब पाटी बरै ।  
बूबरे बार जोबार बार बस सुडाके टापड़े साब बपुसज ।  
मजमोटी बुरासिब बाई मरा, बंधव्यो बामथी बीज कीबी बुवा ।  
भाविया बार बापय बीराविये, रोहिया बंध बाराह पारविये ।  
नाब नीसांन सैहनाइया, सांसुसे सिधुयो नाब से रईवा ।

श्रीवन्दी साकनी डाकिनी बंधिका, कालिका भूत, बैठास, बेचर, सुचर आदि की उपस्थिति से युद्ध की भर्त्सकता का पता चलता है। इसी स्वभाव पर बीभत्स रस की झलक भी दिखाई देती है। बीररस मानो अपनी पूर्णता पर हो—

पलचरा बेचरा सुचरा पंथनी गहकिया भूतका प्रेतका श्रीवन्दी ।  
बीर बेठासु बैगासु नै पोहनी, भाविया बंधने बाप बापे बन्धी ।  
बंदका ऊसका बासुपा जोपनी बंदका कासका मैनका जोमनी ।  
साकनी डाकनी ऊमनी संपनी, काब मैनक हूपमंत नै कसवन्दी ।  
हुई बस बड़बड़ी बाकड़ी मागिये, बाबदुयो बाबवा तास पुड़ भागिये ।  
बंसन नीच करसीसा बाबा साहब पय भर जोमनी रस सापी पिमन ।  
बाक बहमाक हुकार नथ जाने जूरी जुने मड़े मानन बड़न ।

इस प्रकार युद्ध का वर्णन कवि ने खूब कम कर दिया है उसकी नृत्ति उड़ी में रही है।

#### (१०) रतनू बीरमान राजकपकः

मारवाड़ नरेश अलवरसिंह के आश्रित कवि बीरमान रतनू शाखा का चारन या और बड़ोई ग्राम का निवासी था। संवत् १७४५ में जयपुर से निकल कर यह स्थाभिमानी

कवि ४७ वर्ष की आयु पाकर स्वर्गवासी हो गया । राजदरबारी कवियों पर महाराज सदा सज्जित रहते हैं कि वे अपने आशयवाचकों के संकेत के अनुसार कविता करते हैं । अतः वहने पर स्वरचित कविता का बदल भी देखे हैं । बोरमान एक अपभ्रंश जान सकता है ।

देहली के बादशाह महमूदग़ाह ने अपने मुबारक के मुखेश्वर तारबिस्तग़ा के अभिनय से नाराज होकर मुबारक का गुना महाराजा अमरसिंह को दिया । महाराज ससैन्य अहमदाबाद गये । तारबिस्तग़ा से गुन जमकर युद्ध हुआ और जयपी ने राठीयों को ही परमाण्य पहिनाई । इन युद्ध में महाराजा के साथ अनेक चारण थे, उनमें से दो मुख्य थे—कविता करमीशान और रतन बीरमान । इन दोनों कवियों ने महमूदग़ाह के युद्ध का आँधी देखा हुआ दिया । करमीशान का संघ 'सूरज प्रकाश' और बीरमान का संघ 'राजकणक' कहलाया । अपने अपने संघों की समर्थि के साथ दोनों कवियों ने महाराजा को अपने संघ सुनाने चाहे । अन्त में शाहजहाँ राजनैतिक उद्यम पुनर्गठन का युव हर समय युद्ध को सदा हुआ लटका कभी यहाँ तो कभी वहाँ ऐसे समय में महाराजा को कविता सुनने का अवकाश नहीं ? दुश्मनों के बंदर में कायस्थतास्वाधिन के उपयुक्त मन स्थिति कहाँ से आये ? महाराजा ने दोनों कवियों से उनके संघों का परिमाण पूछा । जानकारी मिलने पर उन्होंने ऐसे विचार काय संघों को सुनने में अपनी असमर्थता प्रकट की और कवियों से कहा—'यदि आप अपने संघों का सार सुनाना चाहें तो मैं सुनने को तैयार हूँ । कवि करमीशान ने अपने संघ 'सूरज प्रकाश' का सार बिह्वल-संघर्ष' के रूप में कर सुनाया और फलस्वरूप अपार सम्मान विपुल ऐश्वर्य और कीर्ति का अधिकारी हुआ । महाराजा ने उसे ज़ारी, साख पसाव और अमृतपूर्ण सम्मान दिया । किन्तु जब कवि बीरमान भी ज़ारी लाई तो उसने ज़माना पूर्वक कहा 'अन्तर्गत । यह काम मुझसे नहीं होना । मैंने अपने रूप में फलपु की एक भी बात नहीं लिखी । अब उसमें काँट छोट कैसे करूँ ? अपनी कविता की यह निर्णय दृष्टा में स्वयं कराना न कर सकूँगा । क्या नहीं गागर में सागर भरना जा सकता है ? मुझे क्षमा किया जाय ।

महाराजा बीरमान की रचना 'राजकणक' नहीं सुन लेंगे । और कवि पुरस्कारादि से वंचित हो रहे गया ।

बीरमान ने 'राज कणक' को एक काव्य-रस बनाया, किन्तु उसे बनाते वह इतिहास लिख गया । इतिहास की भूमि पर लटक्य वैज्ञानिक दृष्टिकोण के रस से लिखित 'राज कणक' बल्लारी का जन्म हुआ था । कवि ने कुछ ऐतिहासिक दृष्टि से इस काव्य-रस का प्रयोजन किया है । ग्रन्थ ४४ प्रकाशों में बाँटा गया है । कवि ने परम्परागत पद्धति को अपना सृष्टि के प्रारम्भ से अपने आशयवाचक महाराजा अमरसिंह जी की संसाधनी की स्थापना की है । ऐजन्सी व बहुप्रतिभा सम्पन्न कवि मोट्या अमरसिंह महाराजा अमरसिंह सिंह के वर्णन के साथ ही कवि ने इतिहासकार का ज्ञान पढ़ने लिया है । विविध चार, संघ, संघ, संघ की अनेक कवि ने किया है ।

किस युद्ध में किस पक्ष से कौन जोड़ा सके । वे कहां के थे कौसे थे सभी का व्योम  
बड़ी लगभगता से दिया गया है । जोटी बटना भी कवि की निमाह से बच नहीं सकी ।  
राजनैतिक छन सचिंसग्रह कूटनीतिक जाल सभी का कवि ने यथातथ्य और अरपुष्ट  
सादगी से वर्णन किया है । समस्योते के समय कौन से सामग्य बरबार में हाजिर थे ।  
कौसे बात बसी, लक्ष-वितर्क हुए कवि ने इन सभी तथ्यों पर ध्यान रखा है ।  
इतिहास के अध्येताओं और तत्कालीन समाज स्थिति के विज्ञापियों के लिए इस काव्य  
ग्रंथ की उपयोगिता निर्विवाद है । ऐसे तथ्यमय ग्रंथ को संक्षिप्त करना सम्भव था भी  
नहीं अतः कवि महाराजा जयसिंह से काव्य पसाव पाने से बंचित रह गया ।

कवि ने अपने ग्रंथ में अनेक दियस व वियस के छन्दों का प्रयोग किया है ।  
बोहा भीवाई, छपाय बैबकसरी, गाया, चोटक भुजगी औरस नाराय पहरि  
हुमुकाल वेतास आदि विविध छन्दों का उपयोग किया है । भाषा द्विगल है और प्रभाव  
भृगु सम्पूर्ण है । बहुधा प्रयुक्त किये जाने वाले अनुस्वार अथवा द्वित्ववर्णों के प्रयोग  
से कवि ने अपनी कविता को बोधित नहीं बनाया है । इसी कवि का एक अन्य ग्रंथ  
'भायवत वर्णम' भी धाया गया है । नाम से ज्ञप्त के विषय में हम अनुमान कर सकते  
हैं कि यह भायवत की भाषा कर लिया गया ग्रंथ होना चाहिए ।<sup>१</sup>

### (११) करपीवान सूरज प्रकाश \*

करपीवान की बीरता की प्रशंसा कर्नल टाड ने बहुत अधिक की है ।  
करपीवान ने स्वयं महाराजा जयसिंह के साथ बहुमखाबार युद्ध में भाग लिया था ।  
जिस स्रुति, साह्य और पराक्रम के साथ वे सप्तसेना को छिन्न भिन्न करते हुए  
बाहर निकल जाये थे वह अनौकिक व आश्चर्यमय जान पड़ता है । वे केवल तलवार  
के ही बनी के नहीं थे सरस्वती के भी बरह पुत्र थे । उस बखान्ति युद्ध और विद्रोह  
के युग में भी वे नियमित रूप से लिखते पढ़ते रहे । 'सूरज प्रकाश' कवि का एक  
बृहत् काव्य ग्रंथ है जिसका परिमाण ११ ००० छन्द है । महाराजा की सुनाने के लिए  
इन्होंने इसी विद्यालयकाय ग्रंथ का संक्षिप्त कर १२९ पहरि छन्दों में किया, जिसका  
नाम 'बिह्व विषमार' रखा गया । इसी रचना से प्रसन्न होकर महाराजा ने इन्हें  
साक पसाव आगीर काकि ही नहीं थी किन्तु उन्होंने हाथी पर सवार कराया और  
वे स्वयं थोड़े पर चढ़ कर इनकी हाजिरी में बसे और कविराजा की उनके निवास  
स्नान तक पहुँचाया । इस विषय पर यह बोहा प्रसिद्ध है—

अस चड़ियो राया अमी, कवि जाड़े पकराज ।

पीहर हैक जसेब में, भीहर बसी महाराज ॥

'सूरज प्रकाश' द्विगल भाषा की एक उत्कृष्ट रचना मानी जाती है । कवि ने  
परम्परागत छंदों को अपनाते हुए पहले पौराणिक पृष्ठभूमि में राजवंश का

१—मीरबन सभी राजस्थानी कवि—भाग २ पृ० ४४ ४७

२—पुस्तक प्रकाश ( जोधपुर की प्रति )

इतिहास लिखा है और महाराजा जयकन्तसिंह के बर्णन तक आते ही सविस्तार लिखना शुरू कर दिया है । महाराजा जयकन्तसिंह अजीमसिंह और जयप्रसिंह के जीवन की घटनाओं को इन्होंने लुब्धक जमकर लिखा है । कवि ने यतियों के आडम्बर मूढाचार और बुराचार को देखकर उनकी लुब्धक गवरी ली । एवं का नाम 'अजीराना' था । कहा जाता है कि नीचे से किसी विद्वान् मुद्राचरण यती के कहने में उस एवं को उन्होंने गष्ट कर दिया ।

करबीरान के सिधे अनेक हिमल गीत भी पाये जाते हैं । उन्होंने ब्रजभाषा में भी कविता की है । इनके रचित कुछ रसीक संस्कृत में भी पाये गये हैं । इससे निश्चय निकलता है कि कवि का इन भाषाओं से अच्छा परिचय था । विस सङ्गता के साथ इन्होंने सभीच चित्र टीके हैं वे कवि के नैपुण्य और भाषाबिहार के छोटक हैं । अमंकारों का सुन्दर प्रयोग स्वान-स्वान पर किया गया है । राजवंश की उत्पत्ति को अनेक पौराणिक आचारों पर उठाया गया है । इनकी छंदों में 'वैतस्त्रिक टच' का नाम पड़ता है । इसका कारण संभावतया इनका पुरावादि धर्म एवं कान्दों और व्याकरण धर्मों का नियमित अध्ययन ही होना चाहिए । छन्दोर्मय बहुत कम है । समता है कि कवि बहुत परिश्रमी और अध्ययनशील था । इनकी कविता का उदाहरण देखिये १ :

तव हृषी विहा हुय मूख तणि ।  
 जल जेम ऊजले समंद जणि ।  
 खीरेये कहिया बाट घूर ।  
 सभवां काल विहणस घूर ॥२८॥  
 वाजिया मगारा ययण पात्र ।  
 भूमि एवासी गया पात्र ।  
 बैमरी हूमरी भीया मोड़ ।  
 टलरी संमरी बीह टोड़ ॥२९॥  
 सोहरी सभरी साट भाय ।  
 जवफरी गिरां तर सटे भाय ।  
 मेवास झूटया मभज मेट ।  
 झूटया निरन्ध हैताल छेट ॥३०॥  
 लूठया गही सिर नीर भास ।  
 झूटया हुमा जोगान भास ।  
 सड़ गया सहर घर सोड़ भास ।  
 सिबलां देवाकीं तनीं साम ॥३१॥  
 बानीस जोस हैजम जलाय ।  
 बानीस जराय बानीस जाय ।

रचक्रियो धु हूँ मझी राम ।

देवकी भवाँ माँई दबाव ॥१२॥

सीरोही ऊगरा बीबसार ।

भाबू भूँई भिर बहार ।

बबु हौं ठपा बग्मात ईस ।

सरसा भिम आवी मया सीस ॥१३॥

(१२) मंझाराम रघुनाथ क्यक पीठारी<sup>१</sup>

वे जोधपुर नगर के सेवग जाति के परिवार में संवत् १८२७ में जन्मे । इनके पिता का नाम बख्शीराम बा और वे स्वामीय औसदारों की वृत्ति करते थे । इनके कविता मुह महाराजा मानसिंह के एक मन्त्री मंझारी बमरसिंह के पुत्र कछोरवास थे, जैसा कि इन्होंने अपने ग्रंथ 'रघुनाथ क्यक' के मारगम में लिखा है—

उद्भुत प्रणाम कछोर, उषिब बमरेस सवाई ।

करे पिता भिम कृपा, सिद्ध गुरु समस्त बनाई ॥

मंझाराम का लिखा बनीतक सिर्फ एक ग्रंथ 'रघुनाथ क्यक' प्रकाश में आया है । कवि का ज्ञान, भाषा पर अधिकार, उपलब्ध कविताओं की परिष्कृति इस बात की सातक है कि कवि ने और भी बहुत कुछ लिखा होगा किन्तु दुर्भाग्य से बनी तक वह उपलब्ध नहीं हो पाया है । कवि की सारी प्रासङ्गिक केवल इसी एक प्रवरत्न पर निर्भर है । मंझाराम स्वयं राम का भक्त था । उसने द्विगुण छन्दों (पीठों) पर एक काव्यशास्त्रीय रचना की और उसीमें जगन्नाथ राम की गुण भाषा लिखी । 'रघुनाथ क्यक' मन्त्र बिकासों में बिकाशित है । प्रथम दो बिकासों में बर्णन गम बग्मा सर दुपन बसरायाम फसाकस बमणरुवाई, काव्य शेष, बसरोट उत्ति के ससन, भिद रसों के नाम, लक्षण इत्यादि का वर्णन है । शेष सात बिकासों में द्विगुण काव्य में प्रयुक्त होने वाले ७२ जाति के पीठों का लक्षण उदाहरण सहित विवेचन है । बूँकि पीठों के उदाहरण में राम कथा कही गई है इसीलिए ग्रंथ का नाम 'रघुनाथ क्यक' रखा गया है । रामकथा का आधार तुलसी कृत 'मानस' ही है ।

रघुनाथ क्यक रीति ग्रंथ जगन्नाथ छन्द ग्रंथ की वृत्ति से अत्यन्त मुख्यवान है । द्विगुण पीठों के सम्बन्ध में प्रमाणित व निर्दोष जानकारी देने वाला कोई ग्रंथ इसकी तुलना में नहीं । यह निस्संदेह उत्कृष्ट कृति है । द्विगुण भाषा का यह सर्वोत्कृष्ट रीति ग्रन्थ माना जाता रहा है और कमलकण्ठ इसे कुछ विद्वानों ने द्विगुण काव्य शिरोमणि कहकर पुकारा है । आधुनिक गुजरात के छन्द शास्त्र के प्रकाश विद्वान स्वर्गीय रामनारायण पाठक ने भी अपने प्रकाशित विश्वकोष संपुट व्यापक ग्रन्थ 'मूढ त विमल' में द्विगुण पीठों की विवेचना के लिए 'रघुनाथ क्यक' को ही प्रामाणिक



भाषाएँ माना है।<sup>१</sup> हिमाल कोय रचयिता कबिराजा मुरारिदास भी इसे प्रामाणिक ग्रन्थ मानते थे। ये सब सत्य हैं कवि की उक्त साधना की भार संकेत करते हैं जिसके कारण गहन अध्ययन, विवेकमय विवेचन और साबिकार उदाहरण-सूचन सम्भव हो सका और जिसके कारण इनमें सृष्टि संघ की रचना कवि से बन पड़ी। 'महसूय भाषा तर्को मारण' अर्थात् हिमाल भाषा या काव्य की रीति की विधि इस शास्त्र के ज्ञान से सभी भाँति अध्ययनवर्ता को प्राप्त हो सकती है।<sup>२</sup>

(११) सिद्धिया जग्या बचनिका राठीड़ रतनसिंहजीरी महेशासोउरी

ये सिद्धिया शाखा के कारण थे। इनके पिता का नाम रतनाजी या। इन्होंने संवत् १७१२ के लगभग 'बचनिका राठीड़ रतनसिंहजीरी महेशासोउरी' नामक एक ग्रन्थ का बनाया जिसका दूसरा नाम 'रतन राखी' है। इसमें जोधपुर के महाराजा जसवंतसिंह और मुजसमुट शाहजहां के बिक्रोही पुत्र औरंगजेब तथा मुराद के बीच में उम्मेद के रणक्षेत्र पर सं० १७१२ का युद्ध वर्णित है। इस लड़ाई में रतनाम के राठीड़ राजा रतनसिंह बड़ी दहादुरी से लड़ते हुए काम आये थे। इसलिये उन्हीं के नाम से संघ का नामकरण हुआ। यह एक बीर रत्न प्रधान ग्रन्थ है। इसकी भाषा हिमाल है। इसमें गद्य और पद्य दोनों हैं। ग्रन्थ साहित्य रचिर्को एवं इतिहास प्रेमियों दोनों के काम का है।<sup>३</sup>

रचना का आरम्भ गणेशकल्याण से युक्त माहा से करके जग्या सिद्धिया विष्णु, शिव शक्ति और सरस्वती आदि की आराधना करते हुए रणभूमि के बीच में रतनसिंह के जन्म ग्रहण करने का उल्लेख करता है और इस प्रकार वह बिना किसी शुभका के अपने प्रसंसा पात्र नायक के चरित्र वर्णन का संवत्स प्रकट करते हुए मूल विषय में प्रवेश करता है। अनन्तर कवि रतनसिंह की बंसावली का परिचय देकर उनके पिता महेशदास की देवद्विर ( बाकीर ) विजय का वर्णन कर, बीर पिता के पुत्र रतन सिंह का भी बीर होना अवश्यता का से संकेपित करता है। तदुपरांत राजा रतन सिंह की बीरताप्रदर्शन के निमित्त बहु पीठिका स्वरूप तत्कालीन राजनैतिक अवस्था की कल्पना कथित करता है।

रतनसिंह द्वारा बिक्रोही राजकुमारों की समझाया जाता है पर ध्वंस। अन्त में युद्ध की चरम सीमा पड़ती है। वहाँ कवि जमकर युद्ध वर्णन करता है। हिमाल में प्रचलित परिपाटी के अनुसार यह वर्णन है। इसी युद्ध में राजा रतनसिंह बीर पति को प्राप्त होते हैं। उनकी अत्येष्टि सम्बन्धी वर्णन काव्यमय होते हुए भी भव्य है।<sup>४</sup>

१—रायनारायण वि० पाठक-बृहत् हिमाल—पृ० ४७७

२—गोबर्द्धन समी राजस्थानी कवि—भा० २—पृ० १०४

३—टेडिहरी संपादित रायस एशियाटिक सोसायटी से प्रकाशित

४—मोदीसाल मेनारिया राजस्थानी भाषा और साहित्य—पृ० १२५

५—अक्ष २४४—२६९

राजा के परसोक वसन का वृत्तान्त सुनकर उनकी चारों रानियाँ भी सती हो जाती हैं तथा इस प्रकार वे अपने सतीत्व तथा प्रतिश्रेम का परिचय देती हुई और भारतीय नारी जाति का मुख उज्ज्वल करती हुई, स्वर्ग में जाकर पति से मिलती हैं ।<sup>१</sup>

अन्य सत्सेवनीय रचनाओं में कल्याणदास रचित मृचमोक्षिका जोगीदास कृत हरिविप्लव प्रबन्ध कतसीका भाषामाख्य रामदास का भीमप्रकाश, किरण जी भाड़ा कृत रघुवरचर प्रकाश, पुष्पीराम साहू प्रणीत जयमन्त्रिणाथ और मोदीनाथ माडगका जयवराज महत्त्वपूर्ण रचनाएँ हैं । चूँकि यहाँ हमारा उद्देश्य द्विपद काव्य का ऐतिहासिक अध्ययन करना नहीं है अपितु कलात्मक अध्ययन करना है हमने मात्र कुछ प्रतिनिधि एवं विभिन्न प्रकार की रचनाओं की चर्चा की है ।

हमने द्विपद काव्य की प्रमुख अवधारणात्मक रचनाओं पर विचार किया । जब हम इन रचनाओं का परिचय प्राप्त करना चाहिये तो मूलतः राजस्थानी की रचनाएँ हैं किन्तु परवर्ती द्विपद से भिन्न हैं । इसे दूसरे शब्दों में इस प्रकार कहा जा सकता है कि मारवाड़ी या राजस्थानी की ये रचनाएँ ही द्विपद काव्य का प्रारम्भिक साधारण रही हैं । इनमें से प्रमुख रचनाएँ निम्न हैं—

### (१) जसाइत हंसावली<sup>२</sup>

सिद्धपुर के एक मध्यमवर्गीय ब्राह्मण परिवार में जसाइत का जन्म हुआ । उनके पिता राजाराम ठाकुर, मारवाड़ और के बीहड़िय ब्राह्मण से मिलका बीहड़िका निर्वाह यजमानों से चलाता था । जसाइत का स्वान ऐतिहासिक दृष्टि से विशेष महत्त्व का है । मुजराठी लोकनाट्य भवाई के जनक के रूप में भी उनकी ख्याति है ।<sup>३</sup> उनकी रची हंसावली रचना राजस्थानी भाषा में लिखित एक प्रेमकाव्यमान है । भारतीय मनसा में प्रेम के अवतरण व जन्मजन्मान्तों में भी संयोग की संभावना की याचना बहुविध व्याप्त है । विभिन्न यौगिकों में जन्म होने पर भी अपने प्रेमी एक दूसरे के प्रति अपने अनुयाय में वृद्ध रहते हैं । यह लोक विश्वास ही इस काव्य कला का देव शब्द है ।<sup>४</sup> इसमें हंसावली और वत्स के प्रेम का विकल्प किया गया है ।

जसाइत एक छदार व्यक्ति थे । उन विनों और व ब्राह्मण दोनों वर्गों में पटती नहीं थी । वे काफी बस में एक दूसरे के प्रति जसाइत्यू से थे । यद्यपि धर्म के नाम पर उन्नता नहीं थी पर सहनशीलता का जमान था । जसाइत ने अपनी कृति हंसावली द्वारा इतना भाव संतुलन बिखाया कि उसे लोग<sup>५</sup> और कवि मानने लग गये । यह

१—जगदीश प्रीवास्तव द्विपद साहित्य—पृ० १२३

२—मुजराठ विद्यासभा की हस्तप्रति

३—के० का० शास्त्री कवि चरित—भाग १—पृ० ४

४—मोहन न शर्मा राजस्थानी कवि भाषा १—पृ० १६

५—मो० द० देसाई और पुर्वर कविजो—भाग १—पृ० ४३

इति ह सावनी कथा ह त वन्द्य श्रीगई एक प्रेम नाम है । यह प्रेम व अर्जुन दोनों प्रचार के साहचर्यो का विद्यमान द्वारा समायुक्त हुई है । अर्जुन नाम के एक प्रेम साधु ने इस कथा की मान्य प्रमाणन समया व मनवीरुता के प्रमाणित होकर इसा प्रती पूर्ण प्रेम परित नाम के मन्त्र १६२१ में एक नाम प्रम रचा । जिसमें इसा मती के पूर्व प्रेम की कथा बड़ी है । यह उनका जीवितता का एक उत्कृष्ट प्रमाण है । अपनी इति में पहिली मगर व। वर्णन करने हुए यदि हमी सम्पन्न बनायुक्त का परिचय देता है जिसमें वैशाखी काष्ठम व प्रेम सावनी की भावों का समान वर्णन करता है यथा—

साक्ष्य केर साक्ष्य अम्मायि अरि करण करणउरि बसि ।

के महसु जिहो अिन पाविषा, भीग सहस साहि प्यवहारिया ।

असाक्ष ने 'ह सावनी नाम की रचना सं० १४२७ में की थी यह अर्जुन की निम्न पंक्तियों से सात होता है—

सं० १४ चक्र चक्र मुनि संव बरह चरर परित अर्जुन ।

सावन और कथा रत मीठ एह पचाहु असाक्ष कहित ॥

इस दृष्टि से ह सावनी हमारे पुराने प्रेमकाव्यों में से है । द्विती के भील कामीन काम्यप्रार्थों यथा वदमावत, रामचरित मानन के श्रीगई होहा पद्धति की परम्परा का अक्षुर हमें अर्जुन साहित्य में मिलता है । ह सावनी इस मृत्तता की भील की बड़ी है । एतद मुरवत श्रीगई है—भील भील में सीहों का प्रयोग है । तीन विभिन्न स्वरों पर विरह्यीतों की रचना करके कवि ने अपनी विरहप्रता व भावुकता का परिचय दिया है । ये विरह मीठ तीन विभिन्न रागों में रचे गये हैं । उदाहरण के लिए यह मीठ—

राय राममिथी

राजकुमारि हियहु हलि पुरव प्रेम प्रसंग ।

आगि बाबाजस बही बनी दुख दासि अय ।

पौरव बंजीला नबन नेह नरनाम ।

जिनि बन भूनि हरनली तिम हूँ सायी राय ।

किजकिजती बन विचरती बेसी बर बीसास ।

सीन सायी साहस कीउ हू एकली निरास ।

यनि असाक्ष बभ अन्तरि समारि सामनि अंत ।

ह सावनी बरती कली, प्रदि मीठ मुखि मज ठ ॥

प्रेम काम्य की भाषा सोलहवीं शताब्दी के प्रारम्भ की ओ निश्चित रूप से मानी जा सकती है यद्यपि कहीं कहीं भाषा में कुछ अपेक्षाकृत नवीनता का बोध होता है । जहाँ तक विषय वस्तु का प्रश्न है असाक्ष को नवीनता का भेद नहीं दिया जा सकता । 'ह सावनी की रचना १४२७ विजयाब्द में हुई, किन्तु उससे भी पहले संभव

१४११ में एक जैन कवि विनयमित्र ने 'हंसवत्स चौपाई' लिखी है। इसका अर्थ हुआ कि हंसवत्स की प्रेमकथा लोक प्रचलित थी उसे ही असाहस ने विकसित किया है। संसार के चिर नवीन और चिर पुरातन प्रेम प्रेम को लेकर अलग-अलग कह कथा काव्य अपने में लोक कथाओं के अनेकों तत्व संक्षिप्त किये हैं। इस तथ्य से मेरी मान्यता की पुष्टि ही होती है। हंसावली का पूरा नाम 'हंसवत्स चरित पञ्चाङ्ग' है और यह ४४० छन्द में समाप्त हुआ है। समूचा काव्य चार खंडों में विभाजित है। कविता में चमत्कार की प्रधानता नहीं है, अलंकारों की चमक इतक नहीं है किन्तु यन्त्रीर रसमयी भाषा का प्रवाह है। यथा स्वात कवि ने धूम्र, धूम्र, हास्य व कथन रसों की सफ़ल अभिव्यक्ति की है।

(२) भीम सद्यवत्स चरित<sup>१</sup>

सम्बत् १४९९ में लिखित कवि भीम चरित 'सद्यवत्स चरित १७२ कवियों का एक प्रेमकाव्य है। इसमें उज्जयिनी के राजा प्रभुवत्स और क्षात्रिबाहुन की राजकुमारी सार्वसिमा की प्रेम कहानी है। अनेक आवागमन प्रसंगों से युक्त इस प्रेमकाव्य की भाषा प्राचीन पश्चिमी राजस्थानी है। इसी कथानक को लेकर अनेक जैन अर्थन लेखकों ने सद्यवत्स-सार्वसिमा काव्य लिखे हैं जो इसके लोकप्रिय कथानक के सूचक हैं। इस काव्य का रचयिता कवि भीम दुर्गाय से अपने उज्जयिनी के काव्य के अनुरूप प्रदि नहीं पा सका, किन्तु यह सब पर्याप्त जानकारी के अभाव में हुआ। यह 'अलंकार रूप से कहा जा सकता है कि कवि भीम प्रवत् 'सद्यवत्स चरित काव्य की गणना प्राचीन राजस्थानी के अनेक काव्य ग्रन्थों तथा रचयित सद्य काव्य के प्रवत् 'होतामाक या ब्रह्म', 'मायवानस-कामकंदमा' आदि के समस्त की जा सकती है।

कवि के जन्म, मृत्यु, अचयन, निवास, जीवन किसी भी सम्बन्ध में हमें कोई जानकारी नहीं मिलती। कवि सद्यवत्स है यह उसकी कविता की सरसता व भाविकता से जान पड़ता है। संस्कृत की अच्छी शिक्षा पाया हुआ था। वह उसके द्वारा रचित ग्रंथ के प्रारम्भ में रचित आशयों से जान पड़ता है, क्योंकि उनमें कोई त्रुटि नहीं दीख पड़ती। वह वैदिक धर्मावलम्बी है। ग्रंथ के प्रारम्भ में उसने अलंकार सरस्वती व मनपति की उपासना की है। कवि का अपनी भाषा पर पर्याप्त अधिकार जान पड़ता है। कविता-कथा की दृष्टि से भी यह सफ़ल सिद्ध होता है। उसने प्रारम्भ में अपने काव्य के सम्बन्ध में घोषणा की है —

सिंहार हास कथा कहो भीरो मयाग भीमलो ।

अधुना सति गवह रति अधुनापि सुखयवत्सत् ॥

कहा न होया कि इस छोटे से काव्य ग्रंथ में कवि ने अपने जीवन से साहित्य के सर्वोत्तम की उचित उदाहरण की है। कवि की भाषा उत्कृष्ट 'पुरानी

१—सावनाई धर्मरामाई संस्कृति मंदिर की प्रति

२—राजस्थान मारती — भाग ३, अंक १ में सावनाई का उल्लेख

कृति ह सावली अथवा ह सा सख्य खोपाई एक प्रेम काव्य है । यह जीवन व अजीन दोनों प्रकार के सहस्रयों या विद्याओं द्वारा समादृत हुई हैं । मतिमुन्दर नाम के एक शैल साधु ने इस कथा की भाग्य प्रशामन शक्तता व मनमोहकता से प्रभावित होकर 'ह सावली' पूर्ण भव अरित, नाम से सम्बत् १६२१ में एक काव्य ग्रन्थ रचा । जिसमें ह सावली के पूर्व जन्म की कथा कही है । यह उनकी लोकप्रियता का एक उदात्त प्रमाण है । अपनी कृति में पट्टिठाण नगर का वर्णन करते हुए कवि इसी सम्प्रदाय की परिचय देता है जिसमें वेदाभ्यासी ब्राह्मण व जीन मठावसन्धी भावकों का समाज वर्णन करता है यथा—

ब्राह्मण वेद शास्त्र अभ्यासि अरि वरन वरपाठरि बसि ।  
वे सहस्र जिहां मिल पापिया, बीस सहस्र मार्ग अवहारिया ।

असाहस ने 'ह सावली काव्य' की रचना सं० १४२७ में की थी, यह ज्ञान की निम्न पंक्तियों से ज्ञात होता है—

सं० १४ चक्र चक्र सुनि संप बस्य सचर अरित जस्य ।  
बागन बीर कथा रस बीर एह पवाहु असाईत कहिय ।।

इस दृष्टि से ह सावली हमारे पुष्प प्रेमकाव्यों में से है । हिन्दी के प्राचीन कालीन काव्यग्रन्थों यथा पद्मावत, रामचरित मानस के खोपाई बोहा पदार्थ की परम्परा का अन्तर्गते अवर्णन साहित्य में मिलता है । ह सावली इस शृङ्खला की बीच की कड़ी है । अन्य मुख्यतः खोपाई ही-बीच बीच में खोहों का प्रयोग है । तीन विभिन्न स्थलों पर बिरहवीरों की रचना करके कवि ने अपनी विरहवता व भावुकता का परिचय दिया है । वे बिरह पीत तीन विभिन्न रूपों में रहे गये हैं : उदाहरण निम्न यह तीन—

राय रामगिरी

राजकुंअरि द्विपटु हवि-पूरय प्रेम प्रसंग ।  
मायि बाबानस बही, बसी दुख दासि अय ।  
पीनट बंसीबा नवल नेह नरनाथ ।  
बिमि वन भूति हरनली, सिध हूं सामी साथ ।  
किलकिमती वन निचरती बेसी बर बीसास ।  
सीध सामी साहस कीठ हू एक्की निरास ।  
मनि असाहस वन अस्तारि समीर सामनि कंत ।  
ह सावली बरती इसी, प्रदि प्रीत मुखि भजत ॥

प्रेम काव्य की भाषा सोलहवीं शताब्दी के प्रारम्भ की ओर निश्चित रूप से जाती या लौटती है यद्यपि जहाँ-जहाँ भाषा में कुछ अपेक्षाकृत नवीनता का बोध होता है । जहाँ तक विषय वस्तु का प्रश्न है असाहस की नवीनता का भ्रम नहीं दिया जा सकता । ह सावली की रचना १४२७ विमगाब्द में हुई किन्तु उसके भी पहले संभव

१४११ में एक और कवि विजयमल्ल ने 'हंसवन्द्य बीपार्थी' लिखी है। इसका अर्थ हुआ कि हंसवन्द्य की प्रेमकथा लोक प्रचलित थी, उसे ही असादृत ने विकसित किया है। संसार के चिर नवीन और चिर पुरातन प्रेम प्रेम को लेकर अलग-अलग कथा काव्य अपने में लोक कथाओं के अनेकों तत्व सम्मिश्रित किये हैं। इस तथ्य से मेरी मान्यता की पुष्टि ही होती है। इसाउली का पूरा नाम 'हंसवन्द्य चरित पद्माङ्ग' है और यह ४४० छन्द में समाप्त हुआ है। समूचा काव्य-चार खंडों में विभाजित है। कविता में चमत्कार की प्रधानता नहीं है, अलंकारों की चमक कम नहीं है किन्तु गम्भीर रसमयी भाव का प्रवाह है। यथा स्थान कवि ने धूम्र, अश्रु, हास्य व कथन रसों को सफल अभिव्यञ्जना की है।

(२) भीम सद्यवत्स चरित<sup>३</sup>

सम्बत् १४६६ में लिखित कवि भीम बिरचित 'सद्यवत्स चरित १७२ कड़ियों का एक प्रेमाख्या है। इसमें उच्चमिनी के राजा प्रभुवत्स और कालिकावत की राजकुमारी सावलिता की प्रेम कहानी है। अनेक आवांतर प्रसंगों से युक्त इस प्रेमाख्या की भाषा प्राचीन परिवर्ती राजस्थानी है। इसी कथानक को लेकर अनेक और अनेक लेखकों ने सद्यवत्स-सावलिता आख्या लिखे हैं जो इसके लोकप्रिय कथानक के सूचक हैं। इस काव्य का रचयिता कवि भीम कुमाय्य से अपने उच्चकोटि के काव्य के अनुरूप प्रशि नहीं पा सका किन्तु वह इन पर्याप्त आत्मकारी के अभाव में हुआ। यह अलंकार रूप में कहा जा सकता है कि कवि भीम प्रसन्न 'सद्यवत्स चरित' काव्य की रचना प्राचीन राजस्थानी के अनेक काव्य ग्रन्थों यथा रचमत्स्य छन्द, काहूहरे प्रबंध, दोलामाक रा वृत्त, 'माधवानन्द-कामकदम्बा' आदि के समझ की जा सकती है।

कवि के जन्म, मृत्यु, बचपन, निवास, जीवन किसी के सम्बन्ध में हमें कोई जानकारी नहीं मिलती। कवि सद्बुद्ध है, यह उनकी कविता की सरसता व वाचस्पत्यता से जान पड़ता है। संस्कृत की अच्छी शिक्षा पाया हुआ था। यह उसके हाथ रचित ग्रंथ के प्रारम्भ में रचित श्लोकों से जान पड़ता है क्योंकि उनमें कोई त्रुटि नहीं देख पड़ती। वह वैदिक अर्वाचिन्मयी है। ग्रंथ के प्रारम्भ में अपने अलंकार, सरस्वती व यक्षपति की उपासना की है। कवि का अपनी भाषा पर पर्याप्त अधिकार जान पड़ता है। कविता-कला की दृष्टि से भी वह सफल सिद्ध होता है। अपने प्रारम्भ में अपने काव्य के सम्बन्ध में जीवना की है —

सिंहार हास कथा कहूँ बीरो भवान् भीमत्पो ।

अश्रुत शीत नख रति असुखपिमु सुखयन्त्रस्त ॥

कहना न होया कि इस छोटे-से काव्य ग्रंथ में कवि ने अपने जीवन से साहित्य के नवीन रसों की सचित उद्भाषना की है। कवि की भाषा उत्कामीन 'पुण्यी

१—सालभार्द वसन्तवार्द संस्कृति मंदिर की प्रति

२—राजस्थान भारती — भाग १, अक्षर ३ में माहटाजी का श्लोक

पवित्रमी राजस्थानी' है। भाषा के अध्येताओं के लिये यह ग्रंथ बड़े काम का है। तत्कालीन भाषा का बहुत कुछ स्वरूप इसमें सुरक्षित रह गया है। सवयवस्य के पूर्व वर्णों का भी वर्धन किया गया है। ऐसा करने में प्रेम कथा के धुंवार रस से उत्पन्न कीर कीर सम्पुत रस का निकपन अधिक आये बढ़ गया है। छन्दों की दृष्टि से ब्रह्मा, पञ्चरी चोपाई, बस्तु, छप्पय, कुण्डलिया व मोहितक रामका प्रयोग किया गया है। कवि की दोसी ओर और प्रसाद गुण सम्पन्न है। प्रत्येक छन्द का प्रयोग स्वतः कीर वियस के अनुरूप किया गया है। अनेक स्थलों पर कवि ने शटपायों का विचोपम सरस वर्धन किया है। ऐसा जान पड़ता है कि यानों हमारे सामने शटपाय पटित हो रही है।<sup>१</sup>

हृत्ता सब होने पर भी कवि को किसी बात का अनिधान नहीं है—बढ़ कहता है—

सुख लहृजि केवि कविवच सरसुवरणा सुखरसपमय ।  
ए कंठठावि सन्ने करजुबन जोडी पजिमावि ॥

(३) नरपति नाहू बीसल है रास

बीसलदे रास के निर्माता नरपति नाहू और उसके रचनाकार के बारे में विद्वानों में मतभेद है। मोतीलाल मेनारिया बिस्मलदे रास के रचयिता नरपति नाहू को सोलहवीं शताब्दी के एक गुजराती कवि नरपति से अभिन्न मानते हैं। वे हमारा ध्यान एक नई सम्भावना की ओर आकर्षित करते हैं—जानून होता है कि मूल ग्रंथ गुजराती में था जिस पर किसी ने बाद में राजस्थानी का रंग बढ़ाया है।<sup>२</sup> और अपनी मान्यता के सिद्ध करने के लिए उन्होंने बीसलदे रास और गुजराती कवि नरपति की रचनाओं में भाषा और अभिव्यक्ति का साम्य दिखाया है। आचार्य हजारीप्रसाद भी मानते हैं कि मेनारियाजी की मान्यता ठीक है।<sup>३</sup> इन्हें आचार्य रामचन्द्र शुक्ल और सत्यजीवन वर्मा उन्हें ग्राह्य मानते हैं किन्तु अमरचन्द भी नाहूटा रोचक। डॉ. रामकुमार वर्मा नरपति नाहू की अपने आलोचनात्मक इतिहास में काफी प्रशंसा करते हैं। मेनारियाजी इसे १९वीं व सत्यजीवन वर्मा १३वीं शदी का कवि ठहराते हैं।

बस्तुतः कवि और उसके समय के बारे में हमारी जानकारी सीमित है और इस सम्बन्ध में पर्याप्त सामग्री के अभाव में अन्तिम रूप से कुछ भी नहीं कहा जा

१—पोषर्द्धन वर्मा राजस्थानी कवि—भाग १—पृ. २६

२—(क) डॉ. सत्यजीवन वर्मा बीसलदे रास।

(ख) डॉ. माताप्रसाद गुप्त बीसलदे रास।

३—मोतीलाल मेनारिया राजस्थानी भाषा और साहित्य—पृ. ८५

४—हजारीप्रसाद हिन्दी साहित्य—पृ. ५९

सकता । हाँ इतना स्वीकार किया जा सकता है कि जीवहर्षी सरी में इसकी रचना हो चुकी थी ।<sup>१</sup>

इस ग्रन्थ का विस्तार २००० चरणों में है । इसमें चार खण्ड हैं । पहले खंड में ८१ छन्द हैं और भासवा के अधिपति श्री भोज परमारकी लड़की राजमतीका बीसलदेव के साथ विवाह वर्णित है । दूसरे खंड में ८६ छन्द हैं जिनमें बीसलदेव की राजमती के प्रति उदासीनता और सङ्कीर्णता की ओर रणयात्रा का उल्लेख है । तीसरे खण्ड में १०३ छन्द हैं जिनमें राजमती का विमोह वर्णन और बीसलदेव का विजोद्वेषमय है । चौथे खण्ड में ४२ छन्द हैं और योद्धाव्य का आकर अपना करवा को ले जाना और बीसलदेव का पुनः राजमती को चिन्तीक से जाने का वर्णन है । ग्रन्थ में कुल ३१६ छंद हैं ।

कथावस्तु पर विचार करने से ज्ञात होता है कि कथा वीरि कथ में होते हुये भी प्रबन्धनात्मकता लिये हुए है । कथावस्तु अनेक प्रकार की घटनाओं से निर्मित है जिसमें वीररस की अपेक्षा भृगु रस ही प्रधान स्थान प्राप्त कर सका है । भावा यद्यपि अपने असंस्कृत रूप में है तथापि उसमें साहित्यिक सौन्दर्य की कृता मय-रस है ।

लोकदर्शन के लिये 'बीसलदेव रासो' में काव्य का सौन्दर्य मनोवैज्ञानिक ढंग से अनेक प्रसंगों में उजागरा गया है । उसमें जीवन के स्वाभाविक विचार, गृहस्थ जीवन के सरल विश्वास जगतीतरवार यज्ञुन संस्कार, वारहमासा आदि बड़ी सरसता के साथ चित्रित किये गये हैं । स्वामीय प्रभावों और व्यवहारों का भी बड़ा स्वाभाविक वर्णन है । इस प्रकार इस काव्य में स्वामीय अनुरजन विशेष माना में है ।<sup>२</sup> बीसलदेव रासो के कुछ कथावस्तु देखिये

स्वामीय अनुरजन —

मानिक मोती बसक पुरान ।

पाव पपाय्या राज का । राजमती बीई बीसलदेव ।

हुई सोपारी मनि हरष्यो छह राव । बाजिन बाबह नीसांजी बाव ।

पड़ माहि लुडी कलसी । बरिबारे मंगक तोरण आरी ॥<sup>३</sup>

(४) कस्तोत होला माकरा बूहा ।

कुछ विद्वान 'होला माकरा बूहा' नामक काव्य के रचयिता के रूप में कस्तोत को ग्रहण करने के लिये उत्तर नहीं हैं । उनकी धारणा में 'कस्तोत' नामक कवि धायव ही हुआ हो ।<sup>४</sup> वही दूसरी ओर डा० मोतीभास मेनारिया इस काव्य

१—रामकुमार वर्मा हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास—पृ० १४९

२—रामकुमार वर्मा हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास—पृ० १४९

३—सत्यजीवन वर्मा बीसलदेव रासो—पृ० ८-९

४—ठाकुर, स्वामी व पारीक होला माकरा बूहा

५—ठाकुर, स्वामी व पारीक होला-माकरा बूहा—भूमिका—पृ० २४



के रचयिता की 'कस्मोल' नाम से स्वीकार करते हैं।<sup>१</sup> 'डोसा-माक रा बुहा'। सम्पादक तो यहाँ तक मानते हैं, कि यह किसी एक कवि की कृति नहीं है—'कस्मोल' की कवि रूप में कल्पना करना अनुचित है। किन्तु मेनारियाजी निम्न बोद्धे की साध पर इस लोकप्रिय काव्य के कवि की 'कस्मोल' ठहराते हैं।

माहा गुहा पीत रस, कवित कया कस्मोल।

चतुर-तण मस रीसबै, कहिया कवि कस्मोल ॥

मरी तो निश्चित माय्यता है, चाहे हम इस ग्रन्थ को 'कस्मोल' रचित माने या न माने, किन्तु इसे किसी कवि की रचना ही मानना ही होगा। 'डोसा-माक रा बुहा' में अनेक लोकगीत परम्पराओं और लोकगातों की विशेषताओं का पालन हुआ है, किन्तु केवल इसी आधार पर हम इसे किसी कवि की कृति होने से शोक नहीं सकते। यह आधार इतना मजबूत है कि इसे सही मान लेने पर हमें समूचे सूची प्रेमाख्यानों की भी किसी कवि द्वारा रचित मानने से इंकार करना पड़ेगा। ऐसा करना किन्तनी भ्रमकर भूल होगी, इसे समझा जा सकता है। और फिर कालाभर में ऐसी भूल का परिमार्जन होना भी दुष्कर हो जाता है। डोसा माक रा बुहा के विद्वान सम्पादकों के अनुसार 'डोसा-माक' की प्रेम भाषा को किसी व्यक्ति विशेष की कृति न मान कर भी हमको यह कल्पना करने में कठिनाई नहीं होगी कि यह काव्य मौखिक परम्परा के प्राचीन काव्य युग की एक विशेष कृति है—और अन्त में मौखिक परम्परा से जन्मा जाता हुआ यह काव्य हमको किसी विशेष कवि की कृति के रूप में नहीं मिला, बल्कि जनता के काव्य के रूप में उपलब्ध हुआ है और अपनी माय्यता की सन्निधि बड़े सुन्दर ढंग से ठीक संगत व्याख्या की है। 'डोसा-माक रा बुहा' मौखिक परम्परा में होने मात्र से लोकगीत परम्परा में नहीं जा जाते। चायसी के पद्मावत को फकीर गाते फिरते थे और नावमरी के बिरुदबर्जन को एक निधारी हैं सुन कर ही अमैठी के राजा ने चायसी की सम्मान दिया था। अतः विद्योप बर्जन अपना बारहमासा की आसानी से मौखिक परम्परा के अन्तर्गत माना जा सकता है। पर इससे बड़े इन्कार किया जा सकता है कि यह एक कवि विशेष की कृति नहीं है। अतः हम इस प्रसिद्ध काव्य के रचयिता के रूप में कस्मोल को ही सम्मान देंगे।

कवि 'कस्मोल' स्वयं कहा गुणी था। यह साहित्य-शास्त्र की सभी प्रकार समझता था और अपने समय से पहले की साहित्यिक रचनाओं से परिचित था। साहित्यिक परम्पराओं व अपभ्रंश प्राकृत कविताबारा का उसने सभी प्रकार अवगाहन किया था। उसकी रचनाओं में हमें ऐसी कड़ियाँ मिलती हैं, जो एक और कवि की साहित्यिक परम्परा प्रवीणता की उद्गीयना करती हैं और उसे अपभ्रंश काव्य पद्धति में पूर्ण परिचित सिद्ध करती हैं। यहाँ दूसरी ओर उसे लोकमानस में अग्रिम स्थान रिक्त की घोषणा करती है। यही कारण है कि 'डोसा-माक रा बुहा' कुशल कवि

के काव्य-जीवन से अहाँ एक ओर लोकवार्ता से अभिप्राय स्थापित करने का यत्न करता है वहाँ दूसरी ओर शास्त्रीय काव्यों की अनेक बातों में बराबरी करता है। जान पड़ता है कि कवि का साहित्यिक अध्ययन गहरा था। उसने प्राकृत, संस्कृत, अपभ्रंश व देशभाषा साहित्य की भाषा की मसा प्रकार समझा था। कवि के अनेक उपमान मौखिक होते हुये भी परम्परा के सर्वसंगत विकास के रूप में लिखे जा सकते हैं। कवि ने अनेक स्थलों पर कवि-समर्थों व काव्य प्रतिद्वियों का प्रयोग किया है, जो इसके सुचिह्नित व काव्यकला प्रवीण होने का परिचायक है। अपनी मामूली कौश्लिक से निम्न बोहे विचारार्थ प्रस्तुत कर रहा हूँ —

मारवणी हम बीनबई, यनी बाबूणी राति ।

माहा-मूझा-भीत-गुन सहि का नबनी बाति ।

माहा-भीत-बिनोद रस सपुनी बीह विरति ।

कह निहा, कह कसह करि मूरखि बीह गर्मति ॥

'मारवणी होला से यों विनय करती है कि आजकी रात धन्य है। आज कोई गाना या पहेली गीत या मुचोकिट, या कोई नवीन कथा कहिये क्योंकि गुनवान मनुष्यों के दिन गाना गीत और बिनोद के रस में बीतते हैं और मूर्ख या तो नींद में या कसह में दिन बिताते हैं। काव्य बिनोदों से समय बिताने की कल्पना कोई नई नहीं है। काबूबरी से लेकर अपभ्रंश-काव्यों तक इस परम्परा के वर्धन होते हैं।<sup>१</sup> अतः कस्नोस द्वारा रचित ये दो बोहे उसको सुचिह्नित काव्य शास्त्र का ज्ञानी और परम्पराओं का सज्ज प्रहरी सिद्ध कर देते हैं। कस्नोस मध्ययुगीन व्यवस्था का द्रोतक है और इसीलिये जीवन के विस्तृत क्षेत्र को काव्य विषय के रूप में चुन कर भी उसने बोहे प्रसंगों पर लिखा। उसे वर्धवस्तु को सरस बनाना आता था। अतः प्रसंगों को चित्रित करने पर भी वह जीवन और विषय-वस्तु के साथ न्याय कर सका। 'ऋतुवर्धन की अपनाई गई परिपाटी भी उसकी कविता की निष्प्राण नहीं बना सकी। 'कस्नोस' कविता के अभावों व उपलब्धियों से परिचित था। अतः वह अनेक दोषों को बचा गया और अनेक विदोषताओं को अपनी कविता में मूढ गया। उसने वर्धन के फेर में पड़ कर तत्कालीन कवियों की भाँति वस्तुओं की सीधे सूचियों का प्रथमन नहीं किया। मालव के दुख-सुख, प्रेम-भूषा ध्वन-बिनोद संयोग-विरह अनुराग-अलस, बाबूकटा कर्तव्य रोप-बया आदि अनेक भावनाओं की अभिव्यक्ति कवि की सबसे बड़ी विशेषता है। इसीलिये 'होला-माक रा वूहा भाव प्रवणता, सरसता और मामिकता आदि अपने विशिष्ट युगों के कारण जनजीवन में उच्छासन पा सके हैं। सैकड़ों व्यक्तियों की मित्रता पर आज भी ये बोहे आधीन हैं। उसके जनसम्पर्क ने उसे बहुमुख अष्टबुद्धि की जिसके फलस्वरूप उसका काव्य राजस्थान का राष्ट्रीय काव्य बन गया है। स्थानीय परिस्थितियों भौतिक स्थिति राजस्थानी जीवन की महानता मानव स्वभाव की यथार्थता वैद्यकात्म, वातावरण और सबसे बढ़ कर प्रभाव-वेग्य ने उसकी कविता को सर्वसाधारण बना दिया है। कस्नोस निरद्वै

राजस्थानी का सबसे अधिक लोकप्रिय कवि है। उन्हीं अनेक कवियोंको प्रभावित किया है। उसकी कथा को आधार बना कर अनेक विनमतायें तैयार की गई हैं। अनेक लोकगीत गायकों ने 'डोसा-माक' के गीत युग-युग से गाये हैं। यहाँ तक कि धिरेन्द्र कारी ने 'डोसा-माक' की मूर्तियाँ तक बनी हैं। राजस्थानी वातावरण को जीवित साँकी हमें 'डोसा-माक रा दूहा' में मिल जाती है।

(१) कुचल नाम डोसा-माक जठपई, मायबालस कामकंदला

अनेक जैन भाषायों द्वारा राजस्थानी साहित्य की अमर सेवा की गई है। ऐसे ही एक जैन भाषाई कुचलनाथ थे, जिन्होंने राजस्थानी भाषा और साहित्य की अपूर्व सेवा की। उसकी मोप अमर कृतियों से भरी और बरने में स्वयं विरह्यावी पद के स्वामी बने। कुचलनाथ का जन्म कहाँ हुआ? शिवा कहाँ मिसी और उन्होंने दीक्षा ग्रहण कर आचार्यत्व कब ग्रहण किया, इस सम्बन्ध में अन्तर्साक्ष्य और बहिर्साक्ष्य के अभाव में निश्चित तौर पर कुछ भी नहीं कहा जा सकता है। अनुमान लगाया जा सकता है कि आपका जन्म विक्रम संवत् ११८० के लगभग हुआ होगा। इसी प्रकार से इनकी भाषा की बंजिमा के आधार पर कल्पना की जा सकती है कि इनका जन्म मारवाड़ में हुआ होगा। ये कारण गच्छ के उपाय्याम अमयबय के सिध्य से ऐसा इनके श्रमों की पुष्पिकाओं से ज्ञात होता है। किन्तु इनकी सिध्य परम्परा को जानने योग्य सुख प्राप्त नहीं है।

जैन कवियों की सबसे बड़ी विशेषता यह रही है कि उन्होंने बहुधा बोलचाल की भाषा में ही अपनी कविता रची है। इस प्रकार वहाँ एक ओर उन्होंने जनसाधारण के लिये जहाँ की रोजमर्रा की भाषा में सुन्दर रचनाएँ प्रस्तुत की, वही प्रकार जनमाने ही भाषा विज्ञान की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण तत्कालीन भाषा के स्वल्प की भी रत्ना की है। कुचल नाम ने बोलचाल की भाषा में तो सुन्दर, उच्चैर रचनाएँ लिख कर अपने पांडित्य और भाषा वातुर्म्य का परिचय दिया ही है, किन्तु उन्होंने 'पिनसिरोमणि' ग्रंथ की रचना कर तत्कालीन साहित्यिक भाषा शिष्य पर अपने अधिकार की भी साक्षी प्रस्तुत कर दी है। यथावधि प्राप्त श्रमों की सूची निम्न है (१) डोसा माकरी जठपइ (२) मायबालस काम कंदला जठपइ (३) पैमसार रास (४) भगइरस जठपइ (५) स्तंभस पार्वेगाव स्तंभन (६) धोड़ी छन्द (७) नवकार छंद (८) प्रदानी छंद (९) गुण वाहण बीत (१०) जिन पालित जिन रसित संवि भाषा (११) पिनसिरोमणि (१२) देवी सावरी [१३] पन्थु पयसंथ विवरण।

कुचल नाम के जीवन का अधिकोप समय राजस्थान और निकटवर्ती प्रदेशों छोराट्ट-गुजरात आदि में ही बीता होगा, ऐसा इनकी भाषा के आधार पर स्पष्ट कहा जा सकता है। इनकी भाषा में गुजराती का स्पष्ट प्रभाव दृष्टिगोचर होता है जो एक जैन भाषाई होने के लिये स्वाभाविक ही था। 'डोसा-माक' की जठपइ और 'मायबालस कामकंदला' जठपइ इनकी बहुत लोकप्रिय रचनाएँ हैं। ये दोनों रचनाएँ परम्परा प्रसिद्ध प्रेमाकमान हैं और प्रकाशित हो चुके हैं। 'डोसा माक' की जठपइ का प्रकाशन नापरी प्रकाशिका तथा हाथ प्रकाशित 'डोसा-माक रा दूहा' में परिशिष्ट

के रूप में हुआ है। इसी प्रकार 'माधवानन्द कामकम्बला चरपह' का प्रकाशन 'प्राच्य संस्कार, बङ्गोवा' से प्रकाशित कवि गणपति विरचित 'माधवानन्द कामकम्बला के परिशिष्ट रूप में हो चुका है। 'विंगल सिरोमणी का एक अंश परम्परा के विंगल कोय अंक में निकल चुका है। 'स्वर्गमन पारम्परिक स्तवन और पुण्यवाङ्मय गीत' भी गुजराती विद्वानों द्वारा सम्पादित व प्रकाशित किये जा चुके हैं। 'खेय रचनाएँ' अभी अप्रकाशित हैं।

बैसल्लेरे के राजल मासदेन के मुबराज हरदास के लिए इन्होंने संवत् १६१७ में राजस्वान की प्रसिद्ध प्रेमकथा 'डोकामाक' को बोपाईबद्ध किया। इसी प्रकार 'माधवानन्द कामकम्बला' की रचना भी इन्हीं मुबराज के लिए की गई। प्रस्तुत दोनों कृतियाँ बड़ी सरस और गहिरी हैं। इन्हें पढ़कर समझा है कि कुशल नाम को कहानी कहना आता था और छंद से आता था। कथा प्रवाह समुच्च बना रहता है। रोचकता में कमी नहीं आती। भाषा समतल जान पड़ती है, जो कवि के भाषा पर अच्छे अधिकार की चोख है। तीसरी महत्वपूर्ण कृति विंगल सिरोमणि ग्रन्थ है। प्रस्तुत रचना अनेक दृष्टियों से महत्वपूर्ण है। यह समूचा ग्रन्थ मारवाड़ी भाषा—में उत्कामीन साहित्यिक भाषा में लिखा गया है और ताहटाजी के मतानुसार अद्यावधि प्राप्त मारवाड़ी भाषा के अन्य ग्रन्थ के रूप में सर्वप्रथम है और इसमें एक प्रकार 'विंगल नाममाता का भी है। यह प्रयोग (सबसे पहली अठारवी तक मारवाड़ी के लिए 'विंगल' का उपयोग शुरू हो गया था) इस ओर संकेत करता है और इस प्रकार से विद्वानों की इस चारणा का कि विंगल का प्रथम प्रयोग संवत् १८७१ में मिलता है २ समझ करता है। इन सब दृष्टियों से कुशल नाम की रचनाओं का महत्व असाधारण है।

इसी परम्परा में कवि जान के प्रेमाख्यात कुशलवीर का सीतावती रास आदि रचनाएँ प्रहीत की जा सकती हैं। मस्तु।

हम पहले देख आये हैं कि विंगल साहित्य में मुख्य रचनाओं की बहुलता है। कुछ मुख्य पर एक ही विषय से सम्बन्धित होने के कारण एक साथ संघीत होकर कथ नाम वा लेते हैं—जैसे ईसरवास का हला साधारा कुम्हसिया सूर्यमस छत नीरसवसई, बाकीवास की बचन पञ्चोत्ती आदि। ऐसी ही एक रचना डोकामाक या बुहा का परिचय हम वा चुके हैं। इनके अतिरिक्त बहुत बड़ी पादाव में साजरी कविता मिली गई है जिसमें विंगल गीतों के माध्यम से राजस्थानी जनजीवन और इतिहास मुखर हो उठा है। विंगल मुख्य काव्य परिमाण तीसरी और बीचिय में इतना अधिक है कि वह एक स्वतन्त्र अध्ययन का विषय है।

जहाँ तक विंगल धीतों के अध्ययन का प्रश्न है उसका बिकारात्मक ऐतिहासिक और कपारमक अध्ययन बीजे अध्यय में विस्तारपूर्वक किया गया है। इनका

१—मोदीमाल मैतारिया राजस्थानी भाषा और साहित्य पृ० ११

२—पीबईन चर्मा राजस्थानी कवि, भाग २, पृ० २९-३२

एक सादृशीय अध्ययन परिचित एक में प्रस्तुत है अतः उक्त पर यहाँ विवेक करने की आवश्यकता नहीं। अब हम प्रमुख द्वितीय के मुख्य कवियों एवं उनकी प्रमुख रचनाओं का परिचय प्राप्त करेंगे।

भारत आशा

इनका जन्म संवत् १५६३ के लगभग हुआ।<sup>१</sup> इनके पिता का नाम मीरा था जो जोधपुर राज्य के भास्वत गीब के निवासी थे। ये जोधपुर के राज मानदेव के कृपापात्र थे। इनकी निजी निम्न रचनाएँ उपलब्ध हुई हैं।

- (१) रावस मासा रो मुख
- (२) सत्यवामन
- (३) कोवाजी रो पेड़ी
- (४) मुख निरंजन प्राण
- (५) उमादे भटियाजीरा कवित
- (६) राज बन्धुदेवरा काक
- (७) वासजी रा दूहा

‘रावस मासारो मुख’ में कवि ने ८७ छन्दों में राज बन्धीवामन का वृणवान किया है। ‘राज बन्धुदेवरा काक कंवर चक नु जामे बरटरा कहा। एक अनोखी रचना है। इसमें कवि ने २६ विभिन्न छन्दों में राज बन्धुदेव ॥ सत्यवामन में लिखा है। एक प्रकार से प्रस्तुत रचना २६ छन्दों का कोष है। मुख निरंजन प्राण एक भक्ति-रस की रचना है। इसमें मयवान् की महिमा उसके निराली-निगुन सद्गुण-का तथा सांसारिक अक्षरता का निरूपण है। उमादे भटियाजीरा कवित-मारवाह की प्रख्यात छठी रानी-उमादे के सम्मान में रचे गये मुख्य हैं। एक नमूना देखिये—

छत्र छीमै सिधगार, सत्पन्नत अम सनाहू।  
 बरक बार मुख ऊम, नीर, रंभाजल माहू।  
 नीर गहर अम गई मुकट बैली विर पुरी।  
 बेसी परदिख्याह हंस पत रानी हसी ॥  
 गुर मुखन पैस लीला सरग शाम लखी मय रंजियो।  
 कसली राज घू, भटियाजी हम रंजियो ॥

सोसह मृ बार सजाकर धरीर में सत्यवामन को पारण किये हुए जिसके मुख से माँस बारह सूर्य चले हैं ऐसी भटियाजी उमादे ने रंभाजल के स्नान किया। बरक पहन पीछे पर सवार हो सिरोंभुषण भोटी और बालों को खोल प्रदर्शित की बेसी हुई हंस की वति से कमकर रानी स्वर्ग में पहुँची। स्वामी मासदेव का मन प्रसन्न हुआ। इस प्रकार उमादे ने राज मासदेव से अपना कठना दूर किया।

बाबजीरा हुआ—इनके मित्र बाबा कोटहिया की मृत्यु पर निकले इनके हाविक उद्गार हैं। अपनी मर्मस्पर्शिता में ये अद्भुत हैं। बाब भी इनका कबगरस बाँधें धाँस कर देता है।

ईसरदास —

ईसरदास का जन्म सम्बत् १३९५ की चैत्र सुदी नवमी को बीरपुर राज्य के अन्तर्गत माहेस नामक गाँव में एक चारण परिवार में हुआ। इनके पिता का नाम मुन्नाजी व माता का नाम जयर बाई था। दिवस के प्रौढ़ कवि आद्यात्म्य, जो अपनी बतुवाई के सिधे मारवाड़ नरेश राय साजदेव के बहुत प्रिय थे इनके चाचा और काव्यगुरु थे। ईसरदास के जन्म को लेकर दिग्गज प्रचलित है, जिससे उक्त कवन का समर्पण होता है —

पञ्चदशो पित्रात्मके, जन्म्यो ईसरदास।

चारण वरज बकार में, सप्त दिन हुनो उभास ॥

उत्कामीन सामाजिक वातावरण के अनुकूल ही जबदहर्षे वर्ष में ही इनका विवाह कर दिया गया था। बालक ईसरदास अपना बापा भी नहीं संभास पाया था कि उसके माता पिता का वैवाहिक हो गया। ईसरदास के चाचा आद्यात्म्य स्वयं बड़े कवि थे और दिवस में प्रौढ़ कविता रचिया करते थे। ऐसे बुजुर्ग चाचा की सख्खाया में ईसरदास काव्यशिक्षा व जीवनोपयोगी व्यवहारिक शिक्षा भी पाते रहे। इसकीच वर्ष की आयु में इनकी पत्नी देवबबाई का वैवाहिक हो गया। देवबबाई के समान पति-भक्ति-परायण पत्नी के स्वयंवास से उन्हें बड़ी ठेस पहुँची और सञ्चार के सभी सुखों के प्रति उनके मन में विरक्ति हो उठी।

और एक दिन ईसरदास अपने काका आद्यात्म्य के साथ इतरका यात्रा को निकले। मार्ग में जामनगर में पड़ाव लगाया गया। रातस जाम उस समय जामनगर में अभिपति थे। उन्होंने दिवस के इन दोनों कवियों का अच्छा सम्मान किया। इतरका यात्रा से लौट जाने पर ईसरदास को तो राजस भी ने जामनगर में ही रोक लिया। उन्हें करोड़ पछाव व कुछ गाँव दिये और अपना पोस पोस बना लिया। यथा—

कौड़ पछाव ईसर किया, बिबो सचाँपी गाम।

बाठा छिरोमन बेकिपी जयसर राजस जाम ॥

वहीं पर राजस भी के आज्ञा और प्रयत्नों से इनका बुररा विवाह भी हो गया। जामनगर दरबार में पीताम्बर मट्ट नामक राज-पण्डित थे जो संस्कृत के बड़े ज्ञाने बालकार और दर्शन वर्मशास्त्र पुराण आदि के ज्ञाने जात थे। ईसरदास ने ऐसे पुनवान प्रकाण्ड पण्डित के सम्पर्क में आकर बहुत सी बातें सीहीं। अपने 'हरि-रस नामक ग्रन्थ में उन्होंने अपने गुरु पीताम्बर मट्ट का आभार प्रदर्शित किया है —

जागू हूँ पहली बुद्धि, पीताम्बर बुर पाय।

पैद महारस जायसत, प्रभू बाब पछाव ॥

अर्थात् जिसकी प्रसन्नता (हवा) से मैंने प्रभवत् सम्बन्धी महारम का मेरे प्राप्त किया उन्हीं बीगास्वर मुख के चरणों को मैं सबसे प्रथम शुक कर रंगी करता हूँ ।

राज्य नाम के अतिरिक्त, इनका संबंध मरकटिमा बीगा दूरावत्, जोड़ेवा जसा हरदमलोन, जाला रायसिंह आदि से भी रहा है । इसका पता इनके विभिन्न विरारे हुए हिमाल बीगों से लगता है ।<sup>१</sup> इनके निम्नलिखित ग्रन्थ बताये जाते हैं ।<sup>२</sup>

[ १ ] हरिरस [ २ ] छोटा हरिरस [ ३ ] ज्ञानसीमा [ ४ ] गुण भागवत हंस [ ५ ] मरकट पुराण [ ६ ] गुण भागवत [ ७ ] निष्ठा स्तुति [ ८ ] ईशियोग [ ९ ] गुण बीराट [ १० ] सयापर्व (११) जाला जाला ॥ कुण्डलिका (१२) राज कैलास और (१३) वाचतिला ।

कल और रचनाओं का भी पता चलता है यथा—गुण छयाग्रव ज्ञानध्यान तथा रासलीला । प्रतीत होता है 'गुण छयाग्रव' और सयापर्व एक ही रचना है । इसी प्रकार रासलीला संभवतः रासकैलास से अभिन्न होगी । छोटा हरिरस बीगा कि नाम से विदित होता है, स्वर्णय जग्य प्रतीत नहीं होता प्रामुख हरिरस का ही संक्षिप्त संकलन ग्रन्थ होना चाहिए । साथ पदों वाले एक छोटे हरिरस का प्रकाशन भी हो चुका है । इनके अतिरिक्त दो प्रकार की फुटकर रचनाएँ और मिलती हैं । बहुते प्रकार में कवि के विभिन्न ऐतिहासिक बीग और दूसरे में प्रक्ति सम्बन्धी फुटकर पद और बीग आदि सम्मिलित हैं । इनमें जाला जाला रा कुण्डलिका और ऐतिहासिक तथा फुटकर पद और बीग आदि सम्मिलित हैं । इनमें जाला जाला रा कुण्डलिका और ऐतिहासिक तथा फुटकर रचनाओं को छोड़ कर शेष सभी रचनाएँ एक प्रकार से रत्नोक्त काव्य हैं ।

### जालाजाला रा कुण्डलिका

यह १० कुण्डलियों का एक संकलन ग्रन्थ है, जिसका सम्पादन डा० मोतीलाल मेनारिया ने किया है । यह रचना हमबद गरीब जाला रायसिंह और प्रोक्त राज्ञ के डाकुर जाला जसा बी के बीच हुए मुख की स्मृति-स्वरूप रची गई है । रायसिंह बी जसा बी के भानजे के । डा० मेनारिया ने इस विषय में प्रचलित एक कहानी का हस्तक्षेप किया है । एक बार रायसिंह बी जसा बी से मिलने प्रोक्त आये । दोनों बीच-बीच में कह रहे थे कि इतने में गयाई की आवाज सुनाई दी । जसा बी ने क्रोध से कहा कि ऐसा कोन जोरवार है जो मेरे बाँव की सीमा में गयाई बजा रहा है ? जब पता लगा कि गयाई बिस्मी के किसी मठाधीश 'मकनभारती' की हिमालय यात्रा को जाती हुई जमात का बज रहा है तब बोले 'कोई हर्ज नहीं करने दो । यह सुन कर रायसिंह बी बोले कि बाँव के पास में गयाई का बजना तो बिस्मूल स्वाभाविक है वह तो और जमातका गयाई है यदि किसी राजा का होता तो जबरन बजा कर

१—मरोत्तम स्वामी राजस्थानी और बीठ—पृष्ठ १ में

२—सर्वेस्वर मेघाभी आरधी जाने आरधी साहित्य—पृष्ठ १८३

सिंहे ? जसा भी ने गुरन्त उत्तर दिया कि ऐसी हाजत में मैं सनको छोड़कर फिक्का बैठा । यह बात रायसिंह भी को भी खूब गई । बोले-ठीक है यहाँ मेरा गनाका बनेगा और वे सठ कर हकबस चले जाये । कुछ समय परबाएँ रायसिंह भी ने बसबस सहित जोम में जाकर लगाड़ा बनाया । रायसिंह भी को जसा भी ने समझाया, पर सब धर्म । अन्त में जसा भी को रणभूमि में उतरना पड़ा । और युद्ध में, जसा भी काम आए और रायसिंह भी भी बामल हुए । बुझाराम से पहले रायसिंह भी और जसाभी दोनों ने कबि ईसरवास से युद्ध का आँखों सेका वर्णन करने की प्रार्थना की थी, जिसके फलस्वरूप इस काव्य का प्रणयन हुआ । यह कड़ाई संवत् १६२० में हुई थी । इतिहास से इस कड़ाई का तो समर्थन होता है, किन्तु उसके कारणों के सम्बन्ध में मतभेद है ।

यह बीररस की फड़फड़ी हुई रचना है और राजस्थानी भाषा की सर्वश्रेष्ठ कृतिमें में इसका स्थान है । इसकी एक प्रमुख विशेषता यह है कि बहुत से छन्दों के पहले चरणों में कोई सिद्धान्त-वाक्य कह कर बाद के चरणों में बुद्धान्तरूप में, उसे युद्ध में लड़ने वाले बीरों पर बटा कर दिखाया है । कुछ ऐसे वाक्य नीचे दिए जाते हैं —

- (१) एकरी साक्षां माग में धीहू कही के सोय ।  
सूरां बेधी ओड़ियो कसहस ठैवी होय ॥ ५ ॥
- (२) साबूजी भाषा समी विबी म कोव गिर्बत ।  
हाक बिबाभी किम सहे, बन यत्रिबी मरंत ॥ ९ ॥
- (३) सीहूनि हैकौसहि कनि छापरि भंडी बानि ।  
हुन बिढालन कापुरस बोहूका बने सिमाति ॥ १० ॥

कबि का हरिरस तो भाव भी अनेक चरों में नीचा की तरह पवित्र माना जाता है । उसका नियमित रूप से पाठ होता है ।

बुरसा आड़ा

सोमर परपने के बूबसा नामक गाँव में सं० १५९२ में बाकक बुरसा का जन्म हुआ । इनके पिता बहुत गरीब थे और जब बुरसा ६ वर्ष के ही थे, उनका देहांत हो गया । कहते हैं पितृ-संरक्षा-विहीन बुरसा को गण्डी के ठाकुर ने पढ़ाया सिखाया और योग्य बनाया । कबि बुरसा ने स्वयं स्वीकार किया है —

माये धाबीबाहुं बनम तबी नयावर बिती ।

सीहूह सुनपाता ह, पालनहार प्रताप सी ॥

( बीरों और सुकवियों का पालन करने वाले हैं प्रतापसिंह । बगड़ी के ठाकुर ! माता के जन्म क्षण होने के समान मेरे घर पर तेरा अह्वान है । )

द्विपल के अम्याम्य कवियों की जाति ही बुरसा आड़ा कलम और तलवार दोनों के बनी थे । वे कुशल मोड़ा थे । सुना जाता है कि सु० १६४० में जिस समय



सम्राट अकबर ने तिरोधिया जयमाल की साहायता के लिए जोधपुर के राजपूत और बाँसीबाड़ा के बोंसीसिंह की अध्यक्षता में तिरोही नरेश सुरताग के विशद सेना भरी तो बुरता जाड़ा भी वहीं सेना में साथ थे । दशाणी नामक स्थान पर संघर्ष हुआ । कवि जाड़ा ने इस अवसर पर युद्ध वाच्य का ध्यानदार प्रशंसा किया, परन्तु ये धामल हो गये । धामल अवस्था में ही राजसुरताग की आत्मानुसार एक स्थिति उन्हें मारने के लिए जाने बढ़ा तो उन्होंने अपने प्राणों की निशा एक चारम के नाते मानी । राज सुरताग ने जाँच के बाद जब पाया कि बुरता स्वयं चारम की है, तो वह उन्हें उठा अपने साथ ले गया और उसने उनकी चिरिटा की समुचित व्यवस्था कर दी ।

कवि ने बहुत सच्ची उम्मीदें की, जल अनुमान किया जा सकता है कि उन्होंने प्रचुर परिमाण में लिखा होगा । अभी तक इनकी विद्वत्-पद्धति की ही मजिद चर्चा हुई है, किन्तु रोज करने पर इनकी कुछ बड़ी रचनाओं का और पता चलता है । वे सभी फुटकर रचनाएँ हैं । कवि की कुछ अनेकानेक बड़ी रचनाओं के नाम ये हैं —

- (१) विद्वत् सिद्धिदारी ।
- (२) किरदार वाचनी ।
- (३) राठ भी सुरताग रा कविता ( ११ कविता )
- (४) बुद्धा सोम् की वीरमहेशी रा ( ६० चौड़े )
- (५) झूलवा रावत मेघारा ( १७ छन्द )
- (६) पीत रात्रि भी रोहितास भी टी ( १० पीत, १ कविता और २ चौड़े )
- (७) झूलवा राव भी अमरसिंह की यजसिंघी रा ( ६४ छन्द )
- (८) श्री कुमार अज्जाजी भी भूवर मोरी भी यजयत । इसकी प्रामाणिकता सन्देह्य है ।

इनके अतिरिक्त इनकी अनेक फुटकर रचनाएँ विविध स्थानों और पीतों के रूप में विभिन्न हस्तलिखित पुस्तकों के संग्रहणों में मिलती हैं । ऐतिहासिक सोचाइटी कमकता की हस्तलिखित प्रतियों में ६० के लगभग पीत भी मिलते हैं ।

### सूर्यमस्त

महाकवि सूर्यमस्त का जन्म चारणों की मिश्रण शाखा के एक प्रतिष्ठित कुल में संवत् १८७२ में बूँदी में हुआ । इनका परिवार बूँदी नरेशों का उपराज या भीर इसीलिये महाकवि सूर्यमस्त मिश्रण को एक जगह बनाया जायस मिल गया । हिन्दी के प्रसिद्ध कवि देव की यांति उन्हें इधर उधर गठकना नहीं पड़ा ।

सूर्यमस्त का शास्त्रीय ज्ञान बहुत बड़ा बढ़ा था । वे संस्कृत प्राकृत अपभ्रंश, हिमाल आदि अनेकों भाषाओं के निष्णात विद्वान् थे । वे धन्दुन शास्त्र, धर्मशास्त्र और हिंसाओं भीमता व्याकरण व्याख्यान आतिशोभ, वर्णन इतिहास आदि विषयों के अच्छे जानकार थे । बूँदी नरेश राजसिंह जी की आज्ञा से उन्होंने विक्रम

संवत् १८६७ में 'बंश भास्कर' नामक एक बृहदाकार काव्यग्रन्थ रचा या जिसमें श्री राज्ञेय का इतिहास वर्णित है। इस इतिहास में प्रसंगवश राजस्थान की अन्ध पिमासों से सम्बन्धित इतिहास भी जोड़ा बहुत जा गया है। भारतीय कवि इतिहास को प्रायः बम्भीर दृष्टि से नहीं देता। ऐतिहासिक घटनाओं के शुष्क कंकाल को अपनी कल्पना की दृष्टि से और काव्यानुभूति से समीचीन पुतला बना कर हमारे सामने रख देता है ऐसा करने में प्रायः ऐतिहासिक तथ्यों की अनदेखना हो जाती है। हमारे अविचार और काव्यों में यथा-पृथ्वीराज रासो, हम्मीर रासो आदि में हमें यही प्रवृत्ति स्पष्ट दिखाई देती है। पर 'बंश भास्कर' इसका अपवाद है। यह शुद्ध ऐतिहासिक मुद्दों पर ठीक चल रहा है। 'बंश भास्कर' की भाषा को लेकर विद्वानों में कुछ मतभेद रहा है। वस्तुतः इसकी भाषा पवित्र है जो कुश्मिन् द्विपस का अनुकरण करती जात होती है।

उनका दूसरा प्रसिद्ध ग्रन्थ 'वीर सतसई' है और अपूर्ण है। यह द्विपस का एक उत्कृष्ट ग्रन्थ है। 'बंश भास्कर' उत्कृष्ट इतिहास ग्रन्थ होने पर भी कवि की प्रतिनिधि रचना के रूप में गृहीत नहीं किया जा सकता। इस सम्मान की अधिकारी तो हमारी 'वीर सतसई' ही है। लगभग १०० शोधों में कवि ने जिस कौशल और निपुण्य के साथ राजस्थान की वीर गाथा को स्वल्प दिया है, वह आश्चर्यजनक है। राजस्थान की परम्पराओं औरों के उत्साह कायरों की आशंका, सतिनों की भावनाएं और उत्कासीन परिस्थितियों का इससे अधिक व्यस्त चित्र सावद ही कहीं मिले। उनका भावामुरजित और ओजपूर्ण वर्णन निःसंदेह उत्कृष्ट का है। भाषा प्रवाह मुक्त और प्रांजल है। अभिव्यक्ति सहज है। कवि हमारे सर्वस्व को मानों प्रभावित करता चलता है। इनका तीसरा ग्रन्थ 'अलकान्त विलास' है जिसमें उत्तम नरेश अलकान्तसिंह के चरित्र का वर्णन है। चौथी रचना छंदोमयूख नामक एक छंद सास्त्र है। कहा जाता है कि उन्होंने 'बालकृष्णवली' तथा 'सती रासो' नामक दो ग्रन्थ और भी रचे थे परन्तु ये ग्रन्थ मिल नहीं पाये हैं।

अन्ध मुक्तक रचयिताओं में केशोबास नाइक बल्लूजी कृपाराम करमानंद मेहा हरचूर आदि प्रख्यात हैं इन मुक्तक रचयिताओं को लेकर यह उक्ति प्रसिद्ध है—

कमिठे बल्लू हुं करमानन्द पाठ ईसर बिद्या श्री पुर।

छंदे मेहो भूलने मालो सूर पदे पीठ हरचूर॥

जब हम ऐसी कुछ रचनाओं पर विचार करेंगे जो विंगल में रची जाने पर भी स्थान स्थान पर द्विपसमुक्त हो जाती हैं। इन रचनाओं में द्विपस प्रबन्ध काव्यों की पद्धति को ही अपनाया है। अतः काव्यरूपों के विकास और द्विपस काव्य की प्रवृत्तियों को समझने के लिए यथावश्यक इन रचनाओं से भी सह्यता भी पई है। ऐसी बार प्रमुख रचनाओं का संक्षिप्त परिचय यहाँ प्रस्तुत है।

(१) पृथ्वीराज रासो —

जयदेवरायी द्वारा लिखित कहा जाने वाला यह महाग्रन्थ एक इतिहास अनुभूति और तर्कज्ञान की पहली बन गया है। विद्वानों का विचार भी रासो के

साहित्यिक महत्त्व के सम्बन्ध में सत्यता नहीं है, जितना उसकी प्रभाविकता और ऐतिहासिकता के सम्बन्ध में है। जग में हिन्दुओं के अन्तिम सम्राट् पृथ्वीराज का चरित् निर्मित होने के कारण प्रारम्भ में बिहानों को इसके पृथ्वीराज तथा उसके सम्पर्क में आने वाले राजाओं के बारे में महत्त्वपूर्ण सामग्री प्राप्त होने की आशा थी।<sup>१</sup> पर वह तो एक विकसमशील महाकाव्य है। कोई इतिहास जग्य नहीं।<sup>२</sup> फलतः उन्हें निराश होना पड़ा।

जिस रूप में 'पृथ्वीराज रासो' नाम उपलब्ध है, उसके विद्यालम्बन को देखते हुए रूप की दृष्टि से कुछ निश्चित कह सकना उसी प्रकार कठिन है जिस प्रकार अंग्रेजी के भाषी काव्य 'युद्धरुक्त' के विषय में निश्चयात्मक रूप से कह सकना, अंग्रेजी भाषीयों के लिए कठिन बना हुआ है। अस्तु पृथ्वीराज रासो उसी रूप में महाकाव्य की ओर झुकता हुआ काव्यरूप है, जिस भाँति अंग्रेजी का यह काव्य 'युद्धरुक्त'। प्रस्तुत प्रकरण काव्य 'पृथ्वीराज रासो' में काव्य का प्रमाण लक्ष्य अनेक और कुर्यों के वर्णन द्वारा अपने नायक के चरित्र को ऊँचा उठाना ही रहा है। इस प्रकार जिस रूप में हमें ऐतिहासिक बातों और काव्य का सम्मिश्रण हुआ है उसमें संस्कृत के ऐतिहासिक काव्यों की छाया भी मिलती है, किन्तु साथ ही संस्कृत के सर्वश्रेष्ठ काव्यों की झलक भी। ११ समयों का विन्यास इसमें बहुत कम उसी सर्वश्रेष्ठ शैली में ही हुआ है। साथ ही अथर्व वे के चरित काव्यों की भाँति यहाँ भी काव्यारम्भ बंदना आदिदेव युद्ध, बाभी, लक्ष्मीच पुराण आदि की संशोभित कर संवत्-सूचक पदों से ही हुआ है।

॥ छोटक ॥ ५ ॥

आदिदेव प्रलय काव्य कुर्यां बाभीय बंदे पदः।

छिद्यं भारण भार्यं बहुवती लक्ष्मीच कर्माध्वं ॥१॥

( पृथ्वीराज रासो पृ० १ )

इसके पश्चात् कवि वर्ण-स्तुति, कर्मस्तुति तथा पूर्व कवियों की स्तुति करता है। अपनी मनुता का यहाँ वर्णन भी है तथा कुर्म और लज्जन स्वभाव वर्णन भी यहाँ हुआ है। यह शैली अथर्व वे के चरित-काव्यों का तो स्वरूप कराती है पर साथ ही संस्कृत के महाकाव्यों की शैली को भी सामने ला खड़ा करती है।

'रासो' में पुराण शैली का कुछ भी मिश्रण है जो अनेक अवसरों की कथा के वर्णन में स्पष्ट-रिखाई पड़ता है। यद्यपि 'अमर' में तो अनेक अवसर कथा-विशोभित हुई है।

इतिहास प्रसिद्ध बातों में यहाँ उसी प्रकार अनगण्य बातों का योग मिलता है जैसा हम संस्कृत के वरनवीं ऐतिहासिक काव्यों में देख चुके हैं। किन्तु काव्यत्व की

१—अत्रविनाश भीवास्तव पृथ्वीराज रासो में कथालोक रुचिर्वा—पृ० १

२—अम्भुनाथ सिंह हिन्दी महाकाव्य का स्वल्प विकास—पृ० २७५-२७६

और कवि सम्प्रेष्ट भी है। यथा स्वातंत्र्य सङ्घा, प्रयास रात्रि, मृगया, आदिट, जगु, बन, युद्ध संयोग वियोग आदि अनेक प्रसंगों का सम्मिश्रण प्रस्तुत प्रबन्धकाव्य में हुआ है। युद्ध के प्रसंगों में कवि का कोशल अपूर्व है। यही शब्दों द्वारा आत्ममूर्त-विमान भी अनुपम ढंग से हुआ है।

॥ अथ मुञ्जरी ॥

अथ काय पंती प्रवीरान् जुग । करीसम्भ सेना विवर्ध विवर्ध ॥

बने ताल काल महा मत्स्य बीर । बुहुं बाहु सेना विवर्ध सुधीर ॥

—आठवीं समय, पृ० १७७

सूत्रों की बिलगी अधिक विविधता 'रासो' में मिलती है। उतनी अन्य काव्यों में कम दिखाई पड़ती है। प्रसिद्ध शब्दों के कारण यह विविधता और भी बढ़ गई है। इसी के कारण भाषा में भी कहीं अति प्राचीनता, कहीं अर्वाचीनता और कहीं विदेशी शब्दों का प्रयोग भी हो गया है। सूत्रों में प्राकृत के 'बाबा अपभ्रंस के 'बूहा' से लेकर सुपाव, साटक अरिस्त, मोटक तोमर, बापा, भुवन प्रयास पठरि कवित्त विर्मनी मोठीवाम आदि अनेक छंद प्रयुक्त हुए हैं। इसी प्रकार भाषा में बरबी फारसी, प्राकृत अपभ्रंस आदि सभी का पुट मिसरा है।<sup>१</sup>

(२) राजबिंसास —

मान कवि द्वारा रचित राजबिंसास हिन्दी का एक प्रमुख ग्रन्थ है। ये मेवाड़ के निवासी और विजयगच्छ के जीव रहि थे। महाराजा राजसिंह अपने समय के विष्णुसिंह हिन्दू नेता थे। ऐसे हीर सेनापति का जीवन भरित बिल उत्कीर्णता से लिखा जाना चाहिए। यही ही उत्कीर्णता से इसमें लिखा गया है। सचमुच यह हिन्दी का गौरव ग्रन्थ है।<sup>२</sup>

कवि मान कृत राजबिंसास नामकी प्रचारिणी सभा काशी द्वारा प्रकाशित किया जा चुका है। इसमें मेवाड़ के महाराजा राजसिंह (प्रथम) का जीवन भरित वर्णित है। इसकी रचना का आरम्भ सं० १७३४ में हुआ था —

सुम संवत् बस सात बरत बीतीस बचाई ।

उत्तम मास असाढ़ दिनस सप्तमि सुखबाई ॥

हिमाल पाप जुधवार सिद्धि भर जोन संपत्ती ।

हृदयकार रिति हृत्त रासि कथा सति रत्तो ॥

सिम जोस मात भिपुटा सुतवि कीनी ग्रन्थ संदान कवि ।

भी राजसिंह महाराजा को रचियाहि बस भी जगद रवि ॥

इसमें अठारह खण्ड हैं। ये बिंसास कहे गये हैं। इसकी छंद संख्या १५२७ है। प्रथम बिंसास में सरस्वती-वन्दना के अनन्तर चितौड़ के गोरी राजा बिनाम

१—सङ्कल्पना बुने काव्यरूपों के मूलधोत और लज्जा विकास—पृ० १२११

२—मोठीमान देवार्थिया राजस्थान का विगत साहित्य—पृ० १११

और बापा राजस का संक्षिप्त इतिहास दिया गया है जो दस्तकबाजी पर आधारित है। द्वितीय बिलास में बापा राजस से लेकर महाराणा राजसिंह तक के मेवाड़ के राजाओं की संघावली दी गई है। यह संघावली अमूर्त है और इतिहास में भी हुई संघावली से भिन्न नहीं जाती। उपरान्त १४८वें छंद से महाराणा राजसिंह का जीवन-वृत्तान्त प्रारम्भ होता है जो ठीक अन्तिम बिलास तक चला गया है। यह वृत्तान्त बहुत रोचक एवं काव्यशुद्धों से ओतप्रोत है और इसमें ऐतिहासिक तथ्यों का बहुत संरक्षण किया गया है। महाराणा राजसिंह की प्रशंसा में कहीं-कहीं अशक्ति बरस गई है। जैसे —

अजमेरहु अम्यरी बाक बिस्नी बर भुज्जी ।

रिं भहु रजतसै सन्धि साहोर सुटिक्की ॥

बुराछान खंवार बाट मुनछान वरकै ।

बन्हेरी बलबसय भीति उज्जैनि धरकै ॥

मंडवहु भार धरती भित्तय हुसय बैस भुज्जत डर ।

औरक साहि औरय अति राज छवल राजेस वर ॥

परन्तु यह राजाभित्त कवियों की परम्परागत काव्य शैली का अनुकरण मात्र है। इस प्रकार का अत्युक्तिपूर्ण वर्णन अन्य, भूपथ इत्यादि हिन्दी के और भी कई कवियों ने किया है।<sup>१</sup>

राजबिलास की भाषा कवभाषा है। परन्तु इसमें द्विपद भाषा के शब्दों का भी प्रचुर प्रयोग हुआ है।

(३) हुम्मीर राखी —

हुम्मीर राखी के रचयिता जीवराम आदि षोडश कुतोत्पन्न ब्राह्मण थे। इनके पिता का नाम बालकृष्ण था। ये अजमेर राज्य के भीमराजा ठिकाने के बाजीरदार चन्द्रमाल के आभित थे और अपने आभयदाता की आज्ञानुसार इन्होंने हुम्मीर राखी का निर्माण किया। कवि अपनी बंध परम्परा के अनुरूप ही उपोत्पि व काव्य धारण का अक्षय्य जानकार था। एक बार भीमराजा के ठाकुर चन्द्रमाल ने अपने दरबार में कहा कि मैंने 'हुम्मीर राखी' का नाम मात्र सुना है किन्तु उसे सुनने का अवसर नहीं मिला। अपने आभयदाता की इस अभिलाषा को पूरा करने के लिए जीवराम ने स्वयं 'हुम्मीर राखी' की रचना की। इस कार्य के लिए उन्हें अपने आभयदाता से पर्याप्त धन-सम्पत्ति और सम्मान मिला। कवि ने स्वयं आभार प्रकट करते हुए कहा है कि राजा ने उन्हें 'जयाजी' बना दिया।

भुज करी कृपा तिहि वर अपार ।

बन धरा बाजि गृह बसन सार ॥

बाहुन अनेक सतकार भूरि ।

सब भीति जयाजी कियी भूरि ॥

( हुम्मीर राखी पृ० ३ )

बोबराम का एक मात्र आद्यतन ग्रन्थ 'हम्मीर रासो' ही है जिसको संवत् १७८५ में कवि ने पूर्ण किया था इसमें कुल २६६ पद हैं। प्रारंभ में गणेश तथा सरस्वती की वन्दना की गई है। तबुराम्ण पुष्पीराम के कुल में उत्पन्न चंद्रनाम का वर्णन करते हुये कवि ने अपना परिचय दिया है। परंपरागत पद्यों का अनुकरण करते हुए कवि ने हम्मीर की वंशावली दी है। 'हम्मीर रासो' काव्य का चरित नामक 'राज हम्मीर अनेक अनुसृष्टियों और लोक कथानों का जम्माबादा रहा है। 'विरिवा ऐल हम्मीर तूठ, चढ़ै न डूबी बार' की कहावत का आर्षवन राव हम्मीर बड़ा वीर, निर्भीक वीर साहसी पुष्प था। उसको लेकर अनेक किम्बदंतियों का प्रचलन हो गया है। ऐसे लोकप्रिय चरित्र को लेकर कवि ने अपने नैपुण्य का प्रसी माति निर्वाह किया है। महत् चरित्रों को लेकर कविता लिखना बड़ी टेढ़ी चीज है। कवि ने इतिहास की मांग की परवाह नहीं की किन्तु लोक-चरित्र और काव्य की आवश्यकताओं को समझा वीर उनका पालन किया। यही कारण है कि उसके इस ग्रन्थ में स्वान स्वान पर सबस और रस सिद्ध पंक्तियाँ बीच पड़ी हैं। यथा —

तूठ ती राव हम्मीर की वीर रावन की टेक।

सत रावा हरिचन्द की, वजुंग बाच अनेक ॥

• • •

मही टेक छोड़े नहीं, भीम चौंघ करि बाय।

भीठो कहा बंगार की साहि बकोर बुपाय ॥

'हम्मीर रासो' एक वीर रस का काव्य है। कवि ने इसमें पूरी सफलता पाई है। बकीर मेनारिया जी के बोबराम की कविता मनोहर वीर वीरोत्साहिनी है। भाषा सैली सरस और चित्ताकर्षक है। किन्तु कवि को वीर के अतिरिक्त अन्य रसों में भी अच्छी सफलता मिली है। ग्रन्थ के प्रारंभ में पद्मावति की उपस्था संव होने की कथा के बहाने कवि ने पञ्चानु वर्णन और प्रसंगगत प्रकृति चित्रण की परिपाटी का पालन किया है किन्तु यह महज परिपाटी का निर्वाह मात्र ही नहीं है। वीर काव्य प्रवेष्टा अन्य कवियों की तुलना में बोबराम को इस क्षेत्र में भी समूहपूर्व सफलता मिली है। श्रु गार रस में भी कवि बिना किसी विशेष प्रयास के ही सफल हुआ है। बोबराम की भाषा विप्लव है किन्तु जनपतीय शब्दों का भी आवश्यकता के अनुकूल उपयोग किया गया है। भाषा का प्रयोग प्रसंगानुकूल हुआ है। वीर रस के प्रसंगों में विप्लव की परंपराओं का भरपूर उपयोग किया गया है तो श्रु गार के अन्तर पर जनभाषा के सहज माधुर्य की रसा भी नहीं है। कवि का वास्तव में भाषा पर विपुल अधिकार था। भाषा का सहज अकृत्रिम स्वरूप सरस प्रवाह, रचना घोष्ठर सभी इस रस्य की पुष्टि करते हैं। डा० जयनारायण तिवारी ने लिखा है 'हम्मीर रासो' का अध्ययन कर लैने पर यह निष्कास हो जाता है कि कवि बोबराम का भाषा पर पूर्ण अधिकार था। वीर उडे माबानुकूल बचाने की कला में वे निष्णात थे। 'भाषा की दृष्टि से निरंखे हम्मीर रासो एक सफल रचना है।

## (४) बंधमास्कर —

बंधमास्कर के रचयिता बीरसावतार महाकवि सूर्यमल विमल के अग्रिम महाकवि थे। इनका संक्षिप्त परिचय हम बीरसतई पर विचार करते समय जान चुके हैं। यह ग्रन्थ संवत् १८३७ में लिखा गया। टीका समेत ४३६८ पृष्ठों में छपा है। मूल ग्रन्थ प्रायः २५०० पृष्ठों का है। इसमें विविध छंदों द्वारा मुख्यतया भू-श्री राज्य का वर्णन है और नीच रूप से अनेकानेक विषयों एवं कथाओं के सामोपाम भारी कथन है। यह ग्रन्थ महाकाव्य है। बंधमास्कर की कविता में प्रभाव भूष नहीं है, अत्यंत शुद्ध और विलस्य है, यहाँ तक कि हिप्पनी से भी आशय सुप्रमत्ता से नहीं आता। इसका एक बहुत बड़ा कारण सूर्यमल भी की भाषा की क्लिष्टता है। कहीं कहीं तो इन्होंने अपने निच के बहुत शब्द एक सिद्ध हैं भी अनावश्यक रूप से पाठक की नजर में डाल देते हैं।<sup>१</sup>

बंधमास्कर की भाषा के विषय में विद्वानों में काफी मतभेद बता जा रहा है। श्री सूर्यकर भी पारीक ने इसे कृत्रिम विमल कहा है। श्री मेनारिया भी ने बंधमास्कर की भाषा को न शुद्ध विमल माना है, न शुद्ध पिचल। उसे वे चारनों की छिचड़ी भाषा मानते हैं, जिसमें संस्कृत, प्राकृत, वैद्यापी, अपभ्रंश, अवभाषा आदि कई भाषाओं के शब्दों का प्रयोग हुआ है और क्रियापद संयोजक शब्द कारक-विभक्ति भी विमल और पिचल दोनों के मिलते हैं।<sup>२</sup>

वस्तुतः बंधमास्कर की भाषा पिचल है और उसमें अत्यंत अल्प भाषाओं का उपयोग भी है। भीत तो शुद्ध विमल में रहे बने हैं। बंधमास्कर के कुछ वर्णन बड़े रोचक हैं। जिस समय सूर्यमल युद्ध का वर्णन करना आरंभ करते हैं, वे किसी भी बात की जाहूरी नहीं छोड़ते, युद्ध सम्बन्धी किसी विषय को अस्पष्ट से नहीं देखते। सेनाओं की मूठभेड़, वीरों का अवसाद कायरों की भयवह, जामल वीरों का कहना बन्दन इत्यादि के सिवा जिस समय बीड़ा बार करता है उसकी तलवार कैसी बीज पड़ती है, रक्त की छरिया किस प्रकार जल तक सम्म करती हुई समर स्वप्नी में प्रवाहित होती है और मोक्ष के लोभ से नाथों पर बैठे हुए पीव दूर से कैसे बीज पड़ते हैं आदि बातों का जगना प्रकार की उपमा-अलंकारों द्वारा वे ऐसा सुन्दर, ऐसा स्पष्ट और ऐसा सबल प्रामुख गाँवते हैं कि पड़ते ही हृदय सहसा हिल जाता है।

यहाँ तक राजस्थानी गद्य के विवेचन का प्रश्न है उसे हम पीछे अध्याय में विस्तारपूर्वक से चुके हैं। यहाँ यहाँ उस पर विचार नहीं किया जायेगा।



## डिंगल : प्रवृत्तियों और काव्यरूप

डिंगल काव्य काव्य भाषा के काव्यों की तरह हैं प्रबन्ध और मुक्तक के रूप में विभाजित किया जा सकता है, फिर भी इसमें अन्य काव्य रचनाओं से बहुत अंतर है। प्रबन्ध काव्य के अन्तर्गत महाकाव्य और खण्डकाव्य गृहीत किए जाते हैं परन्तु डिंगल में रासो, प्रकाश विद्यास, कणक, छंद, वैशि, प्रबन्ध आदि नामों से अनेक प्रबन्ध काव्य मिलते हैं। रासो नामक रचना महाकाव्य भी हो सकती है।<sup>१</sup> वह खण्डकाव्य भी हो सकती है।<sup>२</sup> वही बात अन्य अनेक लिखे नामों की रचनाओं के सम्बन्ध में लागू होती है। इन सब कृतियों में वस्तु सम्पादन, विस्मय विधान, और धैर्यी में नगण्य-सा ही अंतर रहता है, जैसा कि जाये बस कर हम देखेंगे।

### डिंगल प्रबन्ध काव्य

प्रबन्ध काव्यों के रूप में अपभ्रंशकाल से आज तक अनेक कृति लिखे जाते रहे हैं। ब्रम्हासर्वो, उपासर्वो व अनेक कारणभाटों के संग्रहों में ऐसे अनेक ग्रन्थ उपलब्ध होते हैं। जैसे ही इन प्रबन्ध काव्यों में विषय और अभिव्यक्ति की दृष्टि से काफी भिन्नता देख पड़ती है परन्तु मोटे तौर पर सबसे कुछ सामान्य विशेषताएँ मिल जाती हैं।<sup>३</sup> ये प्रबन्ध काव्य किसी राजा, सार्वत अथवा कवि के उपास्य देव के चरित को उपनीत्य बना कर लिखे गए हैं। कुछ काव्य ग्रन्थों को अपवाद स्वल्प छोड़ कर, हम सभी प्रबन्ध काव्यों में विषय वस्तु के ऐतिहासिक आधार परचार्य श्रीधर, वास्तविक आकस्मिक और सहज अभिव्यक्ति का अभाव पाते हैं। इन प्रबन्ध काव्यों में तथ्य और कल्पना, इतिहास और रोमांच का विविध सम्मिश्रण है।<sup>४</sup> ऐसा करने में कवि को नीर रस का वर्णन करने के लिए अनेक कल्पित युद्धकार्यों की

१—पृथ्वीराज रासो, रामरासो राजकणक, सुम्मानरासो आदि

२—राठ बीरसीरो रासो, वैशि क्षिरण स्कमनीरी, नावदमन, नीरमावन, बीरछदे रासो आदि।

३—कन्नडनाथ सिंह हिन्दी महाकाव्य का स्वल्प विकास—पृ० १९७-२००

४—हजारीप्रसाद द्विवेदी हिन्दी साहित्य का आधिकारिक—पृ० ७१



उद्भावना करनी पड़ी है। सुन्दर राजकुमारियों का हरण और ऐसा करने में मूढ़ बल कवि को अपने चरित नायक के सोय प्रदर्शन का अवसर मिल ही तो गया। उसकी उदात्त कल्पना और वाच्यकीयता अजीब सा समीक्षा देता है। हमारे विद्वान इन वर्णनों में ऐतिहासिकता ढूँढ़ने की बर्बक भूल कर बैठे।<sup>१</sup> उन्हें निराश होना पड़ा और फिर वे लोग एक स्वर से इन वाच्य प्रश्नों को महारहीन समझने लगे। वाच्य से वाक्य के कर्म की सम्पीड करना चतुराई नहीं कही जा सकती। अस्तु—

विवाहों के बाद ऐसा आराम। इससे कवि की सृष्टिक प्रवृत्ति को तुल्य कर धमने का सीका मिलता था। बहु मृगया, परचय, संयोग और वियोग मृगार, बाह्यमासा, पद्वन्तु वर्णन आदि अनेक परम्परागत अस्तु विन्यास का आश्रय ले लेता था, और अपने काव्य को अधिक रमणीय बना देता था।<sup>२</sup> इस समय के साहित्य की कथानक कविता और मुख्य प्रवृत्तियों पर अत्यन्त विचार किया गया है, अतः अभी हम इस विषय को नहीं उठावेंगे।

प्रायः सभी प्रबन्ध काव्यों में चरित नायक की बधावनी ही गई है। इन वर्णनसिद्धों का प्रारम्भ बहुधा किसी विध्यगुणोत्पन्न महापुरुष या देवी, देवताओं से जोड़ा जाता है। ऐसा करने में कवि कोई अनौचित्य नहीं देखता। उदाहरण के लिए रासो के चरित नामक का अन्त्य अग्नि से उत्पन्न बंस' विशेष में बताया गया है।<sup>३</sup> और 'सुरज प्रकाश' में कवि करवीरान ने राज-वंशावली का प्रारम्भ ब्रह्मा से किया है।<sup>४</sup> इस परिपाटी का निर्वोह प्रायः सभी प्रश्नों में किया गया है।

कथा उत्पत्ति में बुद्धता और रीतिरक्ता माने के लिए कवि ने अनेकों बार अति प्राकृत प्रसंगों की भी अवतारणा की है। किसी भी ऐसी संभाव्य घटनावली की उद्भावना करने में कवि को कोई हिनक अनुभव नहीं होती थी, जो उसके व्याभ्यस्तता के सीर्य, साहस, चतुराई, वानशीमता आदि बल गुणों को प्रशंसित करने में अथवा अपने बहुशेखर ज्ञान का परिचय देने में सहायक हो सकती थी। अतः सभी प्रबन्ध काव्यों में अतिप्राकृत प्रसंगों की उपलब्धि होती है।<sup>५</sup>

रास, रासक, रासो, रासा, रासी, रासत रसावन, रासलो रासु आदि नामों से बुकारे जाने वाले काव्य प्रश्नों की बहुत बड़ी संख्या द्विगत साहित्य में उपलब्ध है। कभी कभी यह प्रश्न उठता रहता है कि इन सबमें भेद है अथवा ये सभी एक पर्याय हैं। गुरुत्तम स्वामी की धारणा है कि बीर रस प्रधान काव्य को रासो संज्ञा दी जाती थी और बीर रसेतर काव्य रास कहलाते थे।<sup>६</sup> किन्तु डा० दसरथ मोसा ने

१—हजारीप्रसाद द्विवेदी हिन्दी साहित्य—पृ० ३९

२—हजारीप्रसाद द्विवेदी हिन्दी साहित्य का आधिकार—पृ० ७२-७३

३—कविराज मोहनसिंह पुष्पीराम रासो—पृ० १६

४—गोवर्द्धन वर्मा प्राचीन राजस्थानी कवि—खण्ड २ पृ० ६१

५—गोवर्द्धन वर्मा प्राचीन राजस्थानी पीठ—भाग ६—सूचिका—पृ० ९

६—डा० दसरथ मोसा रास और रासावली काव्य—पृ० १

सप्रमाण सिद्ध किया है कि स्वामी जी की यह बारम्बार सम्प्रभुता नहीं है।<sup>१२</sup> रास रासक रासो एकार्यवाची शब्द हैं। इनमें कोई भेद नहीं है। इसके पहले कि हम रासो के क्रमिक विकास का अध्ययन करें हम इसकी उत्पत्ति के सम्बन्ध में विभिन्न विद्वानों के मतों को जान लें, उचित होगा। रासो के विकास के सम्बन्ध में निम्न प्रमुख मत हैं—

१—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने बीरबलदेव रास में प्रयुक्त रसामय शब्द से रासो की उत्पत्ति मानी है।<sup>१</sup>

२—फ्रांसीसी विद्वान मार्सीस ठाडी के अनुसार इसकी उत्पत्ति राजसूय से है।<sup>२</sup>

३—रामचन्द्र वर्मा इसे रसस्य से उत्पन्न मानते हैं।

४—मुंशी देवीप्रसाद के अनुसार रासो के मायने कथा के हैं। यह कही शब्द है एक वचन रासो और बहुवचन रास।<sup>३</sup>

५—शिवसेन राजादेश से रासो की उत्पत्ति मानते हैं।<sup>४</sup>

६—मोटीसंकर जोषा के अनुसार रास शब्द ही प्रयुक्त है और इसकी उत्पत्ति संस्कृत रास से है।<sup>५</sup> इस मत को डा. बरारज जोषा उचित नहीं मानते। उनकी मान्यता है कि रास शब्द वस्तुतः संस्कृत भाषा का नहीं है, प्रस्तुत देवी भाषा का है जो संस्कृत बन गया है।<sup>६</sup>

७—मंडित मोहनबाल बिन्नुनाम पंडवा के अनुसार हिन्दी रासो शब्द संस्कृत रास वचन रासक से उत्पन्न है।

८—मोटीनाम मेनारिया के अनुसार बरिय काव्यों में रासीशब्द मुख्य हैं। जिस काव्य ग्रन्थ में किसी रासो की कीर्ति निम्न, मुख बोरता आदि का विस्तृत वर्णन हो, उसे रासी कहते हैं।<sup>७</sup>

९—श्री विश्वनाथप्रसाद मिश्र रासो की उत्पत्ति के लिए रासक शब्द को आधार मानते हैं।<sup>८</sup>

१—डा० बरारज जोषा रास और रासामयी काव्य—पृ० २

२—रामचन्द्र शुक्ल हिन्दी साहित्य का इतिहास—पृ० २८

३—मार्सीस ठाडी हिन्दुई साहित्य का इतिहास—डा० माहेस्वरी द्वारा उद्धृत

४—रामचन्द्र वर्मा प्रायोगिक हिन्दी कोश—पृ० १११

५—मुंशी देवीप्रसाद सरस्वती—भाष ३—पृ० १८

६—वही—पृ० १७

७—सम्मेलन पत्रिका भाग ३३, संख्या १२—पृ० १७

८—बरारज जोषा हिन्दी नाटक उद्भव और विकास—पृ० ७०

९—सम्मेलन पत्रिका—भाग ३३, संख्या १२—पृ० १७ पर उद्धृत

१—मोटीनाम मेनारिया रामस्वाम का पिबल साहित्य—पृ० २४

११—विश्वनाथप्रसाद मिश्र हिन्दी साहित्य का अतीत—भाग १

- १०-कुछ भोज राजपूतवासी रचना को रासो मानने के पक्ष में हैं, किन्तु यह मत एकांगी है ।
- ११-रासो, रायसो का अर्थ सगङ्गा, पञ्चङ्गा या उद्यम को लेकर इस आधार पर भी रासो की व्युत्पत्ति बूझने की चेष्टा की गई है ।<sup>१</sup>
- १२-गुजराती साहित्य के विद्वान के० का० घाटगी के अनुसार रास या रासक मूलतः नृत्य के साथ याई जाने वाली रचना विशेष है ।<sup>२</sup> इसी मत का समर्थन संस्कृत विद्वान डोसटराय माकड़ भी करते हैं ।
- १३-हजारीप्रसाद द्विवेदी ने रासो और रासक को पर्याय मानते हुए हैमचन्द्र के काम्यानुशासन के आधार पर इसे विषय-विषय-रूपक माना है ।<sup>३</sup>
- १४-कुछ विद्वान गुजराती लोकगीत-नृत्य करवा को रास का उत्तराधिकारी मानते हैं । रास बहुधा विषय-वस्तु से कुछ, रोहा-बीपाई आदि भाविक-छंदों में लिखा जाता था ।<sup>४</sup>
- १५ डा० माताप्रसाद गुप्त के छन्दों में विविध प्रकार के रास, रासावलय रासा और रासक-छंदों, रासक और माद्व-रासक उपनाठकों रासक, रास तथा रासो-नृत्यों और नृत्यों से भी रासो प्रबन्ध परम्परा का निकट का सम्बन्ध रहा है यह निश्चय रूप से गृहीत कहा जा सकता है । कदाचित् यही ही रास है ।<sup>५</sup>
- १६-सं० २० मजूमदार के अनुसार पहले बर्मोपदेश ही रासाओं का मुख्य हेतु था । फिर उपदेश में कथा-तत्त्व और चरित्र-संकीर्तन आदि-छंदों का समावेश हुआ । साहित्य-स्वरूप की दृष्टि से रासक एक नृत्य-काव्य जबकि विषय-रूपक है ।<sup>६</sup>
- १७-डा० विजयराय क० वैद्य रास या रासो को छन्द, राय, भाविक कथा आदि विविध छंदों से कुछ देखते हैं ।<sup>७</sup>
- १८-डा० दशरथ शर्मा के अनुसार रास के मूल्य अभिनय और विषय-वस्तु इन्हीं तीनों में से समग्र पाकर परस्पर मिलते-जुलते किन्तु साहित्य की दृष्टि से विभिन्न तीनों प्रकार के रासो की उत्पत्ति हुई । कुछ नृत्य-विशेष रास कहलाये-इसी प्रकार छन्द रास और रासक उपरूपक बने ।<sup>८</sup>

१-बीरनाथ खेतान साहित्य संक्षेप-वर्ष १९-अंक ११-पृ० ४२०

२-के० का० घाटगी आपका कविजी याग-१ पृ० १४३-१४२

३-लेखक से हुई लिखी चर्चा में तथा माजी-वैद्य २००४ में प्रकाशित उत्तर ।

४-हजारीप्रसाद द्विवेदी हिन्दी साहित्य का आधिकारिक-पृ० १९

५-केटनार आफ गुजराती एण्ड राजस्थानी मैग्जिस्ट्रियट्स इन इण्डिया मासिक ।

६-माताप्रसाद गुप्त हिन्दी अनुजीवन-वर्ष ४-अंक ४

७-सं० २० मजूमदार : गुजराती साहित्यकी स्वरूप-पृ० १९-३१

८-विजयराय क० वैद्य गुजराती साहित्यकी स्वरूप-पृ० १९-२०

९-दशरथ शर्मा साहित्य संक्षेप-मुंबई १९५१-अंक १

११-डा० हरिवन्धन धायानी ने सन्देश रासक में प्रयुक्त 'रासा' नामक छंद की चर्चा की है। अपने मत की पुष्टि में वे विरहोक्त के वृत्तत्राणि समुच्चय के रासक और स्वयंमुच्छब्द के रासा छंदों का हवाला देते हैं।<sup>१</sup> इसी प्रकार डा० विपिनबिहारी त्रिवेदी ने पुष्पीराज रासो में पाँच स्थलों पर रासो छन्द प्रयुक्त होने की सूचना दी है। उनके अनुसार इतना तो कहा ही जा सकता है कि एक समय रासा या रासो काव्य में अनेक विविध छन्दों का व्यवहार इष्ट होकर साद्विस्तृत हो गया था।<sup>२</sup> छन्द प्रभाकर<sup>३</sup> और हिन्दी छन्द प्रकाश में रासक और रास को एक छन्द विशेष बताया गया है।

१०-कई विद्वानों का यह भी मत है कि रस पूर्व होने से यह रचना रास कहलाई। अपने मत के समर्थन में वे सावित्रस्तुरि रचित 'रच-मांडव चरित रासु' का निम्न उल्लेख देते हैं—

रासि रचाउनु बुधीजई।

जिससे वह रास रासक और रोजक काव्य रूप का इसी से जैनो ने रसमय बाणी में धर्मोपदेश देने के हेतु 'रासा' की रचना की।<sup>४</sup> इसी मायदा को क० मा० सवेरी मानते हैं।<sup>५</sup>

२१-भागवत में रास शब्द का प्रथम गीत-नृत्य के लिए हुआ है। जिसमें अर्जुन आदि अनेक रागों का भी प्रयोग किया जाता था।<sup>६</sup>

२२-रास खेलें जाते थे, इसके लक्ष्य अनेक स्थान पर मिलते हैं। आगे चल कर इस वृद्धि से विस्तृत विचार किया जायेगा। सारदा उलय ने भावप्रकाश में तीन प्रकार के रासक बताये हैं।<sup>७</sup> और उपर्युक्तों के अन्तर्गत 'रासक' नामक गेय-नाट्य

१-मायाजी सन्देश रासक-अष्टमी श्रुतिका छन्द विवेचन।

२-विपिनबिहारी त्रिवेदी रीवातट समय-श्रुतिका-१३४ १३५

३-जगन्नाथप्रसाद भागु छन्द प्रभाकर-पृ० ३९

४-रजुनन्दन सास्त्री हिन्दी छंद प्रकाश-पृ० २४३

५-कुर्चर रासावली पायकनाथ जी० सिरिज में प्रकाशित।

६-चन्द्रकान्त मेहता मध्यकालीन साहित्य प्रकारो-पृ० १०७

७-ड० एम० सवेरी माहस एटोमस इन गुजराती लिटरेचर।

८-भीमबुमानवत्-वसन्तकवच-अध्याय ३३-श्लोक ३

रासोत्सव शम्भुवृत्तो गोपीमण्डल मंडितः।

९-भीमबुमानवत्-वसन्तकवच-अध्याय ३३-श्लोक १०

तदेव बुधश्रित्ये तस्मै धामे न मठ दात्।

१०-सारदा उलय भावप्रकाश-भावकनाथ जी० सिरिज

सदा रासक नाम रचाउल्लेख रासकमयेत्

एव रासकमकयु तथा मण्डल रासकम् ॥

का उत्प्रेरक दिया है।<sup>१</sup> हैमचन्द्र,<sup>२</sup> बागमर, व कविबाल विष्णुनाथ का भी बड़ी मल है।<sup>३</sup> रासक एक ऐसा कीमती और उल्लस-मैय-मग्न-है जिसमें अनेक नर्तकियाँ होती हैं, अनेक प्रकार के तान और लय होते हैं और योग्य ठर के मुगल होते हैं।<sup>४</sup> हिन्दी में भी इसे उपकरणों में से एक माना गया है।<sup>५</sup>

२३—हिन्दी साहित्य कोष में लिखा है कि रासो नाम से अभिहित कृतिवाँ दो प्रकार की हैं—एक तो बीत नृत्य परक है और दूसरी एतद् वैविध्य-परक है। नृत्य-बीत परक या रास कविमी रासनाथ तथा गुमराज में विशेष रूप से समृद्ध हुई और एतद्-वैविध्य-परक या रास पूर्वी राजस्थान तथा क्षेत्र हिन्दी प्रदेश में अधिक विकसित हुई।<sup>६</sup>

इन सब उल्लेखों से निम्न तथ्य स्पष्ट हो जाते हैं —

१—भारत में रासक नृत्य-बीत-परक अभिनेय रचना थी।

२—कालांतर में उसके इन तीनों कर्णों का विकास हो उठा फलस्वरूप रास का प्रकाश जो कुछ बीत-नृत्यपरक रचना है, रास का क्याम भी माहृतपरक है और एतद् वा काव्यात्मक रास प्रत्यक्ष जो व्यवसाय और साहित्यिक रूप ग्रहण कर बैठे।

३—रासो की उत्पत्ति रासक जाति नृत्य-बीतपरक ही हुई।

अब हम रासो के इन तीनों प्रकारों के विकास को—एवं काव्यरूप को समझने की चेष्टा करेंगे।

रासक सम्बन्ध नाट्य शास्त्रों में नृत्य और नाट्य दो कर्णों में व्यवहृत हुआ है। अमिपुराण के अध्याय ३२८ में नाटक के २७ प्रेरों में रासक नाम का उल्लेख मिलता है, किन्तु उल्लेख स्वयं वर न हो उठे उपकरण की संज्ञा ही। बी बर्दी है और न उसके

१—पारबातनय भावप्रकाश काव्य व प्रसन्न नाट्य रासक रासक तथा वस्तुपरक व हस्तोद्यमय पुनर्लिका पि च ॥

२—हैमचन्द्राचार्य काव्यानुशासनम्  
प्रेर-कोमिका भाग-प्रस्थान-पिचक-नामिका प्रेरक रसाकीर-  
हस्तोद्यक रासक-मोक्षी-मी वरित रास काव्याधि ॥

३—विष्णुनाथ साहित्य दर्पण १।९  
नाटिका नाटक मोक्षी सट्टक नाट्य रासकम्  
प्रस्थानोत्ताप्यकाव्यमि प्रेरक रासक तथा ॥

४—वही -

अनेक नर्तकी योग्य चित्र तास मयान्वितम् ।  
नाचतु-पटित मुगला शासक मयुभीरुतम् ॥

५—मोठाराम कपुर्वी समीक्षा सास-पृ० ८९९

६—हिन्दी साहित्य कोष-पृ० १२९

संज्ञकों पर प्रकाश ही डाला गया है। अभिनवपुराण से पहले नाट्यशास्त्र में नाट्य के रस व रसों का वर्णन मिलता है पर वहाँ भी रासक का उल्लेख पाया है। जो इस बात का द्योतक है कि अभिनवपुराण की रचना के समय तक रासक को रस-रसक का स्थान नहीं मिल पाया था।

यद्यपि रासकपद में मूल्य के साथ रसों का नामोल्लेख है किन्तु इन्हें कहीं भी उपरसक की संज्ञा नहीं दी गई है। इसी तरह अभिनव भारती में रासक का उल्लेख है किन्तु उसे उपरसक नहीं माना गया है।<sup>१</sup> हेमचन्द्र के काव्यानुशासन में रसकाव्यों के अंतर्गत रासक नाम मिलता है। तात्पर्य यह है कि हेमचन्द्र तक आते-आते मूल्य के एक भेद रासक ने रसकाव्य की स्थिति प्राप्त कर ली। सारदाशरण के मत को हम पहले बता चुके हैं। आगे चल कर विश्वनाथ ने रासक को स्पष्टतया उपरसकों की कोटि में परिगणित किया है। (उद्धरण संख्या ४३ ४४ देखिये।)

हिन्दी नाटकों का उद्भव और विकास ऐसे ही रासों से हुआ इस कारण के विरोध में डा० जीताशंकर व्यास हैं। वे इसको विचार कर लेना मानते हैं।<sup>२</sup> इसमें तो कोई संदेह नहीं है कि रास संज्ञक रचनाएँ खोजी जाती थीं। ऐकान्तिकी रास में रास की अभिव्यक्ति का उल्लेख है<sup>३</sup>—

रसहिए रसए ओ रासु, सिरि बिजय सेपिदुरि निम्नबिडए ।

नाट्य की रचना बीचतरेव रासों में एक उद्धरण देना मिलता है जिसके आधार पर रास के रस में मूल्य साथ एवं रस के प्रयोग का प्रमाण पाया जाता है। —

सरसति सामथी करत हूत पसाव ।

रास प्रणासतं बीसलसे रास ॥

सैना पदसह माइली ।

इसी रास में दूसरा उद्धरण विचारणीय है<sup>४</sup>—

सावकहार माइह भर पाई ।

रास कह समबह बंसली माई ॥

रास कह समबह नू बरी ।

माइली माइली बीरा होइ ॥

बारली माइली छविमा ।

रास प्रणास ईनी बिबि होइ ॥

१—उद्धरण बोझा रास और रासान्वयी काव्य—पृ० ३

२—जीताशंकर व्यास हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास—भाग १ पृ० ४१४

३—उद्धरण बोझा रास और रासान्वयी काव्य पृ० ११४

४—सरसजीवन वर्मा बीचतरेव रासों—पृ० ४

५—सरसजीवन वर्मा बीचतरेव रासों—पृ० ५

उपयुक्त उद्धरण के अनुसार रास के गायक अपना स्वर ठीक करके बाँसुरी बजा बजाकर रास के साथ नर्तन करते हुए रास का अभिनय करते हैं। मध्य की रासमें इसी कम सजग होती है और बाहर की पंढली सजग हैं। इस प्रकार रास का प्रकाश होता है।

बीरहूनी राताग्री में रास के अभिनय का प्रमाण 'सुन्दरेश'¹ रासु' के आधार पर इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है —

बहसह सहस्र धमनसंघ साधम मुषर्षता ।  
 ओवह उण्ठमु विनह मुषनि मनि हरण परता ।  
 सीछे तासाराम पकह बहु भाट पईता ।  
 अनह मकुटरास ओहई छोसा नाचता ॥

इस उद्धरण में भी भाटों के द्वारा रासा रास का पढ़ना वर्णित है किन्तु साथ साथ ही नाचते हुए मकुटरास का खेलना भी दिखाया गया है। यही पद्धति सभी लोक नाटकों की है। जिन्होंने कभी घटा-मान का अभिनय देखा होगा उन्हें ज्ञात होगा कि एक ही कथानक को गीत एवं नर्तन के द्वारा सुषपत् किस प्रकार किया जाता है।

रास के ये कथकन में क्रमिक विकास हुआ है। इस विषय में पत्र पत्रिकाओं में समय समय पर लेख प्रकाशित होते रहे हैं। यही संक्षेप में प्रो० मं० र० मजुमदार के मत का सारांश दे देना पर्याप्त होगा।

साहित्य-रचक की दृष्टि से 'रासक' एक मुख्य काव्य या नेत्ररूपक है। संस्कृत नाट्यशास्त्र के ग्रन्थों में 'रासक' और 'नाट्य रासक' नाम से दो उपरूपकों की टिप्पणी प्राप्त होती है। कुछ लोग इस उपरूपक को 'मृदकाव्य' कहते हैं और हेमचन्द्र इसे गेयरूपक मानते हैं। इसका अर्थ यह है कि (१) इसमें संगीत की भाव अधिक होती है। (२) पूर्वकथावस्तु अंशों के माध्यम से वर्णित होती है। (३) सर्व सेव पत्र पूर्ण अभिनेय होने चाहिए।

प्रो० मजुमदार 'संक्षेप रासक की अभिलेखता का परीक्षण करते हुए लिखते हैं—'संक्षेप रासक के सभी छंद नेय है और इसकी समस्त कथावस्तु अभिनेय है इसलिए यह गेयरूपक है और यह नाटक की भाँति प्रत्यक्ष विसाते के लिए ही लिखा गया है या उसकी टीका से ही स्पष्ट दिखाई देता है। प्रथम पात्र के आरंभ में

'प्रत्यप्रारम्भे अभीष्ट वैभवा प्रणिधानप्रधाना प्रेक्षयता ।

प्रभृतिरित्योचित्यात् सूत्रस्य प्रथम ममस्कार नाचा ।

इस उद्धरण में शब्द लेखक के लिए प्रेक्षाएँ शब्द का प्रयोग यह सिद्ध करता है कि टीकाकार इसे रूपक का ही एक प्रकार मानते हैं। आगे चल कर बहुवचनों के

१—बलात् प्राचीन पूर्वकथाव्य संग्रह—पृ० १२

२—मं० र० मजुमदार पुराणी साहित्यना स्वरूपो—पृ० ७२

द्वारा इस काव्य का पढ़ा जाना यह सिद्ध करता है कि यह केवल मध्यकाव्य नहीं अपितु बहुशेष आरण करने वाली जाति के द्वारा एह गाना भी गाता था ।

डा० एचरम बोसा की मान्यता है कि रास का मूल अर्थ है बर्चना । उसके बाव उसका अर्थ हुआ मायिक छंद में विरचित रचना । उसके बाव एक दो छंदों में विरचित रचना रास कहलाने लगी । तदुपरांत इसने स्वयं गेय उपरूपक का अर्थ आरम्भ किया । सामूहिक गेयरूपक होने पर इस अनिवार्य बन गया । इसीलिए रास काव्य रचावन कहे जाने लगे । रसपूर्ण होने के कारण ही यह रचना रास कहलाई ऐसा भी एक मत है ।<sup>1</sup>

रास के इस गेयरूपकत्व के सम्बन्ध में इतने अधिक प्रमाण हैं कि एक की कोई गुंजाइश नहीं रह जाती । प्राचीन राजस्थानी के अनेक रासार्चन उपरूपक कहे जा सकते हैं । वे गेय हैं लघु हैं और एक प्रकार के प्रभावमय हैं । चूंकि विनय के रासार्चन काव्यार्चन अधिक है उपरूपक कम हम रासों के इस पहलू पर अब और अधिक विस्तार में नहीं जायेंगे ।

यह तो हुआ रासक या रासों के विकास का एक पहलू । अब हम उसके दूसरे रूप को देखेंगे ।

संस्कृत-महाकाव्यों के अतिरिक्त विरहांक कृत 'वृत्त जाति समुच्चय' एवं स्वयंभू कृत 'स्वयंभूच्छन्दस्' (११वीं शताब्दी) में रासक को एक छंद विशेष एवं एक काव्य प्रकार के रूप में हम देखते हैं —

अहिमाहि बुवहएहिम भत्ता रट्ठीहि तह अबोमहि ।

बहुएहि को रट्ठनई सो भरनह रासक नाम ॥

जिस रचना में भत्ता अहिमा, बुत्ता, भात्ता रट्ठा और बोसा आदि छंद आये वह रासक कहलाती है । (वृत्त जाति समुच्चय ४३८) ।

स्वयंभू के अनुसार जिस काव्य में भत्ता छद्मधिया पट्टधिया तथा अन्य सुंदर छंद-बद्ध रचना हो जो अनसाधारण की मनोहर प्रतीत हो वह रासक कहलाती है ।

( स्वयंभू छंदस् ८१४२— )

इस विवेचन से इतना ही स्पष्ट हो जाता है कि उत्तर अफगानिस्तान काल अथवा पुरानी-हिन्दी-युग में रास नामक नृत्य से विकसित होकर रासक उपरूपक की कोटि में विद्यमान हो गए थे । अब हम 'संक्षेप रासक' का अध्ययन करते हैं तो यह स्पष्ट हो जाता है कि इस युग में भी रास या रासक को कर्णों में प्रचलित थे । एक स्थान पर तो यह नृत्य के रूप में वर्णित है किन्तु दूसरे स्थान पर यह हेमचन्द्र के गेय रूपक की परिधि में आती है । हेमचन्द्र ने रामाकीर्ण आदि गेय 'उपरूपकों' के अभिनय के लिए 'आप्यते' शब्द का प्रयोग किया है, जो इस प्रकार मिलता है —



अनु-वर्णन संयुक्तं रामाभीष्टं तु भाष्यते ।<sup>१</sup>

छोक इसी प्रकार का वर्णन संक्षेप रासक<sup>२</sup> में मिलता है —

कहू ब छाह बउवेईहि मेउ पयासियइ,

कहू बहुकवि निबयउ रासउ भासियइ ॥

अर्थात् किसी स्थान पर चारों पैरों के साथ मेह की व्याख्या करते हैं कहीं निविध रूपों से निबय रासक पढ़े जाते हैं ।

यही रासक का पढ़ा जाना स्वयं ही उसके ध्वन्यकाव्य की ओर विकसित होने की सूचना देता है । यह तो हम देख ही चुके हैं कि 'रास' नामक रचनाएँ मूल्य में पाई जाती थीं और उनका सस्वर पाठ होता था । प्राचीन रास भाषिक छंदों में रचित है, जबकि इसके बाद की रचनाओं में देवी या शास्त्रीय नेत्रणों का भी कहीं कहीं समावेश मिल जाता है ।<sup>३</sup> पण्डुर्वी छंदी पूर्व एवं बाद के रासाओं में और भी अनेक अन्तर विचारणीय हैं । लगता है कि पण्डुर्वी छंदी तक तीन रासाओं का स्वरूप निर्माण हो चुका था । उनमें या तो धार्मिक स्थलों की-वीर्य स्थानों की प्रशंसा होती थी जैसे 'नवतिरीरास',<sup>४</sup> 'आहूरास',<sup>५</sup> 'कच्छुपी रास' 'सप्तश मि रास'<sup>६</sup> आदि अथवा किसी महापुरुष, विष्णु पुरुष, तीर्थंकर अथवा पर्यबीर पुरुष की प्रशंसा होती थी जैसे 'मरुत और बाहुबलि' 'अम्बुस्वामि' 'मैमिनाथ' जैसे देवी देवताओं या पेशव<sup>७</sup> 'समरसिंह'<sup>८</sup> जैसे पर्यबीरों की । जो पण्डुर्वी छंदी के रासाओं में वोदात्मिक और काव्यमय कथाओं का समावेश होने लगा । धीरात्मिक कथाओं में नलदमयंती<sup>९</sup> राम,<sup>१०</sup> आदि की कथाओं को लेकर रास रचे गये । इसी प्रकार रासों के वस्तुतत्त्व में 'सोककथाएँ' निजंमरी कथाएँ और अनविद्वान् भी कालान्तर में प्रवेश पाये गये ।<sup>११</sup> इस प्रकार पण्डुर्वी छंदी बाद के रासाओं में वस्तुतत्त्व में विकास तो दिखता ही है किन्तु रचनातत्त्व को दृष्टि

१—काम्यामुसासनम्—अ० ८ सू० ४, १५ सू० ४४६

२—संक्षेप रासक—हिंदीय प्रक्रम-अध ४३

३—कै० का० शास्त्री आपना कविगो—अ० १-पृ० १४६

४—इलास प्राचीन गुर्जरकाव्य संग्रह में सम्पादित

५—इसरथ जोसा रास और रासात्म्यी काव्य—पृ० १२१ १२८

६—वही—पृ० १३१ १३७

७—इलास प्राचीन गुर्जरकाव्य संग्रह में सम्पादित

८—मुनिजिनविजय मरुतेश्वर बाहुबलिरास

९—इसरथ जोसा रास और रासात्म्यी काव्य—पृ० १९१ १०५

१०—इलास प्राचीन गुर्जरकाव्य में सम्पादित

११—जोसा रास और रासात्म्यी काव्य पृ० २१७ २४२

१२—सांक्षेप नलदमयंती रास

१३—जोसा रास और रासात्म्यीकाव्य पृ० ४०७-४३०

१४—चंद्रकांत मेहता यमकाव्यना साहित्य प्रकारो—पृ० १११

से भी बँधर है। प्राचीन जैन रासमान एक ही वस्तु का आसेसन करते थे, रास्तरस की प्रधानता रहती थी, पात्रों के विकास की सम्भावना नहीं थी किन्तु बाद के रासामों में अनेक अन्तरकथाओं, शीर्षवर्णनों, समकालीन जीवन के चण्डचित्रों, संश्लेष सूत्रों, कथानक कड़ियों वृत्तियों आदि के संयोग से जटिलता आ गई। अनेक रसों को अभिव्यक्ति मिलने लगी। इन सब कारकों से परवर्ती रासामों का आकार बढ़ता जाता गया। उनमें कथातत्त्व भी महत्त्व पाने लगा। प्रारम्भिक रासामों का विस्तार सीमित और कोमलकाय जान पड़ता है, वहाँ बाद की रचनाएँ महाकाव्य की परिधि स्पर्श करने लगी। एक अन्तर और भी स्पष्ट हो जाता है। वहाँ प्रारम्भिक ग्रंथों में मात्र नायिक दृष्टि का प्राबल्य था महापुरुषों या ऐसी देवताओं की स्तुति भी वहाँ बाद की रचनाओं ऐतिहासिक व्यक्तित्वों का प्रवेश हो गया।<sup>१</sup>

ऐतिहासिक प्रसंगों को लेकर रचित बह-मय मय कृतियाँ अपभ्रंश संस्कृत में मिल जाती हैं। मेस्तु गाथायें छत प्रबंध चित्तामणि<sup>२</sup> तथा रामचंद्र की वसुविश्रुति प्रबंध एसी ही कृतियाँ हैं जिनमें मोघ, कुमारपाक, सिद्धराज, रामचंदेरी, मुच इत्यादि ऐतिहासिक पात्रों के जीवन-प्रसंगों का उल्लेख है। परवर्ती रासो रचनाएँ वस्तु संवदन बलवत् विस्तार, खेसी तथा कथानिरूपण की दृष्टि से प्रबंध की कोटि में आ जाती हैं। डा० ब्रह्मानन्द मेहता ने सप्रमाण सिद्ध किया है कि रास और प्रबंध ये दोनों एक दूसरे के पर्याय के रूप में पन्नाहरी सभी के बाध प्रयुक्त होते थे।<sup>३</sup> यही नहीं एक ही कृति को अरिष्ट, प्रबंध, चुपई, पवाडू और रास नाम से पुकारा गया है। पद्यनाम विरचित कान्हूदे प्रबंध ही काहानखदेव चुपई, कान्हूदे पवाडू काहूड अरिष्ट रासल कान्हूदे पवाडू रास आदि नामों से पुकारा गया है। के०का० सास्त्री समराधामु को प्रबंध मानने के पक्ष में हैं।<sup>४</sup> यही हाल पंचररास का भी है। मजुमदार खेसे भी ऐतिहासिक प्रबंध की कोटि में रखते जान पड़ते हैं।<sup>५</sup> इस सबसे बात होता है कि कासास्तर की रास, रासु रासो प्रबंध पवाडू, वेति छंज विनास कथक प्रकाश अडपड तथा अरिष्ट आदि छंज साहित्यिक रचनाएँ हैं और प्रबंध काव्य की कोटि में आती हैं। इनमें तात्त्विक अंतर का अभाव है। इबारीयवाच की ने लिखा है—जिस प्रकार 'विकास' नाम लेकर अरिष्टकाव्य लिखे गए, 'कथक' नाम लेकर अरिष्टकाव्य लिखे गए, 'प्रकाश' नाम लेकर अरिष्टकाव्य लिखे गए, सभी प्रकार 'रासो' या 'रासक' नाम लेकर भी अरिष्टकाव्य लिखे गए। अब इन काव्यों के लेखक इन

१—ब्रह्मानन्द मेहता मध्यकालीन साहित्य प्रकारो—पृ० ३१३

२—मुनि जिनविजय द्वारा सिंधी ग्रंथमाला में प्रकाशित

३—डा० ब्रह्मानन्द मेहता मध्यकालीन साहित्य प्रकारो—पृ० ३१३

४—के० बी० व्यास कान्हूदे प्रबंध—अ द्वेयी मुद्रिका—पृ० २०

५—के०का० सास्त्री आपणा कविजो—पृ० २११ २२१

६—पं००० मजुमदार गुजराती साहित्यनां स्वरूपो—पृ० ४४

७—नही—पृ० ५०

घरों का व्यवहार करते होंगे तो अवश्य ही उनके मनमें कुछ न कुछ विविध काव्यका रहता होगा। राजपूताने के विगत साहित्य में परबर्ती काल में ये घर साधारण चरितकाव्य के नामांतर हो गए हैं। बहुत से चरितकाव्यों के साथ 'रासी' नाम जुड़ा मिलता है—जैसे 'रायमलरासी', 'राणारासी', 'समस्तपरासी' 'रतनरासी' इत्यादि। इसी प्रकार बहुतेरे चरितकाव्यों के साथ 'बिसास' शब्द जुड़ा हुआ है—जैसे, 'राजबिसास', 'वपबिसास' 'दिग्यबिसास', 'रतनबिसास' 'अर्जबिसास' 'भीमबिसास'। 'बिसास' शब्द भी कुछ झीड़ा, कुछ खेल बाहि की ओर इशारा करता है। इसी प्रकार कुछ काव्यों के नाम के साथ 'रूपक' शब्द जुड़ा हुआ है—जैसे 'राजाक्षक' 'गोपाक्षक' 'राजविजयक्षक', 'पद्मविजयक्षक' इत्यादि। स्पष्ट ही रूपक शब्द किसी अभिनेयता की ओर संकेत करता है। ये काव्य केवल इस बात की ओर संकेत करके बिरत हो जाते हैं कि ये काव्यक कितनी समय, येस ओर अभिनेय थे। 'रासक' का तो इस प्रकार का सवाल भी मिस जाता है। परन्तु धीरे धीरे ये भी कथाकाव्य या चरित काव्य के रूप में ही ग्राह्य किए जाने लगे। इनका पुराना रूप कमसे भुना दिया गया, परन्तु पृथ्वीराज के काल में यह रूप सम्पूर्णरूप से भुनाए नहीं गए थे। इसीलिए पृथ्वीराज रासो में कथा-काव्यों के भी लक्षण मिल जाते हैं और रासक रूप के भी कुछ चिह्न प्राप्त हो जाते हैं।<sup>१</sup>

इस प्रकार हमने देखा कि रासी संग्रह रचनाओं की दो बाटाएँ स्पष्टतः जान पड़ती हैं। एक तो मूल-गीत-मरक और दूसरी छंद वैदिक-मरक। पहली बारा का उद्भव रास और रासक से हुआ यह हम देख चुके हैं। जैनो की अभिकांश कम्पु कृतियाँ इसी बारा में मिली जा सकती हैं—जैसे 'बाबुरास' 'समरास' 'वपवारास' 'बुद्धिरास' आदि। दूसरी प्रकार की बारा का उत्स अपभ्रंश कालीन साहित्य में देखा जा सकता है। अपभ्रंश छंदशास्त्रियों ने रासक और रासाबंध काव्यों के लक्षणों का निर्देश किया है जिसका विवेचन पहले ही किया जा चुका है। इसी परम्परा में पृथ्वीराजरासो हम्मीररासो राठ बीतसी रोरासो रामरासो आदि की रचना की जा सकती है। इस प्रकार की कृतियों में धीरे-धीरे आवांतर बातों का प्रवेश होने लगा और साहित्यिक कल्पना बढ़ती जाती गई।

अब हम रासी काव्यों की विशेषताओं पर ध्यान करें। यहाँ रासी का अर्थ मात्र रासी संग्रह रचनाओं से न लेकर हम विस्तृत अर्थ लेने जिसके अन्तर्गत सभी प्रकार की प्रबंधारम्भ कृतियाँ गृहीत की जा सकती हैं।

प्रत्येक रासी या प्रबंध का प्रारम्भ रचनाकरण या स्तुति से हुआ है। जैनो ने अपने अपास्त टीर्थंकरों की रचना से भी रचों की शुद्धता की है। कुछ उदाहरण देखिये—

१—हजारीप्रसाद द्विवेदी हिन्दी साहित्य का अर्थिकाश—पृ० १० ११

२—मुनि विनयिचय भरतेश्वर बाहुबलिरास—आरम्भ

रिसह बिषेसर पय पनेमेवि  
सरसति छामिनि मनि समरेवि ।<sup>१</sup>

—सावित्रप्रसूति—भरतेस्वर बाहुबलिरास

अम्बदेव ने समारारास में आधिवार की बंदना करने के बाद सरस्वति की बंदना की है ।<sup>२</sup>

पहिणउ पयमिब देव बाबीसहसे गुणसिहरे ।  
बनु करिहुत सजे वि बाराहुत बहुमति मरे ॥१॥  
उत सरसति सुमरेवि सारससहुर निम्मसीय ।  
बसु पयकमस पसाय मुख बाणह मन रमिय ॥२॥

—अम्बदेव—समारारास

हीरानंद सूरिकृत कलिकाव—रास का प्रारम्भ भी विजयीर की अम्बरना है  
तत्परचात सरस्वती की बंदना से होता है ।<sup>३</sup> —

पहिमं सुरि पयमेई, सिरि बीर बिर्ब ।  
सरसति मनि समरेई आनिय मनि बाणह ॥१॥

—हीरानंदसूरि — कलिकावरास —

पद्मनाभ बाहुप कवि था, जत उसने अपने कान्हूदे प्रबंध में सबसे पहले  
वगवति और सरस्वति की बंदना की है ।

वीरीनंदन बीनबू बह्यसुता सरसति ।  
सरस बंध प्राकृत कबू, जत मुक्त निर्मममति ॥१॥

—पद्मनाभ कान्हूदे प्रबंध

इसी तरह से कवि ग्रन्थ के प्रारम्भ में अपने आराध्य को स्मरण करते रहते  
थे । एतनु बीरमान ने राजकपक का प्रारम्भ यों किया है ।<sup>४</sup>

कमल-जयन मंदसकरण, श्री राजा बनश्याम ।  
कवि भ्रम-जमर म सोच कर, सिमटि ननि बभिरास ॥१॥

ठाढी बाहर मुसलमान था फिर भी उसने ग्रन्थारम्भ में सरस्वती की ही  
बंदना की है ।<sup>५</sup>

१—मुनि विनयिकय भरतेस्वर बाहुबलिरास — आरम्भ

२—बलास प्राचीन गुर्वर काव्य — पृ० २७

३—हिन्दी अनुशीलन — वर्ष १० अंक १ पृ० ५५

४—के० बी० व्यास कान्हूदे प्रबंध — पृ० १

५—रामकर्म बासोपा राजकपक — पृ० १

६—लक्ष्मीकुमारी शु बावत बीरमान पृ० १

सुमत्त तयापो सारदा, आपो उमरी जग ।

कर्मधी बस वरनन कर्क, तुम महर परठाप ॥१॥

—बाहार बीरबाण

कितना भी बाढ़ा मैं अपने प्रसिद्ध जग 'रघुवर बस प्रकाश' में घनेछ प्री की स्तुति इस प्रकार की है ।<sup>१</sup>

धी लखोवर वरन हंत बुडबंत परम सिद्धिबर ।

आप उरस ओपंत, विषय-वन हंत कर्कबर ॥

मह कपोल महकत, मधुप भावत संवसर ।

मंत महेसुर जन निवंत, हित दयावंत ह्व ॥

बचरंत 'किछव' कवि बस करन, तन कर्कत जगति पुनत ।

आनकी-कंत अन्धन कुनत, एकरंत बीबी जगत ॥ १ ॥

—कितना भी बाढ़ा रघुवर बस प्रकाश

राम के चरित को बाहार बना कर चलने वाले संसाराम वैष्णव संवसावरन में श्रीराम की बस मानते हैं ।<sup>२</sup>

धीनिध आनमसार, भारिजमवर्ष व जमानकी वस्त्रम ।

अजिन बसत आचार, सरनवरन आनो अन्धन ॥१॥

—कविमंज-रघुनाथकपक

राठीक कवि पुष्पीराम की वैलिका संवसावरन इस प्रकार है —

वरनेसर प्रबधि प्रबधितरसति बुधि, लवकु प्रबधि निष्के ततसार ।

संवल कप माह बी माहव, चार सुए ही संवल चार ॥ १ ॥

—राठीक विभीराज वैल किम्व इकमचीरी

इस प्रकार हम देखते हैं कि तीन रासों से लेकर चरचरी विदेश काव्यों में भी प्रारम्भ में संवसावरन अवश्य रहा है ।

हिमालय प्रबंधकाव्यों में बहुधा शेष के प्रारम्भ में अथवा अन्त में कवि अपना परिचय बंस विवरण युक्त का उल्लेख और कभी कभी शेष की पहचान का निर्देश कर देता है । रचनाकाल का संकेत भी कभी स्पष्टतः और कभी प्रतीक पद्यों से कर दिया जाता है । जैसे अपभ्रंश रूप में ऐसी रचनाएँ भी उपलब्ध हैं, जिनके रचयिता के सम्बन्ध में जानकारी नहीं मिलती । कभी-कभी प्रसिद्धों के चरित होने के कारण और कभी अनपेक्षित कारणों से यह अभाव है, इसमें सन्देह नहीं । इस भावना से प्रभाव में निम्न उदाहरण प्रस्तुत किये जा सकते हैं —

१—सीताधाम लावस रघुवरबस प्रकाश — पृ० १

२—महाराजकन रघुनाथ कपक पीठा रो-पृ० १

३—आनमसार वैलिका वैल किम्व इकमचीरी-पृ० १

रघुनन्दनप्रकाशकार द्विगत जी आकाश ने अपनी कृति के अन्त में अपने समूचे बंध का सविष्ट परिचय दे दिया है —

पुरसा' घर द्विगैस द्विगत घर सुकवि महेश्वर ।  
 सुत 'महेश' 'धूम्रांग' 'दान साहित्य' सुत त्रिष धर ॥  
 'साहित्य' घर 'पनसाह' 'पना' सुत 'बुलह' सुकव पुन ।  
 'दुस्त' परे छट पुन 'दान' 'बस' 'द्विगत' 'बुनी' भय ॥  
 साकण 'व्यसन' मुरधर उत्तम, प्रवट नगर पंचेटियो ।  
 चारण जाती आकाश विनत 'द्विगत' सुकव पित्त क्रियो ॥३५॥

कवि के नाम की छाप तो प्रायः मिलती ही है । रचना कास का भी बल्लेख मिल जाता है । पर प्रायः सभी छन्दों की महत्ता अवश्य वर्णित मिलती है । कभी बहु असमये वर्णित होती है कभीसाय ही उदाहरण के लिए वैमि द्विगत दक्षमनीरी की निम्नवर्तियाँ देखिए ।<sup>१</sup>

करि सबधे दिन रात कंठ करि

पावे स्त्री कल ययति अपार ॥ १०३ ॥

रघुनाथ कपककार कहता है<sup>२</sup> —

उर जान भवती नीत छपनी चातुरीं लह जोयसू ।  
 अकपेस थिराती हुवे वाक्य भिनी सवगत योजसू ॥  
 इस ग्रन्थ मो रघुनाथ पुन अत भेद कविता भाषियो ।  
 इस द्विज कारण नाम जो रघुनाथ कपक राखियो ॥

यही कवि न केवल उसकी महत्ता ही प्रशंसित करता है, किन्तु नामकरण का आधार भी प्रस्तुत कर बैठा है । प्राचीन जैन रासो में इस परिपाटी का कट्टरता से पालन किया गया है । हाँ साहित्यिक कृतियों में यह परिपाटी इतनी अनिवार्य नहीं है । जो विद्वत् सीकिक काव्य हैं उनके कर्ता भी इस कड़ि पालन में नहीं बंध सके । कई कविमाँ ने तो ऐहिकतापरक रचनाओं को भी आत्मिक महत्ता में मंडित कर दिया है जैसे परमनाथ ने अपनी रचना काग्हूखे प्रबंध के अन्त में अनेक पुण्य कार्यों की वचना कराई है और कहा है कि काग्हूखे चरित को पढ़ने और सुनने वाले दोनों अपार पुण्य के भागी होते हैं ।<sup>३</sup> यथा

एकचिति के गर समलह, तेह तथां सनि बुकृत टलह ।

के कल साभह बीनह बानि के कल यथा तथा सनावि ॥३४३॥

१—सीताराम साजस रघुनर बस प्रकाश पृ० ३४०

२—नरोत्तम स्वामी द्विगत दक्षमनीरी बेल पृ० १३९

३—महोदयचन्द्र रघुनाथकपक पीठांरो पृ० २५४

४—डा अग्रकान्त सिंहता मध्यकासना साहित्य प्रकारो पृ० ३२१

५—के०बी० व्यास काग्हूखे प्रबंध पृ० २३२ २३३

जे फल हुइ तप कीयइ सवा, जे फल हुइ रसनि मरववा ।  
 जे फल सख बचन प्रमाण, जे फल हुइ सोमसीइ पुराण ॥१४६॥  
 जे फल पामइ तपसी सर्ष, जे फल हुइ बाँव छौइवे ।  
 जे फल पामइ कीयइ बाँव, जे फल भेटयां हुइ शिवावि ॥१४७॥  
 जे फल पामइ बंवाहारि, जे फल हुइ भेटि कैवारि ।  
 जे फल हुइ बिद्या उखरी, जे फल भेटयां सोदाखरी ॥१४८॥  
 जे फल नारायण बीठइ नैवि जे फल हुइ दावि कुम्पेवि ।  
 जे फल पामइ साहिब सती, जे फल हुइ नाइयां पोमती ॥१४९॥  
 जे फल महइ द्वारिको छावावि, जे फल भेटयां हुइ प्रभावि ।  
 जे फल हुइ मुयसिपुरी सावि, रामनाम उखरइ प्रभावि ॥१५०॥  
 कान्हरवरिष जि को नर मयइ एकविषि जि को नर सुमइ ।  
 तीरनकस बोल्नु जेठनु, पामइ पुण्ड्र सबे तैठनु ॥१५१॥

इसी प्रकार बसाइत ते हंस-बच्छ जीवाई या ईसाइसी नामक प्रेम कथा की महत्ता बताते हुए कहा है<sup>१</sup> —

मयता बोक बरिष तनि टभि मणि बसाइत बफला फलि ।

ममि मयवि निठ मुनि मयनवि भावि बाँवनि ॥१७॥

जब बरवासी के पुष्पीराज रासो की ये पंक्तियाँ ही प्रख्यात ही हैं<sup>२</sup> जिसमें वह रासो की प्रशंसा करता है —

कावि समई कवि जेव कृत मुयति समप्पन जान ।

राज नीति बोहिय सुफल पार उतारन मान ॥२१॥

यही परम्परा विभिन्न विषय प्रबंध काव्यों में देखने को मिलती है । इसी महत्ता प्रदर्शन की परम्परा का एक कम कृति में क्या क्या है यदि पर विरतुत प्रकाश डालता है । जवाहरराज के लिए पुष्पीराज रासो से संबंधास्कर एक इत अविशिष्ट परम्परा को देखा जा सकता है । यहाँ स्वामानास से मात्र एक दो जवाहरराज ही बचन हुनि ।

राठीइ पुष्पीराज अपनी शैलिको सुकामी जोषित करते हुए कहते हैं कि समान व्यक्ति उसे समझ नहीं पाता । उसे ठीक है समझने के लिए पयोतिवी रीत पुराणों का विज्ञान, बोधी संगीतज्ञ, तांत्रिक स्वावधारणी कवि, भाषाविद् और चारण माट आदि सभी को एकत्र होकर विचार करना पड़ेगा । साधारण वह कि शैलि में है सब ज्ञान मौजूब है ।<sup>३</sup>

१—नोबर्थन वर्मा प्राचीन राजस्थानी गीत भाग ६-पृ० २३

२—कविराज मोहनसिंह पुष्पीराज रासो सं० १-पृ० १०

३—नरोत्तमराज स्वामी किशन बरकमपीरी शैलि पृ० १३३

बोतिखी बयब पडरागिक, बोपी  
संवीती, तारकिण्ड सहि ।  
बारन, भाठ, सुकनि, भाखा बन,  
करि बेकठा त बरन कहि ।

हम जाये बन कर इस हिंसा में और अधिक प्रकाश डालेंगे ।

हिंस्र के प्रबन्ध काव्यों की एक विशेषता वस्तु-वर्णन है । नगरवर्णन प्रकृति-वर्णन, स्त्री-पुरुष वर्णन, युद्धवर्णन, जोड़ों, बूझों, मोछामों के नामों की परिगणना आदि कवि के धर्मिचार्य कर्तव्य हैं । यह सम्भव है कि जिस भीम का वर्णन हो रहा है, उसमें कवि स्वयं सम्मिलित न हो सका हो या जिस युद्ध का चित्र खींचा जा रहा है उसमें वह स्वयं ब वरक्षक न रहा हो, परन्तु इस प्रकार के अनेक भीम और अनेक युद्ध उसने अपनी आँखों से देखे हैं, अतः अपनी प्रतिभा से वह पाठक के सामने एक ऐसा चित्र बनाता है जिसमें सूक्ष्म से सूक्ष्म बातों का झूरा तथा मेहोपमेहों सहित प्रत्येक वस्तु का यथाक्रम नाम आता चला जाता है ।<sup>१</sup> जिस चित्र के लिए दूसरे कवि बलौकिक कल्पना तथा कर्मकारों की सहायता लिया करते हैं उसका मनोहर रूप रासाकाव्यों में स्पूल सरव तथा नाम परिगणना से ही निखर उठता है । रासो काव्यों में प्रस्तुत सामग्री ही इतनी सम्भावनाशील है कि अस्तुत की आवश्यकता नहीं होती । विरदार पर्वत की जनराजिका सोम्वर्य देखिये—

बभ्रु ( ? ) अंजन अंघिरीय, अंघाव्य अकुल्लु ।  
उ बह व बह आमकीय आगव बसोय बहल्लु ॥ १३  
करवर करपठ कल्लातर ( ? ) करबंसी करवीर ।  
कुका कडाह कवन कठ करव कवसि कपीर ॥ १६  
वेमल्लु ब्रुमल्लु बडल बडो वेडल वरन बिडंग ।  
बामु ठो बीरिणि बिछु, बंघियावि बच बंध ॥ १७  
सीसनि सिबसि सिर ( स ) समि, सिबुवारि सिरबंड ।  
सरन सार साह्वार सय, सीगु सिमू ( ? ) सिन बंड ॥ १८  
पल्लव-मुल-कल्लुमसिय रेहू ठाहि [ ? ] बाबराह ।  
छहि कडिबल-सनि बंघियह उल्लहू अ मि न भाह ॥ १९

यहाँ बूझों की एक शीर्षसूची दे दी गई है । भयक और अनुप्रास के चतुराई के साथ किये गये प्रयोग से ब्रुमल्लु में समीपता आ जाती है । पूष्पीराम रासो के १३वें समय में (कासी नामरी प्रचारिणी सभा के बृहत् संस्करण के पृष्ठ १९९० से २००० तक) पकवान मिठाई वर्णन अचार-वर्णन, तरकारिवाँ और गोरसबर्नन अचारवर्णन आदि का इसी प्रकार का याँटार है ।<sup>२</sup> राजकपक में मङ्गले वाले सैनिकों व सामन्तों

१—भोगप्रकाश हिन्दी काव्य और उसका सोम्वर्य — पृ० १३

२—रत्नवतिरि रासु — रास और रासात्म्यी काव्य में पृ० १०३

३—भोगप्रकाश हिन्दी काव्य और उसका सोम्वर्य पृ० २०



के नामों की दीर्घ सूचियाँ हैं । समुद्रा भवासीसर्वा प्रकाश एँसा ह्रीं है ।<sup>१२</sup> राजबिलास में बस्तुओं की दीर्घनामावली प्रस्तुत की गई है ।<sup>१३</sup> इसी प्रकार कवि जोड़ों के प्रकारों की परिचयना कर छठता है ।<sup>१४</sup>

(क) एँराक बारवी बस्त ऐ न,

छोमंत भवन सुन्दर सुने न ।

काश्मीर देस कांबोज कण्ठि,

पय पंच पीन पय कय लण्ठि ॥८॥

बंगाल जाति के जाति राज

काबिज सुकेह हय भूप काज ।

हंसार छतन केहि कुरासान

बपु छ न तेज भर विविध धान ॥९॥

हय हींस करत के जाति हंस

कविते सु किराड़े भीरं बंस ।

किरकिप कुराड़े के सु रत,

पीसड़ केक सीसे पवित ॥१०॥

शिवराज राधा ग्रन्थ विविध छन्दों में मिले गये हैं । हम पीछे देख ही चुके हैं कि वृत्तजाति-समुच्चय एवं स्वयंभूछन्द लोगों ने राधाबन्ध काव्यों में विविध छन्दों का समावेश किया है । छन्द वैविध्य के साथ-साथ काव्यप्रणाली का प्रकाश समय, प्रस्ताव उत्साह शब्द प्रस्तुत, बिलास आदि में विभावना भी मिलता है । ब्रजवाक्या भाषा वास विरचित रामराधो में गाढ़ा बोहे पावड़ी कवित रसावला जीपाई मूलना मोदीवाम बंदावली श्लोक तथा वे अलङ्कारी छन्द मिलते हैं ।<sup>१५</sup> पावड़ पसाइत रचित पुन जोषादय राव जोषाजी की प्रबंधा में सिखा गया बीररस का छोटा सा काव्य है जिसमें दोहा, कवित भुवंगप्रयास और पावड़ी सब मिलाकर ७५ छन्द हैं ।<sup>१६</sup> पद्मनाभ के काम्हूड़े प्रबन्ध में भी अनेक देखी रागरामिनी में निर्मित पद जीपाई, बोहे सबैये जाति छन्द हैं ।<sup>१७</sup> पुष्पीराज राधो बंधमास्कर आदि में वह वैविध्य अनुभूत है ।

बहुधा कवि जन अपने द्वारा प्रयुक्त छन्दों की सुचना या संख्या भी दे देते हैं । बाबर ने सिखा है —

१—रामकर्म भाषोपा राजकपक ४४ प्रकाश

२—मोदीबाल मेनारिय राजबिलास-मूसरा बिलास-नव १०९ ११२

३—बही छठा बिलास

४—हीराताल माहेस्वरी राजस्यागी साहित्य पु० १७०

५—पुस्तक प्रकाश जोषपुर की हस्तप्रति

६—के०बी० व्यास काम्हूड़े प्रबन्ध

७—लक्ष्मीकुमारी कुरावत बीरबाण पु० ९१

सत बीस गीताजीवा, ऊपर पाँच सबाय ।  
एक गीत बतरा बूहा मनीया गुण सुभ माय ॥ १७२  
नवपुत्र पुगा तीन सो, बीरबाँन बसबाय ।  
सुख बाबीबो सकबीयाँ बापर कही बिचार ॥ १७३  
सबासे गीताजीवा, बूहा पुन सत दोय ।  
गीत एक हण प्रम्यमे, समजहु बाबक सोय ॥ १७४

बन्ध भी कहता है<sup>१</sup>—

छंद प्रबन्ध कवित्त जति साटक, गाह बूहत्त ।  
महु पुरु मंडित कंठि यहि पिपल जमर भरत्त ॥

अर्थात् उसके रचे छंदों की बातियाँ-कवित्त (छप्पय), साटक (साबुँस बिच्छिड़ित) गाह (गाथा), बूहत्त (बोहा बिच्छ कय सोरठों को भी इसी में माना ही है) इनके अतिरिक्त संस्कृत श्लोकों का प्रयोग भी किया गया है ।

सभी रासाकाव्यों में अर्थालंकारों और सम्भारालंकारों का विशेष प्रयोग है । बीरकाव्यों के शौन्ध्यपक्ष का अध्ययन करते हुए हमको दो प्रकार की प्रवृत्तियाँ बिलखाई पड़ती हैं—एक का उद्बन्ध संस्कृत साहित्य से है और दूसरी का लोकसाहित्य से संस्कृत का प्रमाण मनुष्य आदि कोमल रसों में अधिक भिन्नता है क्योंकि इनकी भोमभूमि कदाचित् राजसभा रही होगी जन्म 'प्राकृत' प्रमाण है क्योंकि वह जन सामान्य की वस्तु को । संस्कृत में पंडित परम्परा से शौन्ध्य सम्बन्धी ऐसे निमग्न बने हुए थे जिनका पालन कवियों का कर्तव्य हो जाता था उदाहरण के लिए किस जग के वर्णन के लिए किस अग्रस्तुत का उपयोग होना चाहिए, वह निर्दिष्ट था । रासो काव्यों में इस प्रवृत्ति में उल्टा अर्थालंकार को अधिक अपनाया है और जैसा कि स्वाभाविक है शरीरालंकों के वर्णन में सम्भावना का आचार वस्तुत्वज्ञा ही है । महाकवि चम्प ने पद्मवती के रूप का वर्णन इसी रीति पर किया है और गजनी की सुन्दरियों के चित्र भी इसी प्रकार के हैं —

तमोर कोर रत्तिव । बसत ते सुजत्तिव ॥  
मनो कि डार पक्किव । अनार ते बरत्तिव ॥  
हुमैं जलपक लविव । उरीव सो बिलविव ॥

मनो कि ते उरगियव । कसी कुमुह सगियव ॥ (१७वाँ समय)

यहाँ पर बाँट केस उरीव आदि के लिए जिन अग्रस्तुतों का उपयोग हुआ है वे संस्कृत साहित्य में परम्परा से प्रसिद्ध थे ।<sup>२</sup>

रविमणि की वय सन्धि का वर्णन करते हुए पूष्पीराज की मीलकता दर्शनीय है । वे कहते हैं<sup>३</sup> कि वय-सन्धि के आरम्भ होते ही—प्रथम रविमणि का मुक्त अङ्ग हो

१—मोहपसिंह पूष्पीराज रासो सम्पादकीय पृ० १

२—मोहप्रकाश हिन्दी काव्य और ससङ्का शौन्ध्य पृ० २०-२१

३—जानम्भप्रसाद शीशित बेनि फिसल समशीरी पृ० ४

मया, भातीं पूर्ब बिद्या में सुयोदय के समय लामिमा छा गई हो । कृच युगम भी ऐसे उन्नत हो गये हैं, भातीं छत्र राम को देख कर छत्रे पूर्ब बिद्या में उचित सूर्य का राम समझ कर ऋषिभग भी सम्मया बन्धन करने के लिए जाय लठे हौं -

पहिणो मुख राम प्रयट यमी प्राची

बखण कि अक्षयोज अम्बर ।

ऐसे किरि जागिया पयोहर

संसा बन्धन रिखेसव ॥ १६ ॥

यहाँ सौन्दर्यवर्चन में एक अनूठी शान्धी है । माध परम्परा पासन हौं नहीं है । जब हम एक लोक परम्परा का उदाहरण लेंगे । संस्कृत साहित्य के परे जनता में प्रचलित उपमाओं का प्रयोग भी यथावसर हुआ है । रत्नगरी बाँखें और मू मफली-छी सुन्दर संगति-नरपति से प्रसंसा पाटी हैं । कवि ने रानी की सोमा में बर्चित की है<sup>१</sup> —

ससि-बदनी भीर्यौ मात-बर्चव ।

बावड़ीया — रत्नगिरिया ॥

मोहरा जाने मगर मयाव ।

मू ग फली छी बापुली ॥

कूसम-कली कर-लख बीसा ।

कनक कू डल बज सोह्र काम ॥

यहाँ इन उपमाओं का जनजीवन से सामान्य चिन्तनीय है ।

दूसरी प्रकृति का आभास नाम पिमाने वाली रानी में ऊपर मिल चुका है । सौन्दर्य-वृद्धि के लिए इन काव्यों ने एक प्रकार की अस्त्युक्ति को अपनाया है । जिसके कई रूप हैं जिनमें से मुख्य है 'संस्कारमक अस्त्युक्ति' जिसमें वर्चन करते हुए वर्च्य वस्तु की ठीक-ठीक माप या मात्रा बतलाई जाती है । राखो काव्यों में इस अस्त्युक्ति का उपयोग वैभव-वर्चन भूदवर्चन तथा मोदवर्चन तीनों हों सबलों पर किया गया है । 'पुष्पोराम राखो के ६१वें समय में राखन की की सातिरसारी में कितना जग्राहि ध्यम हुआ यह कवि ने ठीक-ठीक बतसा दिया है<sup>२</sup>, धम्यन बग्वर की मढ़ाई के समय मूट में गया-गया और कितना-कितना भिजा इसकी<sup>३</sup> चर्चा है, तो कवि नर

१—सत्यजीवन वर्मा बीसस देख राखो पृ० ६६

२— सीखो मन लै पंच साक पस्तव तैसास्त्रम ।

यही-मुख जनपाह चत मन जसी जनोपम ।

मेश मन पंचास बीस अन बैसन बीनी ॥ (पृ० रा० २११८)

३— एक लक्ष बाजिन सहस तीनह मय मतह ।

तस्त एक सोसार, तेज ऐराकी ततह ।

आराबी हबिनी, सत सै सत तु भारिय । (११४)

पति नास्तु यही बतलाते हैं कि राजा बीससदेव के अभिषेक के समय उनके साथ स्थितने पैदल थे, कितनी पासकियाँ थीं, और कितने हाथी थे —

भाठ सहस्र नेजा-बन्धी, पासकी बैठा सहस्र पचास ।

हाथी आठ्ठा डोडसी, असीय सहस्र आठ्ठा केकाय ॥

अत्युक्ति का दूसरा रूप 'चिन्तात्मक अत्युक्ति' में मिलता है यहाँ न तो संख्या बतलाई जाती है और न उच्चाकी सहायता लेनी पड़ती है, केवल वर्ण्य-वस्तु का चित्र खींच कर उसकी अभिव्यञ्जना पर और दिया जाता है। युद्ध की विकरालता का वर्णन यह बतलाकर भी किया जा सकता है कि उसमें इतने व्यक्ति इतने हाथी-बोढ़े मरे और यह बतलाकर भी किया जा सकता है कि एक के नासे बहने लगे।<sup>१</sup> प्रथम को संख्यात्मक अत्युक्ति कहेंगे और दूसरे को चिन्तात्मक क्योंकि इसमें पाठक के सामने एक वास्तविक चित्र रूप आ जाता है जिसके द्वारा अभीष्ट अभिव्यञ्जना पर पहुँचना कठिन नहीं होता। चिन्तात्मकता में यदि खींचतान की जाने तो उच्चा बन जाती है बँधी कि फरसी के प्रभाव से आने हिन्दी साहित्य में स्वान रचान पर बिजसाई पड़ी।

अत्युक्ति का सहारा लेते-लेते हमारे कवि कभी-कभी कल्पनालोक में जा पहुँचते हैं उस समय उनको इस संसार की विषमताओं तथा मायाओं का ध्यान नहीं रहता। 'रावण जी की छाठिरवारी' वाले उदाहरण में कवि को यह ध्यान नहीं रहा कि जिस भोज में पाँच मन जाटा पचास मन मैदा तथा बीस मन बेसन मया होना उसमें बस्ती मन की नहीं लग सकता। इसी प्रकार 'आलुखंड' में<sup>२</sup> आलु-ऊदल की छिन्नड़ी में कितनी हींग पड़ती बतलाई गई है उस पर बिजबास तो होता ही नहीं पड़कर केवल हँसी आती है। परन्तु ऐसे उदाहरण इन काव्यों में अधिक नहीं हैं। हाँ बीसव के वर्णन में वे कवि स्वर्ण चम्पन हीरा तथा पन्ना के बिना<sup>३</sup> चम्पना ही नहीं सीखे<sup>४</sup>।

अत्युक्ति के अनन्तर बीसकाव्यों का दूसरा त्रिय साधन यह है जिसको पात्र कस व्यत्यर्थव्यञ्जना कहा जाता है इसका व्यवहार भी अपरार्थ काव्यों में पर्याप्त मात्रा में मिलता है, दोनों ही स्थलों पर सुगार उस में भी और और उस में भी। युद्धस्थल में उत्साहित करने के लिए सिन्हाय कितना काम करती है इसे सभी जानते

१ लोहाग तनी बज्जे सहस्रि कोड हल्के कोड कटरी ।

परनाम धमिर जल्जे प्रबल, एक पाव एकहु मरै ॥

२ आलुखंड की छिन्नड़ी माँ परिवै सबा लाज मन हींग ।

३ (क) अंबल काठ को माँडहो, सोना भी चोरी, भीठी की मास ।

(बीससदेव रासो २२)

(ख) चम्पन पाठ कपाट ई चम्पन ।

सूम्पी पना प्रभासी चम्प (३६) बैलि कितन रुकमजीरो ।

४ भोगप्रकाश हिन्दी काव्य और उसका सौन्दर्य-पृ० २१ २३

हैं और लज्जों की लटलटाहट, बाणों की सरसराहट एवं घोड़ों की हिनहिमाहट का भी प्रभाव सर्वविविध है, घुसरी ओर सभी रसिक जानते हैं कि नूपुरों की छन छन, पायस की झन-झन तथा किककी की कज-कज से क्या संबंध दिया रहता है। रासोकाव्य मात्र को अधिक पहचानता था, इसलिए उसमें मात्र के द्वारा ही सर्व ठक पहुँचाने वाली सर्वजन-सुलभ व्यर्थव्यर्थजना की खेती के लक्ष्य उदाहरण मिलते हैं।

(१) झन झन भ्रम नूपुरय ।

झन-झन चूरि चूरि भ्रम ॥ (परमात्मरासो-श्रु गार)

(२) हृकंठ कूर्च नये कर्मच । कर्कश वज्रं चूटं च संघं ।

लहकंठ मूटं चूटं भ्रमं । मुकते मुकते शोकं वच्यं भ्रमं ॥

(पृ० पृ० २११०)

‘कर्कश’ ‘वज्रं’ ‘चूटं’ आदि ऐसे शब्द हैं जिनको सुनकर ही उनकी क्रिया का चित्र नेत्रों के सामने आ जाता है, इनसे मिलते-जुलते-शब्द ‘हृकंठ’ (हाहाकार करते हुए), ‘वज्रं’ (जड़ते हुए) आदि भी अपेक्षित धार की उत्पत्ति में सहायक हैं<sup>१</sup>।

विपल काव्यों में बीच बीच में धाने वाले मुक्तकों सुभावितों, सूक्तियों आदि का प्रयोग भी एक विशेषता है। अनेक स्थानों पर इन्होंने लोकप्रिय कहावतों का स्थान ग्रहण कर लिया है—यथा

घाबी नति आयम विपति को भेटन समरथ्य ।

राम बुधिछिटर और नम दिन में परी अवध्य ॥

(पृथ्वीराज रासो-पृ० १९८३)

माबी नति और विपति को भेटाने की सामर्थ्य किसी में भी नहीं है। राम बुधिछिटर और नम जैसे नरपुत्रों पर संकट आ पड़े।

बबका बाबा कुपली भेलही ।

जीम का बाबा नु पायरई । —बीसलदे रासो -पृ० १७

बाबागि में जमा बुद्धि फिर से परलपित हो जायेगा किन्तु जीम से जला-दुहित व्यक्ति कभी जैन नहीं पाता।

विष बंधन सवि संपद ऊनी ।

विम विम लवध रसोद कमूनी ॥८३॥

—भरत बाहुबलि रास—

बीसलों के बिना सारी सम्पत्ति और ऐश्वर्य उसी प्रकार का धूम है जिस प्रकार नमक के बिना रसोई।

दूर-केरा बाहना, ओछा-केरा गैह ।  
बहुता बहूँ सतामसा, शटक बिद्याबद्ध सेह ॥११५॥  
—ओसा माफूरा बूहा

पहली नासे और ओछे पुरुषों का प्रेम बहुते समय तो बड़ी तेजी से बहुते है,  
परन्तु गुरम हो सेह—अन्त बिद्या बैठे है ।

दुर्बल नहँ बल रायनू मूरक नहँ बल मौन्य ।  
बालक बल रोवा लखू, लखकर बल नहँ धौन्य ।  
—माधवानन्द कामरुचला

दुर्बल का रावा का, मुर्ख की मौन का, बालक को बल का और और को  
मुन्यता का बल रहता है ।

हिगल के प्रबन्ध काव्यों में सामयिक असर मिल जाती है । यद्यपि बहुधा  
कवियों ने अपने मूल सत्य को ही निधान की कोसिद की है फिर भी प्रसंगानुकूल  
बदलर मिलने पर सत्य बाधकारी देने की भी उनकी चेष्टा रही है । कवि के सामने  
अपने प्रबन्ध काव्यों के विषय और पाठक, दोनों ही रहते थे । समकालीन राजा  
का तो वह वर्णन करता था और यह वर्णन होता था सामन्तों तथा प्रजावर्गों के  
लिए<sup>१</sup> । इसीलिए हिगल रचनाओं में राष्ट्रीय परम्परा और लोकवाणी का विभिन्न  
सम्बन्ध पाया जाता है । इसी से उनमें विभिन्न कथानक कहियों का बहुल्य से  
प्रयोग होने लगा<sup>२</sup> । ये काव्य किसी सांस्कृतिक परम्परा के रूप मात्र नहीं हैं, वे दरबारी  
होते हुए भी यथार्थवादी हैं । काल्पनिक होते हुए भी ऐहिक हैं, ज्ञान प्रदर्शन करते  
हुए भी पश्चिन्त्य से उलझे नहीं पड़ते तथा राजा विशेष से सम्बन्ध रखते हुए भी  
मुन प्रतिनिधि हैं, वे राजकवियों के द्वारा लिखे गये थे फिर भी जनता के जीवन से  
उनका निकट सम्बन्ध है<sup>३</sup> ।

हम पहले इस ही चुके हैं कि कान्हुदे प्रबन्ध की कवि पद्यनाम ने स्वयं  
एक जगह कान्हुदे पवाहु कहा है । यह पवाहुत पवाड़ा क्या है? मेरी दृष्टि में  
पवाड़े का अर्थ है किसी बीर का प्रसस्ति काव्य और के पराक्रम विद्वानों की  
कुटिमत्ता तथा किसी व्यक्ति विशेष के सामर्थ्य बुन कौशल आदि का काव्यात्मक  
नेम वर्णन पवाड़ा कहा जा सकता है । पवाड़ों की प्रवाहो जयवा परवाड़ों की संज्ञा  
से भी संबोधित किया जाता है । डा सहन के अनुसार 'पाहुप्रकाश' में कवि ने  
परवाड़ा सगर का प्रयोग अलौकिक बीर कृत्य के रूप में किया जान पड़ता है ।  
डा सरदेसा ने पवाड़ों के उपयोग के सम्बन्ध में विभिन्न कल्पना की है<sup>४</sup> । उन्होंने

- १ ओम्प्रकाश हिन्दी काव्य और उसका सीमर्य—पृ० २
- २ हुजारी प्रसाद द्विवेदी हिन्दी साहित्य का आदिकाल—पृ ७३-७५
- ३ ओम्प्रकाश हिन्दी काव्य और उसका सीमर्य—पृ० १५
- ४ परवाड़ा कीर्ती प्रवी, पारवाड़ा जयगीत । पाहुप्रकाश पृ० २९
- ५ सरदेसा सब लोक साहित्य का अध्ययन—पृ० १४८ ४९

मिला है—पंचारा के सम्बन्ध में निश्चयपूर्वक यह नहीं कहा जा सकता कि यह शब्द वहाँ से निकला । पंचारा शब्द के मुहावरे में तो संघट, सगड़े अपभ्रंश भूत का प्रयोग हो गया है, विशेष कर ऐसा संघट जो समाप्त ही न हो सके पाये । 'इस पचाड़े से बचो', 'यह कहीं का पचाड़ा पैसा दिया है?'—ऐसा बहुत कहा जाता है । बु वेसखंड में पचाड़े का अर्थ लम्बी कथा का भी होता है । मराठी में यह शब्द 'वीर माया' के लिए प्रयुक्त होता है । ये सभी अर्थ 'पंचारे' के बाष्पार्थ अपभ्रंश भूत अर्थ नहीं । ये दूसरे अर्थ हैं जो प्रयोग के कारण इसे मिले हैं । यह बात किसी सीमा तक उचित प्रतीत होती है कि इन चीतों में पहले 'पंचार-परमार' शब्दों की वीर मायों वाली जाती होनी । ये लम्बी होती होगी और बड़ाई श्रमकों से परिपूर्ण होती होगी । फलतः परमारों के चीत होने के कारण 'पंचारे' कहा जाये । पंचारों की कथावस्तु पूर्णतः ऐतिहासिक भले न हो पर कथा वस्तु का बिम्ब अवश्य ऐतिहासिक होता है । कहना न होना कि यह कल्पना समोचीन नहीं मान पड़ती । प्राकृत भाषा में प्रयुक्ति, स्तुति अथवा कीर्ति स्तोत्र के लिए 'पचाड़' शब्द मिलता है । किसी की कीर्ति, महत्त्व अथवा महिमा को ओर ओर से प्रशंसा किया जाय, उसे पचाड़ कहना पड़ा है । संस्कृत प्रवाद अथवा संस्कृत सुतकथन प्रकृत से प्राकृत पचकड-पचकड पचाड़ो का विकास अधिक संभव मान पड़ता है । 'हिन्दी शब्द सागर'—कार ने पंचादे शब्द को संस्कृत प्रवाद से ही व्युत्पन्न माना है ।

मराठी शब्द 'लानेबारी' में इस शब्द का अनेक बार प्रयोग हुआ है—यथा

हू मारिले ठे वर जोड़े

आलीक ही छापील पाडे ।

मग माहिल पचाड़े येकलाचि भी ।

इन शब्द का मराठी में बहुत उल्लेख मिलता है । मुगलकालीन महाराष्ट्र में शीव व पराक्रम की एक मनीष लहर उठी उस समय पचाड़े अथवा पोवाड़ों की बहुसंख्य रचना हुई । इन रचनाओं को गाये जाना एक बल विधेय उत्पन्न हो गया और आज भी उसकी परम्परा के मुख उपलब्ध हैं । श्री कैलकर ने मराठी में ऐतिहासिक पोवाड़ा नामक संग्रह दो खंड में प्रकाशित भी कराया है । जिसमें ऐसी ही रचनाओं को एकत्र किया गया है ।

पन्द्रहवीं सदी में रचित एक शब्द निम्बुन दीपक प्रबन्ध' अथवा 'प्रयोग चिन्तामणि में पचाड़ा शब्द तीन स्थलों पर प्रयुक्त हुआ है वहाँ इस शब्द का प्रयोग आश्चर्य अथवा किसी चीत विधेय के रूप में हुआ है यथा—

(१) पुत्र पचाड़ा सम्मती आचण्डित मरनाह ।

(२) मम दिग्विजय करुणा निम्बुन शिष्टो बाह निजि काड़ा  
आपन बहूँ केहुत केतला तुम माननि पचाड़ा ?

(३) मुयईक मुचक मड मंगर, चरिय पचाडई पंचतर ।

इस जन-काव्य का सम्भव कब से हुआ, यह कहना कठिन है । इनका जन्म तब हुआ होगा जब कि काव्य, संगीत व कथा में अन्तर न था । तब कथा और कविता का आपस में मेल था । कहानी विषय वस्तु को निर्मित करती थी और कविता उसके रूप-रस को, संगीत उसकी बेह में प्राणप्रतिष्ठा करता था । पद्याङ्गों की रचना किसी एक व्यक्ति द्वारा की गई है जबवा जनसमुदाय द्वारा, इस विषय पर हमें विभिन्न मत दिखाई पड़ते हैं । प्रोफ़ेसर वाइसके के अनुसार पद्याङ्गों में लोक-मानस व लोक-हृदय की व्यक्तिकृति होती है लेकिन के व्यक्ति का प्रस्तुतन उसमें नहीं होता । जब पद्याङ्गों के रचयिता को कोई महत्त्व नहीं दिया जाता । पद्याङ्ग वस्तुप्रधान रचना है, व्यक्तियुक्त नहीं<sup>१</sup> । फिर भी उसकी रचना किसी एक लेखक के द्वारा की जाती है । प्रोफ़ेसर किरटिख व जैम्सविम यह मान कर बैठे हैं कि कोई एक लेखक पद्याङ्गों की सुरुवात न कर सकता है, सम्पूर्ण पद्याङ्गों की रचना उसका एकान्तिक कार्य नहीं होता जन समुदाय के साहचर्य से वह पद्याङ्गों को आगे बढ़ाता है । वे 'लोक हृदय बीज' को मानते हैं<sup>२</sup> । दोनों धारणाओं में सत्य का कुछ अंश है । पद्याङ्गों को केवल जनकाव्य ने ही अपनाया हो ऐसी बात नहीं है । अनेक कवियों ने भी अपने काव्यग्रन्थों में पद्याङ्गों काव्य रूप का प्रयोग किया है । पद्याङ्गों में भी भाषाओं का ध्यान रखा गया है, यद्यपि मौखिक परम्परा द्वारा उपलब्ध होने के कारण उनमें अनियमितता व निम्न स्थितिजता है । ये सब तथ्य संकेत करते हैं कि पद्याङ्गों का रचयिता कोई एक व्यक्ति हो ना । बिना प्रकार अवन्ता व एलिफेंटा गुफाओं के मूर्तिकारों व चित्रकारों की नामावली के समान में भी हम उन कलाकृतियों के निर्माताओं के व्यक्तित्व व अस्तित्व में किसी प्रकार का संदेह नहीं करते वही प्रकार पद्याङ्गों के निर्माताओं के सम्बन्ध में भी समझना चाहिए ।

ईसा की छहवीं शताब्दी में पद्याङ्गों का प्रचार महाराष्ट्र गुजरात राजस्थान पंजाब व जलप्रदेश में था ऐसे संकेत उपलब्ध होते हैं ।<sup>३</sup> छिन्नपुर निवासी कवि असादत (सं० १४२७) ने ठरकाभीन शैलमाया (प्राचीन मरु-मूर्धर) में 'हृदावलि' पुस्तक लिखी है । हृदावलि का वास्तविक नाम हंसवन्धु जयि पद्याङ्गों जान पड़ता है । काव्य की समाप्ति पर कवि ने कहा है—

संभव । १४। बरह बरह मुनि संव  
वन्धुहंस वर जयि अरुह ।  
बावम नीर कपारह, लीड,  
अह पद्याङ्ग असादत कहिड ।

१ डोलामाक रा ब्रह्मा (भूमिका) पृ० १४ पर उद्धृत ।

२ वही, पृ० १५ ।

३ भाषणे मराठी और बसका साहित्य पृ० २९

४ कै० का० शास्त्री कविचरित पृ० १



उसी प्रकार सावामी फूसा नामक चारण कवि द्वारा भी पवाड़ों का प्रयोग मिलता है। इसी कवि के (१६३२ १००३ वि०) 'भाग समन व 'दधममिहरम वो काव्य ग्रन्थ मिलते हैं।<sup>१</sup> नागबभ्रव एक छोटा सा संक्षिप्त काव्य है जिसमें कानिय-मर्दन की कथा कही गई है। इसमें १२९ छंद हैं—१२४ भुजंग प्रयात, चार बोहे और एक छप्पय। इसके मंगलाचरण के दोहों में उन्होंने प्रकट किया है कि मैंने 'अनुपतिनाय के चरित्र' को पवाड़ों के रूप में गाया है—पवा भीरु हर्य के वर्णन के रूप में—

विचित्रा चारवा विनयू, सद्गुण कक पसाय ।

पम्पाको पत्तणी-सिरे, अनुपति कीनो पाय ॥

इन सभी उदाहरणों से सात होता है कि 'पवाड़ों का अर्थ' एक ऐसी मेय रचना से लिया जाता रहा है जो किसी भीरु से संबंधित हो। पवाड़ों निश्चय ही भीरु गीत हैं। पराक्रम व अद्भुत बायों का वर्णन ही इनका अपभ्रंश रहा है। छंद के संबंध में पर्याप्त विविधता रही है। असाइत की 'ह सावति (ह स बल्ल चरित पवाड़ों) का मुख्य रस अद्भुत है। नागबभ्रव तो छप्पय के विनय, साहसिक व अद्भुत हर्य का काव्य है ही। पादुजी के पवाड़ों तो उनके अतीक्रम पराक्रम की गाथा गाते हैं। अतः जहाँ तक विषय-वस्तु का प्रश्न है सभी में पराक्रम व अतीक्रम कार्यों का स्तुतिपरक वर्णन है किन्तु यह समानता की भावना छंदों में नहीं है, 'ह सावति (ह स बल्ल चरित पवाड़ों) जोपई छंद में हैं। पादुजी के सभी पवाड़ों में एक ही छन्द का प्रयोग हुआ है। एक छन्द में प्रयोग के कारण कथा का प्रवाह अद्भुत बना रहता है, जो प्रबंध काव्य के लिए आवश्यक व वांछनीय है।<sup>२</sup> डा० सहस्र के मत में पवाड़ों का छन्द साविक अनुकान्त छन्द है, जिसके प्रथम व द्वितीय चरणों में १६ तथा द्वितीय और तृतीय चरणों में क्रमशः ११ व ११ मात्राएँ होती हैं। अपनी मान्यता की पुष्टि में उन्होंने निम्न उदाहरण दिया है—

आँही की परबायो रानी ॥१९॥

आली लीगू लोक ॥२१॥

(कोई) आँको लो टालेको ए ओ ॥२५॥

रामचरण हू ना छमो ॥२३॥

उनके द्वारा संपादित सतियों के पवाड़ों में यही रूप है। किन्तु भी मरोत्तम स्वामी द्वारा संपादित सोही भी रो-पवाड़ों का छन्द-विन्यास विरुद्ध मिल है। यथा—

हास्या हास्या आली परला हार ॥२९॥

(कोई) पायलकी ली जुहकी विछिया नाबिया ॥९ मोरी सहया ॥२१॥

१ मोतीलाल मेनारिया रामस्वामी भाषा और साहित्य—पृ० ११२ १३

२ 'महाराष्ट्री' वर्ष १, अंक ३, डा० सहस्र का लेख पृ० २६

यही उन्नीस और इकतीस मात्राओं का क्रम है । पर इसमें बहुत अपवाद भी मिलते हैं जो स्वाभाविक ही हैं । 'पादुवी रा पवाड़ा' <sup>१</sup> में तो बहुत अधिक विपमता है । इन सब छन्दों को ध्यान में रख कर कहा जा सकता है कि छन्द की दृष्टि से पवाड़ों की संज्ञा से अभिव्यक्त किए जाने वाले काव्य-रूप के लिए कोई निश्चित नियम नहीं है । जो सभी छंद मानिक है । येय है अतः उनके लिए मानिक होना ही अधिक समन व स्वाभाविक है । रचना छन्द की दृष्टि से पवाड़ों की व्याख्या इस प्रकार की जा सकती है <sup>२</sup> कि जिसमें मुख्यतः चौपाई संज्ञ हो उसमें अन्य प्रकार के छंद मगवा बोहे जावें कि न जावें । इसी प्रकार असव-असव राय में माने के पद जावे चाहें न जावें । येय, रास काव्यों यथा कड़वां रास, छवनी, बाल की तरह ही पवाड़ा भी एक येय काव्य-स्वरूप है जो कथा को केकर चमता है ।

सर बहुराज सरकार ने बीर गीतों (बोक) के सम्बन्ध में निम्न विशेषतायें बताई हैं । प्रबन्ध की श्रुत मति, सख्य विम्यास की छावनी, विश्वव्यापक मर्मस्पर्शी प्राकृतिक और आध्यात्मिक मनोरम, सूक्ष्म भावविश्लेषण के बजाय व्यापार की प्रमाणता स्पष्ट किन्तु प्रभावोत्पादक अरिज विमल भीड़ास्वरी अथवा विलास का स्पष्ट अंकन, साहित्यिक कृतिमताओं का मृनातिमृग प्रयोग या सर्वथा बहिष्कार अथवा बौद्धिकता की ये नितांत आश्चर्यक विशेषतायें हैं <sup>३</sup> पवाड़ों में ये सब विशेषताएँ हैं । पृथ्वीसिंह मेहता का मत है कि पवाड़ा राज्य का प्रयोग संस्कृत श्लोक अर्थ में हुआ जान पड़ता है और व्युत्पत्ति-के विचार से यदि हम इसे संस्कृत शब्द प्रवर्धन या प्रवर्धना का अप-भ्रंश माने तो शायद अधिक युक्ति संभव होवा । कुछ भी हो कासान्तर में इसी येय काव्यरूप ने प्रबंधात्मक स्वरूप धारण कर लिया ।

द्विजल में कन्न नाम से पुकारी जाने वाली रचनायें भी उपलब्ध होती हैं यथा बीबर का रममस्त छंद बीट् मैहाका पादुवीरा कन्न बीट्सूजा छंद कन्न राव बीतवी रो । इन छंद संज्ञक रचनाओं का ब्रह्म हो प्रकार है । छोटी रचनाओं में कभी कभी एक ही छंद प्रयुक्त होता है, किन्तु अनेक बार मिल-भिन्न छन्दों का समुच्चय भी छंद नाम से पुकारा जाता है । <sup>४</sup> रममस्त छंद में बेसीराम छंद दोनों का प्रयोग है । पादुवीरा छंद में माहा नोटक और कसस छंदों का उपयोग किया गया है । राव बीतवीरा छन्द में ४ १ अंश है । इन उदाहरणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि छंद संज्ञक रचनाओं में कोई ऐसी विशेषता नहीं है, जो उन्हें द्विजल प्रबंध काव्यों से अलग करे । आख्यात नाम से पुकारी जाने वाली रचनाएँ आख्यायिका और चरित दोनों का मिश्रण है । <sup>५</sup> हम देख ही चुके हैं कि द्विजल की रचनाओं में कथा और चरित

१ मस्मारती अंक १-४ पृ० १२३ १३

२ मजुमदार गुजराती साहित्यता स्वरूपो-पृ० १२५

३ बी० एस० सिन्हा राजस्थानी मिट्टेरार में उद्धृत ।

४ मजुमदार गुजराती साहित्यता स्वरूपो पृ० १०४

५ वही-पृ० १४१ १४०

शोनों का समन्वय है। प्रकाश, विमल, कणक, आदि भी ऐसी ही रचनाएँ हैं। अब इनके कम विभाग में कोई विशेष अन्तर नहीं रहा। इस प्रकार रास, रासो, प्रबंध आदयान, विमल, प्रकाश, छंद, कणक, बिबाहुनी, बेसि, पद्माङ्गा, आदि सभी काव्य का विमल प्रबंध काव्यों की कोटि में आते हैं।

प्रबंधकाव्यों से सर्वथा भिन्न किन्तु एक विशेष प्रयोजन को लेकर बतने वाले भी अनेक काव्य छन्द विमल में पाए जाते हैं। इनमें से कुछ तो एक ही विषय को लेकर लिखे गये मूलकों के संग्रह काव्य हैं और कुछ अत्युत्कृष्ट हैं। बाकीरास की रचनाएँ पहले प्रकार की हैं<sup>१</sup> और पद्मा, वाराणासी, छंदो आदि काव्य प्रकार दूसरे छंद की रचनाएँ हैं।<sup>२</sup>

पहले प्रकार की रचनाएँ विमल में बहुत बड़ी संख्या में हैं, यह हम तीसरे अध्याय में देख ही चुके हैं। कविता ब्रह्मा छन्द, कु इतियां सामान आदि मूलकों में एक विषय को लेकर काफी अच्छे से लिखा जाता रहा है। इनमें बस्तु-प्रेम का सीना-टा आबरव नाम है बड़े प्रत्येक रचना अपने आप में स्वतंत्र मूलक है। विमल के महाकवि सूर्यमल्ल रचित 'गोर छठवाई' को भीजिए। इसमें गोरों से संबंधित लोगों का संग्रह नाम है। हालां-सामांरा कुम्हसियां में यद्यपि हालां और सामां सरकार के युद्ध का वर्णन है किन्तु प्रत्येक कु इतियां अपने आप में स्वतंत्र मूलक है। युगलमुद्र अपेठिका में बाकीरास रचित युगलचोरों की भरसना के बीड़े हैं। बस्तु : इन सब पर विमल मूलकों के अंतर्गत ही विचार किया जाना चाहिए। हमने भी वैसा ही किया है।

फागु, बमाल, बागुनाला आदि रचनाएँ स्पष्टतः अत्युत्कृष्ट हैं, यह इनके नामों से ही मान्य हो जाता है। मूलतः फागु और बमाल बसन्त ऋतु में गाये जाने का काव्य है। जिस प्रकार लक्ष्मि और गरुड पुनिमा के अवसर पर रास गाये जाते थे और वानिरास अवका लकड़दास के कम में केले जाते थे, उसी प्रकार फागुन ऋतु में बसन्त के आरम्भ पर भी फागु गाये और केले जाते थे। फागु के समय में केले और गाये जाने के कारण इनका नाम फागु पड़ा।<sup>३</sup> वैसे फागु रास का ही कम है। (त काव्यों में मिलन और बिरह दोनों आते हैं। प्रकृतिवर्ण और काव्यधर्मी के आधार पर विद्वानों ने फागु की व्युत्पत्ति निम्न-निम्न प्रकार से बताई है—यथा १—बा० साहेबरा फागु की व्युत्पत्ति संस्कृत फल्लु से बताते हैं—फल्लु-फल्लु-फागु।<sup>४</sup> २—के० बी० व्यास भी संस्कृत फल्लु से फल्लु और फिर फागु इस विकास को मानते

१ बसन्तपञ्चमी, संतोषवाकनी, भावङ्गिया मित्राज कापर वाकनी आदि

२ बसन्त विमल फागु, वीज-वांछ संवाद, बसन्त फल्लु आदि

३ मनुमवार-पुनरासी साहित्यना स्वकर्मो—पृ० २००

४ हीरालाल माहेश्वरी राजस्थानी साहित्य—पृ० २४१

५ डा० सोपीलाल साहेबरा प्राचीन फागु संग्रह—पृ० २३

हैं। फल्युक्त में बसन्त ऋतु अपने पूर्ण योग्यता पर होती है। हर्षोन्माद और इस समय के नाम फल्यु कहलाते हैं। अक्षय चन्द्र खर्मा इसे मधु महोरस्य कभी येय कथक मानते हैं।<sup>१</sup> -३

ऐसा प्रतीत होता है कि फल्यु का मूल उद्भव तो येय-कथक काव्य में बसन्ती रस्य मगने से हुआ। इसी से फल्यु के मूल में लोक साहित्य का गीत स्वरूप है।<sup>२</sup> इसी सरस लोक काव्य का विकास वासांतर में छिष्ट काव्य के रूप में हुआ। जैसी और विषय के आधार पर विवेचन करते हुए भी बालचंद्र गांधी इसे विविध तत्वों से युक्त रचना देखते हैं।<sup>३</sup> फल्युबंध रचना को समक अनुप्रासमयी यैसी में रचित होना चाहिए ऐसा आदर्श भी स्थापित हुआ।<sup>४</sup> कुछ भी हो वांछित उद्देश्य में युक्त गेय काव्य फल्यु है।

द्विमत के मुक्तक काव्य में दो प्रकार की रचनाएँ उपलब्ध हैं। एक तो वे जो गीत के नाम से पुकारी जाती हैं और दूसरी वे जो वहाँ कवित्व कृत्रिमियाँ तथा अन्य छन्दों में रचित हैं। राजस्थानी साहित्य का, राजस्थानी संस्कृति और लोकमनसा का प्रतिनिधित्व यदि कोई काव्य रूप कर सकता है तो वह यही है।

द्विमत के कवियों ने तत्कालीन प्रसिद्ध और लोकप्रिय छन्दों का प्रयोग किया। उन्होंने संस्कृत-हिन्दी में प्रयुक्त पापा(पाहा) पछरि मुक्तावाम सोमर भुजग प्रयास भोटक आदि प्रसिद्ध सभी छन्दों का प्रयोग करने में कोई हिचक अनुभव नहीं की उसी प्रकार अपभ्रंस का बोझ भी बड़े प्रेम से अपनाया। कवित्व, कृत्रिमियाँ और अन्य तुकान्त छन्दों का उपयोग भी बहुत हुआ फिर भी इन सभी छन्दों के अतिरिक्त 'गीतों' की रचना की गई, और बड़े परिमाण में की गई। द्विमत गीतों का अपना निजी विधान है। 'गीत शब्द से प्रायः हम ऐसी कविता का अर्थ लेते हैं जो वेद हो अर्थात् बार्ह या सफली हो। सूर, मीरा अपना कबीर के पद जिस प्रकार गाये जाते हैं उस तरह द्विमत के गीतों काया नहीं जा सकता। ये गीत वास्तव में द्विमत के अपने छन्द हैं, जो गाये नहीं जाते विशेष ढंग से पढ़े जाते हैं।

राजस्थानी लोक मानस में एक बात काम भी प्रचलित है कि मनुष्य का नाम गीतका के गीतका रहता है अर्थात् मनुष्य का यश, उसकी प्रतिष्ठा गीतों के रूप में सिखी आकर अमरत्व पा लेती है अपना दुर्ग कोट देखस महक हुनेनी आदि बनवाने से स्थायित्व ग्रहण करती है। यह कारण द्विमत गीतों के लिए एकछासी प्रेरक रही है और इसीलिए अनेक प्रकार के इन द्विमत गीतों की रचना सदृशों की

१ के बी० व्यास बसन्त विज्ञान-अंग्रेजी भूमिका-पृ० ३८

२ नामदे प्रचारिणी पत्रिका-वर्ष ५३ अंक १, पृ० २५

३ मनुमवार. मुजगादी साहित्यना स्वरूपो-पृ० २०१

४ बीन सत्य प्रकाश-वर्ष ११ अंक ७ पृ० २१२

५ अ० प्रे० साहू. बीन सत्य प्रकाश-वर्ष १२, अंक ५५ पृ० १५५

संज्ञा में हुई। विमल काय के अनुमान गीतों की रचना की जाती रही है और गीतों के अतिरिक्त भक्ति गुरुवार कदम आदि विषयों पर भी गीत रचे गये हैं। भागे बग पर हम इन पर विचार करेंगे।

'विमल गीत' बसुन् एक छंद विशेष है। इन गीतों के कई भेद हैं। विमल के भिन्न-भिन्न रीति छात्रों में इनकी अनग अनग संख्याएँ हैं। गई है। गुरुवाणी भाषा में दोबारा रचनेवाले की द्वारा संवलीत और मन्नादिन 'रम निमल भावक एक दम्भ तीन भावों में है। संव नवा है भावों सन्द का वनगाहवनीहीन है। इनके प्रथम भाग में लीनिक लम्ब बुरे में निगलानुसार छात्रों का विचार लीनरे में ब्रिज विमल तथा करबी पारली के छात्रों को दिया गया है और उनकी तुलनामक मन्नीका की गई है। छात्रों के लक्ष्य में ऐसा छात्रों सम्पन्न बहुत कम हुआ है। इन संव में विमल के ४४ गीतों का सम्पन्न और विवेकन दिया गया है। रघुनाथ मन्त्र विमल के छात्रों का कुल संव है। जिसमें गीतों की संख्या ७२ है। यह संव ओपनर के महाकाव्य मन्त्रिण के कृपापात्र कवि मन्त्रापात्र में विमल है और लीनिकाओं में विमल भिन्न प्रथम दो विमलता में वर्षे बग, दम्भार मन्त्रापात्र पन्नाका कायरीय बग सनाई मन्त्रीय उल्लिख रगों के मन्त्रापात्र भिन्न आदि भावों पर कृपा दाला गया है। येय छात्र विमलता में विमल छात्रों में प्रकाशित ७२ आदि के गीतों का विस्तृत विवेकन है। विमल की भाषा की विमल के प्रसिद्ध गुरुवाणी भाषा के संवत् और स्वयं अपने कवि से उग्रीने अपने संव 'रघुवर जल प्रकाश' में विमल के २४ प्रकार के गीतों का उल्लेख किया है। बुरी के कवि मन्त्रापात्र की में अपने 'विमल बोध' में भी गीतों पर प्रकाश दाला है। अन्तः।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है विमल तीन भागों में नहीं जाते विशेष प्रकार से पढ़े जाते हैं इनकी टीक नीचे करना आसान काम नहीं यदि इन गीतों को किसी व्यक्ति और योग्य व्यक्ति के मुह से सुना जाय तो कहीं इनके सौन्दर्य को समझा जा सकता है। कागज पर उतर कर ये सन्ध अपनी व्यक्ति सम्बन्धों विशेषता को बँटते हैं और फिर इन गीतों के वास्तविक सौन्दर्य और चमत्कार का अनुमान भी नहीं समझा जा सकता। श्री रामदेव जी चोरागो ने एक बार विमल गीतों को विरचक विरचक की सुनवाई का। कहा जाता है कि कवि उन्हें सुन कर सुम लड़े। उन्होंने एक जगह लिखा भी है 'कुछ समय पहले बसकता मैं मेरे कुछ राजस्थानी मित्रों ने रघु सम्बन्धी कुछ राजस्थानी बीच सुनवाई। मैं तो उनकी सुनकर मुग्ध हो गया। उन गीतों में किसी सरसता सहजता और भावुकता है। ये सीखों के स्वाभाविक उद्गार हैं। मैं तो उनकी सन्ध साहित्य से भी उत्कृष्ट समझता हूँ। नवा ही बसक हो यदि वे बीच प्रकाशित किये जायें। यह गीत संसार की किसी भी भाषा और साहित्य का गौरव बड़ा सकते हैं। इनका सौन्दर्य और चमत्कार ठीक ठीक के 'रिवाइट' करने पर निर्भर रहता है। यह बहुत ही दुःख और

लक्ष्मी की बात है कि इस समय इन गीतों को ठीक से सुना सकने की क्षमता कम विद्वानों के पास है जो चारण कवि इस सम्बन्ध में व्यावहारिक ज्ञान और अनुभव रखते हैं, उनमें से अधिकांश समा सम्प्रदायों से दूर रहते हैं और इसीलिए आवश्यकता इस बात की है कि अच्छे काव्य-पाठकों की इस कक्षा के सुप्तप्राय कोसल को रेखाई कर लिया जाय ।

यह एक सर्व साम्य तथ्य है कि युग की नई मान बहो विषय वस्तु में परिवर्तन लाती है वहाँ वह नये काव्यरूपों की भी उत्पत्ति करती है । द्विमत के समस्त छन्द अपने पूर्ववर्ती अपभ्रंश और प्राकृतों के काव्य-रूपों से बहुत प्रभावित हैं । इन गीतों का मूल सत्त्व कहीं है, इस सम्बन्ध में निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता किन्तु मेरी धारणा है कि यदि कोई विद्वान इस ओर प्रयत्न करे तो उसे उन्हें प्राकृत अपभ्रंश अपभ्रंश में ही इन गीत छन्दों का बीज निहित मान पड़ेगा और मेरी यह धारणा आधारभूत नहीं है । संस्कृत के अधिकांश छन्द अनुकूल हैं और वर्णवृत्त हैं । कविता में तुकांत पद्धति का प्रचलन सबसे अधिक अपभ्रंश से ही पड़ता है । इसके अतिरिक्त हमें यह भी मान रखना होगा कि भाषिक छन्दों की उत्पत्ति या लोकप्रियता भी प्राकृत के परवर्ती है । संस्कृत कविता में हमें यह बातें नहीं बीकरी । वहाँ दूसरी ओर द्विमत के प्रायः सभी गीत तुकांत हैं और भाषिक हैं । अपभ्रंश चार गीतों को छोड़ कर कोई भी गीत अपभ्रंश अपभ्रंश हिन्दी की अन्य विभाषाओं में नहीं मिलता । इन बातों के अतिरिक्त भी अपभ्रंश काव्य की एक विशेष परम्परा हमें कुछ द्विमत गीतों में मिल जाती है । आचार्य हुजारी प्रसाद जी ने बिहार राष्ट्रभाषा परिषद में 'हिन्दी साहित्य के आदि काल' सम्बन्धी अपने पंचम व्याख्यान में अपभ्रंश काव्य की विशेषतायें बतलाते हुए कहा है 'अपभ्रंश काव्य कदम्ब-वृक्ष है । पञ्चमटिका या अरिस्तो छन्द की कई पंक्तियाँ निचकर कवि बत्ताका झुबक देता है । कई पञ्चमटिका अरिस्तो या ऐसी ही ही किसी छोटे छन्द को लेकर अन्त में बत्ताका झुबक यही कदम्ब है । पण्डित गान्धारी जी 'प्रैमी' ने जैन साहित्य के इतिहास में लिखा है कि अपभ्रंश काव्य में सर्ग की बगल प्रायः सग्वि का व्यवहार किया जाता है प्रत्येक सग्वि में अनेक कदम्ब होते हैं । 'कदम्ब' अथवा बग की यह प्रवृत्ति बहुत से द्विमत गीतों में स्पष्टतः देख पड़ती है । उदाहरण के लिए, मगधोदय, काशी अथवा अतिविनाश गीत की किया जा सकता है ।

रघुनाथ कणकद्वार ने 'गीत बात मनमोह' की व्याख्या इस प्रकार की है—

युग दोहोसी माय नव ठगर कदमो जाँ ।

हुँव गीत मनमोह हूँ, बर रघुपति बाबाँ ॥

अर्थात् बोहा, छन्द, बनाकर उसके बाद कदम्ब साजो । यही मनमोहक गीत है । इसमें रामचन्द्र जी के यश का वर्णन करो । यद्यपि वह 'कदम्ब' अपभ्रंश कदम्ब नहीं है पर उसी के समान इसका गठन हुआ है । अन्य छन्द गीतों में भी यही प्रवृत्ति विचारणीय है ।

दूसरी मायगता है कि ये छन्द सीकिक व्यापार पर विकसित हुए हैं । अपनी पारंपरा की दृष्टि में इनके नामकरण की ओर आप का ध्यान आकर्षित करता हूँ । भरतियों, क्षमास, मंदार चित्त हितोत्त, पासवामी त्रिपलों आदि गीत छन्द स्पष्ट ही लोकमानस से अपना निकट सम्बन्ध घोषित करते हैं । राजस्थान में पासवामी नामक एक खेल होती है । यह खेल शेजड़ी के बूझों पर चढ़ जाती है और समय-समय पर हरी मरी रहती है । यह खेल इतनी अधिक चली होती है कि एक छाता ही बन जाती है । पट्ट इसके पत्ते बड़े बाब और ग्रेम से घाते हैं । आँखों के दुखने पर पत्तों को पीस कर पट्टी बाँधी जाती है । ये पत्ते बड़े लसवार होते हैं । पासवामी गीत में भी पासवामी खेल की कुछ विशेषताएँ बीच पड़ती हैं । पासवामी जिस प्रकार सभी पशुओं हरी रहती है उसी तरह इस गीत के चारों चरण सुकास्य होते हैं । इस गीत के पाठन की विधि भी बड़ी लसवार है । ऐसा लगता है मानों बीच में कोई कहीं विराम ही नहीं है । इसी प्रकार अन्य छन्दों का जबका हिमाल गीतों का जल जीवन से निकट सम्बन्ध स्थापित किया जा सकता है ।

यह पहले कहा जा चुका है कि हिमाल गीत विशेष प्रकार से रिताइट किये जाते हैं । ध्वनि सौन्दर्य उनकी बहुत बड़ी विशेषता है । सीहूणी मधुर पुकार चित्त बिनास और कठ लैचाल आदि गीतों के नाम स्वयं बड़े Suggestive हैं—अन्यत्रात्मक हैं । इस विद्या में अधिक न कह कर केवल इतना ही निवेदन कर देना चाहूँ कि नाद सौंदर्य और संगीत का जितना ध्यान हिमाल गीतों में रखा गया है उतना अन्यत्र नहीं । हिमाल के प्रत्येक गीत की बनावट को लेकर अनेक निवेदन हैं । गणों के चयन और प्रयोग को लेकर अनेक साधनानिर्मा बरतने का आदेश रीतिग्रन्थों में दिया गया है । इस प्रकार संघीत की विभिन्न राग रागिनियों की तरह ही हिमाल गीतों के संघटन को निविष्ट कर दिया गया है । जिससे कि ठीक तरह पढ़े जाने पर 'मंदार पुकार' भ्रमरों की गुणगुनाहट सा प्यारा और मधुर लगे और चित्त हितोत्त हमारे चित्त को आसोडित कर दे । 'और कंठ' हममें नवीन उत्साह भर दे । प्रत्येक गीत की इस दृष्टि में अपनी निजी विशेषताएँ हैं जो भिन्न हैं ।

इन गीत छन्दों का सांवाजिक प्रभाव विषयवस्तु प्रत्येक गीत की निजी विशेषता उस अनुकंपता, सौमीतारमकता सभी विस्तृत विवेचन की अपेक्षा रखते हैं । इनकी हृदय-स्पष्टता को लेकर क्या नहीं कहा जा सकता ? जिन गीतों को सुनकर लज्ज भोला आन पर मर भिड़ते ये सैकड़ों और बालाएँ सपनपाती आन की सपनों का प्रसन्नतापूर्वक अभिवेक स्वीकार करती थीं और बीहड़ की आन में जीते जी जल मरती थी जिन्हें सुन जकेला नरसिंह सततत शक्तिशाली पशुओं से भिड़ जाता था, उन गीतों में कितनी शक्ति है इसका अनुमान ही लगाया जा सकता है ।<sup>2</sup>

राजस्थानी साहित्य एक बड़ा भाग हिमालय की ओर के रूप में लिखा गया है।

वर्तमान-वर्तमान गीतों में इस बीर प्रसवनी धरती के बीर सपूतों के यश को स्थापित किया है। इतिहास उन सर्वस्व बलिदानों भूख आय, बाढ़े सोक प्रतिमा उन बीती बटनाओं की याद न रच सके, किन्तु हिमालय गीतों ने महान् शौर्य, त्याग और बलिदान की अधिकांश बटनाओं को जाब तक जीवित कर रखा है। राजस्थान में कदाचित् ही ऐसा बीर हुआ हो, जिसके शौर्य, दानवीरता, पराक्रम व बलिदान को उपवीक्ष्य बनाकर कोई एकाग्र मीठ न रचा गया होमा। अनेक मीठों के ऐतिहासिक मूकों की उपेक्षा नहीं की जा सकती। ऐसे हैं ये हिमालय गीत।

यह किन्तु आश्चर्य की बात है कि राजस्थानी में पाये जाने वाले हिमालय गीत किसी अन्य भाषा में नहीं मिलते। यह राजस्थानी की अपनी विशेषता है। वस्तुतः मीठ एक प्रकार के छंद हैं, जो केवल राजस्थानी में ही उपलब्ध हैं। हिमालय गीतों के मूक उत्स के सम्बन्ध में निम्नलिखित रूप से कोई धारणा नहीं बनाई जा सकती है फिर भी मेरी मान्यता है कि हिमालय गीतों की उद्भावनता की ओर से समय मात्र रचना होमा कि हम अपभ्रंस कालीन साहित्य को अवश्य हूँ।<sup>१</sup> चन्द्र बरबाई के श्याम नानूराज का कहना है कि बीरबन्ध के पुत्र हरिबन्ध ने श्री हिमालय मीठ की सर्वप्रथम उद्भावनता की। उससे हिमालय भाषा में २४ गीत लिखे थे और एक हिमालय कोप का सग्रह व सम्पादन भी किया था।<sup>२</sup> किन्तु कहा नहीं जा सकता कि इस कथन में सच्चाई का कितना अंश है। प्रमाणों के अभाव में केवल किसी के कथन मात्र पर विश्वास कर लेना वैज्ञानिक दृष्टिकोण का परिचायक नहीं कहा जा सकता। बंधू नास्कर के रचयिता बीर रसाजितार महाकवि सूर्यमस्त मिश्र की धारणा भी कि हिमालय मीठों का जनक कोई धारण ही है।<sup>३</sup> इसमें कोई संदेह नहीं कि हिमालय मीठ लेखकों में सबसे अधिक संख्या धारणों की ही रही है। धारणोत्तर जाति के कवियों ने हिमालय मीठ लिखे हैं किन्तु ए से कवि अल्प संख्या में रहे हैं, अतः अल्प लोगों द्वारा नामों का आचार यही आवश्यक है।

मीठों का धारण कब से हुआ इसका ठीक प्रमाण नहीं मिलता। पं० चन्द्रधर शर्मा शुक्ला ने राजस्थानी कथाओं व बातों की परम्परा, नवी सताब्दी तक दृष्टि है। उन्होंने अपने 'धारण' नामक लेख में अर्ध शताब्दी से एक शताब्दी दिया है। जिससे पता चलता है कि मीठ और कथा नवी सताब्दी में भी वर्तमान में। उद्धरण यह है -

१ पोन्डरन शर्मा - ओज पत्रिका वर्ष १, अंक २, पृ० ७०-७४

२ महा महापात्राय हरप्रसाद शास्त्री प्रिन्सिपलरी रिपोर्ट आन हि ओपरेशन इन दार्जिलिंग और बाकिर कमिशनर पृ० १०।

३ डा० कन्हैयालाल शर्मा राजस्थान के सांस्कृतिक संपादन पृ० ४

४ नागरी प्रचारिणी पत्रिका, भाग १०, पृ० १३९



‘बर्षाभिश्चरभानां शितिरमनपरां प्राप्य सम्मोहसीमा  
प्राकीर्ते सीविहस्ता मय नयय कवि प्रात भागी विसाद्याम् ।  
गीतं क्याठ न माम्ना किमपि रजुपतेरप यावत्प्रसादा  
हास्मीकेरेण भागी नवसयति मदीयामुद्रया राममद्र’ ।

अपमृत्त या काव्य ने पीठ छंद को अपने ढंग से अपना लिया था इसका प्रभाव हमें हेमचन्द्र की प्राकृत भास भावा पागधी व्याकरण में मिलता है । उन्होंने एक उदाहरण दिया है जो यह है —

छोत्ता सामना धन नपनम्भी ।

नह सुवर्णदेह कसबट्टह दिष्णी ।

यह उदाहरण हमारे दिवस के छोटे साजोर छंद का है । छोटा साजोर भीष छन्द का ही एक भेद है ।<sup>१</sup> अतः यह निश्चित होर में कहा जा सकता है कि दिवस बीठों ने इसी छंद में अपना स्वल्प चहुन करना आरम्भ कर दिया था यद्यपि उनका पूर्ण विकास पद्महर्षी सताब्दी में ही हो पड़ता है । इस समय अपार पीठों की सृष्टि हुई और ये पीठ भी विविध विषयों पर लिखे गये ।

मान सीजिमे कविता के छ. पद्य हैं दिवस गीतों के ये पद्य बोझें कहसते हैं । सभी बीठों में एक विशेष प्रकृति परिभूषित होती है । प्रथम बोझें ये जिस भावना को कवि ने अभिव्यक्त किया है उसके बोझों में भी उसी भावना को व्यक्त किया जायेगा, किन्तु बरा निम्न प्रकार से । तीसरे अक्षरा जोके बोझों में भी इसी प्रकार भावना की पुनरावृत्ति होती है किन्तु भावा की नहीं । इसकी वरा उदाहरण लेकर समझा जाय । यथा —

राजस्थान के प्रसिद्ध योद्धा जयमल बीर पताकी भना कौन नहीं जानता ? बाह्याह अकबर स्वयं उन दोनों की बीरता से प्रभावित हुआ था । प्रस्तुत पीठ में चित्तीक कितने को सम्मोहित करते हुये जो मार्मिक उद्गार प्रकट किये हैं, वे बसा कितने रोमांचित नहीं करते ।

बई एम बीमान बीठोइ मय नन बई,

हेइइ जरी नन न पू हाई ।

साहरे कमल परा बई नह तादयां

साहरे कमल के जवां भावै ॥१॥

धड़क मय ननमह जोबहर बीर पै,

पंज सवां दला कर गजमाह ।

मुवां सु सुत नह कमल कमलां मिलै

पछे तो कमल पय बेह पाठसाह ॥२॥

दूर कुल आभरण मुइइहर राजबी,

बीर मन डरी मय हरी जोको ।

प्रसी पर माहरो सीस पड़िया पछै,  
 बाजने साहरे सीस जोखो ॥१॥  
 साच बाझो कियो नीर री सीपकी  
 हाथ बित पुरने काम हुबसाह ।  
 पुर जमर कर्मज बेमाल पाचारियो,  
 पछै पाचारियो कोट पतसाह ॥४॥

जयमल कहता है कि हे चित्तौड़ ! तू निश्चित न हो, मैं समुद्र-तल को भगा दूँगा । तुझे समुद्रों के हाथ कदापि न जाने दूँगा । तेरे सिर पर समुद्रों के पैर तब तक नहीं पड़ेंगे, जब तक मेरे कर्मों पर मेरा मस्तक है । जहाँसे मेरे भीते की समुद्रों के हाथ में जाने की बाधका निमूल है ।

जोधा का बंशज पीरज बंसाता है कि हे चित्तौड़ ! समीप न हो । समुद्रों के हलों को नष्ट कर हाथियों से मैं उन्हें रीखा दस्तूँगा । भुजाओं से जलम होकर जब मेरा सिर (महादेव की भुजमाका के) मस्तकों में जा मिलेगा, तभी बाधसाह तेरे सिर पर पैर रख सकेगा ।

बूरा के कूल का आभुषण और घुड़क का पोता जयमल चित्तौड़ दुर्ग से कहता है कि हे दुर्ग ! तू जैसे वारण कर मन में बूसा न कर और किसी भी प्रकार के संघर्ष में न रह । तेरे जलत मस्तक को तभी खतरा हो सकेगा, जब मेरा मस्तक तुल में जा मिलेगा ।

हे सिंह के समान नीर जयमल । तूने अपने बचनों को बख्शी रख पूरा कर दिखाया । अपने हाथों से विपुल बाध बर्षा कर तूने अपने मन की निकाल ली । राठीक पोडा जयमल जब स्वर्ग सिंघार गया तभी बाधसाह किते में प्रविष्ट हो सका ।

उक्त उदाहरण के विविध होता है कि एक ही भावना को वर्णनार्थक भाषा का आभय लेकर बारबार व्यक्त किया गया है । अब प्रश्न यह उत्पन्न है—एसा होता क्यों है ? भावों की यह आवृत्ति क्यों ? इसमें क्या रहस्य है ? मेरी धारणा है कि विमल मीत के सभी बोहनों में एक ही भाव की आवृत्ति भावपुष्टि के लिये की जाती है । मनोविज्ञान की दृष्टि से इसका बड़ा उपयोग है । बार-बार के बोहराने से पाठक की भावप्रवणता को उत्तेजना मिलती है । यह कवि के धाव यह जाता है । उदाहरण के लिये एक वक्ता है और वह किसी आमसभा के संघ से जमला को कहता है—‘हमें रोटी, रोमी और कपड़ा दो’ तो उसके इस कथन का अपेक्षाकृत कम प्रभाव पड़ेगा । किन्तु यदि वह यह कहे—‘हमारी सरकार से मांग है—हमें रोटी दो हमें रोमी दो, हमें कपड़ा दो तो उसकी इस वक्तव्य का अधिक तीव्र व्यापक प्रभाव पड़ेगा । कारण स्पष्ट है कि ‘हमें रोटी दो, हमें रोमी दो, हमें कपड़ा दो’ कहने से इन धर्मों में एक विशेष शक्ति आन पड़ती है । यह एक ही भावना, हमारे जमानों को पूरा करने की मांग को प्रकाशान्तर से बोहराती है । यही विमल गीतों में भावना की आवृत्ति का रहस्य है । गुबराती साहित्य के स्वनामधेय साहित्यिक स्वर्णिम देशाभी

जो मैं भी कहा है—'भारणी रचना का हेतु विगम उपस्थित करना नहीं था बल्कि एक ही भावना को उठा कर ध्वज गुणन द्वारा दीप्ति आविर्भास करना ही उसका मुख्य उद्देश्य था। लोक-गीतों की तरह सब वस्तुओं का गोरा रंग का अवकाश नहीं रचनाकार की दृष्टि में इतिहास का विवतवार वर्णन महत्वपूर्ण नहीं था, अपितु उसका उद्देश्य ही भाव तथा प्रथम की जमावट करके नूतन बनाना था।

द्विगम गीतों को द्विगम भाषा की निजी सम्पत्ति कह सकते हैं। इस अपूर्व एवं अमोघ सम्पत्ति के लिये द्विगम को न तो अपनी माँ अपभ्रंश का मुँह देखना पड़ा और न उसी प्रजमाया का। अतएव निस्संदेह यह गीत रचना द्विगम कवियों के मस्तिष्क की एक अपूर्व उपज कही जा सकती है। इसी प्रश्न पर इससे पूर्व पर्याप्त विचार किया जा चुका है।

अप्य छन्दों की भाँति द्विगम गीतों के अपने नियम हैं। अधिगोच गीतों में चार दोहरे पाये जाते हैं। कम से कम तीन दोहरे होना अनिवार्य है जो चार हैं अधिक दोहनों की रचना भी 'एक गीत के अन्तर्गत की जा सकती है। प्रत्येक दोहरे (द्वार) में चार पंक्तियाँ होती हैं। कहीं-कहीं पहले चरण में अप्य चरणों में अधिक मात्राये या वर्ण होते हैं जो उसके प्रथम व प्रारम्भिक शब्द के लुप्त होते हैं। ये गीत मात्रिक और वर्णिक दोनों प्रकार के पाये जाते हैं। अधिकांश गीत सप्तुक्ताव्य होते हैं, पर अनेक ऐसे गीत भी उपलब्ध हुये हैं जो अतुक्ताव्य हैं। हिन्दी के लिये मात्रिक छन्दों में अतुक्ताव्य कविता नहीं थी। पर राजस्थानी में यह प्राचीनकाल से बनी आई है।<sup>१</sup> राजस्थानी के गम्भीर अम्बेता नरोत्तम स्वामी ने 'रघुभाष कपक' को आधार बना कर द्विगम गीतों की वैज्ञानिक कम से विभाजित किया है। उनको विवेचन करने पर माधुम हुआ कि 'मात्रिक गीतों की संख्या बहुत अधिक है। मात्रिक गीतों की कुल संख्या ७ है और उनमें भी मात्राओं का संज्ञक लगा हुआ है। एक गीत ऐसा भी है जो मात्रिक और मात्रिक दोनों है। मात्रिक गीतों में सबसे अधिक संख्या विषम गीतों की है। इसके कम अर्धसम की और सबसे कम सम की। विषम गीतों की यह अधिकता राजस्थानी की एक विशेषता कही जा सकती है (यद्यपि) हिन्दी के अधिकांश छन्द और पर सम या अर्धसम ही पाये जाते हैं।

इन गीतों में मात्रिक छन्दों की बहुलता और विषम पदों की अधिकता का कारण निश्चित तौर पर ही अधिकृत अध्ययन और साधनों के अभाव है। कारण छहराया नहीं जा सकता है किन्तु सम्भावित कारणों का अनुमान बबरम भगवाया जा सकता है। श्री बार० बी० जालीखार ने अपनी पुस्तक 'भूमा इन संस्कृत सिटरेचर'

१—गजराज जोषा नागरी प्रचारिणी पत्रिका भा० १४ अंक २, पृ० १११

२—नरोत्तम स्वामी राजस्थान भारती, भाग १, अंक १, पृ० २४

३—यही।

४—विशेष जानकारी के लिये देखिये — परिशिष्ट १

द्विगम गीतों का छंद सांस्कृतिक अध्ययन

में संस्कृत नाटकों में प्राकृत धीनों की अवतारणा पर प्रकाश डालते हुए बताया है कि लंघित की आवश्यकता के अनुसार ही अनपरीय बोधियों के धीनों की व्यवस्था संस्कृत के नाटककारों को करनी पड़ी है। नाटिक कृतों में यह भाग्य नहीं आ पाता या जो देखी बचना सब जन मिथ्या में था। नाटिक कृत जो अपभ्रंश में बाहर तुल्यता ही पड़े थे—अपेक्षाकृत अधिक भय भय थे। द्विगल के ये समस्त धीत जैसा कि पहले बताया जा चुका है—विशेष रूप और ध्वनि शैली के साथ पड़े जाते हैं स्वाभाविकता नाटिक ही होने चाहिए। जो सरलता व सरलता नाटिक कृतों में होती है, वह द्विगल कवि के लिए आवश्यक थी अपनी अजीब छिछि के लिए इसके अति रिक्त पाहू भी कौन ही हो सकती थी ? जत अधिकोच गीत नाटिक और विपन है।

द्विगल धीनों के बाव सबसे श्रिय छंद 'बोहा' है। यदि बन्नीरता से इस प्रश्न पर विचार किया जाय कि कौन-सा छंद राजस्थान की भावना का सही प्रतिनिधित्व करता है किसी अभिव्यक्ति सबसे बीजन्त है तो निश्चय ही बोहा इसमें बाकी के आवेगा। नीति और नृ मार, प्रकृतिवर्णन तथा अन्य प्रकार की संस्कृत अभिव्यक्ति के लिए 'बोहा' द्विगल में कवियों का अति श्रिय छंद रहा है। इस प्रवेश के लोकरिवाज उत्सव नाटिक विरहास आकाश—अभिकापार्य, जनभावना, समाजव्यवस्था संस्कार और संस्कृति जिस कुलकता से अपने को इस छंद के माध्यम से प्रगट कर पाई है, वह असूतपूर्व है। बोहा राजस्थानीजनता से इसका अधिक स्नेह सम्पादन कर पाया है कि उसने सभी प्रकार की कविता के लिए 'बोहा' का स्वरूप ग्रहण कर लिया है। मार्गों वह कवियों का प्रतिनिधि बन बैठा है जत कभी-कभी सामान्य छंद के दर्ज में भी इसका प्रयोग कर दिया जाता है।

बोहा अपभ्रंश कालीन छंद है। लोकमाया अपभ्रंश की बेटी बेटी राजस्थानी में अपने बंध का खिर बहुत अधिक कुछ कम में पाया जाता है—उब सना बोहू को यह प्रजातता क्यों न मिले ? यह छंद बोहा बुहा बुहो, बुहा बोहुरा आदि नामों से पुकारा जाता रहा है। विद्वानों का मत है कि इस छंद की व्युत्पत्ति संस्कृत बोधक या बोधक छंद से की जाती है पर यह उचित नहीं जान पड़ता। 'स्वयंयू छंद' (अपभ्रंश काव्य शास्त्र) में इस छंद को 'बुबहुल' कह कर पुकारा गया है। इससे ज्ञात हुआ है कि 'विपबन्ध' से विकसक (विपयया) बुबहुल होता हुआ कामांतर में 'बोहा' ही गया। अपभ्रंश काल में इस छंद ने बहुत प्रमुखता पा ली। जिस प्रकार प्राकृत साहित्य में 'माहा' या 'धापा' छंद का बोल बाला था, उसी प्रकार अपभ्रंश काल में 'बोहा' सर्वप्रथम छंद बन बैठा और उसका बहुत प्रयोग होने लगा। डा० जेकीवी और अक्सवोर्फ के अनुसार 'अपभ्रंश' नीति काव्य का यह अति प्रचलित छंद है और यह कह कर कि वह प्राकृत भाषा का अपभ्रंश प्रतिरूप है इसकी वास्तविक स्थिति समझी जा सकती है।

बोहा अपभ्रंश का छोटा ही छंद कहा जायेगा लेकिन उसमें इसकी स्वरमय रीतिमय है कि उससे कथा के प्रवाह में बाधा आती है जत उसका प्रयोग करिष

ध्यों में कथा प्रवाह को नियंत्रित करने के लिए होता रहा है। अपभ्रंश काव्य की परम्परा को राजस्थानी ने तो ग्रहण किया ही है—इस अर्थ भाषा काव्यों में भी प्रवृत्ति पाये हैं। सूफी प्रेमकाव्यक साहित्य व राम चरित मानस में बोहा पाई का प्रयोग मालो इसी परम्परा का निर्वाह है। किन्तु बीड़ा है मुक्तक का घण्ट बसमें बाने बानी बार यतियो और प्रत्येक यति का विषय बरण उहे मुक्तक के लिए बति बपयोयी बना देता है। हिन्दी में बोहे को एक ही प्रकार का ना जाता है। किन्तु हिमाल में यह पांच रूपों में पाया जाता है। यथा—(१) बूहो (२) सोरठियो बूहो (३) बड़ो बूहो (४) बूहेरी बूहो और (५) खोड़ो बूहो।

(१) बूहो—यह एक भाषिक छन्द है जिसमें बार बरण होते हैं। पहले बीर छरे बरण में ११ ११ मात्राएँ होती हैं और दूसरे व चौथे बरण में ११ ११ मात्राएँ होती हैं। अन्त दुकान्त होता है। यथा—

राजनीति रे रोल सू बई विषय बर पुर।

मेरे संकट मुलकरो, मैं साहित्य मैं सूर ॥

राजनीति के सुस्थिर रोल से जब वैध विषयग्रस्त हो जाता है तो साहित्य यथा दूरबीर ही उसका संकट मिटा सकते हैं।

(२) सोरठियो बूहो—यह हिन्दी का सोरठा ही है। इसका सम्बन्ध सोरठ (सोरठ) से जोड़ा जाता है। यह राजस्थानी का बहुतप्रिय छन्द है। एक कहावत यह है—

सोरठियो बूहो मल्लो जनि मरबब री बात।

बोखल जाई बब बनी तारा छाई रात ॥

सोरठियो बूहो बोला मारबब की कथा जीवनमय से मस्त प्रिया और तारों मरी हुई राति बन्धी होती है।

इसके पहले बीर छीसरे बरण में ११ ११ मात्राएँ तथा दूसरे तथा चौथे बरण ११ ११ मात्राएँ होती हैं। एक मध्य में मिलता है। इसमें यहाँ राजस्थानी बोहों के अर्थ में एक बात, एक विशेषता या बरबानी चाहिए कि उनमें केवल जन्मी बरणों एक मिलना जिनकी मात्राएँ ११ हों। उदाहरण सोरठियो बूहे का—

अकबरतमब बयाह, तिह बूबा हिन्नु पुरक।

मेवाड़ी तिल मोह, पोखर फूल प्रतापसी ॥

अकबर बयाह समुद्र के समान है जिसकी बयाह यहराई में हिन्नु और पुरक न सब बूब मये परन्तु मेवाड़ का महाराजा प्रताप कमल के फूल के समान उसके पर ही ठहर रहा है—उस समुद्र का पथि जल प्रताप रूपी कमल-पुष्प को बरा भी नहीं कर सका।

रीली बकवर राइ, कोट झई गह काँपरै ।

पटके हाजल सीह पन बाबल छुँ न बिपाइ॥

बकवर ने लड़ाई ठान ली पर अनेक प्रयत्नों के बावजूब भी वह कीट (परकोटा) या कू पूरे को गिरा न सका । सिंह क्रोधित होकर चाहे जिसकी बार अपना पना पटके, पर उससे बाबलों को कोई हानि नहीं पहुँचती । वे उसकी पहुँच से घरा ही बाहर रहते हैं ।

(४) चुकेरी बूझो—यह बने बूझे का विभोग है । इसके पहले और नीचे चरण में ११ ११ मानायेँ तथा बूझरे और तीसरे चरण में ११ ११ मानायेँ होती है । बूझरे और तीसरे चरणों का एक मिलता है ।

मेवा छबिया महमह्य, दुरबीचमरा बैब ।

केला छोट बिसेछ, बाव बिदुर चर बीमिया ॥

महामातब श्रीकृष्ण ने दुर्योधन के भेजे भी त्याग दिए किन्तु प्रिय-मति में बंध कर उन्होंने बिदुर के चर जाकर बिसेछ तीर से कैसे के छिन्नके जाने ।

(१) छोड़ी बूझो—छोड़ा शब्द राजस्थानी का है जिसका अर्थ होता है 'छँपड़ा' । जिस बोहे का अन्तिम चरण कम मानाओं का हो, वह छोड़ा बूझा कहलाता है । इसके पहले और तीसरे चरणों में ११ ११ मानायेँ होती है और इन्हीं का एक भी मिलता है । बूझरे चरण में ११ और नीचे चरण में केवल १ मानायेँ रहती है ।

नाड़ो भरियो नीर, टावरियो झूलन नयो ।

परै न पूबो तीर, मो बूझो ॥

घरे हुए लैया में बज्जा सकोसे लेने के लिए गया । तब तीर कर फिरारे पहुँच नहीं पाया, केचार कुछ गया ।

यहाँ हमने जिसके रीति ढंगों और छंद शास्त्रोंके अनुसार बोहेके प्रमुख भेदों प्रमेयों पर विचार किया है<sup>१</sup> किन्तु अर्थविषय को लेकर भी बोहेके अनेक भेद प्रचलित हो गये हैं । राजस्थान के सांस्कृतिक ज्ञापकान नामक अपनी पुस्तक के आरम्भ में डा० कन्हैयालाल सहज इस प्रकार की सुन्दर व्याख्या को है उसे यहाँ सामान्य चबूट्ट किया जाता है<sup>२</sup> :

(१) रंग बूझा —

'बन्ध बन्ध' या जाबाबी के अर्थ में 'रंग है' 'रंग है' कहने की प्रथा राजस्थान में है । किसी के कर्तव्य जाति की प्रशंसा में 'रंग रंग' के प्रयोग द्वारा जो बोझा कहा जाता है उसे 'रंग रा बूझा' कहते हैं । जबाहरनार्य —

'क्यायो भयर बिबाय मेधा पन शट माँझतो

छतियाँ सुबस सभाव, बसियो झुम रंग रंग बन्नु ।

१—विस्तृत जानकारी के लिए देखिए—'रघुवर बस प्रकाश'-पृ० १५

२—कन्हैयालाल सहज राजस्थान के सांस्कृतिक ज्ञापकान पृ० ११ १४

एक बार किसी कवि ने इसी बसंतसिंह को अपने एक चोड़े को 'बापो' 'बापो' कहते और दुकारते हुये देखा। उसने सामा मारते हुये निम्न विसह्व कहा —

बापो मत कह बसंतसी, कांपत है कैफान।  
एक बार बापो कहाँ, परम तजेसा प्राय ॥

(हे बसंतसिंह ! चोड़े को 'बापो' कह कर न धुकार। वह प्राक्वचय से कांप रहा है। यदि एक बार को किंच 'बापा' कह दोये तो यह बड़ा भय के मारे अपने प्राय तज देगा।)

'विसह्व' के रूप में की जाने वाली प्रार्थना का लक्ष्य दुपुर्णों को बढ़ने से रोकना था। अपने पिता की स्वयं मार देना, इसके बड़ कर कृतघ्नता क्या होगी ?

'विसह्व' की अभ्येचना में अपेक्षाकृत कम लीखे रस भी राजस्थानी काव्य में बहुतायत से मिलते हैं। बांकीबास की व्ययमय कविता इसी प्रकार की है। उन्होंने जन व्यापारियों को बतड़ा है जो स्वार्थ सिद्धि के लिए अपने मित्रों का भी ध्यान नहीं रखते।

बस छाये, रिल बीमही, लीबी बसत न जाय।  
बोसत हू देवा दगो, कसर न राखे काय ॥

(हे मन को ध्यान कर पीते हैं दिन में ही मोहन कर लेते हैं और (बहिष्ता की दृष्टि से) हठी बस्तुये (सम्पत्ति) नहीं छोड़ते किन्तु भिन की बोका देने में कोई कसर नहीं रखते।)

उनकी 'कुक्ति बतौरी' नावडिया मिर्बाब, 'कृपण वर्ण' 'कायर बाबमी' का बि रचवाये इसी प्रकार की हैं। किन्तु इनमें कवि ऊमरदान के काव्य से असंतुलन नहीं है। ऊमरदान ने 'राम-सैही' सम्प्रदाय के साधुओं से बिड़ कर बच्छी खबर ली है, पर वह व्ययात्मक काव्य के स्वान पर निम्बामक कविता बन पड़ी है। प्रस्तुत वर्ण का हमारा उद्देश्य राजस्थानी कविता में पाये जाने वाले व्यय के प्रकारों की जानकारी तक ही सीमित है अतः ऐतिहासिक दृष्टि से इस पर बिचार नहीं किया गया है।

वयण-सगाई

विनक कविता में विभिन्न प्रकार के बल्लकारों का प्रयोग किया गया है, किन्तु यह बावचय की बात है कि काव्यकवियों को बहुत अधिक परिमाण में संज्ञो कर बतने बाको विपत कविता-पारा बल्लकारों के प्रति अधिक उरवाही नहीं रही। हिमल के अधिकतर कवि केवल बल्लकार के माह में पड़ कर, अपनी रचनाओं को निर्बीज बनाने के हितायवी कयी नहीं रहे। उन्होंने बल्लकार-प्रयोग के सम्बन्ध में पूर्ण संयम से काम लिया है। बल्लकारों को उन्होंने अपनी कविता-शायिनी के सीत्वर्य-भूषि का साधन मात्र ही माना है उसे साम्य कयी बनने नहीं दिया। साधन और साम्य का यह अन्तर उनके सामने सदैव स्पष्ट था। यही कारण है कि विनक कविता, कवियों

से पूर्णतया मूलनिष्ठ होने पर भी प्राणवान है। इसका यह अर्थ नहीं कि द्विगत कविता में अलंकारों का प्रयोग नहीं हुआ, पर अलंकार कविता के एक बग-मात्र बन कर रहे, वे कभी कविता पर छा नहीं सके। द्विगत कविता में हमें उपमा, समक, उत्प्रेक्षा आदि सादृश्यसूचक और अनुप्रास, यमक, व्योम आदि शब्दालंकारों का सकल प्रयोग मिलता है। पर एक अलंकार को, द्विगत कवियों ने, बड़ी उत्प्रेक्षा और इतनी कड़ाई से प्रयुक्त किया है कि वह अलंकार, केवल अलंकार मात्र नहीं रहा अपनी संज्ञा त्याग कर, वह अनिवार्य काव्य-रस के रूप में ग्रहीत किया, जाने लगा। वह राबस्थानी कविता की एक विशेषता बन गया। इस शब्दालंकार को 'वयम-सपाई' (वर्ण-सवाई या वर्ण-सम्बन्ध) कहा जाने लगा।

'वयम-सपाई' एक शब्दालंकार है। राबस्थानी परम्परा से अपरिचित विद्वानों ने इसे एक छंद मान लिया है,<sup>१</sup> जो सर्वथा अनुचित है। 'वयम-सपाई' के अनुसार, सामान्यतः कविता के किसी चरण के प्रथम शब्द का प्रथम अक्षर, उसी चरण के अन्तिम शब्द के प्रथम अक्षर से मिलता है। जैसे —

अक्षर गरज न जाय, हीनू सह पाकर हुआ।

बीठो कोई बीबाच, करता लटका कटहड़े ॥

(हे अक्षर ! मन में इस बात का पर्व न कर कि हिन्नु सरदार तेरे सेवक हो गये हैं। क्या तुने कभी एकलिन के बीबाच महाराजा प्रताप की कटहड़े में मुबार करते देखा है ?)

यही प्रथम चरण के अक्षर और 'आज' दूसरे चरण के हीनू और हुआ' तीसरे चरण के 'बीठो और 'बीबाच' और चौथे चरण में 'करता' और 'कटहड़े' में वयम-सपाई है। 'वयम-सपाई' नामक इस अलंकार का उत्प्रेक्ष संस्कृत प्राकृत अपभाषा के काव्यशास्त्रों में नहीं पाया जाता। न अन्य भारतीय भाषाओं में इसके इतत स्वयं की उपस्थिति ही होती है। अब अलंकार के रूप में 'वयम-सपाई' द्विगत कवियों की विशिष्ट उद्भावना है और अलंकार-शास्त्र को जबकी एक विशिष्ट देन करी जा सकती है। अस्तु —

द्विगत में रचित कविता का प्रत्येक चरण का पहला अक्षर उस चरण के अन्तिम शब्द के प्रथम अक्षर से मिले-जिगता बड़ा लग्न है वह ! द्विगत कवियों ने इस नियम का कड़ाई से पालन किया है। हाँ यह बात अवश्य है कि 'वयम-सपाई' के कासान्तर में अनेक योच बनते जाते गए, जिससे कवियों को अधिक सुविधा हो गई। पर प्रश्न यह जाता है कि संस्कृत वर्ण-भूतों की निरूप्यता से बनने वाली कविता पर यह बन्धन कैसे हावी हो गया ? और इस प्रश्न के उत्तर में हमें द्विगत के सक्षम ग्रन्थों की चरण में जाना पड़ता है। मञ्जराम ने अपने ग्रंथ 'रघुनायक' में लिखा है —



अग्नि, जिस प्रकार सभी जलधियों को जला कर सुख बना देती है, उसी प्रकार बीर रस सभी काव्य दोषों को छिपा लेता है ।)

‘वयण-सगाई’ के साथ मेघ भागे गये हैं, जिनमें तीन मुख्य हैं—उम्हें उत्तम (अधिक), मध्यम (सम) और अधम (म्यून) कहा जाता है ।

१—उत्तम या अधिक प्रकार की ‘वयण-सगाई’ में अरण के पहले सन्न और अन्तिम अर्थ के आदि के बर्णों को मिलाया जाता है—यथा —

जिन बन गुल न जावताँ, येँ मिबड़ मिङ्गराज ।

ठिन बन बँकु ठाँका, ऊबम भँडे जाव ॥

(जिस बन में हाथी, बेंडे और सुन्दर वन के मारे घुस कर भी नहीं जाते वे वहाँ आज (विह के न होने से) बीबड़ भी बड़े व्यक्तित्वान बने उपद्रव कर रहे हैं ।)

२—मध्यम या सम ‘वयण-सगाई’ में अरण के प्रथम अर्थ के आदि के अक्षर और अन्तिम अर्थ के मध्यम अक्षर का मेल किया जाय जैसे —

नाम जिया भी मानवाँ सरकी कसुप बिसान ।

महू बीसे भेटे ठिमर रसम परस किरवास ॥

(हे मनुष्य ! प्रभु के नाम-स्मरण से तुम्हारा सारा विपुल पाप उसी प्रकार जिसक जामेया, जिस प्रकार सूर्य की रश्मि से पुष्पी का अन्धकार स्वर्ण मान से विरोहित हो जाता है ।)

३—अधम या म्यून ‘वयण-सगाई’ में अरण आदि के और अन्त के अक्षरों को मिलाया जाता है, जैसे —

मरव जिके संसार में लखनी बीन बिसान ।

राट विबस रघुनाथ रा लेनी नाम रसान ॥

(इस संसार में जो भी (समस्तवार) मनुष्य हैं, वे संसार के यदि राशि बीबी को देख कर (मह समझ कर कि इन्हें प्रभु ने बनाया है) रात-दिन भयवान राम का नाम लेते रहते हैं ।)

इन तीनों भेदों के सम्बन्ध में निम्न बोझा पाया जाता है —

अरण मित जू अरण विष, कवियन तीन कहत ।

आव अधिक सममथ अवर, म्यून अक सो अर ॥

(बर्ण-मैत्री कराते समय कवियों ने तीन प्रकार बड़े हैं । जब किसी अरण के आदि अक्षर का मेल अन्त के अर्थ के आदि अक्षर से मध्यम अक्षर से वा अन्तिम अक्षर से हो तो उसे मध्यम अधिक सम और म्यून वर्ण-मैत्री (वयण-सगाई) कहेंगे ।) विनस में काव्यदोष

विनस काव्य का अर्थ निम्न विधान है उसी प्रकार अर्थ निम्न काव्य पारथ भी है । उसके काव्यान्तकार भी बनने ही संघ के हैं । ‘वयण-सगाई’ का प्रयोग

काव्य भाषाओं में नहीं पाया जाता है। इसी प्रकार हिमालय कविता में काव्य-शेष भी बहुत कुछ अपने हैं। राजस्थानी काव्यशास्त्रियों ने कविता में प्यार-हूँ शेष माने हैं हम यहाँ उन्हीं पर विचार करेंगे।

काव्य के मुख्य वर्णों की प्रतीति में आधा पहुँचाने वाले को काव्य-शेष कह कर पुकारा जाता है। जैसा कि पहले हमने कहा था कि काव्य-शेष, हिमालय में प्यार-हूँ प्रकार के काव्य-शेष माने जाते हैं यथा (१) अ व (२) छलका (३) हीन (४) निर्मल, (५) पापसी (६) आल विरोध, (७) अपस (८) नामधेय (९) पञ्चतुष्ट (१०) बहुरी और (११) अर्धपल।

हम आगे चल कर हिमालय के भाष्य और सामाजिक रीतिप्रथा 'रत्नामरूपक' के आधार पर इन काव्य-शेषों की विवेचना करेंगे। यह ग्रन्थ जोधपुर के महाराजा मानसिंह जी के कुपायन कवि मन्थाराम का बनाया हुआ है और अपने उम्र का एक ही ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ में हिमालय भाषा की कविता की रीतियाँ छंद भेद, कल्प लक्षण वर्णकार, मुद्राशेष आदि का समावेश कर दिया गया है। अस्तु—

### (१) अ व शेष

जिस वीत अन्धा कविता में छंद का एक ही छंद से निर्धारित न हो उसे अ व शेष कहते हैं— यथा

विस्तार समस्त है समस्तो अग शाली  
पछे बनी पिछताली ।  
पुरव बनम कब तू पावैया  
मुन कब हूरिरा पावैया ॥१॥  
मात पिता बंधन रीसत-मद  
सुत विण कोइ संधानो ।  
माताप आइबर माहि,  
बंदा ! केम बंधावो ॥२॥  
समुझी बसु न अणु समझाऊ  
भूल मरी हिन पाया ।  
बोले ऊपर बटका देती  
छिड़ विम बाबक साया ॥३॥  
छोई आय करे नहि सुछत ।  
छोई पीह बलीता ।  
छीत करे छिमरी सीतापत  
जिके कमारी बीता ॥४॥

हे मग ! समस्त, सम्पूर्ण अपस कहता है, नहीं तो छिड़ बहुत परचापन करेगा। अनुपम रूप छिड़ कब तू पावैया और कब ईश्वर के गुणानुवाद पावैया ॥१॥

अजोघ्यानाथ वसमाथ रावण अडग,  
 महा बे और भाराव मातो ॥१॥  
 बरना रात बरमास सुरा बरै,  
 निपत पंसास बिल कुमे ठाला ।  
 सवने पड भार सिर तनावे अहेसुर,  
 अहेसुर बणावे मुड माता ॥२॥  
 कटारवा सुपलप सेल संबर करव,  
 अंग कट करव पडिया जपाहा ।  
 बीज सुर असुर बे सरोवर बुटिया,  
 बरोबर करै सारीस बाहा ॥३॥  
 सीस बस अङ्गे अनुबाररै सायका,  
 हेर कप घास जन्पार हारवे ।  
 बसू सापी धुसस पववे सुबाजा,  
 बिमाणी बैठ सुर सुदन बरवे ॥४॥

पुष्पी पर मांस का कीचड़ हो गया और हड्डियोंके पर्यंत बन गए । रक्त मिश्रित  
 से समुद्र साह हो गया है । रामचन्द्र और वसमस्तकपाला रावण दोनों अहित्य है ।  
 दोनों तरफ से अमानक सड़ाई हो रही है ॥१॥

अप्सरायें बरमास आन कर खुद बीरों को बरती है । अर्थात् अपना पति  
 बनाती है । पिछ जाति पत्नियों के मन के लाले बल गए हैं और वे वृष्ट हो गए हैं  
 अर्थात् वे पक्षीमन इच्छित मांस खाकर वृष्ट हो गये हैं । शेष नाथ बहुत भार पढ़ने  
 के कारण अपने मस्तक को टांगते हैं और महादेव भी मुठों की माता बनाते  
 हैं ॥ २ ॥

कटारिया नाथ सेल, संबर और छुरी की लपने से अपार अंग कट २ कर  
 पीले सड़ गए हैं । सुर और असुरों के मोझा दोनों अचानक बिड़ रहे हैं और आपस  
 में अवातार एक से बार कर रहे हैं ॥३॥

(इतने में) अनुवाटी रामचन्द्र के बाणों से रावण के बसों मस्तक कट कर  
 गिर गए । यह देख कर अन्धर और पीछ बहुत ही प्रसन्न हुए । सम्पूर्ण पुष्पी के  
 अनुष्पी ने अष्ट बाणी ॥ सुवध (अथ अमकार) कहा और बिमाणी में बैठ कर देव  
 बर्षों ने पुष्प बर्षा की ॥४॥

इस पीठ में कम से बर्षन नहीं है । प्रथम दोनों सेनाओं का वर्णन चाहिए था  
 फिर सैन्य प्रहार का फिर अप्सराओं का, फिर मांस जाति का, किन्तु ऊपर इस  
 तरह बर्षन नहीं है अतः इसमें विनय दोष है । यह हिंसी का अकर्मत्व दोष है ।

(५) आठविरोध दोष —

वहाँ किसी कविता के विभिन्न चरण अक्षर-अक्षर छन्द के हों, वहाँ आठ  
 विरोध दोष होता है ।

जबनी में बिके भलाई आया  
करे सब सुकरदार काम ।  
बान सब बितसाई देवी,  
नित रसणा खेरी हरिनाम ॥१॥  
विषही सब ध्यारी बिन्द्यानी,  
उसी विरह बरिषा बसत ।  
प्रारम्भ बौसत पुन वाना  
पुनी सुबाचा सीतपत ॥२॥  
बन के पुरव बड़ा पनबापी,  
कनक सिरोमय सुबस कटी ।  
धमने बान ऊर्ध्वम जकां,  
राम राम मुकहुत रटी ॥३॥  
देह बिकन बाठा बी बोई  
तिके सबाई टीका ।  
बीबा बर बंगम बसुधार,  
छाया बीब सरीका ॥४॥

वास्तव में संसार में वे ही आए हैं जो सदा पुण्य कार्य करते हैं यथाशक्ति बान देते हैं और नित्य भगवानका भजन करते हैं ॥१॥ उन्हींका जीवन संसार में सच्चा है जो इन दोनों बातों को पूर्ववत्ता बारन करते हैं—हाथ से पुण्य कार्यों में बान देनी और सीतापति रामचन्द्र का भजन कर ॥२॥ वे महान प्रतिज्ञा बारी बुद्ध बन्ध हैं जो संसार में सर्वश्रेष्ठ बस को प्राप्त करते हैं । जो सागम्य ब बलि पर कर खूब बान देते हैं और मुक्त से राम नाम लेते हैं ॥३॥ देह बही है बिसमें ये दोनों बातें हैं और वे ही संसार में टीका हैं । बरबा संसार के बराबर सब बीब समान है ॥४॥

इस बीत में प्रथम हासा बैलिबा पीत का, द्वितीय हासा खुदब सेंबोर का तृतीय सोहन पीत का और चतुर्थ बापडे पीत का है । अतः बिस बाति का गीत हो उसमें बही बाति के गीत का हासा जाना चाहिए । यदि जन्म का ज्ञान है तो बैलिबा सहनोर और खुदब सेंबोर का जाना चाहिए । अतः इस पीत में बापडे पीत का हासा जाने के कारण बाति बिरुद्ध होय है ।

(६) पाँचको बोप —

बही पीत में निगम के बिरुद्ध कय वा बबिक मानावे होती है, बहा पाँचबा (पंथ) बोप होता है ।

हाई बिस बपर भुमता इसती  
उता मबन भुमता पुरब ।  
देहन प्रबल रना हृदपबी,  
असुर बी बत पीन पुर्बय ॥१॥ ३

(१०) बहरो बोप —

वहाँ धम्ब योजना ऐसी हो कि कुतरफा अर्ध निकले और भ्रम पैदा हो,  
वहाँ बहरो बोप होता है। यथा —

सके बोम सु बाय बमराय सा खेडिया,  
सके भरि रेडिया खेव साया ।

मिडे भाराव बणपार बल भाजिया,  
बीर भायो नहीं सारबाया ॥१॥

कुसल त्रिण भुजाबलहुत जातू दिसी  
संय सार्यद कीची सड़ाई ।

बीठ सीची अची कठीची देणरी  
पराबै हुई नंह फटी पाई ॥२॥

प्रबल सूर असूर बिच सपाया पागई  
त्रिकी बल बापई खेत बाटा ।

पाडियो राम बसकंठ पीठाण में,  
सबद बे बी हुवा लोक सारा ॥३॥

यमराज को खेड़ने की तरह पूर्व से मरवाने सड़ुओं से बाकर बिड़ मवा और उन्हें बेर कर उनकी सेना को मार मिराया । सरबाव बनने पर भी वह बीर बुद्ध से नहीं बागा ॥१॥ जिसकी भुजाओं के बल से आठों दिसायें कष्ट सहती थी ऐसे बीर से उस बीर ने समुद्र को उलटा करके (पार करके) युद्ध किया और जहाँ कहीं भी सड़ु की अमीन भी सब बीठ ली । उसकी पराजय (हार) नहीं हुई । उसने विजय प्राप्त की ॥२॥ जिसने बलवान देवताओं और राक्षसोंको अपने चरणों पर सपाया था और जो बुद्ध उस अबरहस्त युद्ध में सम्मुख प्रपट हुआ था रामचंद्र ने उस राजा को युद्ध में दबाया और पटक दिया । इससे सम्पूर्ण लोक में जब जब कार धम्ब हुआ ॥३॥

इस बीठ में 'बीर भायो नहीं सारबाया' और पराबै हुई नंह फटी पाई दोनों पदों में नहीं बीर नंह धम्ब दोनों ओर लगते हैं । इनके दूसरी तरफ लपके से अर्ध निर्यात जकटा हो जाता है । अतः इस तरह से धम्ब योजना नहीं करनी चाहिए । इस बीठ में इस तरह दोनों ओर लपके हुए धम्ब आने के कारण बहरो बोप है ।

(११) अर्मयल बोप —

वहाँ किसी धम्ब को किसी चरण के पहले और अन्तिम अक्षर के मिलने से कोई अर्मयल सूचक धम्ब बनता हो तो अर्मयल बोप कहलाता है—यथा —

‘महपन में पय राम रे’

( रज्जुवर जलप्रकाश में )

प्रस्तुत चरण के प्रथम अक्षर 'म' और अन्तिम अक्षर 'र' में अर्मयल सूचक धम्ब 'मर' बनता है अतः यहाँ अर्मयल बोप है ।

रघुनाथ क्लृप्तकार के अनुसार ये दोष गीतों की 'वयन-सवाई' को नष्ट कर देते हैं। इन्हीं दोषों के कारण सवाई भी छूट जाती है क्योंकि अ वा सफेद राग बासा, गपु सऊ, पापस, पगु, जाति बिच्छु अर्थात् बर्न संकर निर्गुणिक रोमी, मास भ्रष्ट पलाबात का रोमी और बहुरा जो मनुष्य होता है उसे कोई भी अपनी पुत्री नहीं ले सकता है। अस्तु —

इन काव्यदोषों पर विचार करने से स्पष्ट जान पड़ता है कि विंगल कविता अन बड़ भाषा की रचना नहीं है किन्तु अल्प और धर्म के प्रयोगों पर इस कविता में अनेक नियम बने हुए हैं और वह सुसंस्कृत, शास्त्रीय पद्धति पर रची गई है। उसमें सुकम श्रेष्ठों पर भी बारीकी से विचार किया गया है और इस दृष्टि से भी वह किसी भी प्रतिष्ठित भाषा से कम नहीं है।

### राजस्थानी गद्य

राजस्थानी साहित्य की विशेषरूप से अस्लेखनीय विशेषता उसका प्रचुर गद्य साहित्य है। और साथ ही आश्चर्य की बात तो यह है कि उपलब्ध गद्य अस्तुविन्वात और चित्त की दृष्टि से बहुत वैविध्य रखता है।<sup>१</sup> राजस्थानी गद्य का अस्तुत्व और चित्तत्व के आधार पर मोटे तौर पर इस प्रकार विभाजन किया जा सकता है। (१) ऐतिहासिक गद्य (२) जैन लेखकों का गद्य (३) टीकाओं तथा अनुवादों का गद्य (४) कथाएँ। यह विभाजन केवल अध्ययन की सुविधा के लिए है और उच्चों के अभाव में इसे किसी प्रकार पूर्ण नहीं माना जा सकता। यहाँ प्रत्येक प्रकार के गद्य भण्डार का संक्षिप्त परिचय प्राप्त करने की चेष्टा करेंगे।

राजस्थानी गद्य का एक बहुत बड़ा भाग ऐतिहासिक साहित्य है। ऐतिहासिक गद्य साहित्य के अन्तर्गत (अ) स्थात (ब) इतिहास (घ) प्रसंग (ङ) दवाबैत (इ) वचनिका (उ) प्रबन्ध काव्यों में आए विविध गद्यांश—यथा भट्टाक्षमि आवि (प) पट्टों दिला लेखों पत्रों तथा विविध दस्तावेजों का गद्य (ह) बंसावली पीढिबावली अप्तर बही विगत हुक्मैवत आवि ग्रहित किए जा सकते हैं। अर्ध ऐतिहासिक में आस्वान तथा बात की सनना की जा सकती है। बात में किसी ऐतिहासिक घटना अथवा किसी व्यक्ति या स्थान का इतिहास संक्षेप में होता है। उसमें कथाना और अनुभूति का विचित्र मेल होता है। आस्वानों में इतिहास के साथ लोककल्पना और अलौकिक अमलकार पूर्ण घटनाओं का मिश्रण रहता है। ये निर्जंगरी कथाओं के रूप माने जा सकते हैं। कुछ लोग इन्हें वास्तव संज्ञा से भी सम्बोधित करते हैं। 'बात' संज्ञा का प्रयोग कहानियों के अर्थ में सामान्यतया किया है इस पर आगे विचार करेंगे। स्थात में या समंप इतिहास होता है अथवा बातों का संघट्ट होता है।<sup>२</sup> उच्च परक रचनाओं को 'इतिहास' कहा जा सकता है और उसी प्रकार से किसी एक घटना-वर्णन का

१—मोहर्षीय एम। राजस्थानी कवि—अंश २ भूमिका पृ० १६

२—नरोत्तम स्वामी बाँकीबावरी स्थात भूमिका पृ० २

‘प्रसंग’ । ‘दशमशत’ और ‘वचनिका’ पद्य के प्रकार हैं—विद्या की दृष्टि से दोनों प्रकार अपनी विशेषता रखते हैं । प्रथम काव्यों में भी रसान-रसान पर ‘भारता’ ‘वचनिका’ ‘भट्टारसि’ के रूप में पद्य मिलता है । बंधावली और पीडियावली में राजाओं की पीडियों का वर्णन होता है । और बीच-बीच में आवश्यक ऐतिहासिक टिप्पण भी रहते हैं ।

डा० टेस्तिरेरी ने ‘इतिहास’, ‘प्रसंग’ ‘वात’, ‘वास्तान’ आदि की परिभाषा एक प्राचीन इस्तसेस के आधार पर दी है—

जिण विद्या में बराबी रहे सो जिसो ‘इतिहास’ कहावै ॥१॥

जिण विद्या में कम बराबी सो जिसो ‘वात’ कहावै ॥२॥

इतिहास दो अवयव ‘प्रसंग’ कहावै ॥३॥

जिण वात में एक प्रसंग हीन अमत्कागीक होय तिका वात ‘वास्तान’ कहावै ॥४॥

इसी प्रकार से ‘बनावत’ और ‘वचनिका’ संग्रह रचनावें संतुक्रान्त गयी हैं । इनमें कई रसानों पर कुछ पद्य भी उपलब्ध होता है जिससे ऐसी रचनावें ‘अभ्युक्तान्य’ बन जाती हैं । दशमशत में पद्य के अनुकरण पर अमयानुशास यथ्यानुशास व मनक आदि की ‘बयन-खवाई’ भी मिलती है । यह पद्य बीबी की प्रीकृता का प्रतीक है । ‘दशमशत’ दो प्रकार की मानी गई है—(१) सुखबंध अर्थात् पदबंध जिसमें अनुशास मिसाया जाता है (२) पद्यबंध जिसमें अनुशास का बन्धन नहीं होता । ‘दशमशतों’ में मासीदासकृत ‘नरसिंहदास’ दो बनावत अधिक प्रसिद्ध हैं । अनेक अन्य लेखकों ने भी दशमशत लिखे हैं ।

पदबन्ध का उदाहरण

‘प्रथम ही अयोध्या नगर जिसका ब्याप  
बार’ बोजन तो बीड़े सीते बोजन की पाव  
चोतरफ के फेलावा चोसठ बोजन के फिटाव,  
तिसके लसै सरिता सरिज के पाट  
अत छठावससू नहे चोसर कीछों के पाट ।

पद्यबन्ध का उदाहरण

हाथियों के हुसके खंभू यथाते सोसे जरापत के छापी भगवाटी के टोसे ।  
अत दिहु के दिगज विष्णवाधस के सुजाय रघुरय विज सुखा बंधके बनाव । झूलकी  
अमूस और बटू के ठणके, बावलों की अममपा मरे मरे मीरों की मकी मंमकी । कब  
करमुके लंनर मारी कमक की हूस जवाहर के जेहर दीपमाला की रस ।

१—रामकुमार वर्मा हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास—पृ० १७०

२—डा० बचस अममन—वर्ष १—बंक ३४ पृ० ९२

३—मंछाराम रघुनाथकनक बीठारो—पृ० २३५

वचनिका के भी इस प्रकार से हो मेव हैं—(१) पद्यबन्ध जिसमें मात्राओं का नियम होता है। इसके भी दो उपभेद हैं—(अ) जिसमें बाठ-बाठ मात्राओं हैं तुकमुक्त पद्यसङ्घ हैं, और (ब) जिसमें बीच-बीच मात्राओं के तुकमुक्त पद्यसङ्घ हैं। (२) गद्यबद्ध—इसके भी दो भेद हैं—(घ) चारवा या साधारण गद्य।<sup>१</sup> (ङ) तुक-मुक्त गद्य।<sup>२</sup>

इससे ठीक वचनिका में वचनिका कुछ सम्झी और विस्तृत होती है और गद्य बन्ध से हो मानों कई छवों के ओटे वर्णित युग्म वचनिका रूप में जुड़ते पसे जाते हैं।<sup>३</sup> उपरलब्ध इबाबेयों की माया राजस्थानी से प्रभावित लड़ी लोली हिन्दी है जबकि वचनिकाओं की राजस्थानी उदाहरण देखिये—

वचनिका

होबी ऐसा माहाराजा रायचंद्र बसरण-सरण ।  
जनाब नाम बिरहकु चार ।  
छो घाहकु मार ग्याय हो मजराजकु चार ।  
और भी मरसिम होय प्रबाड़ा बगचाहर किया ।  
हरनकुसकु मार प्रहलादकु उबार लिया ।  
प्रसे का दिन बांग छत हैंत उबारानकु मच्छ हैह धारी ।  
सतवत की मयली बगचाहर करी ।  
ऐसा स्त्री रांमचंद्र करवागिय ।  
बसरण-सरण ग्याय ही बाबै ।  
जिसके ताँही बेवा बिरह दीबी बेवा ही छानै ॥१९४

चारवा

रांमचंद्र जिसा सिध रजपूत कोई बेसापुत्र होवै छै ।  
क्याके प्रताप बेब गरमाय जटजन सुख नीय होवै छै ।  
राजनीठ का मिधान छीह बकरी एक बाटै नीर पावै छै ।  
पंछी की पर बायाँ बाज रहसत लावै छै ।  
तपके प्रभाव पाँनी पर सिना तरै छै ।  
मुमपत छै जबक क्याका बस काढ़ सर्मकसुवा कर छै ।

१—कहीं कहीं तुकान्त गद्य के लिए भी बात बातों या वाकिक नाम का प्रयोग देखा जाता है ।

२—मरोत्तम स्वामी राजस्थानी साहित्य संग्रह—खंड १ पृ० ३ प्रारम्भिक-नाहटाबी

३—संस्माराय रघुनाथ कृष्ण नीतांशु—पृ० २४२

४—मरोत्तम स्वामी राजस्थानी साहित्य संग्रह भाग १ नाहटाबी का प्रथम भेद—पृ० ३

५—सीताराम भातस रघुवर अक्षप्रकाश—पृ० ५१-५७



बात रहकंपसा बरोड़ानू रोड़ जमीशोर कीजै छै ।

सुदीय अभीपय तिसा निरपयानू केरंपा संक बीजै छै ।

बांका नाय धय जे रामधुन गावै छै ।

बांमन मरण भव मेट अमैपद पावै छै । १९५

बचनिकाओं में दो बहुत प्रसिद्ध हैं । एक शिवदास कृत अचमदास लीची री बचनिका जिसमें गायरोन गड़के लीची (बोहान) बंधीय राजा अचमदास के बीरता पूर्व युद्ध और अन्त का वर्णन है । यह पत्रहवीं शती उत्तरार्ध की रचना है । निडिया जमा रचित राठीड़ महेशदासीर री बचनिका दूसरी प्रख्यात रचना है ।

व्याप्तकारों में मुत्ता मीनसी, बांकीदास और ब्यामदास सबसे अधिक महत्व रखते हैं । मीनसी छो 'राजस्थान का अचलकजल' कहा गया है जिसका यह अधिकारी है । उसकी कथा में समूचे राजस्थान का इतिहास आ गया है । बांकीदास की कथा में २५०० से ऊपर बातों का संग्रह है । ब्यामदास की कथा में बीकानेर के पठोड़ नरेयों का संतम इतिहास दिया गया है । थोड़ और शक्तिशाली पद्य के नमूने के रूप में हम इन सभी रचनाओं को ले सकते हैं ।

जैन लेखकों के पद्य का अलग विमान रखने का अर्थ यह नहीं कि उन्होंने ऊपर बताए गए प्रकार के ग्रन्थ नहीं लिखे । वस्तुतः ऐतिहासिक गद्य के क्षेत्र में भी जैन लेखकों का योगदान महत्व का रहा है उन्होंने बचनिका तथा वमावठ भी लिखे हैं । मिम-सुल-सूरि-वर्मावठ, निगाम-सूरि वगैरह आदि ऐसी ही रचनायें हैं । वस्तु हम जैन लेखकों के पद्य के अन्तर्गत ऐसी रचनाओं के अतिरिक्त उस समस्त साहित्य को लेते जो बार्मिक अथवा लौकिक आधार पर रचा गया है । ऐसे साहित्य में (१) जैन धर्म साहित्य के बालावबोध, टब्बा कृत्तिका आदि का गद्य (२) जन कथाओं का गद्य (३) व्याकरण तथा शक्तिशाली का गद्य आदि माने जायेंगे ।

राजस्थानी का प्राचीनतम पद्य का उदाहरण (१९९० सं०) जैन लेखक रचित ही है । यह उदाहरण हमें गुजरात के आलापस्ती नगर में आश्विन सुदी ५, सुक्ला सं० १३३० में ताड़पत्र पर लिखी 'आराचना नायक रचना में मिलता है ।<sup>१</sup> संस्कृत के बाळोपयोभी व्याकरणों में कुछ लेखकों ने उदाहरण बोधनाल की बचन साहित्य की वैभवायों में दिये हैं । संधामसिंह की 'बाधसिद्धा (१९३९) और कुल मंडलका 'मुग्धावबोध औचितक' (१४५०) ऐसी ही उपयोगी रचनायें हैं । इनसे तत्कालीन भाषा पर अच्छा प्रकाश पड़ता है । जैन साधुओं ने अपने धर्म के गहन विचार जन साधारण तक पहुंचाने के लिए कथाओं का आश्रय लिया । ये कथायें बहुधा बार्मिक संघ की व्याख्याओं के साथ उदाहरण रूप चर्चित की गई हैं । ऐसी रचनायें 'बाबावबोध' कहावहीं । बालावबोध-कारों में तटवप्रयसूरि सोमसुन्दर सूरि, मेरुसुन्दर और पार्श्वनाथ के नाम महत्व के हैं । धर्म कथाओं में माधिनमचन्द्र सूरि

रचित 'पुष्पीचन्द्र' चरित अथवा 'वामिस्तास कथा और भाषा कौशल' की दृष्टि से परम्परागत रचना है ।

टीकाओं तथा अनुवाद ग्रंथों के रूप में भी हमें राजस्थानी गद्य का नमूना देखने को मिलता है (२) विविध महाकाव्यों और काव्यग्रन्थों की टीकाओं के साथ ही (३) वार्तिक ग्रन्थों के यथा समायन, भाष्यरत, गीत गोविन्द आदि के अनुवाद भी प्राप्य हैं । इसी प्रकार (४) सीकिक और मगोर बर्फ ग्रन्थों जैसे पंचतन्त्र, सिंहासन बटीसी सुक बहोतरी कथा सरित्सागर के अनुवाद भी हुए हैं और (५) वैद्यक वास्तु, धातु, ध्योतिष्ठ आदि के सांख्यिक ग्रन्थों के भी अनुवाद समकालीन पर किए गए हैं । अनुवाद साहित्य का परिमाण भी काफी है ।

परिमाण और लोकप्रियता में छिरमौर राजस्थानी गद्य का, स्वल्प 'कथा' का है । इन कथाओं को 'वात' कह कर पुकारा जाता है और समूचे राजस्थान भर में, ये रचनाएँ बहुत बड़ी संख्या में उपलब्ध हैं । कथानक की दृष्टि से हमें ऐतिहासिक जात्यात्मक पद्यारमक और मिथिल-टीनों कथों में मिलती हैं । श्री मरोत्तमदास की स्वामी के सन्धों में 'हम कहानियों के सेकड़ों संग्रह मिलते हैं जिनमें हजारों कथा मिली हैं—बर्ग की और भीति की औरता की और प्रस की इस्य की और कदवा की राजाओं की और प्रजा की, देवताओं की और भूतप्रेतों की चोरों की और डाकूओं की बारसबादी और गणार्जबादी लोक कथाएँ और कथा कृतियाँ-सापेक्ष यह कि सभी प्रकार की ।

कसारमक गद्य का कृतियों में 'श्रीश्री गणेश गीताचरित' को श्रेष्ठतम माना जाता है । अन्य कृतियों में 'राजान-राजत रो वात-बनाव 'समा भू बार' आदि मुख्य हैं । वात साहित्य दो स्वयं स्वतन्त्र अध्ययन का विषय है ।<sup>१</sup>

राजस्थानी गद्य की इस परम्परा का सूत्र अपभ्रंश से उपलब्ध है और वह अपभ्रंश का सब दृष्टि से उत्तराधिकारी है, इसे हम जाने बल कर देखेंगे ।

## प्राकृत व अपभ्रंश का डिगल साहित्य पर प्रभाव

८९ के अध्ययन से यह स्पष्ट हो चुका है कि अपभ्रंश-काव्यों की रचना हिमाल के उत्तर-पश्चिम-भाग तक होती रही है। जयका दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि अपभ्रंश को काव्यबाराणसी परवर्तीकरण में आकर डिगल के रूप में विकसित हो गई है। राजस्थानी के प्राचीन और मध्ययुगीन साहित्य में जो साहित्यिक रूप और शैलियाँ मिलती हैं, उनका आरम्भ हमें अपभ्रंश परम्परा में मिल जाता है।

प्राकृत और अपभ्रंश के काव्यकल्प संक्षेप में इस प्रकार रहे हैं —

प्राकृत

(१) प्रबन्धकाव्य —

साहित्यिक महाकाव्य—सुतसंवादि

शैलों के नायिक काव्य—महावीरचरित

वचन-वच विविध कथा-कृतियाँ—असुहृदचरित

(२) मुक्तक काव्य —

बाबा सप्तशती आदि मुक्तक

अन्य कृतियों में

## (१) पद्य

अपभ्रंश के विविध काव्यकर्मों का सम्बन्ध सीधा जनता से था । इसी प्रकार प्राकृत साहित्य का विकास लोकजीवन की भित्ति पर हुआ था ।<sup>१</sup> समयानुसार जब प्राकृत अपभ्रंश का विचार थापाओं ने देखा बाधुनिक भाषाओं के लिए बहुत छोड़ दी, तब यही जनजीवन राजस्थानी तथा अग्यवेस्य भाषाओं में मुखर हो उठा । ऐतिहासिक दृष्टि से अपभ्रंश भाषा और साहित्य राजस्थानी भाषा और साहित्य का साक्षात् पूर्वज है अतः हिमाल को जो राजस्थानी भाषा की प्रमुख और प्रतिनिधि भाषा है वह निश्चय मिलना आवश्यक है । वह निश्चय उसे मिला भी है । प्राचीन राजस्थानी लम्बे समय तक जनसमाज की आरम्भिक भाषा रही । इसमें काँची साहित्य रचा गया । इस साहित्य की ओर की कुछ सामग्री प्राप्य है, वह अत्यन्त उज्ज्वल है । घापाठल की दृष्टि से इसमें अपभ्रंश का प्रभाव है, परन्तु राजस्थानी भाषा में तो सर्वत्र से अपभ्रंश की प्रभावता उसकी एक प्रमुख विशेषता है । हिमाल का बाधुनिक कवि भी प्राचीन परिपाटी पर अनादिक्य चले रहता आवश्यक समझता है । हिमाल में प्राचीन राजस्थानी की झलक दिखाई देती है और प्राचीन राजस्थानी में हिमाल की । दोनों का अविच्छेद सम्बन्ध आज तक बना हुआ है ।<sup>२</sup> इसी लोकभाषा से लयमय सोलहवीं शताब्दी में जयभाषा और कुचराठी ने जन्म ग्रहण किया परन्तु उनमें अपभ्रंश की झलक कायम न रही और ये दोनों छोटी लड़कियाँ अपनी माँ से बिछूँ गईं । अपभ्रंश की जेठी बेटा राजस्थानी ने कभी अपनी माँ का एकदम साथ न छोड़ा और अब भी वह आन्तरिक प्रेम को निभाये चलती है ।<sup>३</sup> इस दृष्टि से हिमाल का अपभ्रंश से अभिष्ट सम्बन्ध है । यही कारण है कि हिमाल के अधिकांश काव्यकर्मों की परम्परा अपभ्रंश से जोड़ी जा सकती है । भावधार के लिए बहुत से लोगों ने संस्कृत की ओर देखा पर बाधु कर्मों के लिए वे अपभ्रंश की ओर ही झुके । जहाँ तक हिमाल कवियों का प्रश्न है उसकी रचनाओं की प्रभावता अपभ्रंश स्रोत से ही प्रभावित हुई है ।<sup>४</sup>

इसने अपने तीसरे अध्याय में देखा ही है कि राजस्थानी या हिमाल में निम्न काव्य रूप अपभ्रंश हैं —

## (१) प्रबन्धात्मक

चरितकाव्य—राजकण्ठ शूरचरितास पृष्ठीराजरासो रणमकर छन्द आदि ।

धार्मिक ग्रन्थ—हरिरस नावदमण भाषा मारण वैदिकमित्र स्कन्धवीरी ।

१—धोभाशंकर व्यास हिन्दी साहित्य का मुहूर्त इतिहास भाग १-पृ० ११०

२—मनोहर धर्मो सोचपत्रिका-अर्थ १ अंक १ पृ० २२

३—वही—पृ० २३

४—रामसिंह टोगर आलोचना अंक ४ पृ० ६२

५—प्रकृतता कुंभ काव्यकर्मों के मूलस्रोत और जनका विकास पृ० १० ६१

प्रेम-कषाएँ डोलामाकरा झूठा, माधवानल-श्रामकवला चुपई ।

गद्यपद्यमिश्र रचनाएँ रंग भोगादेजीरो, बचनिकाएँ जादि ।

## (२) मुक्तक

एक विषय को लेकर लिखे पद, बोहे ब्याँ—हाला सामारी कुन्डसियाँ, बीर  
सतई कापरबाबनी, माधविया मिजाज आदि ।

नीति उपदेश सुभाषित ब्याँ—राजियेरा सोरठा नीति मंत्ररी ब्याँ  
हिमस पीत ।

## (३) गद्य

बार्ते—निबन्धनी और काव्यनिक ।

बार्ते—बर्द ऐतिहासिक ।

ब्याँते—ऐतिहासिक ।

टीकाएँ बनावत बार्ताएँ और विवरणात्मक गद्य आदि ।

राजस्थानी ब्याँकों की परम्परा जन-नाट्य की परम्परा होने से हिमस के  
सात्त्विक रूप से मेल नहीं खाती अतः उसे छोड़ दिया गया है ।

हम पिछले अध्याय में देख ही चुके हैं कि रासोत्सवक रचनाओं की दो  
परम्पराएँ हैं । पहली तो नाट्य जैव परम्परा और दूसरी परबर्ती छन्द-वैविध्य परम्परा  
जो भरित जपवा जाक्यामक काव्य है । इस क्रमसे दोनों परम्पराओं का अध्य-  
यन करेंगे ।

प्राकृत में लोकजीवन में जिस प्रकार की अनिश्चयिता पाई जाती बड़ी अपभ्रंस के  
द्वारा राजस्थानी को मिली है । अपभ्रंस में रासक रूप में उपलब्ध संवेद्य रासक इस  
दृष्टि से महत्वपूर्ण कृति है । प्रस्तुत रचना पहली परम्परा की है । इसमें काव्य रास  
काव्यों की तरह किसी मुख्य का चरित नहीं माना गया है । बरिष्ठ यह प्रसङ्गाध्य है ।  
राजस्थानी का बीससवे रासो इसी परम्परा का प्रतिनिधित्व करता है । समय-  
समासों के इस छोटे से प्रसङ्गाध्य में बीससवे के परवेश जाने और उनकी  
रानी राजमती के नियोग तथा संवेद्या मेहनत और फिर बीससवे के बापस जाने की  
बात समित मुक्तकों में कही गई है । जब इस कहानी को हटा दिया जाय तो भी इस  
प्रसङ्गाध्य के मुक्तकों की एक सूत्रता में अन्तर नहीं आ सकता क्योंकि सभी छन्दों के  
बीच कथा की अपेक्षा भाव का सूत्र है । 'संवेद्य रासक की भाँति 'बीसस वेव रास'  
भी मुख्यतः विरह काव्य है अन्तर इतना ही है कि 'बीसस वेव रास' के आरम्भ में  
विवाह के भी पीत है साथ ही बीससवे के परवेश जाने का प्रसंग भी वर्णित है ।  
देव प्रसंग सामान्य रूप से समय-समय एक-सा है अन्तर केवल व्यिरे का है । जैसे 'संवेद्य  
रास' में जहाँ पद जलु-जर्जन है वहाँ 'बीससवेव रास' में बारहमासा है । ऐसा मान्य  
होता है कि 'बारहमासा' की प्रकृति परबर्ती काल में विकसित हुई । अपभ्रंस की  
जिस रचना में 'बारहमासा' मिलता है वह विनयचक्र सूरिकृत 'मेमिनाय बजपई'

तेरहवीं सप्तमरी ईस्वी से पहले की रचना नहीं है यदि होगी तो उसके बाद की होगी। इसके अतिरिक्त 'संवेष्ट रास' का पद शब्द वर्णन वहाँ प्रीत्य शब्द से युक्त होता है वहाँ बीसलदेव रास का 'बारहमासा कार्तिक मास से आरम्भ होता है। कारण स्पष्ट है चौमासे में कोई प्रवास नहीं करता। प्रायः जोय पावस के बार महीने बिता कर ही नहीं बाहर निकलते हैं। बीसलदेव ने भी ऐसा ही किया। इसमिए उसकी रानी राजमयी की बिरह वेदना का बहार के बाद कार्तिक से युक्त होगा स्वाभाविक है।

इसी तरह 'संवेष्ट रास' में संवेष्ट लेकर पंचिक वर्षों में प्रस्थान करता है कि बिरहिणी का प्रिय बिसाई पड़ जाता है और काम्य नहीं समाप्त हो जाता है जबकि बीसलदेव रास में पंचिक सप्तम्व बीसलदेव के पास पहुँच जाता है और रानी की बिट्ठी पाकर वह सड़ीसा से अपनी राजमयी बजमेर को प्रस्थान करता है लेकिन प्रस्थान करने से पहले रानी के पास अपने धायमन की पूर्ण सूचना भेजता है। 'बीसलदेव रास' की समाप्ति राजा और रानी के धान्यपूर्ण मिलन के सुख वर्णन के बाद होती है।

इसी तरह ध्यौरे की और भी कई बातें हैं जिनमें 'बीसलदेव रास' 'संवेष्ट रास' से भिन्न है। फिर भी दोनों मूलतः बिरह काम्य हैं और दोनों की मुख्य भाव बाध एक है। इसका मतलब यह नहीं है कि 'बीसलदेव रास' 'संवेष्ट रास' से प्रत्यक्ष प्रेरित और प्रभावित हुआ है। साहित्य में ऐसे प्रभाव और प्रेरणाएँ परोक्ष हुआ करती हैं। इनका आकार तो लोक जीवन में ही हुआ करता है।<sup>१</sup>

दोनों काम्यों का अन्त भी एक सा है —

देम अचिंतित कज्जु तस सिद्धि अचिंतित महंतु ।

तेम पठेत्त सुचंतयइ कमस अपाह अचंतु ॥२९१॥<sup>२</sup>

अर्थात् बिच प्रकार उसके कार्य की अचिंतित महीती सिद्धि हुई उसी प्रकार पढ़ने सुनने वालों के भी कार्य सिद्ध हों। अर्थात् अन्त की वय हो।

इसी प्रकार नरपति भी अष्टनरहमान की तरह ही बीसलदेव रासो को पढ़ने वालों व सुनने वालों की मनोकामना पूरी होने की कामना करता है —

मनका मनोरथ पुक्या ।

मणइ सुणइ तिणी पुरज्यो जास ॥ ४२ ॥<sup>३</sup>

नरपति नास्तु कृत बीसलदेव रासो के विषय में डा० रामकृष्ण वर्मा लिखते हैं—'बीसलदेव रासो' का व्याकरण अपभ्रंश के नियमों का पालन कर रहा है। कारण क्रियाओं और संज्ञाओं के रूप अपभ्रंश भाषा के ही हैं अतएव भाषा की दृष्टि से

१—नामवर्तिसिंह हिन्दी के विकास में अपभ्रंश का योग-पृ० २७१-७६

२—त्रिभेदी व बिपाठी संवेष्ट रासक पृ० ११

३—सत्यजीवन वर्मा : बीसलदेव रासो पृ० ११५

इस रासो को अपभ्रंश भाषा से सघन विकसित हिन्दी का ग्रन्थ कहने में किसी प्रकार की आपत्ति नहीं होनी चाहिए।<sup>१</sup> भाषा की दृष्टि से ही नहीं किन्तु भाषाभार और शैली की दृष्टि से भी इस पर अपभ्रंश का पर्याप्त प्रभाव है। अपभ्रंश की उन प्रवृत्तियों के अतिरिक्त जो पुष्कराज रासो में पाई जाती हैं, और जिसका पीछा विशेष किया जा चुका है, बीससरेख रासो में अपभ्रंश के रासो ग्रन्थों की अन्य प्रवृत्तियाँ भी दिखाई देती हैं।

बीससरेख रासो अन्य रासो ग्रन्थों से भिन्न आकार में समुदाय रचना है। कथावस्तु संक्षिप्त है। यह नीतात्मक काव्य है और सारे काव्य में एक ही छन्द का प्रयोग हुआ है। इन विशेषताओं के कारण इस पर अपभ्रंश में 'उपदेष्टात्मक रास' का प्रभाव अनुमित किया जा सकता है।<sup>२</sup> संक्षेप रासक ही साम्य ही हम देख ही चुके हैं।

अब हम छन्द वैविध्य परक रासो काव्यभार पर विचार करेंगे। हम देख चुके हैं<sup>३</sup> कि प्रायः सभी रासोकाव्य प्रार्थना से या भयभाषण से आरम्भ हुए हैं। यह परम्परा तो हमें संस्कृत प्राकृत और अपभ्रंश तीनों साहित्यों में मिलती है। हाँ इसका अपवाद अबश्य हिमालय रचनाओं में उपलब्ध है। परन्तु ऐसी रचनाएँ प्रबंधात्मक न होकर मुक्तकों के एक विषय से सम्बन्धित संग्रहमान हैं।

रासो विनायक, प्रबन्ध संज्ञक रचनाओं की परम्परा शैली तथा वस्तुविन्यास का सम्बन्ध आसानी से साथ अपभ्रंश से जोड़ा जा सकता है। अब तक अपभ्रंश भाषाओं का जितना साहित्य उपलब्ध हुआ है उसके आधार पर यह कहा जा सकता है कि हिमालय और अपभ्रंश में अन्तर कम और एककता बहुत अधिक है और कक्ष उदाहरण तो ऐसे हैं जिन्हें अपभ्रंश भी कहते हैं और विनायक भी। राजस्थानी के बीरकवियों ने संस्कृत प्राकृत और अपभ्रंश की पद्धतियों को चलाये रखा है। भाषा कहने से ही प्राकृत-काव्य का बोध होता है और वृद्धा अपभ्रंश काव्य का विशेष गुण है। इन दोनों शैलियों के सम्मिश्रण से तथा बीर रसोचित नवीन पद्धतियों के प्रयोग से बीर भाषा साहित्य का निर्माण हुआ है।<sup>४</sup>

इन सभी रचनाओं में प्रायः कवि भयभाषण में बाध मुक्त विषय पर जाता है। पर कभी-कभी अपने ग्रन्थ की महत्ता में कुछ कह देता है कभी-कभी यह विनय से अपने को सामान्य व्यक्ति ठहराता है। विषय की महानता के अनुकूल अपने को

१—रामकुमार वर्मा हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास पृ० १४६

२—हरिवंश कोशक अपभ्रंश साहित्य पृ ११

३—अध्याय ४ पृ० १८

४—हरदेव बाहरी हिन्दी की काव्यशैलियों का विकास पृ० १८

५—वही

समर्थ पाता है। अन्वयात्में निष्ठात आपाओं के महापण्डित, हमारे महाकवियों में से एक प्रमुख कवि स्वयंभू कहते हैं<sup>१</sup> —

अथ बुद्धिगठ-पिबन्ध-सत्ताय । अथ यम्यह — वधि — अलंकार ।

बनसात ठो बि अठ परिहरमि । बरि रद्धानन्दु कम्बु करमि ।

अर्थात् न तो मैंने पिबन्धसाह के प्रसार को समझा है और न यम्यह और वधि की अलंकार व्यवस्था को ही जाना है फिर भी मैं इस काव्यरचना के व्यवसाय को नहीं छोड़ पा रहा हूँ प्रत्युत रचना अन्वोबद्धकाव्य रच रहा हूँ ।

संश्लेषरासक के रचयिता द्वारा प्रशंसित उद्गार विचारणीय है। वह कहता है<sup>२</sup> —

अह भरद्वाजछने पञ्चह अवर बर्चयिमा ठरवी ।

ता कि नामपहिस्ती ठाठी छहे न पञ्चेइ ॥

अर्थात् यदि भरत मुनि द्वारा निर्विष्ट भावों और छन्दों के अनुसार मकर पञ्चिमा (मृतपञ्चमप्रधाना ?) ठरवी नाचती है तो क्या नामपहिस्ती ठाठी बना कर न नाचे ? कवि ने विनयवश अपनी कविता के औचित्य को बताने के लिए ऐसे कई छन्द लिखे हैं। उन विनों रासक काव्यों में इस प्रकार विनय और कवित्व विपयक औचित्य दिखाने की प्रथा थी। समसामयिक कवि चम्बरदाई ने भी इस प्रकार के अनेक छन्द पूम्भीराज रासो में लिखे हैं। एकाच तो संश्लेषरासक के छन्दों से बहुत मिलते थे हैं। अब की इसी भाव की यात्रा इस प्रकार है<sup>३</sup> —

सत्त जन आवाछं महिलार्थ महु छह नूपुरया ।

सत्तफल बज्जुल पमसा पञ्चरियं नीब आसंति ।

अर्थात् सत्तछंदे महुलों में मह-विह्वल नूपुरध्वनि के साथ यदि अभिजात तरु-निवा नाचती है तो क्या पर्वतवासिनी स्त्रियाँ वनों में नुबची बना कर भी न चले ?

इसी प्रकार भीबर ने रत्नमस्तकम्ब में कहा है —

सीवर कविठ कहह मली मंड ।

पूर्येछायो आर्या छंइह ।

अपने को मतिर्मंड कहना ही उसकी विनयशीलता का चोकर है ।

पौराणिक गीता के काव्यों में बड़ा और छोटा के सम्बन्ध के रूप में कथा कहने की प्रथा पहले ही से चली आ रही थी। लोककथाओं में प्रायः कोई कथा पद्य पंक्तियों की बातचीत के रूप में कही जाती थी। प्राकृत की लीलाचर्द कहा' में कवि

१—वैदेन्द्रकुमार पदमचरित्र-अध्याय १-पृ० ८

२—शिवेरी व निपाठी संस्कृत रासक-पृ० १

३—मोहनसिंह राज पूम्भीराज रासो अध्याय १ पृ० १



राजा सभी रचनाओं में यह प्रणालिषा चीज पढ़ती है। यद्यपि मिथ्या रचनाओं में तो जल हो रहो यों।<sup>१</sup>

विद्यापति की कीर्तिसत्ता में यद्य के बीच-बीच में यद्य की योजना की गई है। हिमालय ग्रन्थों में भी बारता, बचनिका, दबावत आदि के रूप में यद्य की योजना की गई है। यह पद्धति हिमालय कवियों को अव्यक्त प्रिय थी। हिमाल के अधिकांश कवि पद्यभाषा प्रवीण हुआ करते थे। जगन् नारायण, ईश्वरदास, पद्मनाभ, पुष्पीराज बाँकीराज सूर्यमल्ल आदि कवि बहुवर्णित थे। उनको रचनाओं में भाषा प्रयोगों की विविधता दर्शनीय है।<sup>२</sup> सूर्यमल्ल मिथ्या का अग्रभारकर सबसे बड़ा और प्रसिद्ध ग्रंथ है। यह पुष्पीराज्य का पद्यात्मक इतिहास है और दो बार प्रकाशित भी हो चुका है। भाषा इसकी प्रिय है। अपने पाठित्व तथा समर्थता प्रदर्शन के हेतु मुरजमल ने इसमें कई नए छन्द पढ़ कर रग दिए हैं और अनेक रचनाओं पर संस्कृत प्राकृत अपभ्रंश आदि भाषाओं के अव्यक्त एवं कर्मकट्टु ग्रन्थों का प्रयोग किया है जिससे भाषा में कृत्रिमता और बुराई का

१—पुराने समय के कारण जो इस प्रकार की रचनाएँ करते थे, वह विज्ञान होते थे। कारण यह था कि प्राय सभी राजपूत उस समय युद्ध में व्यस्त रहते थे। और उन्हें सैनिकों के प्रोत्साहन के लिये चारों ओर और रसपूर्ण कविता सुनाने के लिए भादों की बड़ी आवश्यकता होती थी। इस प्रकार राज-दरबारों में सम्मान उन्हीं चारों ओर भादों को मिल सकता था जो अपनी कला में बहुत प्रवीण होते थे। अब इस जाति के लोग काव्य-कला-कीर्तन की प्राप्ति के लिए सिद्धा और अभ्यास में बहुत समय बिताते थे, और संस्कृत प्राकृत और अपभ्रंश आदि भाषाओं के पुरे विज्ञान हुआ करते थे (मणेश्वरदास त्रिवेदी हिन्दी सर्वे कमेटी की रिपोर्ट-पृ० २१)। बर्बरताकर में जो 'भाट बर्बना' के अन्तर्गत भाट की छद्म भाषाओं के उल्लेख होने की आवश्यकता बताई है (पुनः कहलन भाट संस्कृत पराकृत सबहुत पैसाची सोरसेनी माननी छद्म भाषाक उल्लेख)। कर्मन टाड कहते हैं कि उस समय कबीरसर की पदवी उन्हीं को दी जाती थी जो कम से कम छद्म भाषाओं के ज्ञाता होते थे तथा व्याकरण ज्ञान निष्ठ आदि विषयों में भी प्रवीण होते थे (टाड राजस्थान-रसदा अभ्यास)। इससे यह भी सिद्ध होता है कि इन कवियों के आवश्यकता राजपूत लोग भी काव्य मर्मज्ञ होते थे। जगन् के अनुसार पुष्पीराज यह भाषाओं के आगकार थे —

संस्कृत प्राकृत चैव अपभ्रंश विद्याविका ।

माननी सूरसेनीय, पद भाषाचैव ज्ञायते ॥

(कविराज-पुष्पीराज रासो भाग १, पृ० २९)

२—मणेश्वरदास सिंह कीर्तिसत्ता और अवलुहभाषा पृ० १९, ११ १३, १८ १९

४० ४४, ४८ २१ २४ २३, २६ १० १५।

३—वेदिके सेवक की पुस्तक—'राजस्थानी कवि' दोनों अंश

पई है ।<sup>१</sup> इसी में बिगल का भी काफी प्रयोग है । राजबिलास की भाषा राजस्थानी मिश्रित ब्रजभाषा है ।<sup>२</sup> बिगल के प्रसिद्ध ग्रन्थ बाहर रचित बीरबान में भी पंजाबी प्रभाव दर्शनीय है ।<sup>३</sup> उसमें ही अपभ्रंश के बनेक रूप प्रयुक्त बीज पड़ते हैं । यह मिश्रित काव्यरूप परम्परा और मिली जुली भाषाओं का प्रयोग ठीक प्राकृत से जमा या रहा है जिसका अपभ्रंश और बिगल में भी निर्वाह किया गया ।<sup>४</sup>

१—मोतीबाल मेनारिया राजस्थानी भाषा और साहित्य—पृ० २१६

२—मोतीबाल मेनारिया राजबिलास—मू० पृ० २२

३—सक्ती कुमारी ब्रुडाल्ट बीरबान—मूयिका—पृ० १५

४—मिश्रित भाषा के उदाहरण देखिए—

(१) बाबा राधा में प्राकृत प्रभाव

ग्रन्थ पादाकृत पराकृत भाषा

हो रीति नर्भ भीम मेहा तत्वे पुत शिव सनेहा ।

जप्ते पड्डा पड्डा गोरु जप्ते पुर्ब भूम भंभोर ।

महावाचनार्ध सं०—बाबा राधा—पृ० ४०

(२) राजकपक में वध

बाग

बागूट केसरी भीम का भीम सुरां ते छिरकल कबिरावा की सीम । मूस पर हाम दिया, मन में छछाह किया । सुरां के प्रमाण बोके सभा सुनत बचन लीके । सुभी ठाकुरां छिरबारां बाय बनी महासुरां की बारां । भी ली अप्रबल बल पामो बंस के बमसं ठाकुरां समय आयो । बौहसू के प्राण छीनें तब धमल के बंध बौध बीने । ऐसें बनेक बात कही, और ही कबेसर बोल बाहू बाहू कही ।

—राजकपक सं०—राजकपक—पृ० १४९ ५०

(३) रत्नमाला ग्रन्थ में संस्कृत

बाग

ईश्वरयुक्तमनापान् लत्वा बरबीरसुखद्वारमे ।

कवचेऽर्ह रत्नमस्तं प्रतिमस्तं यवनमुपस्य ॥१॥

सुभाविपमबहुतां कर्ता करनस्य समरकपुंभाम् ।

बीरवयपीवर्ता रत्नमस्तौ जयति भूवर्ता ॥२॥

कै० ह० पृ० सं०—भाषीन नूर्जर काव्य—पृ० १

(४) बंध भास्कर की प्रमुख भाषा—प्राचीन अवधेयीका प्राकृत-मिश्रित भाषा-ही है परन्तु उसमें कुछ प्राकृत संस्कृत कुछ ब्रजभाषा अपभ्रंश मिश्रित मद्रभाषा बाबि भी है ।

(५) बिगलकोष के विर्यता कबिरावा भुरादीबान—इसी की रचनाएँ भी प्राकृत, अपभ्रंश और राजस्थानी ब्रज मिश्रित हैं ।

प्राकृत अपभ्रंस के अनेक कवियों ने अपने द्वारा प्रयुक्त छंदों का उल्लेख किया है। स्वयं भू ने पञ्चमहिरत में स्वयं कहा है कि मैं रचता छन्दोबद्ध काव्य को निबद्ध कर रहा हूँ।<sup>१</sup> बाबर भी बीरबाण में अपने द्वारा प्रयुक्त विष्णु गण छंदों की संख्या तक दे देता है।<sup>२</sup> पाण्ड भी कहता है—<sup>३</sup>

छंद प्रबंध कवित्त अति, ता'क गाह, दुहरय ।

सह भुक् मंडित रंजि यहि विंगन अमर भरय ।

छंदों के उल्लेख की परम्परा के बावजूद हमारा ध्यान स्वयं की महत्ता प्राप्ति की ओर जाता है। अपभ्रंस के महाकाव्यों में, इसी प्रकार विंगन के प्रबंध काव्यों में रचना के महत्त्व को प्रदर्शित करने वाले अनेक उल्लेख मिलते हैं। बुध्वाग्नि जाने महापुराण में कह सछे है—इस रचना में प्राकृत के सद्यस सद्यस नीति छर, अयं कार रस, तरवार्य निर्णय सब कुछ आ गया है। यहाँ तक कि इन जैन चरित में जो कुछ है वह अयन नहीं मिलेगा।

अथ प्राकृत महाकाव्य नितकला नीति विपतिपुत्रनामचरितकृतयो रत्नाश्च विविधास्तत्पार्यन्तिर्भीतयः ।

किं स्वाम्यद्यदिहास्ति जैनचरिते नाम्नाय तद्विद्यते ज्ञातेतो मरुतेगुण्य दयानो सिद्धं मयोरीवृक्षम् ॥

—महापुराण ५९ भी संधि प्रारम्भिक प्रशस्ति

इसी प्रकार पृथ्वीराज रासो में भी भोपणा की गई है—

उक्ति जने विद्यामस्य राजनीति नभं रसं ।

पटमावा पुराणं च करणं कवित्तं मया ।

—पृथ्वीराजरासो-१-८१

वेमि क्रिसन चक्रमणीरी में कवि पृथ्वीराज ने पाठकों के विचार ज्ञान की आवश्यकता की ओर संकेत किया है। इसे ठीक से समझने के लिए ज्योतिषी वैद्य पुराणों का विद्वान् बोधी, संमीक्षक, तार्किक, व्यापकास्त्री कवि, भाषाविद् और चारण माट आदि सभी की एकत्र होकर विचार करना पड़ेगा।

ओठिनी अयद पञ्जरनिष्ठ बोधी

संयीती तारकिक सति ।

चारण माट भुकपि, मारवा चम

करि पकठा त भरय कहि ।

१—वेमिचक्रमात्र पञ्चमचरित—अंश १—पृ० ९

२—लक्ष्मीकुमारी ब्रूहावत बीरबाण—पृ० ११

३—मोहनसिंह पृथ्वीराज रासो—सम्पादकीय—पृ० १

४—नरोत्तम स्वामी क्रिसन चक्रमणीरी वेमि—पृ० १३३

हम पिछले अध्याय में देख ही चुके हैं कि हिमालय के काव्यग्रन्थों में कवि का ध्यान प्राकृतिक वस्तुओं तथा अन्य वस्तु व्यापारों की गणना कराने की ओर बितना अधिक बिखलाई पड़ता है। उतमा संश्लिष्ट चित्रण की ओर नहीं। यह प्रवृत्ति संस्कृत के पूर्ववर्ती महाकाव्यों में नहीं मिलती किन्तु अपभ्रंश के काव्यग्रन्थों में बहुत मिलती है।<sup>१</sup> पृथ्वीराज रासो केमि किसन ककमनीरी, काम्हडवे प्रबन्ध रावकाफ राव बिबास सूरजप्रकाश बंसमास्कर रामरासो रघुनाथरूपक रघुवरबस प्रकाश सनी दिगल एवं दिगल मिमित पियल ग्रन्थों में यह प्रवृत्ति देखी जा सकती है। इस प्रवृत्ति का एक दूसरा रूप भी हमें मिल जाता है। वह यह कि कवि नाय परिचयना के साथ ही संस्मारमक वस्तुक्ति का आशय लेता है। इस प्रकार की परिपाटी की परम्परा भी हमें अपभ्रंश से सीख पड़ती है। पुण्डरीक के महापुराण में ऐसे अनेक स्थल हैं जहाँ संस्मारमक वस्तुक्ति का सहारा लिया गया है। एक उदाहरण देखिये —

चरपासी लखवइ कुबचइ । तेलिय सइसइ रइचराइ ।  
छल्लवइ सहासइ राबियाइ । बत्तीस बिबइ संताणियइ ।  
सोनइ सइसइ सिठइ सुरइ । बाबायराइ पंभनियराइ ।  
— महापुराण असीसमी संकि

इस के बरबार का वर्णन करते हुए पुण्डरीक परमचरित में कह पड़ते हैं 'सत्ताबीस करोड़ अप्परायें चमर हुआ रही थी।

बिजिज्जुनुनु चमर परिवाहि हि । सत्ताबीसहि अप्पर-कोडिहि ।  
— परमचरित तद्वसी नंकि क० ६

बीससदेव रासो में इसी परम्परा का निर्वाह देखिये। बीससदेव की बाराह का वर्णन है —

जाठ सेइस मेवा बधी । पालसी बइठा सइस पचास ।  
हाजी बास्या बीड़सी । बसीय सेइस बास्या कैकास ।

— बीससदेव रासो पृ० १२

हिमालय काव्यों में इस प्रवृत्ति का वासन बील पड़ता है। इसे विस्तारपूर्वक हम पिछले अध्याय में देख चुके हैं। यहाँ तो भाग इस प्रवृत्ति का अपभ्रंश से सम्बन्ध दिखाना ही अमित्र है। अतः विस्तारमय से और पुनर्वक्तिमय में यहाँ एक ही उदाहरण दिया गया है। जहाँ एक नाय या वस्तु परिचयना का प्रश्न है। इस परम्परा का निर्वाह अपभ्रंश से होकर हिमालयकाव्यों तक में व्यापकता से भिद्यता है। जो भी विषय छूक होता है चाहे सामान्य और बरबार का प्रसंग हो या जीवन का उद्यान का हो या पशु-पक्षियों का सबमें सम्बद्ध वस्तुओं का नाम बहुत ग्योरे के साथ पियाया गया है। इसमें काव्य-कला की दृष्टि से घटे ही बोध दिखलाई पड़े किन्तु अनेक स्थलों में इस पद्धति के कारण तत्कालीन सामाजिक जीवन और सम्पत्ता पर अच्छा

१. रघुनाथसिंह हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकास पृ० २६६

रसमयता एव ही निम्न शक्तियों में भी ऐसी ही अनुभूत है ।

उस समय हमारे चारों ओर ही गीतों का गीत ।

दिगंत के अनेक भागों में विवाहों का वर्णन भी बिना किसी भी निमित्त है । ये विवाह दो प्रकार के मिलते हैं —

प्रेमाश्रयण रूप के विवाह जिसमें नायक-नायिका में विवाहपूर्ण प्रेमभाव आदि द्वारा पूर्वाश्रयण उत्पन्न होता है सम्पन्न भेद जाने है और दिगंतमय में या तारिता सरावर के तट पर नायक से नायिका मिलती है फिर नायक मुक्त करके उड़ता हुआ कर से जाता है । इस तरह के दो तीन मध्यम विवाहों का वर्णन रसमय में हुआ है जो कानिनास के वास्तविक का तथा अरभ्य और परवर्ती संस्कृत के गीतमय रोमांचक अरित भावों का प्रमाण स्पष्ट करता है । ऐसे विवाहों में कथानक सम्पन्न पूर्वप्रवर्तित कथनों का सूत्र प्रयोग हुआ है । दूसरे रूप के ये विवाह हैं जिसमें कथा-वस्तु और अरभ्य की राय से विवाह निश्चित होता है, पुरीहित भाग लेकर जाते हैं जिसमें चढ़ता है और बारात जाती है । उन वर्णनों में बारात की अवधानी अनवधाना, संनमनप्रकार प्रयोगों के विवाहमण्डप में भावों, निष्पूरण वास्तविक विवाह आदि का विवरण विस्तार के साथ दिया गया है । अरभ्य के पूर्ववर्ती अरित काव्यों में विवाह का वर्णन तो अवश्य हुआ है किन्तु इतना विवरण उनमें नहीं दिया गया है । वस्तु में सत्ताम्बी में शक्ति दिगंतदृष्टि वाहिने के अरभ्यविचारित नामक मधु प्रदम्प काव्य में अवश्य विवाहोत्सव का वर्णन कई कवियों में हुआ है । जिसमें विवाह का सत्य जीवन, विवाह की तयारी अंश-रचना, निम्नमय भेदना और पुरता, दिगंतों के बीच द्वारवार और विवाह आदि का बहुत ही विषय और काव्यारमक वर्णन हुआ है ।<sup>१</sup>

विवाहों की पहली परम्परा का उदाहरण पुष्पीराज कृत वेति अरभ्य दृष्ट-मतीरी तथा मायाप्रकाश रचित अरभ्यी प्रथम में मिल जाता है । हमारे प्रकाश के अरभ्य

मसहस सेत कुतसर भिण्णा गय बर हय करवाकहि छिण्णा ।  
 गर बर गाह पडिय को बडिय, बर तमबनि नकर कहि मंडिय ॥  
 बिबाहि तडातडा, मूर्छिहि भडा भडा ।  
 कुत बाय दारिया, सत्यहि बियारिया ।  
 जीव बास मेहिनया, कायरा बिचमिनया ।

सत्य हत्य बुकहूँ, सीहणह बुकहूँ । ८९-९०

जहाँ रवि रव की ओर, यव यव की ओर बोड़ा । बानुज बानुज की ओर भावा । बोड़ा बोड़े से, निदयस्व निदयस्व से, और अति निर्मम हो कबल से ना मिड़ी । बास ओर ओर से बज रहे हैं । बोड़े हिनहिना रहे हैं और हाथी बिना कटे हुए दिखाई दे रहे हैं ।

मारो मारो सैनिक बिल्ला रहे हैं ? पव बलित बूति आकास में फैल रही है । सीघ्र ही विषाच बिर बाटे हैं । मृगाल मयकर सख कर रहे हैं । रत्तर जित योद्धा हतस्तत भूम रहे हैं अस्त्र भिन्न हो रहे हैं । हाथी और बोड़े तकरारों से छिन्न हो रहे हैं । राजा जिना बिमल हो पिर रहे हैं ।

बोड़ा बिट हो रहे हैं अट मूर्छित हो रहे हैं कोई भासों के प्रहार से बियोर्ब हो रहे हैं कोई सख से छिन्न बिन्न हो रहे हैं जीवन की व्यासा को छोड़ कामर माय रहे हैं ।

इसी परम्परा में श्रीमद्वारा रत्नमल्ल के युद्ध कीर्तन का चित्र देखिये —

गोरीबल बाहुनि विदूत बहुहिंसि पडि भडि पिरिमहारि पडियं ।  
 हुनहनि हवकन्तव इहुं हुं हय हय हुनकारनि हयमरि बडिय ।  
 बडहुकत भडि कममकन बरातनि बसि बचबावण बूध नरह ।  
 इतरनह पधर बेस सरिसु रनि रामायण रमसख करह ॥१४॥  
 रोमविषय रमसिर, रडि डरावण रहि रहि बल बोम्बान्त बसि ।  
 पवकार बर पुठिट पबनम पेठिट्य पुहुवत पदत पतसाहबनि ।  
 बसि मारनि रमस रमायनि रमसिज मधवह बगड महा बडया ।  
 रमसल रनिंग मोहि मिसन्ता मेष्ठायण भू गन मिडिवा ॥१५॥

ऐसे अनेक बहादुरन विषय आ सकते हैं किन्तु स्थानानुसार से ऐसा नहीं किया जा रहा है ।

जिनमें राम काव्य की विशेष रचना नहीं हुई है । प्रबन्धकाव्य के रूप में माधोदास बचवाकिया कुत रामरासो उपलब्ध होता है । अन्तों के सांस्कृतिक रूप में रचनावत्पक गीतारो प्रसिद्ध रचना है । जिसका भी आक्षेप का रत्नचरचस प्रकाश प्रबन्धकाव्य न होकर मात्र राम सम्बन्धी कुछ मुक्तकों के सहारे रचा हुआ अलग परम्प है । इन सब रचनाओं पर अपभ्रंश के राम-साहित्य का कोई प्रभाव नहीं पड़ा

रणमत्स्य छन्द की निम्न पंक्तियों में भी ऐसी ही अनुगुण है ।

हम हमइ हमहमकार टुकर डोल डोली पाँविया ।

द्वितीय के अनेक काव्यों में विवाहों का वर्णन भी विस्तार से मिलता है । ये विवाह दो प्रकार के मिलते हैं —

प्रेमाख्यात छंद के विवाह जिनमें नायक-नायिका में विषदयन गुणमयन आदि द्वारा पूर्वानुराग उत्पन्न होता है उसके भेज जाते हैं और शिवमन्दिर में या सरिता सरोवर के तट पर नायक से नायिका मिलती है फिर नायक युद्ध करके उसका हरम कर ले जाता है । इस तरह के दो तीन मध्यम विवाहों का वर्णन रासो में हुआ है जो कासिवास के पाकुण्ठस का तथा अपभ्रंस और परवर्ती संस्कृत के पौराणिक रोमांचक चरित काव्यों का प्रभाव व्यक्त करता है । ऐसे विवाहों में कथानक सम्बन्धी पूर्वप्रचलित कदियों का कुछ प्रयोग हुआ है । दूसरे छंद के ये विवाह हैं जिनमें कन्या-पक्ष और वरपक्ष की छय से विवाह निश्चित होता है पुरोहित लप्प लेकर जाते हैं तिसक चढ़ता है और बाण्ड जाता है । जब वर्णनों में बारात की आगबानी, जलवासा, मंजसाचार, प्योनार विवाहमण्डप में जांबरी सिम्भूरदान वानचहेज, बिवाई आदि का विवरण विस्तार के साथ दिया गया है । अपभ्रंस के पूर्ववर्ती चरित काव्यों में विवाह का वर्णन तो अवश्य हुआ है किन्तु इतना विवरण उनमें नहीं दिया गया है । इसी छताम्बी में रचित दिव्यदृष्टि आहिले के पठमसिरिचरित नामक सधु प्रबन्ध काव्य में अवश्य विवाहोत्सव का वर्णन कई कठवकों में हुआ है । जिनमें विवाह का लज्योवन, विवाह की सैयारी मंडप-रचना, निमग्नय भेजना चौक पूरना, रिश्यों के गीत द्वारबार और विवाह आदि का बहुत ही विस्तार और काव्यारमक वर्णन हुआ है ।<sup>१</sup>

विवाहों की पहली परम्परा का उदाहरण पुष्पीराज छंद केति क्रियत रुक्मणीरी तथा सायामुला रचित छमयी हरण में मिल जाता है । दूसरे प्रकार के वर्णन पुष्पीराज रासो से लेकर रघुनाथकव्यक तक में मिल जाते हैं ।

इन सब प्रकार के वर्णनों में सबसे प्रमुख वचन युद्ध सम्बन्धी है । आख्यात्मक अवस्था अनुरक्तनात्मक दम्बावकी का जयन अपभ्रंस में बहुत प्रचलित था । जबतक कि के हरिवंश पुराण का उदाहरण देखिये —

एवञ्च एहं गयहुयत जावित पाणुनकहु भाणुनहु परायत ।  
 दुरञ्च दुरीन कुचमा भित्तपत अतिनजरहु लण्णु भय पत्तत ।  
 बग्गहि नहिर दूर हय हिसहि नुनुमुत्त गयवर नहु बीसहि ।

•

•

•

•

हणु हणु माक माक पमणतिहि ।  
 दलिय बरति ऐणु नहि जायत लहु पित्तमुद्धञ्च मुद्धञ्च जायत ।  
 छिनकारत करति छिनपावण सुम्माई लुहक भयति कहिरावणु ।

अनहस सेल कुत्तर मिष्ठा, गय बर हय करवाकहि छिन्ना ।  
 बर बर गाह पडिय दो लडिय बर तपसनि बकर कहि मंडिय ॥  
 बिचहि तडातडा, मुर्छिहि भडा भडा ।  
 कुत्त पाय बारिया, लम्बाहि बियारिया ।  
 बीन बास भेलिया, कायरा बिचलिया ।

सम्ब हरय दुकही छीहनाइ दुकहिहि । ४९-१०

अबन्तु रजित रज की ओर यव यव की ओर बोड़ा । मानुष्य मानुष्य की ओर आया । बोड़ा बोड़े से, मिश्रस्त्र मिश्रस्त्र से, बीर बसि निर्मय हो कवच से जा निड़ी । बास और ओर से बज रहे हैं । बोड़े हिनहिना रहे हैं और हाथी बिना कटे हुए गिराई के रहे हैं ।

‘मारो मारो सैनिक बिल्ला रहे हैं ?’ पव बलित धूलि जाकास में पैत रही है । शीघ्र ही पिशाच फिर बाटे हैं । शृगाव समकर अव्य कर रहे हैं । रक्तमिश्र घोड़ा इतस्तत भूम रहे हैं खरब मिर हो रहे हैं, हाथी और बोड़े तकमारों से खिस हो रहे हैं । राजा जिना बिमल हो पिर रहे हैं ।

योद्धा बिड हो रहे हैं घट मूर्छित हो रहे हैं कोई धालों के प्रहार से बिबीर हो रहे हैं, कोई लडन से खिस मिस हो रहे हैं, जीवन की आका को छोड़ कामर भाग रहे हैं ।

इसी परम्परा में श्रीधर द्वारा रत्नमाल के युद्ध बीरस का बिच देखिये —  
 गोरीबल माहनि बिट्ट वहुहिंसि मडि मडि पिरियहारि नडिब ।  
 हनहनि हनकतत हुं हु हय ह्याहुकारनि हनमरि बडिय ।  
 बडहुडतत मडि कममकन बरातनि बसि बबहायन बूस बरह ।  
 इतरबड पडार बेस हरियु रजि रामायन रत्नमाल करह ॥३४॥  
 रोमबिचय रत्नसिर, राडि डरावन रहि रहि बल कोसुलत बलि ।  
 पनकर बर पुडित पबमम पेठिट्टन पुहुतत पदत पवसाहबलि ।  
 ममि मारनि कम्ब रायारि रत्नविज यस्वह बपड महा भडया ।  
 रत्नमल रत्नमि माडि मिलन्ता मेष्णमल भू बल मिडिया ॥३५॥

ऐसे बनेक सबाहरन चिय जा सकरी हैं किन्तु स्थानाभाव से ऐसा नहीं किया जा रहा है ।

हिमालय में राम काव्य की विशेष रचना नहीं हुई है । प्रबन्धकाव्य के रूप में माधोदास बबबाडिया कुछ रामरावो उपलब्ध होता है । अर्थों के आधुनिक ग्रन्थ के रूप में रत्नमालकपक गीतारो प्रसिद्ध रचना है । किसना भी आका का रत्नवरजस प्रकाश प्रबन्धकाव्य न होकर मात्र राम सम्बन्धी कुछ मुक्तकों के सङ्गरे रचा हुआ लघुग्रन्थ है । इन सब रचनाओं पर अवप्रसंग के ‘राम-साहित्य’ का कोई प्रभाव नहीं पड़ा



रणमत्स स्तम्भ की निम्न पंक्तियों में भी ऐसी ही अनुगुण है ।

हम हमइ हमहमकार टु कर डोस डोसी जंभिया ।

हिमाल के अनेक काव्यों में विवाहों का वर्णन भी विस्तार से मिलता है । ये विवाह दो प्रकार के मिलते हैं —

प्रेमाश्रयण डंग के विवाह जिनमें नायक-नायिका में बिजलदर्शन गुणभजन आदि द्वारा पूर्वानुराग उत्पन्न होता है सम्बन्ध भेजे जाते हैं और शिवमन्दिर में या सत्ता सरोवर के तट पर नायक से नायिका मिलती है फिर नायक मृद करके उसका हृदय कर से बाँटा है । इस तरह के दो तीन सम्बन्ध विवाहों का वर्णन रासा में हुआ है जो कालिदास के व्याकुलता का तथा अपभ्रंश और परवर्ती संस्कृत के पौराणिक रोमांचक चरित काव्यों का प्रभाव व्यक्त करता है । ऐसे विवाहों में कथानक सम्बन्धी पूर्वप्रचलित कड़ियों का सूत्र प्रयोग हुआ है । दूसरे ढंग के ये विवाह हैं जिनमें कन्या-पक्ष और वरपक्ष की राय से विवाह निश्चित होता है, पुरोहित लम्ब सेकर जाते हैं तिलक चढ़ता है और आराधना आती है । उन वर्णनों में बारात की अवधानी, जनबासा, मंगलाचार, ब्योमार विवाहमन्त्र में गाँवरी सिन्धूरवान खानखोज विवाह आदि का विवरण विस्तार के साथ दिया गया है । अपभ्रंश के पूर्ववर्ती चरित काव्यों में विवाह का वर्णन तो अवश्य हुआ है किन्तु इतना विवरण उनमें नहीं दिया गया है । वसवीं शताब्दी में रचित दिव्यादृष्टि बाह्यसे के 'पठमसिचिरचरित' नामक सप्त प्रबन्ध काव्य में अवश्य विवाहोत्सव का वर्णन कई कड़वकों में हुआ है । जिनमें विवाह का लज्जा लोचन विवाह की तैयारी मंडप-रचना निमग्नता भेजना चोक पूरना स्त्रियों के पीठ द्वारवार और विवाह आदि का बहुत ही विस्तार और काव्यात्मक वर्णन हुआ है ।<sup>१</sup>

विवाहों की पहली परम्परा का उदाहरण पृथ्वीराज कुत बेसि क्रियत स्तम्भोरी तथा सायामूला रचित स्तम्भोरी हरण में मिल जाता है । दूसरे प्रकार के वर्णन पृथ्वीराज रासो से लेकर रघुनाथरूपक तक में मिल जाते हैं ।

इन सब प्रकार के वर्णनों में सबसे प्रमुख वचन मृद सम्बन्धी है । ज्यम्भारमक अववा अनुरमनात्मक अवशावकी का चयन अपभ्रंश में बहुत प्रचलित था । अवल कवि के हरिवंश पुराण का उदाहरण देखिये —

एवठ रहहु नयनुमठ बावित बाबुनकहु बाबुनकु परायठ ।  
तुठ तुठं कुबमा विहलठ अतिवसरहु लभु भय चतठ ।  
बगहहि बहिर सूर हय हिसहि मुमुमुमुठ गनवर नहु बीसहि ।

हम् हम् माक माक पमचतिहि ।  
रमिय चरति रैमु पहि बायठ सह पिसमुदठ मुदठ बायठ ।  
किङ्कारठ करति विववावण मुम्माई मुहठ भयति चहिरावम् ।

भसहल सेल कु तसर मिष्णा, गय नर ह्य करवावहि छिन्ना ।  
 नर नर जाह पडिय हो खंडिय नर तपसनि नकर कहि मंडिय ॥  
 बिषहि तवातवा, मुसिहि मडा मडा ।  
 कु त बाय बारिया, खम्पहि बियारिया ।  
 बीन बास मेस्तिमा, कायरा बिषम्लिया ।

• • •  
 लाग हल हुकही सीहनाह बुकहि ॥ ८९-९०

अपभ्रं रणिक रण की ओर नव गड की ओर बीड़ा । आनुष्क आनुष्क की ओर आया । बीड़ा थोड़े से, निरक्षरन निरक्षरन से और अति निर्धन हो कमच से आ गिड़ी । बाघ ओर ओर से बच रहे हैं बीड़े हिनहिना रहे हैं और हाथी बिना डटे हुए दिखाई दे रहे हैं ।

‘माघो माघो सेमिक बिल्ला रहे हैं ? पब बमित बूति आकास में फैल रही है । बीघा ही पिघाव बिज आते हैं । मृगाल भयंकर खम्ब कर रहे हैं । रत्नरविठ घोड़ा इततत खूब रहे हैं घास भिन्न हो रहे हैं हाथी और बीड़े तलवारों से छिन्न हो रहे हैं राधा बिना बिभक्त हो गिर रहे हैं ।

घोड़ा बिड हो रहे हैं मठ मूर्खिय हो रहे हैं, कोई वालों के प्रहार से बिबीर्न हो रहे हैं कोई लङ्ग से छिन्न भिन्न हो रहे हैं जीवन की जाधा की ओड़ कायर मान रहे हैं ।

इसी परम्परा में बीघर द्वारा रत्नमल्ल के युद्ध कीधस का चित्र देखिये —

गोरोबस आह्वि बिट्ट बहुरिहि नहि महि विरिमहुरि यडियं ।  
 ह्यह्वि ह्यकल्लत हं हं ह्य ह्यहुककारधि ह्यमरि नडिय ।  
 पबहुकल्ल नहि कमपल्ल नरातति नधि पपकायण पूस भरह ।  
 इहरमह पधर वेस सरिसु रणि रामायण रत्नमल्ल करह ॥१८॥  
 रोमविषय रणतिर राडि करावण रहि रहि बल बोझनल्ल बलि ।  
 पबकर नर पुठिट पबंमन पठिट्ठ पुहुतल्ल पदट पतसाह्वलि ।  
 अति मारवि कम्भ रत्नामरि रमडिब नबबह भगड भहा बडया ।  
 रत्नमल्ल रणगि माडि भिल्लता मेष्णायण भूयस मिडिया ॥१९॥

ऐसे अनेक पद्याहरण दिये जा सकते हैं किन्तु स्वानामात्र से ऐसा नहीं किया जा रहा है ।

द्विगस में राम काव्य की विशेष रचना नहीं हुई है । प्रबन्धकाव्य के रूप में माधोबास ब्रह्मवाडिया कृत रामरावो उपमन्य होता है । क्षत्रों के शास्त्रीय ज्ञान के रूप में रत्ननाथकव्यक पीतारो प्रसिद्ध रचना है । किसता भी आका का रत्नवरमल्ल-प्रकाश प्रबन्धकाव्य न होकर मात्र राम सम्बन्धी कुछ मुक्तकों के छंदारे रचा हुआ लघु ज्ञान ग्रन्थ है । इस लघु रचनाओं पर अपभ्रंस के ‘राम-साहित्य’ का कोई प्रभाव नहीं पड़ा

है। इसके दो कारण हैं। पहला तो यह कि विजय के रामकव्य रचयिता हिन्दू थे—यैन रामकथा से प्रभावित होने का प्रश्न ही नहीं उठता। दूसरा यह कि वे भक्त भी थे। कहने का तो अपभ्रंश के बीच कवियों ने 'पठय चरित' और 'हरिचरित पुराण' लिखे बिना कमल-राम और कृष्ण का चरित माया गया है। लेकिन उनमें राम और कृष्ण ईश्वर के अवतार नहीं हैं। उनके यहाँ यह हो भी कैसे सकता था ? हर विचार बारा का उद्गम सुदूर अतीत में हुई निकलने वालों के लिए तो अवतारवाद की भावना वेद से ही बनी था रही है लेकिन वेद से उसका आरम्भ होना एक बात है और मध्ययुग में उसका अत्यधिक व्यापक हो जाना दूसरी बात है। अवतारवाद का आरम्भ चाहे जितना पहले हुआ हो लेकिन अवतार में लोक जीवन का सामान्य विवास जितना मध्ययुग में प्रचलित हुआ उतना पहले कभी न था। अवतारवाद की यह व्यापकता निश्चित रूप से चरित आम्बोसम के द्वारा मिली। संत और भक्त कवियों का यह सामान्य विवास था। पिछ में ब्रह्माण्ड को देखना ब्रह्मरूप में बन हुए नाथ को सुनना पद्मावती में अनौकिक सत्ता का आवास पाना, बखरप सुत राम में मर्यादा पुरुषोत्तम राम के वर्तन करना और बसुदेव सुत कृष्ण में सीताबाम परमात्मा को निहारना यह सब प्रकाशान्तर से उसी अवतारवादी भावना के ही विविध पक्ष हैं। विविध धर्मों और सम्प्रदायों के अनुकूल भक्तिभुज की एक ही भावना ने अनेक रूप धारण कर लिया था।

अपभ्रंश काव्य में इस भावना के वर्तन को नहीं होते तो उसका यह कारण नहीं है कि उसके अधिकांश कवि जैन थे। भक्ति भावना केवल हिन्दू धर्म की अपनी सम्पत्ति नहीं है। यह एक युग विशेष की लोकव्यापी सामान्य प्रेरणाशक्ति है जो हिन्दू धर्म के साथ ही इस्लाम में भी बिसाई पड़ती है। धर्म इसका क्षेत्र है, क्षेत्र नहीं बाकार है, वस्तु नहीं, वेद है, आत्मा नहीं। भक्ति का बीज और उसकी आत्मा सामान्य लोक जीवन की मुक्तिकामना में है। यह एक विशेष सामाजिक परिस्थिति की उपज है।

अपभ्रंश के उत्पन्न वय में यह परिस्थिति न थी। इसीलिए उसमें यह भाव भी उत्पन्न न हो सका।<sup>१</sup> यही कारण है कि विजय रामकव्य पर अपभ्रंश या प्राकृत साहित्य का कोई प्रभाव नहीं है। वह पौराणिक हिन्दू परम्परा को लेकर बना है।

रात्रस्वामी के दो प्रेमावधानक काव्य उत्प्रेक्षणीय हैं। एक है दोलामाकरो दूहा और दूसरा है माधवानस कामकम्बला। दोनों की रचना मारवाड़ी या राजस्थानी के बोलचाल के रूप को लेकर हुई है। दोनों में अनेक लोक तत्व मिस जाते हैं।<sup>२</sup> इन दोनों कृतियों पर भी अपभ्रंश के कथासाहित्य का प्रभाव परिलक्षित होता है। इन रचनाओं से बिल्कुल जुदा किसिम की रचना बेमिस किन्तु कमगोरी है। वह शास्त्रीय परम्परा बिल्कुल निकट है और संस्कृत से भी काफ़ी प्रभावित है। दूसरी तरफ़ दोला

१ नामचरितसिंह हिन्दी के विकास में अपभ्रंश का योग-पृ० १९४-९५

२ विवरण के लिए देखिए—बरदा—वर्ष ४ अंक २, इसी लेखक का लेख

माकरी बरपाई, बूझा वा माकदानल कामकन्दला काव्य लोक परम्परा के निष्कट है। बिष्ट और घाम्य रुद्र और लबीन काव्य की दो विरोधी प्रवृत्तियाँ अपभ्रंस साहित्य में भी मिलती हैं। लेकिन विद्वानों ने इस भेद को अपने अपने ढंग से समझा है। पं० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने इसे ललित करते हुए कहा है कि 'हिन्दी में दो प्रकार की मिस बातियाँ की दो बीजों अपभ्रंस से विकसित हुई हैं। (१) पश्चिमी अपभ्रंस से राज स्तुति ऐहिकता मूलक भृंगारी काव्य नीति विषयक फुलकल रचनाएँ और लोक प्रचलित कथानक। और (२) पूर्वी अपभ्रंस से निर्बुनिया सन्तों की सात्व्य निरपेक्ष हृदय विचारवाच, साङ्ग-कटकार, अन्धकड़पना, सहज-सुख की साधना योग पद्धति और भक्तिमूलक रचनाएँ।<sup>१</sup> इनमें से उन्होंने पहली प्रवृत्ति को रुढ़िवादी तथा दूसरी को रुढ़ि-विरोधी कहा है। परन्तु तथ्य इस स्थापना के विपरीत होते हैं। रुढ़ियों का विरोध करने में पश्चिमी प्रवृत्तियों के अपभ्रंस कवि जोहन्नु और रामसिंह सत्ने ही उत्तर हैं बितने पूर्वी प्रवृत्तियों के संहृपा और काहृपा। इसके अतिरिक्त पश्चिमी अपभ्रंस ने रचना करने वाले मल्लखंड के स्वयंभू और पुष्पबन्ध जैसे प्रख्यात कवियों को रुढ़ियों का पोषक किसी भी मासके में नहीं माना जा सकता। उन दोनों महाकवियों की रचनाएँ धर्मविक्षेप के विचारों से प्रभावित अवश्य हैं किन्तु उनके चरित काव्यों में अनेक प्रकार की धार्मिक, सामाजिक और राजनीतिक रुढ़ियों का विरोध किया गया। रामकथा सम्बन्धी ब्राह्मणधर्म द्वारा प्रवर्तित रुढ़ियों का साहसपूर्वक सङ्घटन स्वयंभू और पुष्पबन्ध ने ही किया। राजहरबारों के असुख प्रभाव का संश्लेष भी उन्होंने ही किया। भौतिक सुख विनाश के आसक्तिपूर्ण जीवन की असरता बतलाकर एक उच्चतर आध्यात्मिक जागरण की प्रेरणा देने में उनके काव्य अवगती रहे हैं। पुरुष के मर्यादों के विरुद्ध माटी के आत्मगौरव को उस युग में स्वयंभू ने बितने साहस के साथ प्रतिष्ठित किया उतना साहस और किसी ने नहीं दिखाया। इस हृदय तक रुढ़ियों का विरोध पश्चिमी और पूर्वी दोनों ही अपभ्रंस के कवियों ने किया। इसके अतिरिक्त वहाँ एक उस युग निमित्त जाहलों और मर्दानाओं के पालन का प्रसंग है। उसमें भी जीवन और सिद्ध दोनों कवि एक से दिखाई पड़ते हैं। कर्म-कर्म का बन्धन तोड़ने में इसमें से कोई सफल न हो सका था। यह अवश्य है कि जीवन-मृत में कर्मों का बन्धन अरुणत उद्यमाना जाता था। पूर्व कर्म के कर्मों के कारण जाया जन्म-अध्यात्मों में भटकने की कथाएँ किसी न किसी रूप में स्वयंभू पुष्पबन्ध अवपाक कनकामर बाधि सभी जीवन कवियों के चरित काव्यों में मिलती हैं। जोहन्नु और रामसिंह जैसे स्वतंत्र चेतन जीवन-मुनि भी कर्म सिद्धान्त से मुक्त नहीं हैं। सहर संहृपा और काहृपा जैसे उद्य सिद्ध भी इस संस्कार से ऊपर उठने में असमर्थ दिखाई पड़ते हैं।

इस प्रकार मूक चेतना की वृष्टि से पश्चिमी और पूर्वी अपभ्रंस की रचनाओं में कोई आकारमूक अन्तर नहीं दिखाई पड़ता।<sup>२</sup>

१ हजारीप्रसाद द्विवेदी हिन्दी साहित्य की भूमिका-पृ० २६

२ नामवरसिंह हिन्दी के विकास में अपभ्रंस का योग-पृ० २६५-७०

कृष्ण भी हो, हमारे इन प्रेमाख्यानों में व्यक्त भावनाओं की तीव्रता, सावरी और सरसता उन्हें अत्यन्त प्रभावमय बना देती है। इन रचनाओं के मुक्तक पदों पर भावे जल कर हन विस्तृत विचार करेंगे। अस्तु —

लोकभाषा राजस्थानी में रचित तत्कालीन तीन प्रबन्ध काव्यों में गीत महा पुष्पों और नाटिक गुणों की बीजनी ही प्रमाण रूप से मिलता है। उनमें भरतेस्वर बाहुबलि रास, सुमहा रास स्फुटिमाह रास, चम्पनबासा रास शासिभद्र रास, पंच पांडव पद्म गम्भीरसामि रासा मलयदेहरासरा, सासि भद्रमुनिका रासा नैमिनाथ रास, जितचन्द्र सूरि वर्चना रास आदि प्रमाण हैं। वे सभी मनु प्रबन्ध या मनु चरित काव्य हैं। श्री जगरन्नाथ माहटा के निबन्ध 'बीरगाथा काल का तीन भाषा साहित्य और श्री कामताप्रसाद जैन के हिन्दी तीन साहित्य के संक्षिप्त इतिहास' में इन ग्रंथों की सूचना और परिचय दिया गया है और प्राचीन गुर्जर काव्य-संग्रह और भाष्टीय विद्यामें उनमें से कुछ ग्रंथ पूरे प्रकाशित भी हुए हैं। इनसे यह बात होता है कि उस काल में लोकभाषा में मन्त्रे पौराणिक नाटिक काव्य लिखने की प्रथा नहीं आरम्भ हुई थी। वे सभी बीस हैं लेकर छी-सवा छी छन्दों के भीतर के काव्य हैं। अतः प्रबन्ध काव्य के सभी गुणों को उनमें खोजना व्यर्थ है। हिन्दी साहित्य के आदि काल में रहे जाने के कारण वे काव्य परबर्ती प्रौढ़ एवं वृद्ध प्रबन्ध काव्यों के लघुभूत के रूप में अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं और यहाँ वे इसी कारण विवेक्ष्य भी समझे गये।

ऊपर के विवेचन से स्पष्ट है कि लोकभाषा-साहित्य में प्रबंध काव्यों की अविकृता नहीं हैं। जो हैं भी वे प्रायः मनु प्रबन्ध काव्य हैं। उनमें ऐतिहासिक पौराणिक और रोमांचक इन तीनों शैलियों के काव्य हैं। वे सभी कथानक की दृष्टि से प्रारम्भिक अवस्था में हैं जबकि उनमें प्रबन्ध कीसल का अभाव है। इसका कारण यह था कि कभी पुष्प लाभ और कभी प्रचार कभी बीजिकोपायन और मद्य-आम और कभी कोरा मनोरंजन उन कवियों का उद्देश्य होता था। अतःकत पर-मोजना भाव-साहित्य वर्जन-सौन्दर्य और प्रबन्धकीसल द्वारा अपने काव्य को कल्पान्तर स्वामी बनाने की ओर उनका ध्यान कम था। उनके प्रबन्ध काव्यों में कथानक का जमिक विकास नहीं दिखाई पड़ता जबकि कथानक में आवि मध्य और अन्त की यतहास्य संतुलित योजना कम हुई है। प्रबन्धकीसल की कमी के कारण कथानक का कोई अंग अति रेखीय हो गया है तो कोई अति अवेक्षित। अस्तुत प्रबन्ध-मदुता अतःकत प्रबन्ध काव्यों में ही अधिक होती है। इस काल के काव्य या तो विकसनशील प्रेमाख्यानक और बीरकाव्य हैं या प्रकृतिमूलक वर्णनात्मक प्रबन्ध काव्य या इति वतावक बीरानिक मनु काव्य अथवा भावात्मक मनु प्रबन्ध काव्य। जल उनमें इन काव्य शैलियों के पूर्ववर्ती प्रबन्ध काव्यों को बहुत भी अड़ियाँ जगनाई गई हैं। परन्तु साथ ही उनमें अनेक नई काव्यकविता भी आविष्कृत की गई हैं। उदाहरणार्थ इस काल में लोकभाषा परबर्ती जगप्रध राजस्थानी बुजरानी, भाषि में निम्नलिखित काव्य-रूपों और उनके नामों का प्रारम्भ हुआ —

१-लोकप्रचलित शब्दों के नाम पर आचार्य - चरपई, डूहा, मारि  
बैदे मेमिनाय चरपई डोबायाक रा डूहा ।

२-लोकप्रचलित मूल्यवर्तों के नाम पर आचार्य-चर्चरी (चोपर), रासक  
या रास बादि ।

३-लोकप्रचलित श्रुतकाम्य-बाह्यमासा, फाय बमास, बीमासा, बादि ।

४-स्तुति और मंगल वाचक-स्तुति, मंगल, विनयी वा विनय बादि ।

५-प्रचलित व्यंजक नाम-बैलि दिजय चम्रिका, पठाका लता बिजास,  
बिबोद बादि ।

६-संख्यावाचक नाम-चसक बीसी पच्चीसी बत्तीसी बासीसा, बादि ।

७-बारहवर्षी या वर्षमासा काव्य-कसक (पालिभाष कसक) मातृका  
(डूहा-मातृका) बादि ।

इन काव्य कर्मों का हिमालय प्रबंधकाव्य के रूप-विकास में महत्वपूर्ण योग  
रहा है क्योंकि इनकी सीधियों और काव्य रूढ़ियों को परवर्ती काव्य के प्रबन्ध काव्यों  
में बहुत कुछ अपना लिया गया ।<sup>१</sup>

संस्कृत परम्परा से विपरीत अपभ्रंश रचनाओं में अति प्राकृत प्रसंगों की  
मरमार रहती है । कचानक के संघटन में व्यौहिक और अतिप्राकृत शक्तियों तथा  
अतिमानव कार्यों का बहुत सहारा लिया गया है । यद्यपि ये तत्त्व पौष्टिक काव्यों  
में भी हैं पर अपभ्रंश और परवर्ती विंगल रचनाओं में ये बड़े ही दृढ़ पये हैं । अपभ्रंश  
कृतियों में देवता राजस भक्त यक्ष विद्याधर नाम बादि मानव के सहायक और  
बिरोधी दोनों रूपों में होकर पड़े हैं । मुनि का साध या बरबाद किसी बुरा विद्या  
की सहायता से बुरे देवों में पहुँच जाना मत्त यक्ष की परास्त करना समूची सेना  
को युद्ध में बाँट की बाँट में परास्त कर देना बादि अति मानव कार्यों की योजना  
प्रायः मिलती है । जब जाने चलकर जंगल में देव्य भाषा में राम चरित बादि रचनामें  
लिखनी शुरू की, तो मवाकसर ये विशेषताएँ भी इनकी रचनाओं में आ गई । लोक  
भाषा बारहवर्षी या राजस्वानी हिमालय का स्वरूप ग्रहण कर उठी तो उसकी रचनाओं  
में भी ये विशेषताएँ थोड़ी बहुत प्रवेश पाने लगी । कालांतर में सिधे चरितकाव्यों  
या ऐतिहासिक रचनाओं में भी ऐसे प्रसंग बहुतायत से आने लगे । रचनाओं के  
आकार के साथ ही ऐसी कृतियों तथा कालांतर प्रसंगों की उत्पत्ति बढ़ने लगी ।  
हजारी प्रसाद जी ने इस विषय में विस्तार पूर्वक चर्चा करते हुए कहा है कि ऐतिहासिक  
चरित का श्रेष्ठ संभावनाओं पर अधिक बल होता है । संभावनाओं पर बल  
देने का परिणाम यह हुआ है कि हमारे देशके साहित्य में कचानक को मति और  
बुसाव देने के लिए कुछ ऐसे अधिप्राय बहुत बीरकाम से व्यवहृत होते जाये हैं जो बहुत  
थोड़ीदूर तक गगन होते हैं और जो जाने चलकर कचानक कवि में बदल गये हैं । इस

विनय में ऐतिहासिक और निरूपणीय कथाओं में विशेष भेद नहीं किया गया। केवल ऐसी बात का ध्यान रखा गया है कि संभावना क्या है। नितीर के राजा ने विनय देव की राजपुत्री का विवाह हुमा या भा नहीं, इस ऐतिहासिक तथ्य में कुछ भेद देना नहीं है हुमा हो तो बहुत अच्छी बात है न हुआ हो तो होने की संभावना तो है ही। राजा से राजकुमारी का विवाह नहीं होगा तो विनय कहाँ ? गुरु नामक गयी मोठा-बहुत मानव बाणी का अनुकरण कर भेजा है और भी तो कर सकता था। जिसकी चाल उसे प्राप्त है उससे अधिक भी सम्भावना तो है ही। यदि के बरदान से वह चाल बढ़ सकती है, यदि के बाद से निम्न संदर्भ यदि सुझा हो गया है तो पूर्वजन्म के संस्कार उसको क्यामर्त्य बना सकते हैं। जब ये सम्भावनाएँ हैं तो क्यों न उसे सक्षम वास्तव बितरण सिद्ध कर दिया जाय। इस प्रकार सम्भावनात्मक पर जोर देने के कारण कुछ कथानुसंगिताएँ इन रूप में बन गयी हैं। कुछ उदाहरण हैं —

(१) कहानी कहनेवाला सुग्रा ।

(२) शिखर में प्रिया का लयन ।

शिखर में देव कर किसी पर मोहित हो जाना ।

शिखरों या शिखरों के मुरा न कीर्ति-वर्णन सुन कर प्रमादित होना इत्यादि ।

(३) मुनि का घाप ।

(४) रूप परिवर्तन ।

(५) निम परिवर्तन ।

(६) परकाय प्रवेश ।

(७) आकाशबाणी ।

(८) अभिज्ञान या सहिबाणी ।

(९) परिचारिका का राजा से प्रेम और अन्त में उसका राजकन्या और रानी की बहन के रूप में अभिज्ञान ।

(१०) नायक का शीघ्रार्थ ।

(११) पञ्चतु और बारहमासा के माध्यम से विरह वेदना ।

(१२) हुंस-रूपोत्पत्ति से संवेद्य भेजना ।

(१३) बोड़े का बाकेट के समय गिणी बग में पहुँच जाना मार्ग भूमना मानसरोवर पर किसी सुन्दरी स्त्री या उसकी मूर्ति का विचार किया और प्रेम और प्रवृत्ति ।

(१४) विनय बग में सुन्दरियों से साक्षात्कार ।

- (१५) मुठ करके छत्र से या मत्त हाथी के जाकमन से, या कापालिक की बलिबेरी से सुन्दरी स्त्री का छठार और प्रेम ।
- (१६) मलिका द्वारा बरिह नायक का स्वीकार और नणिका-माता का विरस्कार ।
- (१७) नरसिंह और मरुत बाबि के द्वारा श्रिय-भूपतों का स्वागतारकरण ।
- (१८) पिपासा और बल की शोक में बाले समय बधुरदर्शन और प्रिया-विशेष ।
- (१९) ऐसे साह्र का मिल जाना जो उजाड़ हो गया हो ।
- (२०) प्रिया की मोहकामना की पूर्ति के लिए श्रिय का महाप्यसाजन का संकल्प ।
- (२१) छत्र-सम्पादित सरकार को उसकी प्रिया के प्राप घरम देना, और फलस्वरूप मुठ इत्यादि ।<sup>१</sup>

जैसा कि हम ऊपर देखा चुके हैं स्त्रीय कथेवरवाणी रचनाओं में कथानक कड़ियाँ बलिह संख्या में मिलती हैं । पुष्पोराव राठो में जनेक कथानक कड़ियों का समावेश है ।<sup>२</sup> दिवस रचना हम्मीरराठो तक इन कड़ियों का बोलबाला चला जाता है ।<sup>३</sup> हिमाल रचनाओं में भी इनसे मुक्त हैं । पथनाथ के कान्हूदेवे प्रबन्ध में मलातहीन की पुत्री फिरोजा के कान्हूदेवे के प्रति प्रेम को शास्वत सिद्ध करने के लिए कवि ने शोककथाओं से पूर्वमम सम्बन्ध का उल्लेख उठाया है और फिरोजा के प्रेम को जम्म बन्मातर से माना है ।<sup>४</sup> भीमकवि द्वारा रचित सखबल्लभ चरित तो एक पद्यमय शोक-कथा ही है ।<sup>५</sup> उज्जयिनी के राजा मधुबल्लभ और घालिबाहन की राजकुमारी सार्वसिपा की इस प्रेम-कहानी को कवि ने अपूर्व कोशल से साकार कर दिया है । शोक-मानस में भीड़ाधीन इस उपाख्यान को साहित्य की कोटि में रख दिया है । याद करने से पता चला कि यह कथानक काफी पुराना है । जैसे सखबल्लभ की अवस्थिति का समय निश्चित नहीं । पर संस्कृत कथानक में जैनाचार्य काकक के साथ उसका सम्बन्ध जोड़ा जाता है एवं कथा में उज्जयिनि हरिसिद्ध माता प्रतिष्ठान नगर व घालिबाहन राजा बालन और सापरा और बाबि का उल्लेख है । तदनुसार विक्रम के समकालीन सिद्ध होता है, अतः विक्रम कथाओं जितनी ही इस कथा की प्राचीनता समझी जा सकती है ।<sup>६</sup> प्रो० मन्मथार की इस माय्यता में बाक्यार्थ की कोई बात नहीं । यह भारतीय साहित्य की विशेषता है । विदरभिरव ने रामायण और महाभारत के काल पर विचार

१. हजारीप्रसाद द्विवेदी हिमाल साहित्य का आविष्कार-पृ ७४-७५

२. विवरण के लिए देखिए पुष्पोरावराठो में कथानक कड़ियाँ-प्रबन्धविशेष अध्याय ।

३. हम्मीरराठो के अलौकिक तथ्यों व कथानक कड़ियों के लिए देखिए —

मेसक का निबन्ध हम्मीरराठो में 'शोकवत्स'-राष्ट्रभाषा वर्ष ४ अंक १

४. गोमर्दन वर्मा राजस्थानी कवि सङ्घ १-पृ १२

५. वही-पृ० २५

६. म०२० मनुमथार गुजराती साहित्यकी स्वरूपी



अपभ्रंश —

गंगा यह रावणु जाईयउ, दहमुह इक सरीर ।  
अचनि बिपत्ति बिन्तनई कबनु पियावउ थीर ।

राजस्थानी —

राजा रावण जसमियो, दसमुख एक सरीर ।  
जननी ने सोसो भयो, किण मुख नामु सीर ॥

राजस्थान स्वयं बोहों का देश है । बोहा यहाँ के छन्दों का राजा है । बोहा निर्माता कवियों की राजस्थानी साहित्य के इतिहास में बड़ी भारी संख्या है । बोहे भिन्ने भी गए हैं सभी विषयों पर । बहुत से कवि तो सिर्फ बोहा कवि हैं । इसी तरह ग्रन्थ भी बड़ी भारी संख्या में बोहा ग्रन्थ ही हैं । राजस्थानी काव्य की यह बोहा परम्परा अति प्राचीन है । निरूपण ही ऊपर सिधे ग्रन्थों के संक्षिप्त बोहे वसवीं शताब्दी के आसपास के ही जरूर ही हैं । आज भी राजस्थानी कवियों में बोहे लिखने वालों की एक बड़ी संख्या है । प्राचीन राजस्थानी बोहे की तरह आधुनिक युग में भी यहाँ लोक प्रचलित बोहे इतने हैं कि उनकी संख्या का अन्धाधुनिक तथाना भी कठिन है । ऐसा कोई प्रश्न नहीं कि जिसका कोई उपयुक्त बोहा कहावत के रूप में तैयार न हो । वरना ये यह सूक्ष्म लोकप्रचलित बोहों की कीमती धूमि रहा है । प्राचीन काल में भी या और अब भी है ।

इनके अतिरिक्त इन बोहों में बहुत से ऐसे भी हैं जिनकी छाया राजस्थान के लोक प्रचलित बोहों में चली जाती है । प्राचीन और अर्वाचीन का यह नाव साम्य भी देखने लायक है ।

मएउ सु केसरी पिजहुजनु निविचउइ हरिजई ।  
जसु केरए हुकारउए मुहुहु पडगि तुपाइ ॥  
(जिन मारनके हरि जुनी रज सायी तिरपाइ ।  
ते सब ऊचा सुखसी नहि चरसी हरिजाइ ॥)  
जे महु विप्लवा दिजहुका बहए पबसलेथ ।  
ताज गनमिउ अमुनिउ अजगरियाउ नहेन ॥  
(पाऊ भाऊ कर गया कर नया कोल जनेक ।  
गिनता विनता यस नई, जीवजिमारी देख ॥)

—भीरा

महु कण्ट हो मुद्धदिठमहो कळ झुमडा बसति ।  
बह रिठकहिरे उस्तुवई बहजणने न मति ॥  
( भीरा भीरा ठाकुरां जुमर किमा पत्राह ।  
माहुना देसी झुमडा, जो जर होसी नाह ॥ )

—ईसरवास

बह पुण्ड्रह भर बडडाह टी बडडा भर बाई ।  
बिहलिय बल बभ्रुदरपु कभु कबीरह बोई ॥  
( टोटी सरका भीतका भाई ऊपर भास ।  
बोरीनी भड भूपडा, बभपतियो बानास ॥ )

—सूर्यमल

मुपहि न संपह किति पर कस किहिबा मुजगति ।  
केसरिण सहह बोडिबभभि पय लखेहि लेपगति ॥  
( एकह बलन बसेतका एक्कह अन्तर का बई ।  
छिह कडहडी ना बहुर नवकर नवका बिकाई ॥ )

—दिवदास

बबहु बिसुरह सामिबहो बक्या भक पिक्केवि ।  
हउ कि न बुत्तउ बुहु बिठि हि बगडह बोभिय करेवि ॥  
( कपू न ह बगली को ठिबो टी साबडी दिवार ।  
काडे चीन किमोहका बोल न सासी भार । )

—दीवीदास

इन दोहों में राजस्थानी अनुसृष्टियों का स्पष्ट है। इन अनुसृष्टियों की परम्परा ने इनको राजस्थानी वारा प्रवाह के साथ जोड़ रखा है। इनको पढ़ते ही पहली बारमा यही होती है कि यह कविता राजस्थानी है। इसके साथ ही इनमें राजस्थान का वातावरण है। राजस्थानी वातावरण की रचना राजस्थान के हृदय पर उत्कलन अपना आधिपत्य बना लेती है। राजस्थान के ऐति-रिवाज राजस्थान की प्रकृति राजस्थान की अनुसृष्टियों सबने मिलकर इन दोहों को राजस्थानी साहित्य के इतिहास का एक उत्कलन अभ्यास बना दिया है।

डोला मह तु तु बारिवा, मा कुक बीडा माधु ।  
निहए भभिही रसकी बकबक होइ बिहानु ॥

( डोला ! मैं तुमको मना करती हूँ । बीब माग मत कर । नीचे से रात बनी बापनी और छटपट सबेरा हो जायगा । )

इस दोहे का डोला राजस्थानी काव्य का प्राण है। पुनस्यक की पद्मिनी मरवज और नरवजक का राजकुमार डोला राजस्थानी साहित्य में अत्यधिक व्याप्त है। राजा-कुल के समान इस बोड़ी ने राजस्थान में नायक-नायिका का स्वाग ले लिया है। वहाँ जब भी डोले का कार्य नायक समझा जाता है मरवज का मतलब नायिका है इसके अनिश्चित काव्य भी कई प्राचीन दोहों में नायक के रूप में डोला ही लिया गया है।

ते मुगडा हराबिया के परिनिटठा ताह ।  
नवरौणक को बगडाह सामिब रंजिब बाह ॥

(उन सोयों को परोसे गए मूंग व्यर्थ मये जिसके ऊपर नीचे देखते हुए स्वामी मष्ट हो गया ।)

राजस्थान में मूंग खावस परोसना एक सांयसिक प्रथा है । जब जंबाई खाता है या बहू खाती है तो मूंग खावस परोसे जाते हैं । मूंग खावस बड़ भारी सम्मान की वस्तु है । यह बोहो इस प्रथा की प्राचीनता का परिचायक है ।

राधा सब्जे बाधिया जेसुन बड्डड सेठि ।

काहुं बनजहुमाध्वीपड बम्मीबागडहेठि ॥

(अब सब राधा से छोटे बाधिए हैं और जयसिंह बड़ा भारी सेठ है । इनारे बड़के नीचे कैसा खापार कैसाया है ।)

इस बोहे में प्रयुक्त गड़ और सेठ शब्दों से राजस्थानी जीवन का एक चित्र सा नजरों के सामने चित्र आता है । राजस्थान सदा से वर्क का देश है । यहाँ सेठों की अपार महिमा है । और बाजिय की सर्वत्र माया है ।

कोणु बिलिज्जई पाधिएन अरिसल मेहुय राज्जु ।

बासिज पलहसु म्मुपड़ा गोरी तिम्यइ बज्जु ।।

(बदे बल मेव सरब भव । पानी पड़ने से बाजिय बिलीन होता है । छोपड़ा गलता है और गोरी जीगती है ।)

इस बोहे का मु म्मुपड़ा राजस्थान का जपा है । इस शब्द से छोपड़ी या छापड़ा नहीं समझना चाहिए । राजस्थान के गांव-गांव में देखिये, घर-घर मूंगों की बोना है । मूंग मोलाकृति होता है । और क्या बूय, बापी सबमें परम रूपवीनी है ।

सा निपसाड बज्जज्जु पिगु सीमा सबिहि बामु ।

पेकिज्जबी काहु बलुस्तड़ा पल मेस्तइ नीसासु ।।

(स्वामी की कृपा प्रियतम लज्जाचीन सीमा संधि में निवास इनके अतिरिक्त प्रियतम बाहुबल से वर्षोंका भी इन बातों को देखकर नायिका निश्वास छोड़ती है ।)

इम बोहे का बल शब्द विचारणीय है । अग्य भी कई स्थानों पर इसका प्रयोग हुआ है इसके पीछे एक चित्र है ।

प्रियतमा नायिका, कृत्वयम् सुम्हरी आदि कई शब्दों का भाव इस एक बल शब्द में समाया है । यह शब्द राजस्थानी लोकगीतों का केन्द्र-बिन्दु है ।

मुब । बडस्ता बीरड़ी पेक्केसिन गम्भारी ।

आसाकि पल गम्भीइ बिलिज्जनि होते बाठी ।

(हे मुग्ध प्रेम की खोरी डीली पड़ गई है । बंवार तू नहीं देखता कि आपाड़ में बावस मर्जने पर बरसी प्रियतमी हो जायगी ।)

नायक अपनी प्रेमिका के पास डेंट पर सवार होकर जाया करता था । अब उसने किसी कारणवश जाना बन्द कर दिया तो उसने यह बोहो लिखकर भेजा ।

(कषा का छोटी ऊट सवार), और रपटने वाली धरती दोनों ही राजस्थानी जीवन के मासिक पहलू हैं ।<sup>१</sup>

जमी तक हमने इन प्राचीन अपभ्रंस के दोहों का राजस्थानी वातावरण और हिमल काव्य के परिपामर्ष में परिचय प्राप्त किया । हम देख चुके हैं कि विषयवस्तु, सेमी और अभिव्यक्ति की दृष्टि से ये अनभूत मुक्तक राजस्थानी जनजीवन और हिमल काव्य के अत्यधिक निकट हैं । ऊपर उद्धृत दोहों में प्रयुक्त शब्दों पर विचार करने से तो साफ बाहिर होता है कि वे हिमल के अत्यधिक निकट हैं । यथा—

इन दोहों के शब्द प्रसार पर ध्यान देने से इनका राजस्थान से एकात्म निश्चित होता है । इनका शब्द चयन ज्वलि-विचार एवं व्याकरण सभी तीनों राजस्थानी लक्ष की ओर निर्देश करती हैं । बहुत समय तक इनकी विशेषताओं को राजस्थानी ने परित्यक्त किया । हिमल से तो इनकी काफी समरसता है । यहाँ कुछ एक मोटी-मोटी बातों पर विचार किया जाता है ।

[ १ ] खिसड्डो बीहडा डिसडा, डोरडी निहूडी पायनकडा, बतडी, भानडा रचडी, भाबुडडा, भगिबडा वगैरह, हियडा, डोरडी, मुहूडी आदि शब्दों में ड का प्रयोग एक बम राजस्थानी है । राजस्थान में इसका बिलग प्रचार है और कहीं नहीं है । राजस्थानी साहित्य के सभी कालों में इसके प्रयोग की प्रचुरता रही है ।

[ २ ] दोधु, मेहु डरीऊ, लुहु, रबीऊ, बलु, डयलु भापु, बापलु, मुषु, बतल भयलह कंतु आदि शब्दों का प्रयोगभी राजस्थानी की अपनी विशेषताओं में से एक है । प्राचीन राजस्थानी की अन्य रचनाओं में भी इसका अत्यधिक प्रयोग है ।

[ ३ ] मकरि म सोछल भसु भुणि मबाड म लुंवि म रोई म लांवि हि म मम्महु म मैल्लि, म पडुलु आदि में न का प्रयोग बना करने के लक्ष्य में राजस्थानी में बलि व्याप्त है ।

[ ४ ] लय मय डुरय सायर, लोय तारय, मयल आदि में त ल, य क व के स्थान पर म का परिवर्तन लिए हुए शब्दों का प्रयोग जब भी हिमल काव्य में होता है ।

[ ५ ] बहना रहु, लम्मुहु, संकहल, सिहूर, मुहू रहु, लबाहु, दुल्लह, मयद-हक मनोहर, महु महल आदि में य ल क य ल, के स्थान पर ह वारन करने वाले शब्दों का प्रयोग राजस्थानी काव्य में लम्बे समय तक चला आया है ।

[ ६ ] करंत किर्जंत विरंति करन्ति भुजन्ति मयन्ति, पतन्ति होन्ति मेहन्ति मजन्ति पडन्ति ममन्ति पिबन्ति आदि प्रयोग हिमलकाव्य में प्रचुर हैं ।

[ ७ ] क्योलु, पावीलु, करीलु, परलीलु, ऐली, फुट्टिलु, कुडबीलु आदि धमिध्पत कास के प्रयोग राजस्थानी हैं । जब भी बोल बाल में इनका 'व' बारा प्रवाह के समान चला आता है ।

[८] जुष्मन्, गम्जु, मग्जि, कज्जु, दग्जु, जग्जु बडडड, भग्मिग्ज, जग्गु पबित्त जग्जु, भग्गा, अप्पाणु आदि का द्वित् राजस्थानी भाषा की एक विशेषता है। ओर काव्य में इससे बड़ा जोश पैदा होता है।

[९] प्रसिद्ध भमर, पवाह पट्ट पेम्मु पम्भण पयातह पयोरेहि आदि में ओ र का भोग है यह भी राजस्थानी का विशेष लक्षण है।

[१०] छहस्त, बहस्त, अतह, निरामह भावह पछ्छह आदिमें अह का प्रयोग राजस्थानी में मध्यकाल तक बना आया है।

[११] कबडु लड चुडह, हरपडह, दबडडे, मेराडह, दुमडठ, का बड भी राजस्थानी में मध्यकाल तक बना आया है।

[१२] बिन्तबड धीसरह, भाराहर पसरह भावह, बिसूरह, पमटठह धस्तह आदि का ह राजस्थानी में मध्यकाल तक बना आया है।

[१३] हुबड, जानड आईवड पियाबड, उबड, बियड पडिबड, निसिबड, आदि का बड राजस्थानी मूलकाल का लक्षण है।

[१४] छिरि, बहसानरि, सगिय कमलि बिरहगिय परि, उरि, आदि में ओ अधिकरण का ह है यह प्राचीन राजस्थानी का प्रचुर प्रयोग है।

[१५] भुजामबह, यकबह, चरकबह चरबह, महासर, छपह मासह आदि में ति के स्थान पर ह का प्रयोग विंगत में प्रचुर है।

[१६] नारायणह, बलि बंबधह कलह पियह मुस्तह जिनवरह तियह तथा रामह यामह, छतणाह तब भरह, पत्रोहरह नबस्ताह, पवामुजह, आदि का ह प्राचीन राजस्थानी की अपनी विशेषता है।

[१७] बलि [छिर] हक्क [एक ही] करणठम्मु, [करणोठ] साटो [लिय] पैसि [लिय] बिहणह [जिना] बीबड [बीबी] आदि राजस्थानी के विशिष्ट प्रयोग हैं।

[१८] पसाठ [प्रसाध] बिसाठ [बियाध] उज्जोड [कघोठ] रहिह [रहित] सुरड [धूरठ] जीबिठ [जीबित] आदि राजस्थानी प्रयोग हैं।

[१९] झुरि [झुरी] कण्ठिबड [कापनी] जोह [जोनी] हिरह [हीडनी] मागिब [मामनी] माण्डीबड [मांडनी] अत्तमणु [आपनी] कसिजपह [कसने] भाबटठह [भाबटानी] आदि क्रियापद राजस्थानी के जन साधारण में प्रचलित हैं।

[२०] कुड्ड [कोड] चूडल्लह [चूडनी] तिसहे [तिस] दू परहि [दू पर] पडिह [पही] मोरी । मोरी बाबी । [बाबी] रनक [रन] [माण] । आन बुहार आदि संज्ञाएँ राजस्थान में जोक प्रचलित हैं।

[२१] अम्मीणा, मरटठ बडबड मछी सड़ी, सुहण्णवी, बबीहा महुमहुन आदि शब्द विंगत की बड़े धिय हैं।

इन दोनों में प्रभावित विचारधारा राजस्थानी से एकारण है, जो प्रायः राजस्थानी काव्य में समाया है वहीं इन दोनों को समीक्ष किए हुए हैं। राजस्थानी साहित्य के प्रकाश का भावि साठ इनमें स्पष्ट है। राजस्थानी काव्य का कार्य है वीर काव्य। उसमें धीर्य, त्याग भोज बलिदान, स्वामिमान, स्वामीभक्ति, शीनोदार, आदि यादि गुणों का प्रहार है। पुरुषों के समान ही महिलाओं की वीरता का वर्णन है। वहाँ वीर से वीरपति बट कर नहीं। ईसरसाध, बाँकीबाध सूरजमल, आदिकवियों ने वीर पति का जो विचित्र वर्णन किया है वह विगल कवि के लिए ही उपयुक्त है। जीहूर की छवियों में मरण को महीस्वर के रूप में चित्रित करते राजस्थानी कवि अमर हो गये हैं। इन्हीं वीर बालाओं का उन्मत्त रूप इन दोनों में देखिए जो राजस्थानी विधों के साथ एक रंग हैं। राजस्थानी काव्य में एक ही चारा ऐसी है, जो साक्षि से बंध तक एक ही वेग से प्रवाहित है। इसी वेग में आर्यभट्ट आर्यवर्म एवं आर्य संस्कृति को विधीन होने से बचाया है। इन प्राचीन दोनों में वीर पति का भोज त्याग-स्वान पर वर्णित है। राजस्थानी महिलाओं के लिए वीर पत्नी हीना सबसे आत्म की बात है। पति का सर्वकर पुत्र में बंध पड़ना आत्म है, मरते मरते मारा जाया उसके लिए लोहार है वह कायर की पत्नी कहलाकर छवियों में हरी का पाव बनना नहीं चाहती। यह उसके लिए सबसे बड़ा अपमान है।

भस्मा हुआ नु मारिया बहिन महीरा कंदु ।

सज्जे क्युत बसिबहु बह मय्या मर एम्पु ॥

बहिन अच्छा हुआ मेरा पति कुछ में मारा गया यदि वह भाग कर मर जा  
जाता तो मुझे छवियों में लज्जित होगा पड़ता ।

इसी भावना को सूरजमल के छवियों में देखिये—

छहनी सवरी हूँ सखी, वो तर बनदी बाह ।

दूध लबीनै पूत सम, बलम लबीनै नाह ॥

[ हे सखी ! वीर सब बातें मुझे सहन हो सकती हैं किन्तु यदि प्राधनाथ मेरे बचक्य बर्षात कूटियों को लबा दें और पुत्र मेरे दूध को—तो ये दोनों बातें मेरे लिए समान रूप से बाह्यकारी एवं हृदय उलट देने वाली हैं—अच्छा है ।

हैमचन्द्राचार्य के द्विमे एक अर्थ उदाहरण को देखिये—

बह मया पारवकडा तो सहि मकम्पु पिएन ।

बह मया मम्पुह तना तो तें मारि मजेन ॥

[ अर्थात् हे सखी ! यदि सन्तु भाये है तो मेरे प्रिय से वीर यदि हमारे लोक भाये है तो उसके मारे जान से । ] इसी भाव को विगल कवि ने अधिक अमरकारपूर्ण ढंग से इस प्रकार से कहा है—

१ मामवर सिंह हिन्दी के विकास में अपभ्रंश का योग -पृ० १४१ से

२ सहज पीड़ आदिना वीरतपसई -पृ० १०

[ ८ ] जुम्भन, गम्भु, गरिज, कज्जु इनहु, जम्भ बडडह, मम्मिगज, मम्भु, पबिस बज्जु, जगा, जप्पाण् आदि का द्वित राजस्थानी भाषा की एक विशेषता है। और काव्य में इससे बड़ा जोर पैदा होता है।

[ ९ ] प्रतिष्ठ, ममर पसाह, पट्ट पेम्भु जम्भण, पयामह पयोरेहि आदि में ओ र का भोग है यह भी राजस्थानी का विशेष लक्षण है।

[ १० ] छरस्त, बइस्त, धराइ, निरामइ भावइ, पछइ आदिमें अइ का प्रयोग राजस्थानी में मध्यकाल तक चला आया है।

[ ११ ] कण्डु लठ, चुडह, हरणदूठ, दण्डहे सैराडह, दुधडठ, का जठ भी राजस्थानी में मध्यकाल तक चला आया है।

[ १२ ] बिम्लवड, बीसरइ, आराहर पसरह, गावड, बिमुरइ, पणटठइ, मस्तइ, आदि का इ राजस्थानी में मध्यकाल तक चला आया है।

[ १३ ] हुमड काणड, आईयड पिपावड उडड, बियड घडिजड, निसिजड, आदि का अइ राजस्थानी भूतकाल का लक्षण है।

[ १४ ] छिरि, कइसानरि, सगिय कमलि, बिरहुमि, धरि, उरि, आदि में ओ अविकरण का इ है वह प्राचीन राजस्थानी का प्रचुर प्रयोग है।

[ १५ ] मुगालवड, कडवड, चनकवड चरवड, महावर सरइ मासइ, आदि में ठि के स्थान पर इ का प्रयोग हिमाल में प्रचुर है।

[ १६ ] नारायणह बलि बमवह कन्तह पियह मुस्तह जिनवडह तियह तथा रामह, मामह, सतनाह, तव नरह पनोहरइ नवन्ताह, पवामुवह, आदि का इ प्राचीन राजस्थानी की अपनी विशेषता है।

[ १७ ] बलि [फिर] हकव [एक ही] करवडस्तु, [करवोत] साटो [लिए] ऐठि [लिए] बिहूजह [बिना] बीजड [बीजे] आदि राजस्थानी के विशिष्ट प्रयोग हैं।

[ १८ ] पसाड [प्रसाव] विसाड [विपाद] सज्जोड [जसोत] रहित [रहित] घुरड [घुरड] बीबिठ [बीबित] आदि राजस्थानी प्रयोग हैं।

[ १९ ] झुरि [झुरी] कण्जिजह [कांजनी] जोह [जोनी] द्विड [द्विडनी] मानिनी [माननी] माण्डीबड [मांडनी] अरनमण् [आनमो] कडिजह [कडजे] आवट्टह [आवटानो] आदि विजाप राजस्थानी के कम साधारण में प्रचलित हैं।

[ २ ] कुडड [कोड] चुडस्तड [चुडनी] ठिसहे [ठिस] इ परहि [इ नर] पहिड [पही] गोपी । मोरी बाही । [बाही] कस्त [कल] [काय] । माय बुहार् आदि संज्ञाए राजस्थान में ओक प्रचलित हैं।

[ २१ ] अम्मीचा मरटठ मडवड मड्डी सड़ी, सुहण्डी, बचीहा, मड्मड्ण आदि अन्य द्विपल की बड़े प्रिय हैं।

इन दोनों में प्रवाहित विचारधारा राजस्थानी से एकात्म है जो प्रायः राजस्थानी काव्य में समाया है, वही इन दोनों को समीप किए हुए हैं। राजस्थानी साहित्य के प्रकाश का आविर्भाव इनमें स्पष्ट है। राजस्थानी काव्य का वर्ण है वीर काव्य। उसमें शौर्य, त्याग, योग, बलिदान, स्वाभिमान, स्वाधीनता, योगोद्धार, आदि आदि गुणों का भण्डार है। पुरुषों के समान ही महिलाओं की वीरता का वर्णन है। वहाँ वीर से वीरपति बट कर नहीं। ईश्वरदास बांकीदास सूरजमल आदि कवियों ने वीर पति का जो विस्तृत वर्णन किया है वह किंगड कवि के लिए ही अप्रयुक्त है। वीर की स्त्रियों के मरण को महोत्सव के रूप में विवक्षित करके राजस्थानी कवि अमर हो गये हैं। इन्हीं वीर बालाओं का उल्लेख कम इन दोनों में देखिए जो राजस्थानी विर्णों के साथ एक रंग हैं। राजस्थानी काव्य में एक ही धारा ऐसी है जो आदि से अंत तक एक ही रंग से प्रवाहित है। इसी रंग में आर्यवादि आर्यधर्म एवं आर्य संस्कृति को विमोचन होने से बचाया है। इन प्राचीन दोनों में वीर पति का योग त्याग-त्याग पर विवक्षित है। राजस्थानी महिलाओं के लिए वीर पति होना सबसे आनन्द की बात है। पति का मरकर कुछ में बँध पड़ना आनन्द है सकते सकते मारा जाना उसके लिए त्योहार है वह कार की पत्नी कहलाकर सच्चियों में इसी का पात्र बनना नहीं चाहती। यह उसके लिए सबसे बड़ा अपमान है।

बसता हुआ नु माँरिया बहिनि महारा कंतु ।

बनने कंतुत नयसिबहु बह धरवा बर एन्तु ॥

बहिनि बन्हा हुआ मेरा पति कुछ में मारा गया बहि वह भाम कर बर आ बाता तो मुझे सच्चियों में लज्जित होना पड़ता ।

इसी भावना को सूरजमल के शब्दों में देखिये—

सहनी सवरी हूँ सखी तो घर समटी पाह ।

बूझ सखीने पूत धम, बसम सखीने नाह ॥

[हे सखी ! वीर सब बातें मुझे सहन हो सकती हैं किन्तु यदि प्रायतन मेरे प्रियतम मर्णात बूझियों को लजा दें वीर पुत्र मेरे बूझ को—तो ये दोनों बातें मेरे लिए समान रूप से बाह्यकारी एवं हृदय समट देने वाली हैं—असह्य हैं।

हेमचन्द्राचार्य के विषे एक अन्य उदाहरण को देखिये<sup>१</sup>—

बह मगवा पारकका तो सहि मन्नु पिएन ।

बह मग्गा मन्हु तवा तो रें मारि अखेन ॥

[मर्णात है सखी ! यदि कन्नु मगो हूँ तो मेरे प्रिय से वीर बहि हमारे कोय मगो हूँ तो उसके मारे जावे से ।] इसी भाव को किंगड कवि ने अधिक प्रयत्नकारपूर्ण ढंग से इस प्रकार से कहा है<sup>२</sup>—

१ नामवर सिंह हिन्दी के विकास में अवध का योग -पृ० १५१ से

२ सहन, बौद्ध आधिया वीरसतई -पृ० १०



के लक्ष भग्या ली सखी, मोटाहस सब बास ।

निज भग्या लो नाह रो, साथ म सुनो टास ॥

सेना को आत्मस्त रखने वाले वीर पति के शौर्य की व्यंजना करते हुए वीर नारी कह बठती है— हे सखी ! यदि क्षत्रु भाग नये हों तो योधियों का बास समा, जिससे प्राणमाय की भारती उताऊंभी और यदि अपने ही सोम ग्राम चले हों तो पवित्र का साथ मठ विष्णुके बे, अर्थात् मेरे शीघ्र सती होने की तैयारी कर । मेरे पति के बीते की हमारे लोय नहीं ग्राम सकते । इसी प्रकार का एक कुसुम उदाहरण देखिये<sup>१</sup> —

काव्य— बिसाहिउ बहि सहुं पिय तहि देसहि बाहुं ।

रथ— पुबिमन्थे भम्पाई विमु कुण्ठो न बसाहुं ॥

हे प्रिय, जहाँ खंभ का व्यवसाय मिले, सही देश मैं चले । दम्बुनिष्ठ मैं हम भग्न—सीम हो गये हैं बिना युद्ध के नहीं संभले थे । इसी के समानांतर एक वीर भार्या की कर्मका देखिए<sup>२</sup> —

नह पकोस कायर बरा, हैली बास सुहाय ।

बलिहारी निम देसड़े, माया मोल बिकाय ॥

हे सखी ! मुझे लो कायर पुरुषों के पकोस में बसना नहीं सुहाता । मैं लो उस देश पर बलिहारी हूँ जहाँ सिद्ध मोल बिका करते हैं ।

मलबाका जूमें नहीं, नह बायल परणाय ।

बाल सखी ठ देसड़ी, मड़ बापका कहाव ॥

हे सखी ! जहाँ युद्ध के मलबासे नहीं जूमते जहाँ बाबलों का अर्धमात्र नहीं तुनाई देता, जहाँ योद्धामन्त्र बेचाये माने जाते हैं, ऐसे देश को आप लया लो ।

हेमचन्द्राचार्य से ही एक उदाहरण लें ।

पुते बाप कबजु गुजु अवनुषु कबजु सुण्य ।

जा गप्पी की मुहड़ी चम्पिज्जह अचरेण ॥

इसी का राजस्थानी क्पांतर हम इसी अध्याय में पहले से चुके हैं । यहाँ महज यह दिखाना चाहते हैं कि अपभ्रंश की सृष्टियों के परवर्ती विपक्ष कवियों को इस सीमा तक प्रभावित किया है कि जनमानस ही ने सृष्टियाँ उनकी अन्य रचनाओं में ला गई हैं —यथा

पूठा बाया कवण गुजु अवनुषु कवण बियाह ।

बाया न दिया प्रनट कव, सिबल सिंह बियाह ॥<sup>३</sup>

१ नामवर सिंह हिन्दी के विकास में अपभ्रंश का योग — पृ० १४४ से

२ कुरमस वीर सतहई—पृ० २८

३ बाकीरास बंवावली—टीसरा भाग—पृ० ७२

यहाँ अपभ्रंश के बोहे की पहली पंक्ति बाँकीदास के बोहे की पहली पंक्ति से मिलती जुलती है। मात्र 'मृण' के स्थान पर 'मियहि' है अथवा कहीं कोई अन्तर नहीं है।

अपभ्रंश में बीरों को सिंह तथा स्वाभिमत सेवकों को बल अर्थात् वृषभ कह कर पुकारा गया है। अपभ्रंश के कवियों ने प्रतीकों के रूप में इन दोनों शब्दों का विपुल प्रयोग किया है। कुछ उदाहरण देखिये—

बाम न निबडइ कुम्भ-यहि सोह — बघेड — बडक ।

ताम समतह मयमलह पद पद बरजह अपक ।

अर्थात् वन तक कुंभ पर सिंह के चपेट की आघात नहीं पड़ती तभी तक समस्त मतवाले योनों के बम-बम पर डरका बलठा है।

मयजसु केसरि पिबहु बसु निष्पिण्डह हरिनाह ।

बसु कोय हुंकारकरं मुहुं पडति दुबाई ॥

यह केसरी गया है हरियों, निष्पिण्ड होकर वन पियो, बिछकी हुंकार मात्र उस मुहों से वृण गिर पड़ते हैं। अब बलस संबंधी कुछ उदाहरण देखिये—

मई बृत्तं तुं बरहि कसरे हि निपुताई ।

पह बिनु बलस न बडह अब अम्भह बुलवकाई ॥

मैंने कहा — तू बुरी बर, कसर — बैलों से हम टंग हैं। तुम्हारे बिना ही बलस, भार नहीं बढ़ता, अब उदास क्यों हों ?

बलसु बिसूरह धामिबहो गम्भा पर पिक्खेवि ।

इउ कि न बुलउ बुं विविहि अम्भह बीणि करेवि ॥

अर्थात् स्वामी के पुत्र भार को देखकर बलस बिसूरता है कि मैं ही को बल करके दोनों ओर क्यों नहीं ओठ बिबा जाता।

द्विमत कवियों ने भी सिंह तथा सूअर को बीर योद्धा का स्वीकार किया है। उसी प्रकार बलस या वृषभ योनों का त्यों एक स्वाभिमत सेवक के रूप में बिबा गया है। कठिपक उदाहरण देखिये—

साङ्गुनों बापा समीं बिबो न कोय बिबत ।

हाफ बिङ्गाबी किम सहे बण बाजिये मरैय ॥

—ईसरदास—हालासाजारा कुंडलिया — ९

साङ्गुन अपने सामने कितो बुरे को कुछ नहीं बिगठा। यह बुरों की हुंकार से सहे ही क्या ? वन — गर्जन से ही मरता है।

केहरि छोटी बहुत मुन मोड़े गर्यतां मान ।

लोहक बड़ाई की करै मरी नरबल परमाथ ॥

—ईसरदास—हालासाजारा कुंडलिया — १४

सिंह छोटा होने पर भी बहुत मुनी होता है । वह हाथियों का मान-मर्दन करता है । इसी तरह मछलों के समान तेजस्वी पुरुषों के जाने हथियार की बड़ाई ही क्या हो सकती है ।

हिरण् साँबी सींगड़ी भावज तपोसमाज ।

सुरा छोटी रातसी रे नव बट्ठा पाव ॥

—ईसरवास हातासासांरा कुंडसिमा—४०

अर्थात् हरिणों के सींग लम्बे होते हैं, पर उनका स्वभाव कामरों के समान भागने का होता है । सुरारों के छोटी राती होती है पर वे शत्रु-समूह की नाश कर देते हैं । अब सूर्यमल की ओर सतसई के कुछ नमूने सीधिए—

निचकुक मुता केहरी तो भी बिमुहा पाव ।

गज बैड़ा धीर न घरे, बच्च पई बचपाव ॥४८॥

भावार्थ सिंह यहरी नींव में सोया हुआ है तो भी हाथी की रीढ़ के बर्य बारन नहीं करते उनके पांव पीछे ही पड़ते हैं । उन्हें म्यात्र पण्य क्या जाती है मानो उन पर बच्च पड़ रहा है ॥ ४८ ॥

तुड़ी नव फेटा तुरी, डाढा मड़ बीसाइ ।

हेकन केलि बुधिया पीडा पावर पाइ ॥५०॥

भावार्थ झुकने लगे ही अपने तुड़ी से हाथियों को आवातों से बोकों को बाढ़ों से बोटानों को और कर तथा पीनों का विस्तर सा बिछा कर उन्हें रौंठ जाता ॥ ५० ॥

अब कविराजा बांकीदास का एक उदाहरण सीधिए—

अंबर री उपमाज सु केहर चीन करत ।

हाक परा ऊपर हुई कैम सई बसबंत ॥५॥

—बांकीदास—सिंह जनीसी

आकाश में बादलों के गर्जन से सिंह जोर उठता है इसी तरह अधिष्ठात्री धरती पर बुद्ध का आह्वान होने पर कैसे उक सकता है । ऐसे अनेक उदाहरण जिन्हें विस्तार भय से नहीं दिया जा रहा है । अब रूपम वा यवल संबंधी उदाहरण देखें । कविराजा बांकीदासने तो यवल-यचोसी नामक एक छोटी रचना ही लिख दी है जिसमें रूपम को लेकर चौतीस बोहे हैं <sup>१</sup> । धीर सतसई कारने भी यवल के इस प्रतीक का उपयोग किया है यथा—

मुर सूठी रिपी भवत संकट हृषिक का साय ।

तिव रो बाली बाछड़ों, तई लख लमाय ॥ ५६ ॥

भावार्थ हा! बली रूपम मर गया अब घुरी जमीन पर फिर नई । बकट हृषिके का रहा है । किन्तु अहा ! उसी का यह अवान बछड़ा घुरी के कंबा लगा कर टाड़ने लगा है ॥ ५६ ॥

बल पर्यप रे यनी, की बुमवा बम भार ।

ओहे नर री बावपा कर्क पहाड़ा पार ॥ २९७ ॥

भावार्थ श्वेत वृषभ कहता है कि हे स्वामी ! भार की अधिकता से उदास क्यों हो रहे हो ? मैं तुम्हारे नर का सारा भार जकेसा ही बहन कर पर्वतों के पार कर दूंगा ॥ २९७ ॥

हमने ऊपर देखा कि अपमृश और द्विपल दोनों में मुक्तक काव्य परम्पराओं का विकास एक सा ही हुआ ॥ कम से कम दोनों के विकास के पीछे काम करने वाली वृत्ति एक सी है । इसी से सावयाम्य, सैनी साम्य और अनिम्यक्ति साम्य है ।

अपमृश कवियों में एक हो पंक्ति को बार-बार प्रयुक्त करने की प्रवृत्ति सीध पड़ती है। संभवतः इस पंक्ति को बार-बार प्रयुक्त करके पुनरावृत्ति उपमाबल्यता में वृद्धि हो जाती है । पुष्पकण्ठ के महापुराण में से गिना उदाहरण देखिये—

शोचिय कील ?

बलि बलि उबारत बाणिवर	किशियर हूकबारत माणिवर
सो सोतिर को गुणवर मह	सो सोतिर को सुतच्छु कह
सो सोतिर को न बुटठ मन	सो सोतिर को न हनु हयई
सो सोतिर को हिमएण सु	सो सोतिर को परमरन बह
सो सोतिर को न मासु नस	सो सोतिर को न सुमनि मस
सो सोतिर को ननु पहि पव	सो सोतिर को सुतबैं तव
सो सोतिर को संछहु भाव	सो सोतिर को न मिच्छु नव
सो सोतिर को न मन्नु पिय	सो सोतिर को बारह कुम

ब्रता— जो शिखकपासह इव्वविसेसई हुपिनि देवमह पीनह  
पमु बीन पि मारह मारह पव जप्पु वि समुवाणह

अर्थात् बाणिवर में जो रत्न हो उसे वैश्य समझो और जो बेटी करत है उसे कृषक कहा जाता है । शोचिय वह है जो जिनवर को पूजता है शोचिय वह है जो सम्मक तत्व का कथन करता है । शोचिय वह है जो बुद्ध वचन नहीं बोलता । शोचिय वह है जो पशुओं को नहीं मारता । शोचिय वह है जो हृदय से स्वच्छ ॥ शोचिय वह है जिसकी परमार्थ में बलि है शोचिय वह है जो नास यस्तप नहीं करता । शोचिय वह है जो सुजन से बचपाव नहीं करता, शोचिय वह है जो मनुष्यों को रास्ते से बनाता है शोचिय वह है जो सुतप का नाश करवा है शोचिय वह है जो संतों को नमन करता है शोचिय वह है जो धूठ नहीं बोलता शोचिय वह है जो मद्य नहीं पीता शोचिय वह है जो कुमति का कारण करता है जो शिख कपास बाहि इव्व विसेय का होम करके देवगृह को प्रसन्न करता ॥ जो पशुओं और बीजों को नहीं मारता मारने वालों को रोकता है और पर को अपने समान समझता है, वह शोचिय है ।

राजस्थानी साहित्य में कहानी के रूप में रचित बातें बहुत संख्या में उपलब्ध होती हैं। इन बातों में तुलान्त बच का प्रयोग बहुधा होता है। बीच बीच में दोहे या अथवा छोटे मुक्तक छन्दों का प्रयोग होता है। जिससे कथानक में एक विशेष मोड़ और रोचकता आ जाती है। कथाओं की यह शैली हिमाल की अपनी निजी शैली होने पर भी अपभ्रंश कथाओं का कमजोर विकास है। प्रबन्ध चिन्तामणि एवं कुमारपास प्रति बोध की कथाओं में भी यही परम्परा है। इसी प्रणाली का तर्कसंगत विकास हिमाल की बात संस्कृत रचनाओं में हुआ। अब भी जब कोई कथा कहने वाला अपनी कहानी सुनाता है तो बीच बीच में वह लोकप्रचलित दोहों की बड़ाई सी करता जाता है। जैसा प्रसंग होया, जैसा दोहा वह सुनाता चलेगा। पुरानी बातों में<sup>१</sup> व कथाओं में यही शैली है।<sup>२</sup> जो बातें किसी भिन्न होती हैं, उनमें प्रसंगानुकूल पद्य अवश्य है। कथाओं में भी ऐतिहासिक दोहे बीच, कवित्त आदि प्रयुक्त किये गये हैं। विस्तारभय से अधिक उदाहरण नहीं देने का रहे हैं। हम पहले इसी अध्याय में सप्रमाण देख चुके हैं कि यह प्रवृत्ति प्राकृत अपभ्रंश से हिमाल में अवतरित हुई है। अस्तु —

प्राकृत और अपभ्रंश का सबसे अधिक प्रभाव कथाओं के क्षेत्र में पड़ा। प्राकृत साहित्य ने अपनी जगह से कथापरम्परा का उद्भव किया। हम देख चुके हैं कि वैदिक तथा मौक्तिक संस्कृत साहित्य की कथापरम्परा बलिक कथाओं की परम्परा है। संस्कृत

# १ (अ) मेनारिया राजस्थानी साहित्य संग्रह भाग २

बात बैलभी बगवान्गारी पृ० ११

प्रतापसिंह म्हुकमसिंहरीवात पृ० १८, १९ आदि

बीरमदे सोनीवारी बात पृ० ८१ ९१ आदि

# (ब) नरोत्तम स्वामी : राजस्थानी साहित्य संग्रह भाग १

राजान राउतरी बात बगवान् पृ० २१ ३० ३२ आदि

# (घ) नरोत्तम स्वामी राजस्थानी बात भाग-१

बात सबनी बारनीरी पृ० १५-१७

बात बसमा बीरनीरी पृ० १४ २१

बात बीरमदे बहीर री पृ० ५० ८१

# (ङ) सोभाग्य सिंह सेखावत राजस्थानी बात भाग १

राजा सुबीनरी बारता पृ० २९

बीरबंद मेहतारी बारता पृ० ५७

भरम-भरमो बुरे बुरीरीवात पृ ७७ ७९

# (ड) सोभाग्य सिंह सेखावत राजस्थानी बात भाग ७

बात बाकेल कल्याणसिंह नयराबोदरी पृ० ११

राजरा मोहकमसिंह हरिसिन्धोवरी बात पृ० ७९

२ बड़ीप्रसाद सावरिया : मुहता नीलवीरी कथा भाग १, पृ० १८, १४, १८ १५६, १६९

छन्दों की परम्परा भूतल भाषिक छन्दों की नहीं है। प्राकृत साहित्य अपना विकास लोकजीवन की भित्ति पर कर रहा था, फलतः उसने मृत्यु तथा संघर्ष के आधार पर छन्दोविधान का आरम्भ किया। प्राकृत में ही सर्वप्रथम माहात्म्यों या तासकृत्यों (बुधावर्णों) का निवरण उपन्यास किया गया है। किन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि वैदिक छन्द या संस्कृत बहिक छन्द प्राकृत में सर्वथा सुप्त हो गये थे। भरत के नाट्यशास्त्र में हमें प्राकृत भाषा में निबद्ध गायत्री उन्मिक गृहणी, पंक्ति, त्रिष्टुप् तथा जगती के उदाहरण मिलते हैं। इतना होने पर भी यह तो निश्चित है कि बीरे बीरे इनका प्रयोग कम हो गया है। प्राकृत की छन्द-परम्परा के किये हमें 'स्वयम्भूछन्द', हेमचन्द्र का 'छन्दानुशासन', तथा 'प्राकृतपिंगलम्' से पर्याप्त सहामता प्राप्त होती है। ताल छन्दों या माहात्म्यों में यहाँ या वहाँ का उतना ध्यान नहीं रखा जाता जितना प्रत्येक चरक, बर्बासी, या समय छन्द की मानसमक संख्या का। प्राकृत में इस प्रकार के छन्दों का बहिक प्रचार है, वे छन्द संस्कृत बहिक छन्दों की ही भाँति बहुत काल्य होते हैं। छन्दों के चरणों के अन्त में तुक मिलाने की शैली का प्रचलन अपभ्रंस काल में बना है तथा तुकान्त छन्द अपभ्रंस छन्द, परम्परा के प्रतीक है। जिस प्रकार संस्कृत की छन्द-परम्परा का प्रतीक अनुष्टुप् है तथा अपभ्रंस छन्द-परम्परा का प्रतीक दोहा, वैसे ही प्राकृत के बहिकांश भाषिक छन्दों का मुखमोहक है। प्राकृत के प्रमुख छन्दों में पाहा पाह बिनाया उद्भावा पाहिनी सिहिनी, तथा स्तब्धक छन्द हैं। इनमें से 'पाहा' छन्द अपने मेधोपमेयों के साथ भार्या के रूप में संस्कृत छन्दों में संजीवितकटा का बहिक समावेश हो गया फलतः जाये बल कर कुछ प्राकृत छन्दों का प्रचलन कम हो गया, अपभ्रंस कवियों ने प्रायः तुकान्त अपभ्रंस छन्दों की ही अपवादा है। किन्तु प्राकृत का भाषा छन्द फिर भी प्रयुक्त होता रहा और 'पद्यो में बन्दबर्बाई तक ने इसका प्रयोग किया।<sup>१</sup>

भाषा की भाँति अपभ्रंस के वे बोहे अपनी-आप में परिपूर्ण मुक्तक काव्यों के बाह्य स्वीकार किये गये थे और सब प्रकिये तो बोहा मुक्तक-काव्य का ही सफल बाह्य है। यह प्रबल या कथानक के लिये उपयुक्त छन्द नहीं मान्य होता। कोला-याक के बोहे मद्यपि कथानकस्थ में लिखे गये हैं परन्तु वे वस्तुतः मुक्तक ही हैं। इसी कथानकसूत्र को बोहने के उद्देश्य से कोलाहलीं सताम्बी में बोहों के बीच-बीच में चौपाई जोड़ कर कथानक को कमबल करने का प्रयास किया गया था। चौपाई छोटा छन्द है वह कथानक को सहज ही जोड़ देता है। अपभ्रंसकाल के आरम्भ से ही इस छन्द के इस गुण को समझा जाये गया था परन्तु इसकी ठीक-ठीक प्रकृति जानने में कुछ समय लगा।<sup>२</sup>

सूक्त-सूक्त में चौपाई की अपेक्षा अपभ्रंस में पञ्चदश्या का बढावा प्रचार था। जिस प्रकार आजकल हम लोग चौपाई लिखने में पुनर्जीवित की वद्वता बतसाया

१ मोक्षादीकर व्यास हिन्दी साहित्य का गृह्य इतिहास अध्या १ पृ० ११०-१११

२ हजारीप्रसाद हिन्दी साहित्य का आधिकारिक पृ० ९४

करते हैं उसी प्रकार स्वयम्भू ने अठम्भुह या अतुमुल का पड़किया का राजा बनाया था। हरिवंशपुराण में उम्भुने कहा है कि विंगल ने छम्भ प्रस्तार, भामह और बन्दी ने बर्त्सकार, बाण ने बलराजम्बर, भीहर्ष ने भिपुनरव और अतुमुल ने छर्त्तिका, द्विपदी और द्रुवकों से बटित पड़किया दिया—

छर्त्तिय हुबह भुवर्णहि बडिय । अतमुहेन समपिज पडकिय ॥<sup>१</sup>

यह तो हुई चोपाई की बात पता बोहे से मिल छम्भ है। यह १२ भाषाओं का छम्भ होता है। प्रथम पंक्ति में १०, ८, १३ पर यति होती है और दूसरे चरण में भी यही कम रहता है—

पडमं बह बीसामो बीए मत्ताह मट्ठाह ।

ठीन ठेख निरई, बस भत्ताह बासटिठ ॥

उदाहरण यह है—

रग बल्ल बल्ल हनु निजनु कुसुमबधु

जयज बंध विभास कर ।

सो रनसज संकह, असुर भयंकह

गिरिणयारि अर्द्धग पद ॥

परन्तु व्यवहार में बत्ता छम्भ का व्यवहार छेदन के अर्थ में ही होता रहा और कई बार काव्यों में अरिस्तु या पञ्चटिका के साथ उस्ताला या धीर कोई इसी तरह का द्विपञ्चिनेस्य छम्भ दे दिया जाता था। अपभ्रंश के काव्यों में भी बत्ता के स्थान पर अन्य छम्भों का व्यवहार हुआ है।<sup>२</sup>

१—उदाहरणार्थ 'पठमधिरिचरित' में प्रथम संधि के चत्ते 'बत्ता छम्भ' में है। एक उदाहरण यह है—

पणमिनि बय सामिनि नय मुर कामिनि बानेसरि सिय कमल कर ।

पणयहं सन्नामि बीए पमावि कनिहि पयबह बाणि बर ॥१४॥

किन्तु द्वितीय संधि में दूसरा छम्भ 'बत्ता' के लिये व्यवहृत हुआ है—

बजपरित यह बह, कुमह लोम लोमन मुहत्त ।

सहु बेवब सोएहि, संखु बि बिसरित सेमुहत्त ॥१५॥

१ भास्कराम प्रेमी और साहित्य और इतिहास पृ० १७१-७२

२ उदाहरणार्थ पुष्करंतके 'भाग्यकमारचरित' की सातवीं संधि के प्रथम कदवक का बत्ता यह है—

कुडिमकुस बस एहि निजमेव पडिबल्लज ।

हस्तिहि सोहह बाबु जेहि संजबनु दिव्यज ॥

फिर पठमधिरिचरित की चिरईसंधि के चत्ते इस छंद में है—

बंजब बग बल्लह गुह्यनि विधिय मयंद पद ।

संधिय रयजयर राह्य मजबण बीनि गह ॥

२-कई अपभ्रंश काव्यों में बत्ता को बत्ता छंद में ही लिखने का नियम कठोरता के साथ अपनाया गया है, पर सबसे उतनी कड़ाई नहीं दिखाई गई। कभी कभी छुक में बुद्ध (शिपरी) लेकर अन्त में किसी छंदरे छंद में बत्ता दिया गया है। जयकुमार चरित में इस नियम का बहुत सुन्दर निर्वाह हुआ है। कभी छोटे-छोटे छन्दों में भी कवचक मिले गए हैं। इन सब नियमों का परवर्ती काल में अनुसरण हुआ है। बनेक छन्दों में कच्चा कहने की प्रथा कैसबराज की अपनी बत्ताई हुई नहीं है। करकटु चरित, जयकुमारचरित आदि में छंद बदलने की प्रवृत्ति मिलती है। वस्तुतः छन्दों के सामने ये अपभ्रंश बहुत समुद्र धापा कही जा सकती हैं। वस्तु -

बोहा का बत्ता अपभ्रंश के कवियों में एकदम अपरिचित हो नहीं था। जिन पद्म सूरि के भूतभक्षसु में इसका उदाहरण मिल जाता है। परन्तु प्रबन्धकाव्य में चौपाई बोहा का कम बहुत लोकप्रिय नहीं हुआ। सम्भवतः पूर्वी प्रवेश के कवियों ने प्रबन्धकाव्य में चौपाई और बोहा से बने कवचकों का प्रयोग शुरू किया था। बामसी आदि सूची कवियों ने इसी प्रथा का अवलम्बन किया था परन्तु बीजकर्म में यह प्रथा बौद्ध सिद्धों की रचनाओं में मिल जाती है। सरहपा ने लिखा है -

जहसे बिसल संजिको पड़खइ । जो बह अरिप भठ बाचन होइइ ।

पंडित सबस सत्य बख्शाणइ । बैहवि बुद्ध बसन्त न जाणइ ॥

गमनावयण न तेन बिसयिबस । तो बि बिसयज भजहि इठ पण्डित ॥

जोबलह जो नउ जरइ,

सो जवरापर होइ ।

पुत्र उबएते विमल गई,

सो पर भज्य कोई ।

चौपाई बोहे का सबसे पुराना प्रयोग बामर यही है। जो कुछ पुराना साहित्य उपलब्ध है उससे लगता है कि पूर्वी प्रवेश के बौद्ध सिद्धों ने ही इस शैली में लिखना शुरू किया था। पश्चिम में पढ़ाकिया-बीज जिनके प्रचलित थे और पढ़ाकिया से कभी कभी चौपाई का बर्ण भी से लिया जाता था। बीसा ही जिनबल सूरि की चर्चरी के वृत्तिकार जिनपाल के वक्तव्य से स्पष्ट होता है। किन्तु सब मिला कर चौपाई बोहा की पद्धति छंदर बीजकाल तक लोकप्रिय नहीं हुई।<sup>१</sup>

यही कारण है कि विमल में भी जो बनेक दृष्टियों से अपभ्रंश की विशेषताओं को आत्मसात करके बनी है—बोहा चौपाईवाली शैली का विशेष प्रचलन नहीं हुआ। विमल के प्रबंध काव्यों ने इस पद्धति को नहीं अपनाया। अपवाद के रूप में पद्मनाभ रचित कान्हूदे प्रबन्ध को लिया जा सकता है जिसमें चउपाई-बोहा पद्धति का अल्प छंदों के साथ प्रयोग किया गया है। अन्य विमल छन्दों में यह प्रचाली नहीं मिलती। यद्यपि अपभ्रंश के आरम्भिक काव्यों में चौपाई-बीसे कथानकसूत्र योजक



छन्द का प्रथम हो गया था और जोपाई के साथ अपभ्रंश के लक्षित छन्द बोझ का गठबन्धन भी हो चुका था, पर कथा-काव्य के लिये इसका महत्व बाद में समझा गया ।

धीरे-धीरे अपभ्रंश में भी बड़े-बड़े छंद मिले जाने लगे । रीता, उस्ताता, और कम्ब, छप्पय और कृच्छसिया अपभ्रंश के अपने छन्द हैं । धीरे-धीरे अपभ्रंश की कविता भी माहम्वरपूर्ण होती गई । छप्पय और कच्छसिया जैसे छन्दों को उमासकर औरद्वे की ओरस्वनी कविता लिखना आपा की प्रोढ़ता का सबूत है ।

इस प्रकार हमने देखा कि छंदों के क्षेत्र में हिमल अपभ्रंश की सर्वाधिक श्रुती है । संक्षेप में अपभ्रंश में छंदों की दो विशेषताएं प्रमुख हैं । प्रायः अपभ्रंश कवियों ने अपने छंदों का नाम भी यथास्थान दिया है । हिमल कवि भी इसी प्रवृत्ति का पालन करते हैं । जैसे संस्कृत के महाकाव्यों में छंदों का नाम नहीं दिया रहता है । किन्तु अपभ्रंश काव्यों में छंदों का नाम बहुधा दिया रहता है । उनमें छन्द-नाम या तो छन्द के बाहर लिखा रहता है या छन्द के भीतर ही उसका उल्लेख किया जाता है, जैसे —

बुबई-चउविहू गोउराइ चउबारइ जवरइ सुमि भुसपी ।

—महापुराण-१-२१-१

रासो में भी इसी तरह छंदों के नाम उनके पहले दिये हुए हैं । सामय ही ऐसा कोई पद्य उसमें हो जिसके पहले छन्द का नाम न हो । अपभ्रंश में छन्द के भीतर उसका नाम देने के उदाहरण ये हैं —

धुजपो बुहारबणो नाम सन्धो चिरं मन्धो दिहवरो बाचइ सो ।

—महिसयत कहा-१२-३

दिवायर मन्धमिवादिषचाम् । सुकम्बई यमिउ नीतिपदाम् ।

—करकण्ठ चरित १९९

हिमल की सभी रचनाओं में प्रयुक्त छंदों का नाम छंद से पहले लिख दिया जाता है । उदाहरण के लिए बेलिये—राजकण्ठ—पृ० ११—जहाँ छंद भीतर, बुझा और छंद केवलचरी प्रयुक्त हुए हैं सभी का नाम दे दिया गया है । रघुनाथकण्ठ चौदारों, रघुनरजसप्रकाश रामचरासो, लुरजप्रकाश रजधस्तछंद, बीरबाण आवि सभी हिमल ग्रंथों में प्रत्येक छन्द पर उसका नाम अवका कीर्णक दिया हुआ है ।

अपभ्रंश छन्दों की दूसरी विशेषता यह है कि इनमें मन्धवागुप्रास का प्रयोग मिलता है । इस प्रवृत्ति का संस्कृत में भी प्राग्व नामाव ना और प्राकृत में भी । यह अपभ्रंश कवियों की अपनी सुझ थी । हिन्दी छन्दों में यह प्रवृत्ति अपमूर्त छन्दों से ही आई ।

अपभ्रंश कवियों ने जहाँ प्राचीन वर्णवृत्तों का प्रयोग किया वहाँ इनमें एक नवीनता भी उत्पन्न कर ली । उदाहरण के लिए निम्नलिखित मातिनी छन्द देखिये—

अलमल छिरसुसं, सम्मन्नामद मुर्ण ।  
पसरह जविरोसं मायहानं सुरोसं ॥  
तिरि नविय जिगिरो, देह बायं बीजरो ।

वत् इय बुह वृत्तो, मामिनी छत्रु वृत्तो ॥ सुर० पृ० ३४

संस्कृत के विपल शास्त्र के नियमों के अनुसार वहाँ यति होनी चाहिए वहाँ पर भी कवि ने अस्यानुप्रास का प्रयोग कर मामिनी के एक चरण के दो चरण बना डाले । इस प्रकार सम अनुप्रास मामिनी सर्वोत्तम अष्टपद मामिनी बन गई । प्राचीन कवि को उसी रूप में स्वीकार न कर उसमें परिवर्तन लाकर नवीनता उत्पन्न करने की प्रकृति अपभ्रंश कवियों में स्वभाव से ही थी ।

अपभ्रंश कवियों की इसी प्रवृत्ति के विम्वरिणित बोहे में भी दर्शन होते हैं ।

हीत रयमु बव किंति नर, सज्ज दुषे हि सज्जम् ।

सो मनवत्तत होह नर, सो तिहुयन कम पुज्जम् ॥

—सुलोचना चरित १८-१९

वर्णवृत्तों में भी इन कवियों ने नियमों का कटोरेटा टैं पासन नहीं किया । एक वीरकाव्य बरबर के स्थान पर दो जगु बहारों का प्रयोग करके भी वर्णवृत्तों का निर्वाह कर लिया गया है । जैसे —

अस्सवामो मूळ तेहि ता सत्तक ।

मुण्डिऊ पोनु वप्प वाप्प हत्थह वूळ ॥

वियमां जहिनि कस्सा वि यत्तं पत्तिर ।

सज्ज नई यत्त नम्म सुत्त पुण्डित ॥

सज्ज कहि पुत्त कि मज्ज पुत्तो मूळ ।

कम्ह सिक्काह बरणाह ता जंपित ॥

मुत्त न पुह जंरणी कि तु यत्त बिद्धक ।

अस्सवामुत्ति जामेध रणि जिठिठ ॥

—यज्ज कीर्ति कव हरि० पु० ११९

इस बार रमण स्वामिनी या कामिनी मोहन छत्र में रेखांकित बरबर एक वीर बरार के स्थान पर प्रकृत क्रिये गये हैं ।

अपभ्रंश कवियों ने अपनी उपरिनिर्दिष्ट प्रकृति के अनुसार बनेक नवीन छन्दों की सृष्टि की । इसके लिए उन्होंने नए-नए छन्दों का निर्माण किया । दो छन्दों के मेल से बने अनेक संकीर्ण-वृत्तों का उल्लेख अपभ्रंशियों में मिलता है । अपभ्रंश में संकीर्ण-वृत्त उल्लासा बोहल, बाबा, जाभायक भाभा, काव्य (पीसा)

छन्द का प्रचलन हो गया था और ओपाई के साथ अपभ्रंश के लाड़िले छन्द बोहा वा गठवाचन भी हो चुका था, पर कथा-काव्य के लिये इसका महत्त्व बाह्य म समझा गया।

धीरे-धीरे अपभ्रंश में भी बड़े-बड़े छंद लिये जाने लगे। रोमा, उस्तासा, बीर, कम्ब, छण्ड और कृष्णलिया अपभ्रंश के अपने छन्द हैं। धीरे-धीरे अपभ्रंश की कविता भी आश्चर्यपूर्ण होती गई। छण्ड और कृष्णलिया जैसे छन्दों को संभालकर बीरबर्ष की ओरस्विकी कविता लिखना भाषा की प्रीकृता का सबूत है।

इस प्रकार हमने देखा कि छंदों के दाय में हिमाल अपभ्रंश की सर्वाधिक श्रुति है। संक्षेप में अपभ्रंश में छंदों की दो विशेषताएं प्रमुख हैं। प्रायः अपभ्रंश कवियों ने अपने छंदों का नाम भी यथास्थान दिया है। हिमाल कवि भी इसी प्रवृत्ति का पालन करते हैं। जैसे संस्कृत के महाकाव्यों में छंदों का नाम नहीं दिया रहता है। किन्तु अपभ्रंश काव्यों में छंदों का नाम बहुधा दिया रहता है। उनमें छन्द-नाम वा तो छन्द के बाहर लिखा रहता है या छन्द के भीतर ही उसका उल्लेख किया जाता है, जैसे —

दुर्बई-जठविह गोठराइ चरधारइ जयरइ भूमि भूसणे ।

—महापुराण-२-२१-१

रासो में भी इसी तरह छंदों के नाम उनके पहले दिये हुए हैं। सायब ही ऐसा कोई पद्य उसमें हो जिसके पहले छन्द का नाम न हो। अपभ्रंश में छन्द के भीतर उसका नाम देने के उदाहरण ये हैं —

मुचंमो मुहारंजणो नाम छणो चिरं नन्दो मुहुरो बाणइ बी ।

—अविशयत कहा-१२-३

दिवासर चान्दभिचारिमचामु । मुसुम्बई गणित भीतिवचामु ।

—करकण्ठ चरित १९९

हिमाल की सभी रचनाओं में प्रयुक्त छंदों का नाम छंद से पहले लिख दिया जाता है। उदाहरण के लिए बेलिये—राजकण्ठ—पृ० ११—वहाँ छंद चोतर हुआ और छंद बेजन्धरी प्रयुक्त हुए हैं सभी का नाम दे दिया गया है। रजुनायकपद पीतारों रजुवरबसप्रकाश राममरासो, शूरजप्रकाश, रजमल्लछंद, बीरबाज बाबि सभी हिमाल ग्रंथों में प्रत्येक छन्द पर उसका नाम अवकाशीयक दिया हुआ है।

अपभ्रंश छन्दों की दूसरी विशेषता यह है कि इनमें अस्त्यानुदास का प्रयोग मिलता है। इस प्रवृत्ति का संस्कृत में भी प्रायः अभाव था और प्राकृत में भी। यह अपभ्रंश कवियों की अपनी सूझ थी। हिन्दी छन्दों में यह प्रवृत्ति अपमूर्ख छन्दों से ही आई।

अपमूर्ख कवियों ने वहाँ प्राचीन वर्णवृत्तों का प्रयोग किया वहाँ उनमें एक नवीनता भी उत्पन्न कर दी। उदाहरण के लिए भिन्नलिखित मामिनी छन्द देखिये—

असयण शिरसूत, सज्जपांगद मूल ।  
पसरद अविरोल, मायहाण सुरोल ॥  
तिरि अथिय निनिदो, वेह बाय रीगंरो ।

असु हय बुद जुतो, मासिणी छरु जुतो ॥ सुद० अ० १४

संस्कृत के विनय शास्त्र के नियमों के अनुसार वही यति होनी चाहिए वही पर भी कवि ने अन्यानुप्रास का प्रयोग कर मासिणी के एक चरण के दो चरण बना डाले । इस प्रकार उस अनुप्रास मासिणी अर्थात् अष्टपद मासिणी बन गई । प्राचीन कवि को इसी रूप में स्वीकार न कर उसमें परिवर्तन लाकर नवीनता उत्पन्न करने की प्रकृति अपमृष्ट कवियों में स्वभाव से ही थी ।

अपमृष्ट कवियों की इसी प्रकृति के विप्लवप्रसिद्ध दोहे में भी दर्शन होते हैं ।

छोत रयणु बध किति बर, सय्य पुणे हि सरणु ।  
छो बयवतठ होह बर, छो तिहुवय कय पुणु ॥

-सुमोचना चरित १८-११

वर्णवृत्तों में भी इन कवियों ने नियमों का कठोरता से पालन नहीं किया । एक बीरब्रह्म बखर के स्वाग पर दो क्षु अक्षरों का प्रयोग करके भी वर्णवृत्तों का निर्वाह कर दिया गया है । जैसे -

अस्तबामो मुळ ठेहि ता बतळ ।  
मुण्डळ बोमु बसु बाणु हत्पाह चुळ ॥

येयबा महिबि कस्ता बि बसं पतिठ ।

सय्य बई म ठर बय्य सुत पुण्डळ ॥

सणु कहि पुत कि मय्य पुतो मुळ ।

कम् सिक्काह वरणाहु ता अंविठ ॥

मुत व तुह वंरणी कि तु वर विट्ठळ ।

अस्तबामुक्ति नामेय रनि चिट्ठळ ॥

-यवः कीर्ति कव हरि० पु० ११९

इस बार रयण अथिबनी या कासिनी मोहन अर्थ में ऐश्वर्य्य बखर एक बीरब्रह्म बखर के स्वाग पर प्रयुक्त किये गये हैं ।

अपमृष्ट कवियों ने अपनी उपरिनिर्दिष्ट प्रकृति के अनुसार अनेक नवीन छन्दों की सृष्टि की । इसके लिए उन्होंने नए-नए छन्दों का निर्माण किया । वे छन्दों के मेख से बने अनेक संकीर्ण-वृत्तों का उत्पन्न अक्षरकोषों में मिलता है । अपमृष्ट में संकीर्ण-वृत्त उत्ताता बोहा, याबा, माषाणक गाबा, काव्य (रोका)

और कामिनी मोहन के मिश्रण से बनाये गये हैं। पुष्पलिक (दोहा काम्य) पद्मायन (दोहा कामिनी मोहन) रासाकुस (आभाजक या प्यर्बनम उस्तासा), रत्नदया बस्तु (माया दोहा) छन्द (काम्य उस्तासा) इत्यादि इसी प्रकार के छन्द हैं।

हिमम के कवियों में भी इसी प्रकार नये नये छंद गढ़ने की प्रवृत्ति मौजूद है। एक दोहा और एक ब्रंदायना छंद को मिश्राने से नया हिमम छन्द तैयार बन गया। इस मिल में दोहे और ब्रंदायना में सिहायसोपन है, अर्थात् दोहे का अंतिम छन्द ब्रंदायने के आदि में आता है।<sup>१</sup>

उदाहरण देखिये<sup>२</sup> —

कवि ऊंचा तिवरे उरध, बधिया बिसबा बोल ।  
जोड़े साये जनत में, निर मज कुम्भ गिरीस ॥  
निर मज कुम्भ गिरीस प्रबीना पाबिया ।  
गुवरण बरस मुईन कठोर चुहाबिया ॥  
छोड़े अगिया छोट हरी रंग साज में ।  
हुड़िया बरुवा दोय सिवाल समान में ॥१७॥

हिमम के अनेक छंद इसी प्रकार रचे गये हैं। विषय विवेचन के लिए कृपया परिशिष्ट १ हिमम गीतों का अन्वयात्मीय अध्ययन देखिये। इसी प्रकार हिमम में अनुप्रास तथा उसके स्वयं के आधार पर दोहे के तैबीस भेद कर दिये गये हैं। इसी प्रकार बाबीस छन्दों<sup>३</sup> चार कुम्भलियाँ<sup>४</sup> और २६ प्रकार के गाथा छन्द माने गए हैं<sup>५</sup>। यह श्रेयोपदेशों की वृत्ति और लीन छन्दों के निर्वाह की प्रवृत्ति हिमम काम्य की अपनी विशेषता है।

इस प्रकार हमने देखा कि हिमम के काम्यक, छंदरचति बस्तुविम्वार और भावम्वानता सभी अपभ्रंश के निकट हैं। अपभ्रंश ही परम्पराएँ ही कामांतर में हिमम के रूप में बिकास पा गई हैं। यह बात सही है कि हिमम के कवियों को अपने बामबराताओं की पुष्पागा गाँव में संस्कृत परम्परा से बिसयकर पौराणिक परम्परा से बड़ी प्रेरणा मिली है फिर भी प्राकृत अपभ्रंश की परम्पराओं ने हिमम साहित्य के अन्तरंग और बाहिरंग दोनों का निर्माण किया है।

१. बैसनकर अपभ्रंश मीटर्स — अमंड आफ मुनिबसिटी आफ बाम्बे—महम्बर १९११-५० ३२ ६९

२. अयाचक व खारेड बांकीदास प्रभावली—भाग ३ पृ० ४३

३. बांकीदास अमान राधिका सिखनस बर्बन पबर्स—१७

४. छीताराम साबस १ मुजर अतप्रकाश पृ० ६२ ७०

५. वही पृ० ६१ ११०

६. वही पृ० १११ १११

७. वही पृ० ७१ ८४

## उपसंहार

प्राकृत और अपभ्रंश दोनों भाषाओंका अध्ययन ही भाषागत भाषाओंपर अनेक वैज्ञानिक विद्वानों ने किया है किन्तु उनके साहित्यों का विस्तृत अध्ययन प्रायः नहीं हो पाया है। प्राकृत साहित्य का वैज्ञानिक सर्वांग इतिहास अभी भी लिखा जाना बाकी है। अपभ्रंश साहित्य का अध्ययन डा० हरबंधनाथ कोसक ने किया है जो 'अपभ्रंश साहित्य' नाम से प्रकाशित हो चुका है। इन दोनों भाषाओं की साहित्यिक परम्पराओं का विविधत अध्ययन आधुनिक आर्यभाषाओं की साहित्य-परम्पराओं को समझने के लिये अनिवार्य है। इस प्रकार का प्रयत्न डा० रामसिंह सोमर व डा० नामवरसिंह द्वारा स्वतन्त्र रूप से किया गया है। डा० सोमर का प्रबन्ध तो अभी भी अप्रकाशित है। इन पद्धतियों के लेखक ने उसे भी मंगा कर देखा है। नामवरसिंह ने 'अपभ्रंश का हिन्दी साहित्य के विकास में योग' नामक निबन्ध द्वारा प्रस्तुत विषय पर प्रकाश डाला है। परन्तु निम्न साहित्य को कि अपभ्रंश साहित्य का सबसे प्रमुख उत्तराधिकारी है इस दृष्टि में उपेक्षित रहा। यहाँ हमने प्राकृत और अपभ्रंश की साहित्यिक परम्पराओं के सम्पर्क में हिमाल साहित्य की प्रवृत्तियों को परखने की चेष्टा की है और इस प्रकार से प्राकृत, अपभ्रंश और निम्न से राजस्थानी तक की साहित्यिक गुरुता की कड़ियाँ व्यवस्थित करने का प्रयास किया है।

पहला अध्याय प्राकृत भाषा और साहित्य के विकास को लेकर है। जिसमें प्राचीन और आधुनिक व्याकरणों भाषाविदों और शोधकर्तारों द्वारा अब तक किये गये कार्यों के आधार पर सक्षिप्त विकासरेखा प्रस्तुत की गई है। उत्कालीन सामाजिक आर्थिक राजनीतिक और आर्थिक परिवेश में प्राकृत भाषा और साहित्य के विकास को सविस्तार समझा गया है। प्राकृत का आद्यावधि व्युत्पत्ति साहित्य १०० ई० पूर्व से आरम्भ होकर १८०० ई तक आता है। परन्तु मुख्यतः उसका काल १०० ई० पूर्व से १ ई० तक रहा है। सिलालेखी प्राकृत, बाह्यारणीय प्राकृत आदि प्राकृत, वैशाकरणों की प्राकृत साहित्यिक प्राकृत, नाटकीय प्राकृत, मिथ संस्कृत या पावा आद्यैवत् सभी पर संक्षेप से सप्रमाण विचार किया गया है। विशेषतः प्राकृत साहित्य की प्रमुख कृतियों—यथा समराज्यम् कहा जूतरिख्याम् कपाकोय-प्रकरण कहा महोदधि आनन्दगी कहा तरंगवती कपा, चिरिचिरिवाक कहा पटय चरित,

सेतुबन्ध, गीटबहो, भाषा सप्तशती, बज्जालग, सीतावई कहा आदि का विषय की अनुकूलता के आधार पर अध्ययन किया गया। नाटकीय प्राकृत और प्राकृत मुक्तकों की परम्परा को ठीक से समझने की चेष्टा की गई।

दूसरे अध्याय में अपभ्रंश भाषा और साहित्य के विकास को समझने की चेष्टा है। इस अध्याय में 'अपभ्रंश सम्बन्धी विचार विमर्श व्यापकता से किया गया है, क्योंकि हमारे हिमाल साहित्य की अधिकांश प्रस्तियों में मूल रूप में यहाँ पर दीख पड़ते हैं। अपभ्रंश, अनहट्ट और ऐसी संज्ञाओं को लेकर सप्रमाण व्याख्या की गई है और विकासपरम्परा निश्चित की गई। चरित, कहा, रासक, रास, चर्चरी, फागु, सता, बेनि, रसायन प्रकाश, कोमुदी, संकीर्तन, विभास बिजय कपक आदि नाम देकर प्रचलितमूलक प्रबन्धकाम्य सिधने की परम्परा का प्रादुर्भाव इसी युग में हो गया था। अपभ्रंश और अनहट्ट की प्रमुख कृतियों तथा पद्य चरित, महापुण्ड्र, भविष्यत्त कहा, हरिचन्द्रपुराण, नागकुमार चरित, अठहर चरित, अंबुसामि चरित, सुईसन चरित, करकंदू चरित, पद्मसिद्धि चरित, सुकुमार चरित, सुईचरासक, कीर्तिलता, पाण्डुरोहा, सावयवम्प दोहा आदि पर विस्तार से काव्यरूपों के आधार पर प्रकाश डाला गया। इसी प्रकार अपभ्रंश के मुक्तक काव्यपरम्परा का विकासक्रमिक व मुक्तकमक अध्ययन किया गया। अपभ्रंशगत की विशेषताओं को भी परखा गया।

तीसरे अध्याय में हिमाल और उसके साहित्य का विवेचन है। हिमाल सम्बन्धी समस्त समस्याओं पर सप्रमाण विचार किया गया है और निर्णय लिया गया है। साथ में उत्कालीन परिस्थितियों के परिणाम में हिमाल साहित्य का विकासक्रमिक अध्ययन किया गया है। प्रकाशित एवं अप्रकाशित दोनों प्रकार के ग्रंथों की समीक्षा विषय प्रतिपादन की दृष्टि से की गई। चारण भाटी के साहित्य के अन्तगत प्रमुख प्रबन्ध काम्यों पर विचार किया गया। रासो, प्रकाश विभास कपक बेनि आदि संज्ञावासी रचनाओं के विभिन्न आधारों का अध्ययन कर इस नामकरण की विशेषताओं को परखा गया। हिमाल के इस काव्यरूप का विस्तारपूर्वक अध्ययन किया गया। साथ ही मुक्तक के रूप में बोलें तथा अन्य छंदों को लिया गया। हिमाल गीतों के रूप-विन्यास को लेकर भी चर्चा की गई। अपने इस अध्ययन में उन रचनाओं पर भी विचार किया गया जो भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से विमल की रचनाएँ हैं, किन्तु जो हिमाल काव्यरूपों के अध्ययन के लिए उपयोगी हैं। ऐसी रचनाओं में पुष्पीराज रासो और बंधमास्कर हैं जिनकी भाषा और शैली अनेक स्तरों पर हिमाल से अलग हैं। बीच का रचनास्त छंद कस्तोतकृत डोमामाकरादूहा, बीटू सुबाबी रचित रास शैतरी छंद कैलचरासकृत गुन कपक पुष्पीराज की बेनि किशन रुक-मभीरी, सार्वा भूला रचित नागवर्ण और रुमनी हरण, माधोदास का रामरासो, किशोरदास प्रणीत रासप्रकाश, जगन्नाथ रचित रतन रासो, गोपीदास का हरिपिंगल प्रबन्ध बाबर का बीरमायण, करबीदानकृत तूरन-प्रकाश किशनजीबाड़ा रचित रघु वर अष्ट प्रकाश, पद्मनाभ विजित कान्हूदे प्रबन्ध, सेतवी का भावा मारु, बीरमाय

कृत राजकमल, मंझाराम का रघुनाथकमल आदि ग्रंथों पर विस्तारपूर्वक विचार किया गया। राजस्थानी नक्ष का विकास भी पूरी तरह समझा गया। क्यात बात प्रसंग वचनिका, बनावत, बासताग, इतिहास भट्टादिल आदि ग्रंथों का विस्तृत अध्ययन किया गया।

बीजा अध्याय हिमाल की प्रचाल प्रवृत्तियों और काव्यरूपों को लेकर चलता है। 'रासो' काव्यरूप का विकासक्रम अध्ययन किया गया। प्रबन्ध प्रकाश विसास, रूपक, छंद, वैदिक आदि विभिन्न नामों से पुकारी जाने वाली रचनाओं का अध्ययन जब हिमाल प्रबन्धकाव्यों के स्वरूप के बारे में कुछ निष्कर्ष निकाले गये। पदाका नामक काव्यरूप की परीक्षा करने से ज्ञात हुआ कि उसे भी औरचरितार्थक सध्व-काव्य के रूप में ग्रहण किया जा सकता है। व्याचसो, वाक्यान्त संयस आदि नाम भी प्रबन्ध काव्यों के ही हैं। प्रबन्धकाव्यों से सर्वथा भिन्न किन्तु एक विशेष प्रयोगन को लेकर चलने वाले भी अनेक काव्य ग्रन्थ हिमाल में उपलब्ध हैं। इनमें से कुछ तो ऋतुकाव्य हैं यथा काम बारामासी व संवेसो और कुछ एक ही विषय पर सिद्धित मुक्तकों के संग्रह हैं—जैसे जाकीरासबीके अनेक ग्रन्थ। हिमाल मुक्तकों के दोनों प्रकारों—यथा बोहों, कवित्त कृच्छ्रिकायां आदि तथा हिमाल पीठों का सांगोपांग अध्ययन प्रस्तुत किया गया। हिमाल पीठ हिमाल साहित्य की अपनी विशेषता है जो अन्यत्र उपलब्ध नहीं है। हिमाल के विभिन्न नक्षरूपों क्यात, बात, बनावत, वचनिका, संवाह, वाक्यान्त आदि विचारों का विस्तृत अध्ययन किया है और हिमाल की प्रमुख विशेषता 'वचन सपाई' पर पूर्ण प्रकाश डाला गया है।

पाचवी अध्याय प्राकृत व अपभ्रंस के हिमाल साहित्य पर पड़ हुये प्रभाव का मुख्यांकन करता है। प्राकृत और विशेषकर अपभ्रंस के विभिन्न काव्यरूपों और छठियों के आभाव पर हिमाल रचनाओं की परीक्षा की गई। अपभ्रंस के विभिन्न काव्यरूपों में से कुछ का सम्बन्ध सीधी बनता से रहा, इसलिए जब समयानुसार भाषा में विकास हुआ तो ये काव्यरूप परवर्ती भाषा में भी प्रवृत्त होने लगे। यही कारण है कि हिमाल के अधिकांश काव्यरूपों की परम्परा अपभ्रंस से जोड़ी जा सकती है। दोनों प्रकार की रास परम्परायें प्रेमाख्यात्मक पद्धति कोकबीजन से सम्बन्धित मुक्तक, तुकान्त-अथ ये सभी हिमाल को अपभ्रंस के द्वारा बाध में मिले हैं। ऋगु वर्चन ध्वन्यात्मक भाषा का प्रयोग, शीर्षसूचियां देने का रिवाज और कुछ वर्चन करने की पद्धति की परम्परा अपभ्रंस के द्वारा ही आई है। अपभ्रंस की पुराने छंदों को मिला कर नवीन छंद नकने की प्रवृत्ति का हिमाल में श्रुत प्रचलन हुआ। समानताओं और असमानताओं दोनों पर विस्तृत विचार किया गया है।

इस समूचे अध्ययन से भारतीय साहित्य परम्परा की अलम्बता का बोध होता है। विस्तृत हिमाल साहित्य का विकास ही प्राकृत अपभ्रंस की साहित्यिक परम्परा



बाबा बादा बादा बादा<sup>१</sup>

बादा बादा बादा बादा॥

एक और दो चतुष्कर्मों का प्रास । इसके बाद पासवणी पर विचार करने ।

पासवणी

पुनिसो मंह चाप कंय तोपाणी,

पाम बनक मिसिया रजधानी ।

हरो कठे पोरस कुम हाणी,

अब तै सिया दरीकर आणी ॥

—वही पृ० ११६

हुमेल और पासवणी में पाम इतना ही अन्तर है कि वहाँ हुमेल में दो-दो पंक्तियों का प्रास होता है वहाँ पासवणी में चारों चरणों में एक ही प्रास होता है । इसी प्रास के आधार पर हुमेल को अर्धपासवणी के नाम से भी पुकारा जाता है । इसमें भी प्रथम पंक्ति में दो मात्राएँ अधिक आती हैं । इसी पासवणी के तीसरे चरण को प्रासमुक्त रख पड़ने, दूसरे और चौथे चरण का एक ही प्रास रखने से सङ्गमुपल मिल जाती है । सङ्ग का अर्थ दिवस में पड़ होता है । इसमें एक पद में अर्थात् तीसरे चरण में प्रास मुक्त होता है, इसी से इसका नाम सङ्गमुपल हुआ ।

सङ्गमुपल

डेरा रोपया उत्तर दिख डारण,

मन लखी लंकेशुर मारण ।

बल विचाव कहे सिपमीबर

धरे अमम मरबादा मारण ॥

—वही पृ० १७७

इसमें भी प्रथम पंक्ति में तीन मात्राएँ अधिक होती हैं, ऐसा रूप में उत्प्रेक्ष्य है । किन्तु तीन मात्राएँ इस उदाहरण में अधिक नहीं हैं अतः या तो प्रस्तुत उदाहरण ठीक नहीं है अथवा निबन्ध में अन्तर होना चाहिए । रचयिताकार पहली पंक्ति में दो ही मात्राएँ अधिक हों, ऐसा निर्बंध करता है और उदाहरण 'डेरा रोपिया उत्तर दिख डारण' देता है । इसे प्रामाणिक माना जाना चाहिए ।

ईलोस

मम्बोबर ! ओले नुलमती,

अल आली बारक सायबती ।

अस आवर बारक सायबती,

मुह मई मोळी नुलमती ॥

—वही पृ० ११९

इसका लक्षण है—प्रत्येक पंक्ति में चार चतुष्कस, अन्तिम चतुष्कस सप्तम वर्णात् आनगा, चारों ही पंक्तियों का एक ही प्रास और दूसरी पंक्ति के सप्तमों की तीसरी पंक्ति में पुनरावृत्ति । उत्पापनिका नीचे अनुसार होती —

। । । ।  
वा ] वावा वावा वासल वा

अन्त में नुह, पीछे की पंक्ति के साथ मिला कर चतुष्कस का निर्माण करता है । उत्पि-  
क्षित पुनरावृत्ति की अवृत्ति किन्नर के अनेक छन्दों में मिल जाती है ।

उर्मम

कहिया सुठनाक लिया कर मैं,  
रचना कह सुपनका घर मैं ।  
गारी एक बीर उर्म मर मैं  
तिसरी न लखी सुपनलहर मैं ॥

—वही पृ० १११

रघुनाथ-कर्मकार के अनुसार सोलह मात्रा अन्त में पूर्व और चारों ही पंक्तियों में एक ही प्रास उर्मम का लक्षण है । परन्तु पाठ करके देखने पर इसमें भी इसीच के समान ही पहले निश्चाल वा आठा है । अन्तर मात्र इतना है कि इसीच के अन्त में गालल वा आठा है इसमें अन्त में वावा वा होता है । उत्पापनिका —

। । । ।  
वा ] वावा वावा वावा वा

साधक अरुण

बासरनी सिखमन सुठ बसरन,  
बोळ सुने सिबारे बसरन ।  
बीह उचाटी कीने बसरन,  
बीबी मान पछाड़ी बसरन ॥

—वही पृ० ११२

यह चार चतुष्कसों की सोलह मात्राओं की साधी रचना है । इसकी एकमात्र विशेषता यही है कि एक ही चतुष्कस सप्तम हर पंक्ति के अन्त में आठा है । इसका एक दूसरा रूप भी है । यथा —

गिरये अवाधी मर निबर  
नह देखी बसरन भूप निबर ।  
निब देखे नह बंभव निबर,  
मर बीठा निबल्ला सह निबर ॥

—वही पृ० ११३

पहले उदाहरण और इसमें फर्क इतना ही है कि यहाँ अन्त्य बहुवचन की एक मात्रा संज्ञित है और वह जिसमें गण्य वन जाता है वो चारों पंक्तियों में प्रयुक्त होता है । अब सेमारघ्न पर विचार किया जाय ।

सेमार

उपसीरो क्य भरे मतवाई,  
बड़न कुटी यह सीत बड़ाई ।  
विषय पुकारी साव सुनीये,  
कीजे हो हरि ! बाहर कीजे ॥

—वही पृ० १३५

यह भी एक बहुवचन, सोलह मात्रा की रचना है । पुनः के सङ्ख्य इसकी पहली पंक्ति में दो मात्रा अधिक होती है । अंतिम अर्थात् चौथे चरण में विधि नाम का सञ्चालनकार प्रयुक्त होता है । विधि नामक इस सञ्चालनकार के सम्बन्ध में कोई विशेष जानकारी नहीं मिलती । रत्नापिण्ड में विधि शब्द का प्रयोग न कर मात्र सञ्चालनकार का उल्लेख है । (पृ० ७४) रत्नाचरककार ने जो पीठ उदाहरण स्वल्प दिया है उसमें प्रत्येक पद के अंतिम चरण में 'कीजे हो हरि ! बाहर कीजे , 'बीरो रे बायो हूँ बीरो' 'मायो रे नम मारय मायो , 'बीयो रे प्रमूनु सुव दीयो , 'छोड़े रे तन सीत न छोड़े' इस प्रकार बताया है । इसके सहारे विधि अन्तकार की कल्पना की जा सकती है । इस प्रकार सामान्य द्विवक्ति से उत्पन्न प्रभाव के आधार पर विमल ने नये छन्द बनाये हैं । अब विमल का सर्वथा छन्द लिया जाय जो हिन्दी के बहुप्रचलित सर्वथा से विमल है । नीचे विमल के सर्वथा का उदाहरण देखिये ।

सर्वथा

परहस्त पटे, कर झूझ कटै ।  
मिदमांन भटे ह्वमांन हटे ।  
रतकुंभ अमांन धाव रटे ।

—वही पृ० १९८

रत्नाचरककार के अनुसार इसमें दो दो सगण के चार पद आते हैं और पाँचवाँ पद सोलह मात्राओं का मिलता है तथा पाँचों पदों के प्राप्त मिलाये जाते हैं । हिन्दी अंतिम पंक्ति के स्वल्प को देखते हुए इसे सोलह मात्राओं की त्रिपदी मानना उचित जान पड़ता है । इसकी उत्थापनिका निम्न होगी —

मलया मलया' ललया मलया ।  
ललया ललया' ललया मलया ।  
ललया ललया ललया ललया ।

इस प्रकार की अन्तर प्राप्तयुक्त त्रिपदी अग्यन विरल है । इसके बाद श्रवण पर विचार करेंगे । उसे मैं अपने हँस से इस प्रकार लिखना चाहूँगा ।

## भबको

पूछी मां जायस जाय प्रमा ।

पितु ~~भब~~ न दिसे बब प्रमा ।

सब-राज न रैन न रैन मरा, बज राज न रैनम राज सभा ।

पुतर बर मांयो मूप पास ।

यह सो सुत जो तिन तिन पास ।

भीराबस सिद्धमन सिद्धमन रचव, राबस सिद्धमन बजवाच ।

रघुनाथकृत के अनुसार बंका गीत में प्रत्येक चरण में सोलह मात्राएँ होती हैं । प्रथम द्वितीय और चतुर्थ चरण में प्रास होता है । तीसरे चरण में बाहि में दो मात्राएँ, मध्य में दो चतुष्कृत और अंत में एक षट्कृत रहता है । तीसरे चरण में जो चतुष्कृत हो वही षट्ठ कर बोले चरण में धाये । इस प्रकार इसे चतुष्पाद रचना मिला गया है । किन्तु मैं इसकी गणना विपार में करता हूँ । तीनों चरणों में एक ही प्रास आता है, पहली दो पंक्तियाँ चार चतुष्कृत, सोलह मात्राएँ मिले होती हैं, तीसरा चरण आठकृत की बत्तीस मात्राओं की ऐसी पंक्ति होती है जिसमें अर्थों का पुनरावर्तन होता है । पुनरावृत्ति की यह पद्धति बिजल में बहुत प्रचलित है । बिजल के अधिकारि जन्म ललकार के साथ पढ़े जाते हैं जब उनमें नाद-दीर्घत्व और प्रत्याघात उत्पन्न करने के लिए इस प्रकार अर्थों अथवा अर्थियों की आवृत्ति की जाती है । बंको की उत्पापनिका निम्न होती —

बा ] बाबा बाबा बाबा गा

बा ] बाबा बाबा बाबा ना

बा ] बाबा बाबा बाबा बाबा बाबा बाबा बाबा ना

तीनों ही पंक्तियों के अन्त में एक ही प्रास ।

बिजल जन्मकारण में जोड़की से भी अधिक लम्बी रचनाओं को सोलह मात्राओं के आधार पर ही निरूपित किया गया है किन्तु मैं अपने तरीके से इनका अध्ययन करूँगा । सबसे पहले हम बंको पर विचार करेंगे ।

## भबको

बंका मैलियो सब दूत अर्पपर, बल बकलां यजदूत बकानो ।

बप सिनवार भूत बल बीठो रने सभा बजभूत रकानो ॥

—वही पृ० १७९

दुमेन में जिस प्रकार गीत के प्रथम चरण में तीन मात्राएँ अधिक आती हैं वही तरह यहाँ भी तीन मात्राएँ अधिक होती हैं । उसके बाद बाबा के आठ आवर्तन

होते हैं। सोलह मात्राओं पर यदि आधी है। 'अ ग' जतना अक्षर मध्य में बीच कर चतुष्पद पाठ करने से ठीक बलीला समीपा मात हाता है। यद्यपि विपल छन्द शास्त्रियों ने इसे सोलह मात्रा का चतुष्पाद छन्द माना है मी इसे बलीस मात्राओं का छन्द गिनता हूँ अतः मेरे निरूपण के अनुसार यह छन्द विपाद बन गया है। अग्य बलीस मात्राओं वाले गीतों के निरूपण की मेरी प्रयत्नि यही है, अतः उनमें भी चतुष्पाद छन्द विपाद के रूप में ही प्रदीत है। अब छोटी छानोर पर विचार किया जाय —

### छोटी छानोर

एकल दिन अमर सकल भिल बाया करी वरस छामस करतार ।  
 राज बिना भारी कुल रावस, भू रो कवस सतार मार ॥ १ ॥  
 इसा सखत मंडियो बसुराओं, संकट जी रो बरस सहां ।  
 दीनानाथ ! तुम दिन बुरी कियने जाय पुकार इ कहा ॥ २ ॥

—बही पृ० २८

इस मीत के प्रथम चरण में दो मात्राएं अधिक हैं। रचनापक्षकार के अनुसार तीन मात्राएं अधिक होनी चाहिए थीं किन्तु ऐसा नहीं है। छोटी छानोर मीत के चरण बिरुद्ध से इकतीस और तीस मात्राओं के होते हैं। इकतीस मात्राओं का चरण होने पर आठवीं संधि गान आता है व तीस मात्राओं का चरण होने पर आठवीं संधि गा जाता है। छानोर के चार प्रकार हैं। पहला बेनिया मीत है जो इकतीस मात्राओं का या सान्ध छन्द है और दूसरा है सोहको जो तीस मात्राओं का सान्ध छन्द है। इन दोनों के उदाहरण देने की आवश्यकता नहीं मान पड़ती। तीसरा प्रकार नामको छानोर है जो अट्ठाईस मात्राओं का छन्द है। उदाहरण देसिए —

### नामको छानोर

पड़ियो मुरसाव सेस इन ऊपर सकल राण धुत संधी ।  
 वरके मास बन बरी धाना मुख कुमलाना मांसी ॥

—बही पृ० १९१

प्रथम पंक्ति में दो मात्राएं अधिक हैं, उसके बाद चतुष्पद चलते हैं। सोलह मात्राओं पर यदि होती है। अग्य चतुष्पद में दो गुण दृष्ट हैं यद्यपि रचनापक्षकार इसे कोई लक्षण नहीं मानता है। उसने एक लक्षण बताया है कि इस छन्द में कहीं कहीं गान सनस अवश्य जाना चाहिए। छानोर का चौथा प्रकार बुद्ध साधोर है।

### बुद्ध साधोर

ब्याकुल बख सेस विभीषण बोले, कमसापतभू जोर कर ।  
 अनुपचरण बीरस सर बरबी, हिन बीबी उपचार हर ॥

—बही पृ० १२१

प्रथम चरण के दांते में दो मात्राएँ अधिक हैं, अन्त्यम छन्दोंस मात्राओं का प्रयोग हुआ है। छोटह मात्राओं पर यति है और आठवों छंदों की छीन मात्राएँ जहाँ लक्षित हों वहाँ मात्राएँ एक ही लघु रहता है। उदाहरणिका देखिए —

बाबा बाबा बाबा बाबा बाबा बाबा बाबा बाबा

रघुनाथरूपककार कुङ्कुम साधोर का स्वरूप निर्योचित करते हुए अन्त में दो लघु मात्राओं का विधान करता है परन्तु बिये पये उदाहरण में सर्वत्र बाबा न आता है। जो उसका वास्तविक स्वरूप जान पड़ता है।

पंजाबो

जरियो पल बनक इसी मन भारे बनक पनाक बड़ाय बरें।

महपत बाब खबर माहें बसुहा कुमरी तिको बरें ॥१॥

वाट हूत इसको पर्योग्या समित बाट कहुँ सरसात।

समनन बार भाग बसरथ लय, मैं बस रासु बई बरमास ॥२॥

—बही पृ० ७४

इसमें भी छोटी साधोर के समान ही छीन और इच्छीस मात्राओं का विकल्प चलता है। छीन मात्राओं वाले छन्द की पंक्ति पाम्प होती है और इच्छीस मात्राओं वाले छन्द की पंक्ति पामाम्प होती है। रघुनाथरूपक के अनुसार साधोर में मुक्त-लघु का भेद है जो इसमें नहीं है। अस्तुत यह कथन ठीक नहीं। यह भेद नाममात्र का बात होता है।

सिंहचर्चा

परपठ हय भ्रात बहु परनीचै भाग फिवावा मारिया।

डांवाँ हूत खोजा केरा पाछा बीर पवारिया ॥१॥

—बही पृ० ८१

पहली पंक्ति में दो मात्राएँ अधिक हैं उन्हें छोड़ कर इसका पठन विचारना होमा। इस छीन के विषम चरणों में छोटे साधोर की छीन की विषम चरण की मात्राएँ आती हैं। इसके सम पद छेरह मात्राओं के होते हैं और अन्त्य प्रास में रक्त होता है। उदाहरणिका यों होती —

बाबा बाबा बाबा बाबा बाबा बाबा बाबा बाबा

इसके बाद इसी से मिलती कुसती रचना सहचाल पर विचार करें।

सहचाल

सुत भ्रात कटे सक बीठ बने बन

बीस मुजान विचारियो बी।

निरबीमा जानर मैम गमुलर

बेब इसो मन मारियो बी ॥१॥

—बही पृ० १११

पहली दो मात्राएँ निरन्तर मात्रा सेमे पर दोष गान्त के छह आवर्तन होते हैं । अन्त में गान्ता की जाता है । गान्ता के आवर्तनों में कहीं-कहीं मात्रा की जा जाता है । रघुनाथकृष्णकार के अनुसार विषम चरणा में दस मात्राओं और आठ मात्राओं पर विषम होता है । सम चरणों में आठ मात्राएँ रग कर एक सम के बाद की शब्द होता है । इसके बाद अनेक नामक शब्द पर विचार किया जायेगा । अनेक अपभ्रंश यही ऐसा नहीं होंगे । समूचे द्वितीय पीढ़ी में यही एक मात्र अपभ्रंश रचना है । रघुनाथकृष्णकार ने इसका कोई उदाहरण नहीं दिया है किन्तु विचार करने पर जात होता है कि अनेक सान्धोर और पंजाना वीछा सीछ और इकट्ठी मात्राओं का छन्द है जो प्राप्त विहीन है ।

### अनेक

सबरी बन माहि पीठ तु छाचो उबर कठे दरसन अमिताय ।  
आधम जने सहोदर जाया विमलन नायक सेस लठे ॥१॥

—वही पृ० १४१

अब अरटियो गीत को परसें —

### अरटियो

एकथ विहाके मुनिराज अयोध्या कीसक आवन कीयो ।  
राजाहूत भिसे गिराजा, दो मल आसन बीयो ॥१॥

—वही पृ० १४

यह गीत अट्ठाईस मात्राओं वाला चतुष्पाद है । अन्त में दो पुंख होते हैं । रघुनाथकृष्ण के अनुसार मम का प्रयोग वर्जित है । प्रथम पंक्ति में तीन मात्राएँ अधिक हैं । आनको सानोर और अरटियो में इतना ही फर्क है कि वहाँ अरटियो में मम अर्थात् ममम वर्जित है वहाँ जोपड़। सानोर में उसका होगा आवश्यक है । अब अरट सिवा बाब —

### अरट

हम राख करे अकनूअ अयोध्या भेत बंधी निपटेय ।  
अंका पीठ लखोनस आसम जोप बड़ी अलहीय ॥१॥

—वही पृ० १२

यह सत्तावीस मात्राओं वाला चतुष्पाद छन्द है जिसके अन्त में मात्रा जाता है । पहली पंक्ति में दो मात्राएँ अधिक होती हैं । इसकी उत्थापनिका निम्न होगी —

। । । । । । ।  
बाबा बाबा बाबा बाबा बाबा बाबा बाबा

अब अष्टमुपस पीठ का विवेचन किया जायेगा ।

### अष्टमस्कन्ध

सरसर वन सिंकार ओसती सरसर कर सारंग सुन्मीर कर ।

बर सोहा बीठो बंग रघुवर पर बर पड़ियो बरष पर ॥१॥

—वही पृ० १४०

इस रचना का निर्माण लुङ्ग-साधोर में प्रास की मिश्रता के आधार पर हुआ है। इसकी बनावट समझने के पहले उल्थापनिका पर गौर करना सरल और व्यावहारिक होया।

सम सज्जदा बाबा बाबा बासल' सज्जदा बाबा बासल न

सज्जदा बाबा बाबा बासल' सज्जदा बाबा बासल न

पहली दो मागाएं चरण में बहिक हैं। लुङ्ग साधोर के अनुकूल ही इसमें भी चार मतिर्या हैं। अन्त में रघुनाथकृष्णकार के मठ में दो लल—किन्तु मेरे मठ में तीन ललल आवश्यक हैं। इसकी एक अत्यन्त विधेयता यह है कि प्रत्येक चरण का आरम्भ और अन्त लल से होना चाहिए, यही नहीं प्रत्येक मतिखण्ड के शुरू के दो लल लेकर ही उसके अन्त में आते हैं। इन चारों मतिखण्डों का प्रास भी मिश्रता है।

### हंसावली

प्यमररा मयल जमतरा पालग, सररा बचल सतरा साय ।

बररा विमल जगतरा जल्लल, गररा क्य लयो रघुनाथ ॥१॥

—वही पृ० १४०

पहली दो पंक्तियों में दो मागाएं बहिक हैं। यदि उन्हें बाध कर दिया जाय तो छेप इकट्ठीस मानाओं का कल्प रह जाता है। इसमें रा की—जो बिबल में पछी का प्रत्यय है बार-बार आवृत्ति होती है। साय में उल्लेखालंकार का प्रयोग रहता है। यह भी हंसावली कहलाता है। उल्लेखालंकार में किसी एक व्यक्ति के अनेक गुणों का बहुविध उल्लेख होता है। रघुनाथकृष्णकार ने ललल और वृष्टान्त इस प्रकार दिया है।

बहु विधि बरने एक को, बहुगुण लो उल्लेख ।

तू रन जगु'न तेज रवि, सुरगुर जलन विधेय ॥

अब इसी के मिसले-जुलते पाठ्यत भीत पर बिचार किया जाय। इसमें हर पंक्ति के पहले शब्द के आगे जानबूझी छन्द आता है। सम्भवत नाय-सौन्दर्य उत्पन्न करने के लिए ही इस पद्धति का उपयोग किया गया है। उदाहरण देखिए —

### पाठ्यत

गंगाधरि बुद्धिबोझा बल थाज ठागधि तबल बाजे रिजासूर ।

राम्भरि राम रावण कुब रोपे सागधि समान बड़े सजसूर ॥१॥

गाम्भरि भूत जोयल नल गैरल गाम्भरि जमर अपछर नल भाज ।

पाम्भरि प्रबल परबल दूर पेखल, गाम्भरि ज्योम सूर ज्योम विधाथ ॥२॥

—वही पृ० ११९



दिना की पद्धति है अनुकूल ही इसमें भी अधिक मात्रा है अगम्य रूप निर्धारण के लिए भी दूसरी बड़ी सूत्रा । पठन से ज्ञात होता है कि यह अनुकूल रचना है । रचनाकारी चर्यों को अलग रख यदि विचार किया जाय तो ज्ञात होता है कि उमरे तीन सप्तु बनते हैं । इन तीन सप्तुओं में बहीं सर्व सप्तु अनुकूल बनते हैं और कहीं असमतामस अष्टक बनते हैं । उदाहरण हैतव —

पाण्डवि प्र बल पर, पर सुर वेगल,  
पाण्डवि व्योम सुर छावा वि मोष

पहले चतुष्टय में समस, समस समस, गालस इस प्रकार चार अनुकूल पड़ते हैं और दूसरे में समसगालस, ऐसा पहला अष्टक आता है और इनके बाद लयाल, मास संविदा आती है ।

सप्तचर्यों

आया धुम भार सेसु आये, बंबक । गुणो सवीता ।  
बादल कुटो बिबंको पीसे छड़ी पमाई सोता ।  
रेमम भीता रे मम भीता किण बिब कीजिये ॥१॥

—वही पृ० ११८

पहली पंक्ति में दो मात्राएँ अधिक हैं । पहले दो हाते आपड़ा साभोर के हैं । तीसरी पंक्ति के अन्त में गालया है । तीसरी पंक्ति में अष्टक का उपयोग सम्बोधन सूचक छन्द के साथ सबसे पहले किया जाता है जिसे पुन बुझाया जाता है । इसके बाद भी मात्राओं का पद रचा जाता है जो टेक की तरह दूर हाते के अन्त में प्रयुक्त होता है । सप्त चर्यों के अन्त हातों का गठन इस प्रकार है—रे रंग छोटे रे रंग छोटे किण बिब कीजिये । रे सुम बाबै रे सुम बाबै किण बिब कीजिये । रे बूतचारी रे बूतचारी, किण बिब कीजिये आदि आदि । अब हम बीपक गीत लेंगे । इसके स्वरूप को आसानी से समझा जा सके इसलिये मैं उदाहरण को नये ढंग में लिख रहा हूँ —

बीपक

इसवर सीव सेस बड़ रच ऊपर तहक सारणी बड़े तुरंग ।

मगर हमक हल नरनारी

बर बंधो छोड़े बरवारी ।

मिस तागु दी सीप उमम ॥१॥

—वही पृ० १०९-११०

तीस अधिक मात्राओं को यदि नहीं गिना जाय तो पहली पंक्ति इकतीस मात्राओं की पासान्त है । बाद की दोनों पंक्तियाँ सोमह मात्राओं की चौपाई सी तुकान्त हैं । चौथी पंक्ति पन्द्रह मात्राओं का पद है जिसका प्राप्त पहली पंक्ति है । यह एक अति सुन्दर छन्द है । तीन अधिक मात्राओं को छोड़ कर उदाहरणिका यों होनी —

दादा दादा दादा दादा, दादा दादा दादा दादा'  
 दादा दादा दादा दादा  
 दादा दादा दादा दादा  
 दादा दादा दादा दादा'

पाप के साथ मास का और बीच की दो पंक्तियों में दादा के साथ दादा का प्रास मिलता है ।

### चोटियों

बार बार बार बार बार बार बार बार बार बार ।  
 ठठ सुण धुनधुनधुनधुनधुन धीम कोय उर बार ॥  
 हुं हूँ धिय धिय धिय धिय धिय धिय धिय धिय धिय धिय ॥१॥  
 मीने बाय बनाइक मारयो धाम खुन धिय धिय ॥  
 कावच बंध देवकी कामरु, वर बरबार बरेसा ॥  
 बाई बरबार सुत बरबार बर बार ॥४॥

—बही पृ० १२१-१२४

पहली कड़ी में छीम मायाए अधिक हैं जत इस स्वरूप-निर्घेस के लिए दूसरी कड़ी ही सेंगे । पहली दोनों पंक्तियाँ अष्टाईस मात्राओं की गायान्त हैं । अंतिम वरज में रघुनाथरूपक के अनुसार छत्तीस मात्राएँ मायान्त होनी चाहिए । जिसका प्रास भी अन्य दोनों पंक्तियों से मिलना चाहिए । जब चित्तवित्तास नामक विभिन्न मीत सेंगे ।

### चित्तवित्तास

बनुबारे । रे बनुबारे ।  
 सर एका नाम सिबारे ।  
 महाराजधिराज सुधीन मनांरा सारा बारज सारे ।  
 कोको श्रुप पुरी कैकंका दोवन दूर विदारे ।

रे बनुबारे ।

रभुराजा । रे रभुराजा ।  
 रिय मुक निर्धन बरामा ।  
 बीमास रहे वे भ्रात सुर्धन ताप पटे जस ठामा ।  
 देके राम पयोधर बामन सीत बिरह तन सामा ।  
 रे रभुराजा ।

—बही पृ० १२२-१२५

यह बारा जटपटी रचना है गीत है और चतुष्कर्मों से निर्मित है । नीचे उसे चतुष्कर्मों में—दादा संधियों में पूजनकृत प्रवर्णित किया गया है ।

मनु ] । पा रे । रे मनु । पारे ।

दा । दादा । दादा । दादा । दा

सर । ए का । बालसि । पारे । रे मनु । पारे ।

दा । दादा । दादा । दादा । दादा । दादा । दा

महा । राजवि । राजगु । श्रीव मालीय । सारा । कारय । सारे

दा । दादा । दादा । दादा । दादा । दादा । दादा । दादा । दादा

। कीयो । सूप पु । रीके । कंभा । बोवण । दुरवि । पारे । रे मनु । पारे

। दादा । दादा । दादा । दादा । दादा । दादा । दादा । दादा । दादा । दा

रपु । राजा । रे रपु । राजा । —

दा । दादा । दादा । दादा । दा

रिप । मुकमि । बंर द । राजा । रे रपु । राजा । —

पो । मास र । आवि आवि

दा । दादा ।

इस प्रकार वे प्रस्तुत छंद की चतुष्कम व्यवस्था हो सकती है । रघुनाथरुद्र के अनुसारपदकम हो कर प्रयुक्त हों । उसके मध्य में एक गुह बधर का संवाचन रसना चाहिए । इसके बाद बीसह माभाओं का समास पद होता है । तदनुवाच करटिया पीठ का एक टाका आता है, जिसका अर्थ प्रारम्भ के प्रथम पद के सार के चरम में ही होता है । अब निसाभी संज्ञक नीतों पर विचार किया जाय —

#### बुद्ध निसाभी

सिम बडा सामल सलम पीरे इक वासा,  
तसकर बने उसुक रपु ऊवा किरवासा ।  
पही न छेडे पारको बिहु बरम बिवासा  
ऐसा राज करे बबभ बरबर नृप-वासा ॥

—बही पृ० २७०

संवाचनिका विनय होगी —

दादा दादा दालदा' दादा दादा नः

यही प्रत्येक चरण में तेरह और बस कुस ठेईस माभाए हैं । तुम्हारे में दो गुह हैं ।

#### परबत निसाभी

बुद्ध प्रताप जाहू बिता पसरै बबनी पर ।  
द्विपु कमल फूसी बिहव भात बरु हरभर ॥  
निस बनीत कहु सेस नह तह के बुल ठोमर ।  
सूरजकुल सूरज तपी बड़ तेव सियावर ॥

—बही पृ० २७०

उत्पापनिका —

बाबा बाबा बालदा बाबा बाबा लल

गुड निसाणी के सबूत ही इसमें बोहे की बर्तानि और वन माचाए हैं । गुड निसाणी के बल में या ना इसमें उसके स्थान पर लल होते हैं ।

निसाणी गम्बर

जिध पुर मुपराजी बजरन गाजी केवस मेव भुरायवा ।  
सब रहे ठिकावे हुकूम प्रमाणे मास्त मते चलाइ वा ॥  
काभाव बराने भय नहीं बाने भय बुज बीना सार्यवा ।  
रानव राबिन्दा अबबति नवा ऐसा राज दिया रवा ॥

—बही पृ० १७१

इसकी उत्पापनिका निम्न है—

बा बादा बादा बादा बाबा' बादा बादा बादा या

यही छंद गुजराती में कुछ अन्तर के साथ पद्मावती के नाम से प्रचलित है । इस और बाठ माचाओं में प्राप्त फिर बीवह माचाए सुकांत पव । कुछ १८ माचाए । गुजराती के कवि बसपत राम द्वारा दिया गया सद्यः उदाहरण है—

बघ बाठे बाठा गरि अनुप्रासा उपर कता बीदे बादे  
पद्मावती नामे छंद सुकाने गुणबन्ता कबिबन गावे ।

—बसपत, विगत पृ० २१

गम्बर निसाणी में और पद्मावती छंद में मात्र इतना ही अन्तर है कि निसाणी में बरबात में तीन गुरु होने का विधान है ऐसा कोई बन्धन पद्मावती के लिए नहीं है ।

निसाणी पैडी

जिन रहसत सात सुका सरसाई सातू ईत जीत नहकाई  
निबदळ वजन बनम कर बीरव बेरत नगर बरंदा है ।  
वट रिठ ही सकल कुसुम नम बरसत वट ही बास उपार्जे हूरवत  
बाछ भास लवा मग भाया पावस पुर शरंदा है ।

—रघुनाथ कपक गीतारो पृ० २७२

इसकी उत्पापनिका इस प्रकार होगी—

बा] बादा बादा बादा बादा' बादा बादा बादा बादा  
बादा बादा बादा बादा बादा बादा बादा बा

इसके प्रत्येक पद में बठारह छोटह और छोटह माचाएँ समाकर प्राप्त दिखाया जाता है और फिर अन्त में मयम सक्षि बीवह माचाएँ कही जाती हैं ।

निसाणी सिर सुली

माथे मोर निहारे महिफल ऊपरे,  
मूयक सीस न धारे घात मंजारिया ।  
माहोमाह म मारे बँर बुग्यादरा  
ऐसे तेज अकारै राजे रकुपति ॥

—वही पृ० २०३

बारह मात्राओं पर यति और प्रास, फिर नी मात्राओं का पद और रचा जाता है ।  
उत्पापनिका होमी —

दादा दादा दादा' दादा माममा

निसाणी सोहणी

फिरै नचीता ग्वालिया बायाँ सिध करै रसबासी ।  
निपटक एग पिल्लम मू दाबालेण सगाकर आसी ॥  
बिड़िया बाब बिहू म बन बाबा ॥३ हूँ दे तानी ।  
बने परीबा बन् दूचक ऐसी बाक सिवावर बासी ॥

—वही पृ० २३४

उत्पापनिका इस प्रकार होमी —

दादा दादा दादा' दादा दादा दादा गाना

पहले यति छंद में दोहे का पहला यति छंद उसके बाद चार चतुष्कम  
और पापात्र है ।

निसाणी रूपमाला

बामन चार बेर के बकता जायम बुट्टी जाल पुरवर ।  
साहुकार सको बजबंभी बुली जात अनेप कुरंदर ॥  
सारा ही सुखपुर बिचारी निरत और नरेस उरंदर ।  
ऐसी राम प्रसा जिस जाये बेसत आये सहज पुरंदर ॥

—वही पृ० २७४

यह एक बलीस मात्राओं का छंद है जिसकी अंतिम संवि नामत होती है । चारों  
चरणों में प्रास ।

निसाणी माह

जाम जाम जम होम बेद जुन रिप मजिराम ररंवे ।  
दयाबंत अत साह योम बिर्म हित परपीड़ हरंदे ॥  
पवन अवर बिहू से सुली अपारां बन बूह पुर भरंदे ।  
अदस गीति अगजीत अयोध्या रधुवर राज करंदे ॥

—वही पृ० २७५

उत्पापनिका — बाबा बाबा दादा बाबा' बाबा बाबा गाया

यह सोलह और बारह कुल मिलाकर अठ्ठाईस मात्राओं का छंद है अन्त में दो नून और चारों चरणों में प्रास ।

निसाणी सीमर

अटसीसु भंस तथा बिठवाटी बिग्रह रूप बरारा है ।

धू नामें जाय करे निबराणां भि बन बिके बरारा है ॥

बर बर का हूँ अहुँ बक धूर्ने बिस बल पड़े बरारा है ।

कबसत्पानेव बसी का रैधा ऐसा ठेक करारा है ॥

—वही पृ० २७७

उत्पापनिका —

वा] बाबा बाबा बाबा बाबा बाबा बाबा बाबा गा

बठारह और बीसह — कुल बत्तीस मात्राएँ । प्रासांत में मयज ।

निसाणी बुमिसा

बंड बबा के होठ बार वनुरका बार ।

पम छ सास पुनबी पुकार छंद महरा सारा ।

ओरी परबित हरम नार नर ओरी नार ।

ऐसा राज करे उबार कबसल कंबार ॥

—वही पृ० २७८-२७९

उत्पापनिका — बाबा बाबा बाबाबाबा बाबा गास

ऐसी बार पंक्तिमें का एक छंद होता है । पंक्ति के मध्य में बाये गास के बाये मति तथा इस बात और पंक्ति के अन्त में बाये गास का प्रास । इस प्रकार इस छंद में आठ प्रास । जैसे इसकी बनावट ठेईस मात्राओं के रोसा छंद बीसी है और बीज में पास नाम के लिए बूझरी अष्टकस सीमि बातबामबा करनी आवश्यक है ।

निसाणी बार

छेनें छसि सूरज हन्य सिब बह्यादि बह्या वृ बारका ।

बंयै बुय रसय हवार सू हरिगुन भित सीव हवार का ॥

कह कह सह बका मंझ कहे पंडित जन नारायण का ।

वरणन कर कासु वरगळ कबसलनिह राजकंबार का ॥

— वही पृ० २७८

उत्पापनिका इस प्रकार होती —

वा] बाबा बाबा बाबाबा' बाबा बाबा बाबा लना

पन्नाह और पन्नाह कुल मिला कर सीस मात्राएँ । प्रासांत में रगज ।

अष्टकस रचनाएँ अब समाप्त हो गई हैं, अठ निकल रचनाओं को बिचापर्व लिखा जा रहा है । बिगस यीतों में निकल रचनाएँ अपेक्षाकृत कम हैं । सबसे पहले हम बोबो नामक भीठ पर विचार करेंगे ।

पहली पंक्ति में तीन मात्राएँ अधिक होती हैं। उनके अन्तर्गत सारा के मिथुन वाला झूलना ही जान पड़ता है। हाँ, इसकी एक अपनी विशेषता है और वह यह कि इसकी पहली पंक्ति के अन्तिम शब्द से ही दूसरी पंक्ति का आरम्भ होता है। इसी प्रकार तीसरी पंक्ति के अन्तिम शब्द से ही चौथी पंक्ति का आरम्भ होता है।

साधारण

सुन बस अंगर कसह, सुभट सरसाविया,  
धरक जलपाल तिम त्रिभुट बन पाविया ।  
जाल बांधे पुरा अनुज सलसाविया ।  
अंतवष मर्कवस समर सत्र आविया ॥१॥

—बही पृ० १०३

पहली पंक्ति में तीन मात्राएँ अधिक हैं अथवा अनुन रचना कामिनीमोहन या मरनाबतार कही जा सकती है। चारों पंक्तियों में एक ही मात्रा है। अब यह मात्रा मात्र दो पंक्तियों में हो, उस अप्रसंगिकता गीत कहा जाता है। अब इनके बाद हम थोटियास गीत पर चर्चा करेंगे।

थोटियास

सुने सुपनछा बैन बड़ हाँकिया साकुरा,  
छरदूपर त्रिछर वस जाल थापा,  
पुर तन पहिरिया ॥  
जल छवता बका आविया अवाकी,  
जावता असुर रघुबीर जापा,  
कोप लीयण किया ॥१॥

—बही पृ० १११

पहली तीन मात्राओं को बाद करने पर गुण्यन्त झूलने की पूरी पंक्ति आती है। इसके बाद बालवा बालवा वाली एक अतिरिक्त पंक्ति आती है। इसी प्रकार की रचना की एक आवृत्ति फिर करने पर पुरा पद होता है। बीच झूलना पंक्तियों में प्राप्त होता है, इसी प्रकार दोनों अतिरिक्त पंक्तियों में भी प्राप्त जाता है। उत्पादनिका यों है —

बाल ] बालवा बालवा बालवा बालवा  
बालवा बालवा बालवा वा  
बालवा बालवा ।

यह हुआ जाया अंध यदि इतना ही और बढ़ा दिया जाय तो थोटियास गीत बन जाता है। अब सप्तकक रचनाओं पर विचार किया जाय। सबसे पहले प्रौढ किया जाय।

प्रौढ

ममके मुकाया करे मिथुता । आविया अवसेस ।  
सुन अनुज साज समुत सारा । मिले लख मिथसेस ॥१॥

—बही पृ० ८३

रघुनाथ कपककार के अनुसार पाँच, चार, तीन, चार इस प्रकार से विषम पदों में सोमह माया होती है । तीन, चार और तीन इस तरह इस मायाएँ, अन्त में मुक्त-बन्धुमुक्त प्राप्त सम पदों में होती है । विचार करने पर ज्ञात होता है कि यह दो प्राप्तमुक्त चरणों वाली एक सप्तकम पंक्ति है । मेरी दृष्टि से इसकी उत्थापनिका यों होगी —

वा ] बासबाबा बासबाबा बासबाबा बास

अन्त बास के बाव की दो मायाएँ अनन्तर रहती हैं जो बाव की पंक्ति के प्रारम्भिक निस्तान वा के साथ मिलकर सप्तकम पूरा करती हैं । कभी-कभी बास-बाबा के स्थान पर लडा-बाबा आता है । ग्रीक के दूसरे प्रकार में पंक्ति में प्रारम्भिक निस्तान वा नहीं होता, मात्र यही अन्तर है । उदाहरण नीचे —

भीतरकर पुच्छत ऊपर । छठे रज्जुवर बाप ।

सहस्र भय किम असम सहसा । सकल मेटे आप ॥

—वही पृ० ८५

इस भीत को सोरठिया पीत भी कहते हैं । अब एकद्वारे लेंगे ।

एकद्वारे

सुन सेसरे सुन सेसरे, मिलके कई उपसेसरे ।

बनबास बाबय सेसरे, हम बासियो बबसेसरे ॥१॥

—वही पृ० १०७

उत्थापनिका—बाबाबाबा बाबाबाबा । बाबाबाबा बाबाबाबा

यह बाबा हुआ । प्रत्येक चरण पीरह मायाओं का, बाबाबाबा के दो बावर्तन चरणान्त में बाबाबा तथा चारों ही चरणों का एक प्राप्त ।

ऐसी

उठ नाम कबसल माते आपें जुने छीरप पाव लाये ।

बसै बायक बीप ॥

कैकई बरनाम कीची, दोष मोटी मनै बीबो ।

हुबो सारै हीन ॥१॥

—वही पृ० ११९

उत्थापनिका—वा । ] बासबाबा बासबाबा बासबाबा बासबाबा

बासबाबा बास

यह बाबा सब हुआ । पहली पंक्ति में अन्तरप्राप्त और उसके बाव बासबाबा पाक की एक छोटी सी पंक्ति जिसका प्राप्त ऐसी ही बाव की पंक्ति के साथ मिलता है । ऊपर दिये गये उदाहरण से प्राप्त-योजना स्पष्ट हो जायगी । बास के बाव की चार मायाएँ अनन्तर रहती हैं । पहले पद की पहली पंक्ति में दो मायाएँ अधिक, बाकी बाबय पीरह मायाएँ ।



भाग

आयो भरव भवध भर्मन, भंडे पावही उतमंग ।

रहयत कीध अत उछरंद, हम आवास जाय भर्मन ॥१॥

—वही पृ० १२२

रघुनाथरूपककार एक चतुष्टय और दो पंचकृत—कुल मिला कर बीसह मात्राओं का विधान करता है । अन्त में गुण-सम्पु और चारों पंक्तिओं में प्राप्त । यदि दो दो पंक्तियों का प्राप्त मिले तो उसे अरण प्राप्त भीत कहते हैं । भाग की उत्पत्ति पनिका होगी —

दादादादा दादादादा

धमात

दावम सदा दिगन्त कण बंडक बन रमै ।

मिरसज सुपनछा तिल नाम मरक भर्मन में ॥

सीतानाथ आभस सार बाई बिज सरी ।

मास सकाति अद्भुत मरम सुनि रत रंजन में ॥१॥

—वही पृ० १२५

धमात भीत के प्रत्येक अरण में लेखीत मापाए होती है । अरण के अन्त में लघु-गुण से चारों में प्राप्त । इसकी उत्पत्ति पनिका होगी —

दादा ] दासदादा दानदादा दानदादा

ऐसी चार पंक्तियाँ होती हैं । अन्त्य दासगा में दो मापाए अनन्तर रहती है ।

अब मंदर गुआर भीत को परखें ।

मंदर गुआर

हनु मिलत घुर हुर बीध तिर ह्य रिपु बजरंग बुबो छपरब ।

अने रघुवर बसव बनवर सीत सुब सारी ॥

तो बरु अरिमण ठेग कण कय हरप माक मिसल ह्य ह्य ।

बिकट पूरु मनार्बछत, गहर कुन पावै ॥१॥

—वही पृ० १५०

उत्पत्ति पनिका स्पष्ट है —

दा ] दासदादा दानदादा दासदादा दासदादा

दानदादा दानदादा दासदादा दा

बहु हुआ अवशिष्ट । इसमें पहली पंक्ति के दोनों यत्तिलब्ध प्राप्तपुक्त दूसरी पंक्ति और चौथी पंक्ति में भी प्राप्त । दूसरी पंक्ति में दा के बाद के मदा अनन्तर है और उसके पीछे की पंक्ति के दा के साथ मिल कर सप्तकृत की रचना होती है । अब चौथी पंक्ति मिला पाव ।

## कैवार

विषमक बनय बाब बाबस, ठहकिया सेबी ।

इक करण सो बिच तिसा भातुर बरि ब्रुम बैसी ॥१॥

—बही पृ० १६१

उत्थापनिका सरल है —

वा ] दासदादा दासदादा' दासदादा पा

ऐसी बी पंक्तिमें से एक पंक्ति बनती है । तुकान्त में वो पुष्ट ।

## अठ्ठाची

काई कु मचासी बैर कावा, सकबीठ जसेब सावा ।

कियन वो खस कु म सावा, बाप सावा बीस ॥

जाव जोयन बंद बाबा प्रभुन वन्ही करे प्राबा ।

बहुन जावन होम बाबा, बपि बराबा रोस ॥१॥

—बही पृ० २०६ २०७

पहली पंक्ति में बार मात्राएं अधिक हैं । येव दासदादा दासदादा इस प्रकार से सप्तकत के तीन मतिखण्ड हैं और चौथा खण्ड दासदादा मात्र है । यह है अर्थ रचना । प्राप्त की योजना सरल है । उत्थापनिका देने की आवश्यकता भी नहीं जान पड़ती ।

## काछी

रबुवठ बपतमिन्न उपसास राई, धामनी बिहु ओर भाले

तन बिचाले ओ बरे ।

बिठ जाव वाली गात वाली बर छयाई बीर ॥

बुरे बिचाले केक कासी धचन वाली ऊपर ।

बीछ वमाले तीन टाई बर बगाले बीर ॥१॥

—बही पृ० १४३

पहली पंक्ति में बार मात्राएं अधिक होती हैं । वैसे मंझाराम ने पांच अधिक मात्राओं का विचार किया है । इन अधिक मात्राओं को बाहर करके ही उत्थापनिका वय की जा सकती है, जो निम्नानुसार होगी ।

वादा] दासदादा<sup>१</sup> दासदादा<sup>२</sup> दासदादा<sup>३</sup> दासदादा<sup>४</sup> दासदादा<sup>५</sup>

वा] दासदादा<sup>४</sup> दासदादा<sup>५</sup> दासदादा<sup>६</sup> दासदादा<sup>७</sup>

वा] दासदादा<sup>७</sup> दासदादा<sup>८</sup> दासदादा<sup>९</sup> दासदादा<sup>१०</sup>

वा] दासदादा<sup>१०</sup> दासदादा<sup>११</sup> दासदादा<sup>१२</sup> दासदादा<sup>१३</sup>

इसमें वासना के साथ वासना प्राप्त मिलता है, वास के साथ वास का प्राप्त मिलता है और एक से बारह स्थानों में भी प्राप्त रहता है । अब अकूटबंध गीत में ।

### अकूट बंध

कुम्भ प्राप्त मन्त्री मुख कटे, उर ओष रावण कूटे ।  
 भय शयन महर्षे बटे मरणों, सजे पण पमसाण ॥  
 अथ ओष वायव्य वाजिया' सश रोग वगैर साधिया ।  
 कस कयर यककर गहर कर, धर पजर वायव्य सयर पर ॥  
 अहे जैसे रच पर दुर अमर, मठ मगर निसर रण मर ॥  
 मित गहर मूर्छा मुहर भर, बज पजर गूयर मिदर भर ॥  
 गज नीर फरहर जुल अयर मुक अनुर सोयस अयनशर ।  
 धर अविद्यो आराध ॥१॥

—बही पृ० २१९

पहली तीन पंक्तियों का उत्थापनिका इस प्रकार होगी —

वा वासवावा वासवा' वा वासवावा वासवा  
 वा वासवावा वासवावा' वासवावा वास  
 वा वासवावा वासवा वा वासवावा वासवा

इसके बाद भी चार पंक्तियों तक इसी तरह से संघियां चलती हैं किन्तु प्रभाव विरोध को मध्य में रखकर उनके मध्य बहुत और लघ्वन्त रूप हो जाते हैं । प्रत्येक संधि में प्राप्त है और जब ये चार पंक्तियां भी समाप्त हो जाती हैं तो एक बारह मात्राओं की लघुपंक्ति आती है । इस समूह कीट में प्राचीन प्रयोग में विशेषता है जिसे मूल उदाहरण के सहारे जाननी से समझा जा सकता है ।

इसके बाद हम वितर्हिनीय गीत की विशेषताएं देखेंगे ।

### वितर्हिनीय

ले हुकम सीता खबर सैबन सकल राख्य संत ।

सह संक हिंस सन उदयसंयन, हासियो हुनवन्त ॥

तो बसवत भी बसवत बारध साधये बसवत ॥१॥

—बही पृ० १९३

उत्थापनिका —

वा] वासवावा वासवावा' वासवावा वास <sup>१</sup>

वा] वासवावा वासवावा' वासवावा वास <sup>२</sup>

तो वा] वासवावा वासवावा वासवावा वास <sup>१ ४ ५</sup>

उत्पापनिका पर घोर करने से सप्तकस का बिम्बास समस्त में था जाता है । एक से पांच स्थानों पर एक ही प्रास जिसमे तीसरे चौथे और पांचवें स्थान पर एक ही अक्षर का प्रयोग । तीसरी पंक्ति का आरंभ सबैक तो के साम होता है ।

सुवन

मंगरी रिम सेन बाओ, मुमर बारक कान नाओ ।

हल सहे ॥ येन बाओ, मुस बाओ मुस बाओ ॥१॥

—वही पृ० २०३

उत्पापनिका — वाक्यादा वाक्यादा

ऐसी चार पंक्तियाँ, जिनमें एक ही प्रास और चौथी पंक्ति में बीप्ता ।

माचरी

मियका महिपती भी बबली कीच मिय बारम्भ ।

तेहें सममती भी सिद्ध फुरमाय बाहु प्रलम्भ ॥

कर कर न्यमती भी खोपै खैब हृष बस बन्ध ।

नामर मोवती भी बर बर बुरत छार बधम्भ ॥

बर छार मोवत बुरत बानत तीस पट् बबरेख ।

बैष पीठ पोस बिसाल छोरन बने बिच बिधेय ॥

बस सल्ल पीठ पठाक फकत बरन बहुमुखवेप ॥

मम जनकपुर सूर बसुर मानव पडै संभूत पैख ॥

—वही पृ० ७०

यह एक सुन्दर रचना है जिसको पहली चार पंक्तियों का संविग्रास नीचे अनु—  
सार होना—

बाबाबास गा — गा७ बाबाबास बाबाबास

अधिक स्पष्ट करने के उद्देश्य से किसी सरल पंक्ति का उदाहरण लिया जाय —

ना गर मो ब ती — बी७ बर बर बुर त छार रज स य

बा बा बा स बा — गा७ बा बा बास बा बा गा ल

एक अन्य तरीके से भी इसका पाठ किया जा सकता है—

बाबाबास गागा —७ बाबाबास बाबा बास

अर्थात् मात्र अक्षरा भी ही पांच भागों का प्युठ बन जाता है । आने की पंक्तियों की रचना सरल ही है, अतः जब बचपन भीत लिया जाय ।

यजपत

कुंभज कह कहैं भी सिक्कर सुय सहे ।

बैषे पग बहे को पैसो बन पड़े ॥

बन बहे गेला बेग बिच में रहे राखस रोस में ।

तन तु न नाम वर्यय तियरो करय ओवन कोग मे॥

तो हुनो मङ्गल धार नामव भिडे प्राकम भारिवा ।

विमगीत दूर प्रमार बाही जगो ओव लहारिया ॥१॥

—वही पृ० १२२

इसकी पहली दोनो छोटी पंक्तियाँ आधरी के लक्षण हो हैं । ज्ञापनाविका है

जी

दादादादा दा — गा० दादादादा दा — — ७

दादादादा दा — गा० दादादादा दा — — ७

अथवा इसे दूसरे ढंग से इस प्रकार भी किया जा सकता है।

जी

दादादादा दादा — ७ दादादादा दा — — ७

दादादादा दादा — ७ दादादादा दा — — ७

तद्वत्परान्त आने वाली चार पंक्तियों की ज्ञापनाविका यों होती —

दा ] दादादादा दादादादा दादादादा दादादादा दादादादा

इन चारों की चार पंक्तियों में एक विशेषता है और वह यह कि दूसरी पंक्ति के अन्तिम कुछ ध्वनों की पुनरावृत्ति तीसरी पंक्ति के आरम्भ में होती है ।

निम्नलिखित तिहुवली

रघुवंश नामक श्रीठ त्रिपरी कवच बरये साय ।

कुल साय बरये शीत ओ नर उन्म बाये पाय ॥

वय पाय अग्ये कवच साये उत्तर भारय छेह ।

मय छेह उत्तर करै विजयी बूब सावग मेह ॥

—वही पृ० २७५

ज्ञापनाविका दा ] दादादादा दादादादा दादादादा दादादादा

इसकी विशेषता यह है कि इसमें पहली पंक्ति के कुछ अन्तिम ध्वनों की आवृत्ति दूसरी पंक्ति के आरम्भ में होती है । इसी प्रकार दूसरी पंक्ति के अन्तिम ध्वन तीसरी पंक्ति की शुरुवात में प्रयुक्त होते हैं । सभी पंक्तियों के लिए यह नियम सामू होता है । हाँ, इस आवृत्ति में बहुधा ध्वनों का क्रम बदल जाता है ।

रघुनाथ-कवचकार ने इन शीतों के अतिरिक्त अनेक कुम्भसियाँ भी दी हैं । अब हम पर विचार किया जाय । सबसे पहले साय उलट को लें ।

साय उलट

मादू बिस बरते जलन रायबबासे राज ।

सीस समायें सोहका कर नन बंछत काय ॥

काज मन बँछता पूर सपसा किया ।  
 भबन हरि कुरम बन बेस कितरा दिया ॥  
 कीम नर निकटक बीत रावन जिसा ।  
 यमी पग फीस बिम, बने जाटू दिसा ॥

—बही पृ० २७९

पहले बोहा और फिर मदनान्तार बोहे के अन्तिम यतिवर्द्ध की आवृत्ति तीसरी पक्ति के आरम्भ में और बोहे का प्रारम्भिक अक्ष मदनान्तार का अन्तिम अक्ष बनता है । इस आवृत्ति या सिंहावनोक्त में छन्दों का क्रम उलट जाता है । इसके बाद कुछ क्षणों का अक्षर-विच्छेद होता है —

राजवट

सियवर राज सयापिया, पाट बबब सब देख ।  
 कुस नै समप कृतावती, बँबब सुता बिधेय ॥  
 बँबब सुता बिधेय होय पुत भरत सुवसिय ।  
 ससक नै सससनी पुकर नै पुकर बसिय ॥  
 बँसी भिसमन उमय बँबब नगरी बँबब नै ।  
 बन्नेय बन्नेयती, सवबन सुता सुबब नै ॥  
 कनबन सुबाह सभुपात कर पति भबुरा इम बापिया ।  
 इन भात मँछ कह जाठ ही सियवर राज सयापिया ॥

—बही पृ० २८०

यहाँ बोहे के बाद अल्पम आता है और पहले की तरह ही सिंहावनोक्त और कुसली होती है । रत्ननाथ-कपककार ने कुसलियों का कुछ कुसलियों नाम से एक भेद दिया है जो हिन्दी में बहुप्रचलित बोहा और रोका के योग से बनने वाला कुसलिया है अतः उसके विवेचन की कोई आवश्यकता नहीं जान पड़ती । अब बोहाक में —

बोहाक

कपक यह रत्ननाथरी पिबन बीत प्रमाथ ।  
 कहियो भबुराम कवि, कोबनगर बग बाथ ॥  
 कोबनगर बग बाथ बास पूषी बिसतारा ।  
 बमसीराम सुबाब जात सेबन कुमारा ॥  
 बँबब ठारै ससक बरस सेसछो बबाणों ।  
 सुकक मावनी बसम बार सधि हर बरतानों ॥  
 यत अनुसारे में कह्यो, सुबकर भिबो सुबाथ ।  
 कपक यह रत्ननाथ रो पिबन बीत प्रमाथ ॥

—बही पृ० २८१ २८२

इसमें बहुत रोड़ा निरन्तर गतिगत रोगों की ओर आता है गुण रोड़ा ।  
गुण के बाद की पहली गति अगिम्ब गति की भाँति ही गति जाता है । प्रथम १) का  
चोपा परण जाने का रोगों की गति के कारण में आता है । अब कुटनी  
की जाय —

### कुटनी

कोई तीरथ कोट, कोट गोदान नाम दिग्गम्य ।  
अथ कर रण कोट कर के विवाह विष्ठा ॥  
विष्ठा जाहे कोटपो वृ विष्ठाका गये ।  
माय गायना मुनक दुर्गा उके का बरे ॥  
राम राम एक तरफ दुर्गे तरफ गढ़ दीर्घ ।  
उऊन को सय तुन कोट जा तीरथ कोट ॥

—बही पृ० २५० २८२

रघुनाथ रूपरार के अनुसार इस रूप में प्रथम भाषी रूप होता है बा  
के बार पर काम्य रूप के होते हैं । भाषी के बोधे पर का अगिम्ब रूप नाम्य रूप  
के प्रथम पर में आता है और भाषी रूप का प्रथम पर काय रूप के बोधे पर के  
अन्त में समेट कर आता है ।

अब हम वागिक रूपों पर विचार करेंगे । विषय दोनों में सबसे अधिक  
संख्या वागिक रूपों की है । रघुनाथ रूप के अनुसार सात भाषी में वागिक आधार  
है किन्तु कुछ वागिक रूप भी हैं । मात्र एक ही वागिक रचना अर्थात् रूप  
में मुझे मिली है और वह है सपत्नी । अग रचनाओं का वागिक रूपों की वृत्ति से  
विशेषित किया जा सकता है और हमने ऐसा किया भी है ।

### सपत्नी

अथ ऊँछे सवायो सायो मुने रीम रागनामा  
बहाली छोह म छोयो चली चोस वन ।  
कलेली आवायो लेय रटनका सभोर काये  
कट्टका रामरी माये आयो क भवग्न ॥१॥

—बही पृ० २००

रघुनाथ-रूप के अनुसार इस गीत के विषय धरणी में सोसह वर्ष और सय  
वर्षों में सोसह वर्ष होते हैं । इस तरह एक द्वासे में साठ वर्ष होते हैं । प्रथम द्वासे के  
पहले अरण में उसीस वर्ष होते हैं । किन्तु बिये गय उवाहरण में माय अठारह वर्ष  
ही हैं । अर्थात् सय से न जाने वह भूल कीसे हो गई । इसमें सयन-रासना भवग्न-भवग्न  
और भवग्न-भवग्न का प्रयोग निमित्त है । इसका अर्थ यह हुआ कि इस रचना में दो  
या दो से अधिक सय एक साथ नहीं जा सकते । वागिक रूपों में यदि प्रत्येक अक्षर  
या वर्ण की मात्राओं का हो तो उवाहरण में सुविधा रहती है प्राक् प्रत्येक पदपर

संवि को बांठ मांझाओं का कर दिया जाता है। इसकी पद्धति यह है कि प्रत्येक सन्धु को दो मांझाओं का करने के बदले उसे दो सन्धु की तरह ही उन्मथारित किया जाय किन्तु उसके दाढ़ धाने वाले मुख को प्लुत कर दिया जाय। यह प्लुत दूर न हो जाय इस दृष्टि से दो या दो से अधिक सन्धुओं को एक साथ लाने का निवेद्य किया जाता है। इस तरीके से यदि कहीं सन्धु आता भी है तो बाढ़ वाले मुख को प्लुत करके कमी को पूरा कर दिया जाता है।

इसके अलावा धन में बांझिक छन्द के रूप में किसी अन्य छन्द को लेना चाहता हूँ तो कहता है कि निश्चयपूर्वक कुछ भी कहना कठिन है। ऐसा एक छन्द है लहनाम। इस पर हम बांझिक छन्दों के सम्बन्ध में पीछे विचार कर चुके हैं। इसका बांझिक छन्द के अनुसार पाठ हो सकता है। इसका प्रत्येक बज्जर दो मांझाओं के समान उन्मथारित हो सकता है। इसकी संघिपां चतुष्पद न होकर त्र्यपद हैं। इसको इस प्रकार से पढ़ा जायगा।

सुत ] भाठ क । टे सक । बीट न । बें नक ।

बाबा ] बा बा बा । बा बाबा । बाबा बा । बाबाबा ।

बीस नु । बाण बि । बारियो । बी ।

बाबा बा । बाबा बा । बाबा बा । बा ।

गिर ] बीजा । कानर । न यम । गुलर ।

बाबा ] बाबा बा । बाबाबा । बाबाबा । बाबाबा ।

बेख ह । छों मग । बारियो । बी ।

बाबाबा । बा बाबा । बाबाबाबा । बा ।

जब विमर्शित में बीरे-बीरे बोलते सन्धु को पुरु करना पड़ता है वह कम से कम सहा तो नहीं बनता।

यहाँ डिगल के छन्दों का विवेचन समाप्त होता है। इस अध्ययन से विमर्श गीतों की निम्न विशेषतायें ज्ञात होती हैं।

- (१) विमर्श के प्रायः सभी गीत बांझिक हैं।
- (२) विमर्श-गीतों के प्रमेयों के आधारों में प्रास-वैविध्य प्रमुख है। केवल प्रास-पद्धति में विचलता होने से तबे छन्दों का निर्माण विमर्श की अपनी विशेषता है।
- (३) सिद्धान्तोक्त अथवा पुनरावृत्ति की ध्वनिमा दूसरा कारण है।
- (४) बीप्ता का प्रयोग अवैज्ञानिक कम हुआ है, पर विमर्श छन्दों की तुलना में काफी है।
- (५) कहीं-कहीं भी रे, तो बाहि छन्दों के प्रयोग का विधान है।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि इन गीतों का निर्माण प्रभावोत्पादकता की दृष्टि से किया गया है। बीप्ता, पुनरावृत्ति प्रासों का वैविध्य रे, तो, बी बादि ध्वनियों का प्रयोग सभी का उद्देश्य भाव-सौन्दर्य की अभिवृद्धि ही है, जिससे गीत के



प्रभाव में अमिल बूझ हो जाती है। सरकारी भाग के अनुसार ही इनका गठन हुआ है। प्रत्युत अल्पवय का आचार मुखरानी के विमान लेनक भी सामान्यतया विचित्रताय पाठक रचित बृहत् विगत ग्रन्थ का विगत ग्रन्थों सम्बन्धी परिचित रहा है। यदि यों कहा जाय कि यह उक्त अर्थ का अन्तर्गत ही है तो उचित ही होता। ऐसे अन्तर्गत करने में स्थान-स्थान पर आवश्यक परिवर्तन किये हैं और कुछ नूतन अर्थों को जोड़ दिया है। इसी तरह कुछ नवीन अर्थों को उद्भावना भी मेरे द्वारा हुई है। इसमें जो कुछ अन्तर्गत है वह पाठक भी का है मैं यही मान कर चलता हूँ।

## परिशिष्ट (ख)

### सहायक-सामग्री सूची

#### राजस्थानी व हिन्दी के ग्रन्थ

- मकमूरी दरबार के कवि-डा० सरयूप्रसाद, २००७ वि०  
 मपन्न छ व्याकरण-शांतिदाम उपाध्याय १९३५ ई०  
 मपन्न छ प्रकाश-देवेन्द्र कुमार २००७ वि०  
 मपन्न छ साहित्य-डा० हरिचंन कोसल, २०१३ वि०  
 मर्चकचानक-छं० गायूराम प्रेमी, १९३७ ई०  
 मयवी और उसका साहित्य-मिलोकीनारायण बीसित, प्रथम संस्करण  
 बसमी पुष्पोदय रासो-पं० मयुरप्रसाद बीसित, १९३२ ई०  
 उदयपुर राज्य का इतिहास भाग १ मो० डी० जोसा, १९५३ वि०  
 उदयपुर राज्य का इतिहास-भाग २ मो० डी० जोसा, १९५५ वि०  
 उमरकाव्य-उमरबान-१९३० ई०  
 उषु साहित्य का इतिहास-डा० ऐकाब हुसैन १९३७ ई०  
 ऐतिहासिक जन काव्य संग्रह-जयराम्य मंवरलाल नाहटा १९९४ वि०  
 जोसा निबन्ध संग्रह-चारों भाग उदयपुर-प्रथम संस्करण  
 कबीर हुबारीप्रसाद १९४७ ई०  
 कबीर की विचारधारा-बोडिन्य त्रिमुणायत २ ०६ वि०  
 करनी चरित-किशोरसिंह १९३५ ई०  
 कविरत्नमाला-मुंछी देवीप्रसाद १९३५ ई०  
 कबीन्द्र कल्पसता-छं० लक्ष्मीकमारी कृष्णायत १९३५ ई०  
 कवाम की रासो-छं० बसरव शर्मा, जयराम्य नाहटा १९३३ ई०  
 कान्हूदे प्रबन्ध पपनाम-के बी व्यास १९५३ ई०  
 काव्य मीमांसा-छं० कैहरलाल चारस्वत १९३४ ई०  
 काशी विद्यापीठ रचत-जबंती जमिनन्वन ग्रंथ श्रीराम्य वनी प्रथम आवृत्ति  
 कीर्तिलता और जयहनु भाषा-विजयप्रसाद सिंह १९३२ ई०  
 केहर प्रकाश-बस्तावर १९९१ वि०  
 क्रिस्तन बक्रमपीपी बैल-छं० नरोत्तमदास स्वामी १९३२ ई०  
 कीठ मंजरी-छं० नरोत्तमदास स्वामी १९४४ ई०

- बीबीसी-सं० कन्हैयालाल ग्रहण, १९४१ ई०  
 जय नरदायी और जगन्ना काव्य-डा० विपिन बिहारी, १९३२ ई०  
 सिताई बागों-सं० माताप्रसाद मुन्त, २०१५ वि०  
 छंद राठ बदतसी रत बीठू सुमर रत कहिमर-टेसीटरी कमलता  
 जयल विमल-सं० मन्मीकुमारी जूनागत १९३५ ई०  
 जैन साहित्य परिचय-भाग १, मेनिमन्त्र साहनी १९३६ ई०  
 जैन साहित्य और इतिहास-माधुराम प्रेमी १९३६ ई०  
 जोधपुर राज्य का इतिहास-खण्ड १ पी०डी० जोषा, १९९५ वि०  
 विमल साहित्य-डा० जनदीप प्रसाद श्रीवास्तव १९३० ई०  
 विमल में बीर रस-मोतीलाल देमारिया २००८ वि०  
 विमल साहित्य में नारी-हनुमंत सिंह बेकड़ा १९३३ ई०  
 डूंगरपुर राज्य का इतिहास-पी०डी० जोषा १९९२ वि०  
 जोषा माकरा बूहा-डाकूर, स्वामी पारीक, २०११ वि०  
 दक्खिनी हिन्दी-माधुराम सक्सेना १९३२ ई०  
 दयालदासरी कथा-छात्र ल रिसर्च सीरीज, २  
 दोहाकोष-राहुल सांकृत्यायन १९३७ ई०  
 नाम समय समीक्षा-सं० हुमीरदास १९३३ ई०  
 नाथसम्प्रदाय-हजारीप्रसाद १९३ ई०  
 नाथ विद्वों की शानिकों-हजारी प्रसाद २०१४ वि०  
 परमास रासो सं० श्यामसुन्दर दास १९७६ वि०  
 पालि साहित्य का इतिहास-नरसिंह २००८ वि०  
 पुच्छतल निबन्धावली-राहुल सांकृत्यायन १९३७ ई०  
 पुरानी हिन्दी-जगन्नाथर लाल मुलेटी २००५ वि०  
 पुरानी राजस्वामी-टेसीटरी, जगु० लालनरसिंह २०१२ वि०  
 पूर्वशासुनिक राजस्वाम डा० रघुबीर सिंह १९३१ ई०  
 पंचान्त-स्वामी मन्मलदास १९४८ ई०  
 प्रसिद्धीत साहित्य के मागबंध-डा० रामेश राय १९३४ ई०  
 प्रशस्ति संसद-कस्तूरबाग कालमीवाल, १९५० ई०  
 प्राकृत और उसका साहित्य-डा० हरदेव बाहरी प्रथम संस्करण  
 प्राकृत विमल-डा० सरपूप्रसाद १९३६ ई०  
 प्राकृत भाषाओं का व्याकरण-विशेष-जगु० हेमचन्द्र जोशी, १९३५ ई०  
 प्राकृत व्याकरण-मधुसूदन प्रसाद मिश्र १९६ ई०  
 प्राकृत भाषा-डा० प्रमोद पंडित-१९३४ ई०  
 प्राकृत प्रवेशिका-बनारसीदास जैन १९३३ ई०  
 प्राचीन भारत की साधन पद्धति-अस्तेकर प्रथम संस्करण  
 प्राचीन राजस्वामी पीठ-मोहनसिंह कविराज, भाग १ प्रथम संस्करण

- प्राचीन राजस्थानी गीत—कण्ठ २, मोहनसिंह प्रथम संस्करण  
 प्राचीन राजस्थानी गीत—भाग ३, मोहनसिंह, प्रथम संस्करण  
 प्राचीन राजस्थानी गीत—भाग ४, मोहनसिंह, २०१४ वि०  
 प्राचीन राजस्थानी गीत—भाग ५, मुकुन्दसिंह बेरड़ा २०१४ वि०  
 प्राचीन राजस्थानी गीत—भाग ६, मोहनसिंह शर्मा २०१३ वि०  
 प्राचीन राजस्थानी गीत—भाग ७, मोहनसिंह, २०१५ वि०  
 प्राचीन राजस्थानी गीत—भाग ८, मोहनसिंह २०१४ वि०  
 प्राचीन राजस्थानी गीत—भाग ९ मोहनसिंह शर्मा प्रथम संस्करण  
 प्राचीन राजस्थानी गीत—भाग १०, कविराज आशिया २०१४ वि०  
 प्राचीन राजस्थानी गीत—भाग ११ कविराज आशिया प्रथम संस्करण  
 प्राचीन राजस्थानी गीत—भाग १२, कविराज आशिया, प्रथम संस्करण  
 पृथ्वीराज रासो—मोहनलाल बिष्णुलाल पंड्या १९९९ वि०  
 पृथ्वीराज रासो—नवावती समय रासोव्यास निपाटी, १९२९ ई०  
 पृथ्वीराज रासो—बार कण्ठ कविराज मोहनसिंह प्रथम संस्करण  
 पृथ्वीराज रासो की भाषा—नामवरसिंह, १९२६ ई०  
 पृथ्वीराज रासो की विवेचना—साहित्यसंस्थान प्रथम संस्करण  
 पृथ्वीराज रासो में कलात्मक कविता—कविसाध श्रीवास्तव, १९३३ ई०  
 बांकीदास प्रभाबली—पहला भाग ना० प्र० सम्रा १९२४ ई०  
 बांकीदास प्रभाबली—दूसरा भाग ना० प्र० सम्रा १९३१ ई०  
 बांकीदास प्रभाबली—तीसरा भाग ना० प्र० सम्रा १९३८ ई०  
 बीकानेर राज्य का इतिहास—कण्ठ १ मो ही० जोषा १९६९ वि०  
 बीकानेर राज्य—सं० माताप्रसाद गुप्त गाढ़टा १९२९ ई०  
 भयलमास—उदयराम सज्जन, १९३९ ई०  
 भारत का भाषा सर्वेक्षण—सर्वेक्षण-अनु उदयरामरायण तिवारी १९३९ ई०  
 भारत की भाषा और भाषा सम्बन्धी समस्याएँ—बटर्फी, १९३७ ई०  
 भारत में वाणिज्य—मिर्चिमोहन सेन दूसरा संस्करण  
 भारतीय कार्यभाषा और हिन्दी—बादुण्डी १९३४ ई०  
 भारतीय प्रेमाख्या काव्य—हरिकान्त श्रीवास्तव १९३३ ई०  
 मध्यकालीन कर्म-शास्त्र—ब्रजारीप्रसाद १९३६ ई०  
 मध्यकालीन प्रेम-शास्त्र—परशुराम जगुर्वेदी, १९३९ ई०  
 मध्यकालीन भारत की सामाजिक अवस्था—य म० मुकुन्द मधी, १९२८ ई०  
 मध्यकालीन भारतीय संस्कृति—मो० ही० जोषा १९२८ ई०  
 मध्यकालीन हिन्दी कवयित्रियाँ—सावित्री तिवारी १९३३ ई०  
 मध्यकालीन हिन्दी—नया हरिमोहन श्रीवास्तव १९३३ ई०  
 मराठी और उसका साहित्य—प्रभाकर माधवे, प्रथम संस्करण  
 महाभारत—हिन्दी व्याख्यासहित गीताप्र ३ संस्करण

- महाराजा वरप्रकाश-भूतसिंह सेनापति, प्रथम संस्करण  
 महिला मृदुभाषी-मुंशी बेबीप्रसाद, १९१८ ई०  
 मांसल रात-लक्ष्मीकुमारी जू हावत, २०१४ वि०  
 मारवाड़ का इतिहास-अगदीय सिंह महमोद, १९२९ ई०  
 मारवाड़ी व्याकरण-पं० रामकर्म आसीपा प्रथम संस्करण  
 मालवी और उदका साहित्य-व्यास परमार, प्रथम संस्करण  
 मुठा मैजिस्ट्री कथा-भाग १, रामकर्म आसीपा, ओपनर संस्करण  
 मुहता मैजिस्ट्री कथा-बन्नीप्रसाद ठाकुरिया १९९०  
 मुहमोद मैजिस्ट्री कथा-भाग १, भा०प्र० सभा, १९८२ वि०  
 मुहमोद मैजिस्ट्री कथा-भाग २, भा०प्र० सभा, १९९१ वि०  
 रघुवर वसप्रकाश-छं० सोठाराम सातण, १९९०  
 रघुनाथ करक नीतारो-मंछाराम, छं० गारंठ, १९९७ वि०  
 राज रसनामृत-मुंशी बेबीप्रसाद, १९३८ ई०  
 राजकरक-छं० रामकर्म आसीपा १९९८ वि०  
 राजपुताने का इतिहास-अगदीय सिंह महमोद १९३७ ई०  
 राजविज्ञान-छं० मोठीनाम मेनारिया, २०१५ वि०  
 राजस्वाम का विनय साहित्य-डा० मोठीनाम मेनारिया, १९३२ ई०  
 राजस्वाम की जातियां-अजयनाम मोहिया, १९५४ ई०  
 राजस्वाम के पद्योत्तर-हूरिमाळ उपपाध्याय, १९४९ ई०  
 राजस्वाम के ऐतिहासिक प्रवाद-कट्टीवालाल सहस्र, प्रथम संस्करण  
 राजस्वाम के सांस्कृतिक उपार्याल-कट्टीवालाल सहस्र १९४९ ई०  
 राजस्वामका ब्रह्म-छं० नरोत्तमदास स्वामी १९३३ ई०  
 राजस्वाम दिग्दर्शक-छं० अमरमुष्ट बाळीय १९४८ ई०  
 राजस्वामी बोहावली-गिरयाणीनाम शर्मा प्रथम संस्करण  
 राजस्वामी भाषा और साहित्य-नरोत्तमदास स्वामी २००० वि०  
 राजस्वामी भाषा और साहित्य-मोठीनाम मेनारिया २००८ वि०  
 राजस्वामी भाषा-मुनीति कुमार जाटुर्वा १९४९ ई०  
 राजस्वामी भाषा और साहित्य-लक्ष्मीकुमारी जू हावत १९३० ई०  
 राजस्वामी भाषा की कपरेखा पुरुषोत्तम मेनारिया १९३३ ई०  
 राजस्वामी व्याकरण-सोठाराम सातण १९३४ ई०  
 राजस्वामी बाता-भाग १, नरोत्तमदास स्वामी, प्रथम संस्करण  
 राजस्वामी बाता-भाग २, भवानीशंकर, प्रथम संस्करण  
 राजस्वामी बाता-भाग ३ सौभाग्य सिंह सेनापति प्रथम संस्करण  
 राजस्वामी बाता-भाग ४, सेनापति तथा व्यास प्रथम संस्करण  
 राजस्वामी बाता-भाग ५, सेनापति प्रथम संस्करण  
 राजस्वामी बाता-सूर्यकरण परीक, १९३४ ई०

- राजस्थानी साहित्य का महत्त्व—रामदेव चासानी, २००० वि०  
 राजस्थानी साहित्य की कुरेखा—मोतीमाल मेनारिया, प्रथम संस्करण  
 राजस्थानी साहित्य संग्रह—भाग १, मरीसमवास स्वामी १९३७ ई०  
 राजस्थानी साहित्य संग्रह—भाग २ पुष्पोत्तम मेनारिया, १९६० ई०  
 राजियेरा सोरठा—जगदीश सिंह गहलोत, १९३४ ई०  
 रामकथा—कामिष्ठ बून्ने, १९५० ई०  
 रास और रासामयों काव्य—जोसा, वर्मा २०११ वि०  
 रीतिकालीन कविता और ध्रुवार रस का विश्लेषण—राजश्वरप्रसाद १९५३ ई०  
 रेवातट समय—विपिनबिहारी नाजवेसी १९३३ ई०  
 राधा रासा—मोपालदान कविता १९३३ ई०  
 बचनिका राठौड़ रत्नसिंहजीरी महेन्द्रासोवरी कही टेसीटरी, १९१७ ई०  
 वर्तमान राजस्थान—रामनारायण चौधरी प्रथम संस्करण  
 बिरद सिंहवरी—पुरसा भाड़ा, १९२२ ई०  
 बिरद घिमनार—करमीशाल, १९९९ वि०  
 विश्व साहित्य की कुरेखा—मयवतछरण ज्ञाप्याय १९५७ ई०  
 बीर काव्य संग्रह—उदयनारायण ठिकारी २००३ वि०  
 बीररस का शास्त्रीय अध्ययन—अटलक १९५९ ई०  
 बीरबाग—सं० लक्ष्मीकुमारी कृष्णल, १९९ ई०  
 बीर सतसई सं० सहज व ज्ञान २००३ वि०  
 बीसकवे रासो—सं० सत्यजीवन वर्मा २००८ वि०  
 बैलि किसन स्वमजीरी—टेसीटरी १९१९ ई०  
 बैलि किसन स्वमजीरी—सं० ज्ञानप्रकाश बीसल, १९२३ ई०  
 बैलि किसन स्वमजीरी—हिन्दुस्थानी एकेडमी प्रकाशन १९११ ई०  
 बंस भास्कर—सूर्यमस्त मिशन, प्रथम संस्करण  
 सवी सप्तक—उदयराज जयल, १९३४ ई०  
 सिद्ध चरित—सुर्बशांकर पारीक, २०१५ वि०  
 सिद्ध साहित्य—पर्यबीर भाण्डी १९५५ ई०  
 सुम्बरसार—सं० पु० हरिनारायण १९२० ई०  
 सूरजप्रकाश—सं० टेसीटरी १९१७ ई०  
 सूरपूर्व ब्रजभाषा और उच्चका साहित्य—धिवप्रसाद सिंह १९३७ ई०  
 संस्कृत और उच्चका साहित्य—धाम्तिशुमार व्यास प्रथम संस्करण  
 संस्कृत का भाषाशास्त्रीय अध्ययन—जोसाशंकर व्यास प्रथम संस्करण  
 संस्कृति संयम—किशोर्माहल बैन १९३१ ई०  
 संक्षिप्त पृथ्वीराज रासो—हजारीप्रसाद नामवर सिंह १९३७ ई०  
 हम्मीर रासो—सं० श्यामसुन्दर दास २००६ वि०  
 हरिरत्न—सं० डा० किशोरसिंह १९३८ ई०

- हाकां सासोरा कुञ्जलियाँ-सं० भोतीसाल मेनारिया, २००७ वि०  
 हिन्दी कारकों का विकास-सिखनाथ, २००५ वि०  
 हिन्दी काव्य और उसका सीन्धर्य-भोग्यकाश, १९३७ ई०  
 हिन्दी काव्यभार-राहुल साह्यरायण १९४३ ई०  
 हिन्दी काव्यसिद्धियों का विकास-हरदेव बाहुरी, १९३७ ई०  
 हिन्दो की प्रादेशिक भाषाओं का वैज्ञानिक इतिहास-शमशेर सिंह १९३९ ई०  
 हिन्दो की प्रादेशिक भाषाएँ-मन्मथेश्वर द्विवेदी १९४९ ई०  
 हिन्दी के मुसलमान कवियों के प्रयत्न-गुरुप्रसाद १९५७ ई०  
 हिन्दी वचन-बोधिचन्द्र विजयनाथ, १९५५ ई०  
 हिन्दी नाटक उद्भव और विकास-वसरण जोसा प्रथम संस्करण  
 हिन्दी प्रेमकाव्य काव्य-कुलदेव, १९३९ ई०  
 हिन्दी भाषा का उद्भव और विकास-उदयनारायण ठिवारी २०१२ वि०  
 हिन्दी महाकाव्य का स्वल्प विकास-शम्भूनाथ सिंह १९३९ ई०  
 हिन्दी काव्यरूपों के मूलस्रोत और उनका विकास-अनुत्तम कुबे, १९३८ ई०  
 हिन्दी व्याकरण-कामताप्रसाद मुखर्जी पाँचवाँ संस्करण  
 हिन्दी बीर काव्य-टीकमसिंह तोमर १९३४ ई०  
 हिन्दी सम्बन्धनात्मक-फिरोज़ीदास बाजपेयी प्रथम संस्करण  
 हिन्दी साहित्य का अतीत-भाग १ विजयनाथ प्रसाद मिश्र, २०१५ वि०  
 हिन्दी साहित्य का गद्यकाल-गणेशप्रसाद द्विवेदी, १९३३ ई०  
 हिन्दी साहित्य और साहित्यकार-सुभारकर पांडेय १९३३ ई०  
 हिन्दी साहित्य का संक्षिप्त इतिहास-योगानन्द कला १९४९ ई०  
 हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास-रामकुमार वर्मा, १९५४ ई०  
 हिन्दी साहित्य का इतिहास-रामचन्द्र शुक्ल २००२ वि०  
 हिन्दी साहित्य का आदिकाल-हुवायीप्रसाद १९३२ ई०  
 हिन्दी साहित्य की भूमिका-हुवायीप्रसाद १९३० ई०  
 हिन्दी साहित्य का बहुवचन इतिहास-भाग १, २०१४ वि०  
 हिन्दी साहित्य प्रेरणा और प्रवृत्तियाँ-विजयनाथ प्रसाद १९३३ ई०  
 त्रिपुरी का इतिहास-ब्योहार राजेश्वरसिंह, प्रथम संस्करण  
 संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश ग्रन्थ  
 अपभ्रंश काव्यमयी-गायकबाद जो० सिरीश, १९२७ ई०  
 अपभ्रंश पाठ्यपुस्तिका-म० वि० मोदी १९३३ ई०  
 अर्धमास्यी रोडर-डा० बगारसीदास जैन १९२३ ई०  
 उक्ति व्यक्ति प्रकरण-मुनि जिनविजय २०१० वि०  
 काव्यावर्णन बन्नी, मन्मथारकर इन्स्टीट्यूट १९३८ ई०  
 काव्यानुशासन-पारील व बापवले, १९३८ ई०  
 काव्य मीमांसा-कैदारनाथ शारदाय, १९३४ ई०

- काव्य मीमांसा—नामकवाङ्मय ओ० सिरीष १९२४ ई०  
 काव्यालंकार स्रष्ट—बैरवदेव प्रसिद्ध, प्रथम आवृत्ति  
 करिकरु चरित—हीरानाथ शैल १९३४ ई०  
 कीर्तिमता विद्यापति—सप्तशती, १९५६ वि०  
 कुमारपात्र प्रतिबोध—मृगि जिनविजय, १९२० ई०  
 कुमारपात्र चरित—मण्डारकर इन्स्टीट्यूट, १९३५ ई०  
 कुम्भजयमाला कथा उद्योतन सूरि प्रथम संस्करण  
 माया सप्तशती—सहासिच आ० योगनकर १९२९ ई०  
 मीनबहो बाणसिंह—मृग १९२७ ई०  
 मलहर चरित पुष्पवन्त—पी एक शैल, १९३१ ई०  
 माकाबन्ध—मण्डननारायण शोचरी प्रथम आवृत्ति  
 नायकुमार चरित पुष्पवन्त—हीरानाथ शैल १९३३ ई०  
 दोषी नाममाला हेमचन्द्र—बम्बई संस्कृत सिरीष १९३५ ई०  
 दोषक वृत्ति हेमचन्द्र—मयबाल वास १९३६ ई०  
 दोहाकोष—राहुब साहस्याराम १९३७ ई०  
 दोहा पाहुब—हीरानाथ शैल १९३३ ई०  
 दूतकियाण हरिमल सूरि—आ० मे० उपाध्ये १९४२ ई०  
 नाट्यसाधन भरत—नामकवाङ्मय ओ० सिरीष १९२६ ई०  
 निर्बन्ध प्रबन्धन—वीरमलजी १९९२ वि०  
 नवम चरित विमलसूरि १९१४ ई०  
 पठम चरित बोधवन्त—मायाजी १९३३ ई०  
 पठम चरित १ स्वयम्भू—टीन भाग देवेन्द्रकमार, प्रथम संस्करण  
 पठमचरित चरित—मायाजी तथा मोदी २००२ वि०  
 पुरातन प्रबन्ध संप्रदाय—मृगि जिनविजय १९९२ वि०  
 पुरातन चरितम्—नीलम शोचरी १९२४ ई०  
 प्रबन्ध चिन्तामणि मेरुग—जिनविजय प्रथम संस्करण  
 प्राकृत वेपथम्—बन्धुमोहन शोचरी १९०२ ई०  
 प्राकृत प्रवेशिका—बनारसीदास शैल—१९३३ ई०  
 प्राकृत विमर्श—डा. धरपुत्रदास जयपाल २००९ वि०  
 प्राकृत व्याकरण—सिंहराज, सम्बल, प्रथम आवृत्ति  
 प्राकृत सार्वस्व—बन्धुनाथ स्वामी १९१२ ई०  
 प्राकृत मार्कोपदेशिका—देवरदास शोचरी २००३ वि०  
 भरत बाहुबलि रास—आ० मे० पांशी, १९९७ वि०  
 मज्झिम कथा—बन्धुनाथ तथा गुप्ते, १९२३ ई०  
 माधवकाव्य धारवातलय—नामकवाङ्मय ओ० सिरीष प्रथम संस्करण  
 महापुराण पुष्पवन्त—३ भाग, शैल १९३७-१९४१



- महापुराण भिन्नसेन—२ भाग, प्रथम आवृत्ति  
नीलाचर्य कहा—आ मे उपाध्याय १९४९ ई०  
बसुदेव द्वितीय बो भान—अध्यास पत्र प्रथम संस्करण  
बागमदासकार—बैद्यदेववर प्रेस, प्रथम आवृत्ति  
समराहन्त कहा—अध्यास, प्रथम संस्करण  
सगलकुमार चरित—आकोशी, प्रथम संस्करण  
संक्षेप रासक—मायाजी तथा जिनविजय, १९४५ ई०  
संक्षेप रासक—हजारीप्रसाद तथा विष्णुनाथ, १९६० ई०  
साहित्य दर्पण विष्णुनाथ—निर्णयसागर प्रेस, १९१५ ई०  
सिद्धिचरितकहा—बी एम चौकसी १९३५ ई०  
सायबयन्त बोहा देवसेन—हीरामाल जैन १९३२ ई०  
यजुर्माया चरित्रका लक्ष्मीनर—प क प्राथमिक, १९१६ ई०  
हिन्दी दसक—योगिन् विगुणाधर, प्रथम संस्करण  
अध्यास—आ मे उपाध्यास द्वितीय संस्करण  
करनवल्लभ—भारतीय ज्ञानपीठ काशी प्रथम संस्करण  
विष्णुबर्मांतर पुराण—निर्णय सागर प्रेस प्रथम संस्करण  
गुजराती ग्रन्थ  
अपभ्रंस पाठावली—मधुसूदन चित्रनकाश भोदी सन् १९३५  
अपभ्रंस व्याकरण हेमचन्द्र—के का शास्त्री सं० २००५  
अपभ्रंस व्याकरण हेमचन्द्र—जसभाई पटेल इण्डियन बुक सन् १९५६  
आपना कविता—के का शास्त्री, १९४२ ई०  
कविचरित—के का शास्त्री १९५३ ई०  
कान्हुदे प्रबन्ध—सं० बेरासरी १९२५ ई०  
कान्हुदे प्रबन्ध—सं० के बी व्यास १९३८ ई०  
गुजराती भाषा और साहित्य—न मो विवेकिता सं० के का शास्त्री १९५७ ई०  
गुजराती भाषा की उत्पत्ति—विचरदास बोधी १९४३ ई०  
गुजराती स्त्रो—रामनारायण विष्णुनाथ पाठक प्रथम आवृत्ति  
गुजराती साहित्य—अध्यास १ सं० क मा मुनी १९२९ ई०  
गुजराती साहित्य—भाग १ जगन्नाथ रावस १९५४ ई०  
गुजराती साहित्यना स्वरूप—पद्म विभाग, सं० ए. मजुमदार १९५४ ई०  
गुजराती साहित्य की रूपरेखा—विजयराय क बोध १९४९ ई०  
गुजराती साहित्य में रीतिरस—के का शास्त्री, १९५३ ई०  
गुजराती भाषा की—डा भोगीनाथ साहेबरा १९३६ ई०  
आर्यों और आर्यों साहित्य—अनेकान्त मेवाजी १९४३ ई०  
अज्ञानानुशासन—म ओ परीक प्रथम आवृत्ति  
जैन ऐतिहासिक गुजराती संक्षेप—मुनि जिनविजय, १९२६ ई०



मानेश्वरी—है बि का राजबाहे, भीभी मानुति

संदर्भ ग्रन्थ

अनूप संस्कृत पुस्तकालय की पुस्तक-सूची

अभिधान राजेश्वरी

एंडाइनमोपीडिया डिटेमिका—भाग ११, संस्करण १४

नर्मे टियर आफ बीकानेर—पी डब्ल्यू पासेट

डियस कोस—नारायण सिंह भाटी १९५७ ई०

नागरी प्रचारिणी सभा की ओर रिपोर्टें

पाइलसन्ही नाममाता जनपाल पाटन २००१ वि०

पाइल सह महम्मदी—हरपोविन्धवास सेठ, १९२५ वि०

बोम्बे गज टियर

राजस्थान के जैन साहित्यकारों की ग्रन्थसूची—भाग १, २, ३

राजस्थान में हिन्दी के हस्तलिखित ग्रन्थों की सूची—भाग १, २, ३, ४

रिपोर्ट स ज्ञान दी आपरेसन इन सर्व आफ एम एस एस आफ बाइक क्रोनिक्ल

सरस्वती मण्डार उदयपुर की पुस्तक-सूची

साइन्समोपीडिक डिक्शनरी आफ बर्ड्स मिटरेयर—सिप्ते, १९४९ ई०

हस्तलिखित पोथियों का विवरण—सभी भाग बिहार राष्ट्रभाषा

हिन्दी विश्वकोष—नरेन्द्रनाथ बसु, १९१९ ई०

हिन्दी साहित्य कोष—बीरेन्द्र नर्मा २०१३ वि०

हिन्दी साहित्य सम्मेलन के कार्य—विवरण

हिन्दी शब्दसागर—नागरी प्रचारिणी सभा

हस्तलिखित ग्रन्थ

( संकेत सूची )

अ सं पु — अनूप संस्कृत पुस्तकालय बीकानेर

अ बी पु — अमय जैन पुस्तकालय बीकानेर

आ भा — आनन्दीबाई ज्ञानमन्दिर जयनगर

का — ज्ञानमण्डार कारंवा

द. बि — दरबार गोपालदास महाविद्यालय पुस्तकालय जलीमाबादा

पु प्र — पुस्तक प्रकाश बोधपुर

ब उ — ज्ञानमण्डार बड़ा उपामय पाटन

मो क — मोहनसिंह कविराज संग्रह, उदयपुर

रा रि. — राजस्थान रिजर्व सोसायटी संग्रह, कसकटा

स भ — सरस्वती मण्डार, उदयपुर

सी सा — सीताराम साहस संग्रह मयानिया

सु सा — सुमैर सोमन री ओमपूर

सा ५ — सोममाई वसपतमाई भारतीय धर्मकृति मणिर, बहुमहाबाह  
बचनबाह श्रीभीरी बचनिका—माधव शिवबाग, अ सं पु

बमय बिनास—सेतसी स मं

बजय बिनास—सा पुष्पीराज पु प्र

अनन्तराय सोनारी बाह—अज्ञात, स मं

कल्प बलीसी—मुक्तक पु प्र

किरतार बाबनी—कुरसाजी पु प्र

किसन बन्निका—बांकीबाह सी सा

कोबहारु डूहा—मुक्तक पु प्र

कुन मोह्यद—कल्याणबाह स मं

कुन ओपायन—बाहय पसाइत पु प्र

कुन कपक—हंसकवि पु प्र

गोरखनाथजीरा धर्म—किछोबाह गाढन पु प्र

कम्ब कंवररी बाह—हंसकवि आ सा

बमत बिनोद—महमाकर, ब बि

बली रासा—करभोवान, मिमी संघह

तत्ववेत्तारा सवैया—तत्ववेत्ता, सा ब

तिथियारा डूहा—मुक्तक, पु प्र

वसम नामबतर डूहा—पुष्पीराज स मं

नागदारा डूहा—मुक्तक, पु प्र.

नाव बमन—सोमा झुसा पु प्र

नाथबन्निका—उत्तमचम अंसबाग पु प्र

नाथ बरित—महाराजा मानसिह, पु प्र

पद्मिनी बोपई—हैमरत्न, ब बी पु

पंच सहेलीरा डूहा—मुक्तक स मं

पञ्चुन बरित—सिह आ मं

प्राचीन राजस्थानी दोहे—मुक्तक, ब उ

फतह मसप्रकास—बकठावर मो क

बासचम्र बलीसी—बासचम्र, मिमी संघह

बुद्धि रासो—बसह पु प्र

माबा भारन—साहु सेतसी, स मं

भीम बिबास—किसनजी बाबा स मं

भीम प्रकास—रामबाग स मं

रत्न रासा—हुम्नकर्न सु सा

राव कमरसिंहजीरा डूहा—माधव केसवरास पु प्र

राजा रत्नगरी बचनिका—भद्राव, निजी संग्रह

रामरंजाट—सुयमस्त, रा रि

रामरासो—माधोदास, अ वी पु

रामरासो—माधोदास, सा द

रामा रासो—दयासदास, सा द

रत्नगरी हरण—सांवा भूमा, पु प्र

समस्तविषय रासो—विरघर, पु प्र

सतीरा कवित्त—आसादस्य, पु प्र

सुकुमार चरित—धीवर, सा द

सूरजप्रकाश—हरमोदास, पु प्र

धीपाल रासो—विनयविजय आ आ

हरि विमल प्रबन्ध—जोगीदास, स भ

### English Books

- 1 A Grammar of Prakrit Language—D G Sarkar 1943
- 2 An Introduction to Prakrit Language—Dr D C. Sen  
—First Edition
- 3 An Introduction to Ardhr Magadhi—Dr A. M. Chatterjee 1940
- 4 Annals & Antiquities of Rajasthan—James Tod  
—I Complete Edition
- 5 A Literary History of India—R. W. Frazer—First Edition
- 6 Apbhramsha Meters—Prof Velankar—Poona—First Edition
- 7 Comparative Grammar of the Middle Indo-Aryan  
—Dr S. K. Sen—1931
- 8 Comparative Grammar of the Modern Aryan Language in  
India Volume I, John Beames—1872
- 9 Comparative Prakrit Grammar—V. J. Chokai—1933
- 10 Complete Works of R. Bhandarkar—4 Parts—First Edition
- 11 Catalogue of Manuscripts in the Jain Bhandars of Patan  
Part I—1937
- 12 Catalogue of Sanskrit & Prakrit Manuscripts in the  
—G. P. & Berar—1920
- 13 Dhammapada—Samuel Beal—1950
- 14 Early History of India—Vincent & Smith—Second Edition
- 15 Gujarati Language & Literature—4 Parts—N. B. Divatia—1921
- 16 Gujarat & Its Literature—K. K. Munshi—1954
- 17 History of Indian Literature Vol 2 Winternitz—1933
- 18 History of Indian Literature—Albrecht Weller—First Edition
- 19 Historical Grammar of Apbhramsha—G. V. Tagore—1948
- 20 History of Sanskrit Literature—Das Gupta & De—1947

- 21 History of Sanskrit Literature—A. B. Keith—1948
- 22 India as known to Panini—V S Agarwal—First Edition
- 23 Introduction to Prakrit—A. C. Woolner—1939
- 24 Indo Aryan & Hindi—Dr S. K. Chatterji—1942
- 25 India—A Short Cultural History—Rawlinson—1938
- 26 Language—Bloomfield—1933
- 27 Linguistic Survey of India—Vol IX—Grierson
- 28 Milestones in Gujarati Literature—K. M. Zaveri—I Edition
- 29 Origin & Development of Bengali Language  
—Dr S. K. Chatterji—1926
- 30 Political Institutions & Theories of Hindus  
—Barker—First Edition
- 31 Pali Literature & Language—Dr V. K. Ghosh—First Edition
- 32 Prakrit Language & Their Contribution to India Culture  
—S. M. Katre—1945
- 33 Rajasthani Literature—B. L. Singh—Calcutta—First Edition
- 34 Study in the Gujarati Language in Sixteenth Century  
—Dr T. N. Dave—First Edition
- 35 Study in the Language of 'Uktivyakti Prakarana'  
—Dr S. K. Chatterji—1933
- 36 Some Problems of Indian Literature—Winternitz—First Edition
- 37 Sanskrit Drama—Jagirdar—First Edition
- 38 Types of Sanskrit Drama—D. R. Mankad—First Edition
- 39 Tribes and Castes of Bombay—R. R. Enthoven—First Edition
- 40 The Catalogue of Gujarati & Rajasthani M. S. S. in the India  
Office Library—1954

### सहायक पत्र-पत्रिकाएं

- |                                     |                                    |
|-------------------------------------|------------------------------------|
| १ अक्षरानु—ईश्वराबाद                | २ अनेकाला—दिल्ली                   |
| ३ अक्षरानु—पटना                     | ४ आलोचना—दिल्ली                    |
| ५ इंडियन एंटेक्वेरी                 | ६ अक्षरानु—ईश्वराबाद               |
| ७ नांद—इसाहाबाद                     | ८ आरण—आबनगर                        |
| ९ अक्षरानु—अबनेर                    | १० अर्नेल बाफ ही एशियाटिक सोसायटी  |
| ११ अर्नेल बाफ मुबरात रिसर्च सोसायटी | १२ अक्षरानु—अबनेर                  |
| १३ अक्षरानु प्रकाश—अहमदाबाद         | १४ नागरी प्रचारिणी पत्रिका—वाराणसी |
| १५ अक्षरानु—अबनेर                   | १५ परम्परा—अबनेर                   |
| १६ बुद्धि प्रकाश—अहमदाबाद           | १६ भारतीय विद्या—अबनेर             |
| १७ अक्षरानु—अबनेर                   | १७ मन्त्रालय—अबनेर                 |
| १८ आधुनी—अबनेर                      | १८ मीरा—अबनेर                      |
| १९ राजस्थान—अबनेर                   | १९ राजस्थान मारपी—अबनेर            |

२५ राजस्थान साहित्य—उदयपुर	२६ राजस्थानी—रूपकता
२७ राजस्थानी—नागपुर	२८ राजस्थानी बीर—गुना
२९ बरना—बिदाऊ	३० विश्वभारती—गान्धि निदेशन
३१ घोषपत्रिका—उदयपुर	३२ सम्प्रदाय पत्रिका—प्रयाग
३३ सरस्वती—इलाहाबाद	३४ साहित्य संदेश—आगरा
३५ हिंदी अनुसंधान—प्रयाग	३६ हिन्दुस्तानी—इलाहाबाद
३७ बिद्याल भारत—रूपकता	

### अप्रकाशित शोध प्रबंध

- १ प्राकृत और अपभ्रंश साहित्य का अध्ययन तथा हिंदी पर उनका प्रभाव  
—डा० रामचंद्र सोमर, प्रयाग विश्वविद्यालय
- २ बीरगाथाकाव्य में ऐतिहासिक तथ्य  
—डा० उमेशचन्द्र मिश्रा सतलुज विश्वविद्यालय
- ३ भारतीय मध्ययुग के संविकास का अध्ययन  
—डा० टी० एन० बी० आचार्य, आगरा विश्वविद्यालय
- ४ राजस्थान के राजपरानों की हिन्दी-शैली  
—डा० राजकुमारी चिन्मयी राजस्थान विश्वविद्यालय

